B.Ed

SE-83/85

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज की ओर से डॉ अरूण कुमार गुप्ता
कुलसचिव द्वारा पुनः मुद्रित एवं प्रकाशित, 2020
मुदक : चन्द्रकला यूनिवर्सल प्राइवेट लिमिटेड 42/7 जवाहर लाल नेहरू रोड, प्रयागराज, 211002

मुझे आशा है कि यह पुस्तक प्रशिक्षकों व प्रशिक्षणार्थियों के लिए अत्यधिक उपयोगी सिद्ध होगी।

मैं कन्फेडरेशन के प्रयासों की पुनः सराहना करता हूँ और आशा करता हूँ कि वे इस क्षेत्र में भविष्य में भी अपने प्रयास जारी रखेंगे।

कन्फेडरेशन एवं सभी प्रशिक्षकों व प्रशिक्षणार्थियों के लिए मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ।

16 सितम्बर, 2004

(मेजर हरिपाल सिंह अहलूवालिया)

अध्यक्ष,

भारतीय पुनर्वास परिषद्, नई दिल्ली

[RIL-019]

कृतज्ञता-ज्ञापन

ऑल इण्डिया कन्फेडरेशन ऑफ दि ब्लाइंड एक लम्बे अर्से से दृष्टिहीनों के लिए शिक्षण-प्रशिक्षण पाठ्यक्रम के लिए हिन्दी में किसी अच्छी पुस्तक के अभाव को अनुभव कर रहा था। जिस स्तर के प्रशिक्षार्थी इन केन्द्रों में प्रवेश लेते हैं, उनके लिए अंग्रेजी भाषा में थोड़ी-बहुत उपलब्ध विषय-सामग्री को समझ पाना बहुत कठिन था। इसी अभाव को दूर करने के लिए परिसंघ ने दो वर्ष पूर्व दृष्टिहीनों के शिक्षक-प्रशिक्षण से सम्बन्धित पाठ्यक्रम पर एक अच्छी पुस्तक उपलब्ध कराने का निर्णय लिया। दो वर्षों के अथक परिश्रम के बाद आज हम इस 'शिक्षक-प्रशिक्षण लेखमाला' को पाठकों तक पहुँचाने में सफल हुए हैं।

परिसंघ ने इस परियोजना को दृष्टिहीनों की शिक्षा के क्षेत्र में जानी-मानी हस्तियों के सहयोग और पथ-प्रदर्शन की सहायता से ही पूरा किया है। हम श्री अजय कुमार मित्तल, राष्ट्रीय दृष्टिबाधितार्थ संस्थान के चेन्नई स्थित क्षेत्रीय कार्यालय में कार्यरत क्षेत्रीय निदेशक तथा प्रो. (डॉ.) एस.आर. मित्तल के विशेष आभारी हैं, जिन्होंने इस परियोजना को सफल बनाने में अपना पूरा योगदान दिया। कहने की आवश्यकता नहीं कि यदि हमें निम्नलिखित विशेषज्ञों का भरपूर सहयोग न मिला होता तो इस पुस्तक का तैयार होना लगभग असम्भव था--

1. डॉ. आर.एस. चौहान, वरिष्ठ प्रवक्ता, राष्ट्रीय दृष्टिबाधितार्थ संस्थान, देहरादून।
2. डॉ. सुषमा शर्मा, रीडर, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र।
3. डॉ. सुशील कुमार, प्रवक्ता, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र।
4. डॉ. राम भजन लाल सोनी, रीडर, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् नई दिल्ली।
5. डॉ. (श्रीमती) स्वाति सान्याल, प्रवक्ता, दृष्टिहीनार्थ शिक्षक-प्रशिक्षण केन्द्र, लाल बहादुर शास्त्री मार्ग, नई दिल्ली।

6. श्रीमती कनक लाल, प्रवक्ता, दृष्टिहीनार्थ शिक्षक-प्रशिक्षण केन्द्र, लाल बहादुर शास्त्री मार्ग, नई दिल्ली।

7. श्री रमेश चन्द्र निझावन, भूतपूर्व ब्रेल विकास अधिकारी, राष्ट्रीय दृष्टिबाधितार्थ संस्थान, देहरादून।

8. श्रीमती स्वर्ण अहूजा, सेवानिवृत्त प्रवक्ता।

9. श्री दीपेन्द्र मिनोचा, प्रबन्धक, कम्प्यूटर कार्यक्रम, एन.ए.बी., नई दिल्ली।

10. डॉ. सन्दीप मल्होत्रा, नेत्र रोग विशेषज्ञ, नई दिल्ली।

डॉ. सी.पी. थपलियाल, भूतपूर्व रीडर, तिबिया कालेज, नई दिल्ली।

यहाँ हम नॉर्वेजियन एसोसियेशन ऑफ दि ब्लाइंड के प्रति आभार व्यक्त किये बिना नहीं रह सकते, जिसने इस परियोजना को पूरा करने में आँशिक वित्तीय सहायता प्रदान की। इस सहायता के बिना निश्चय ही इस बड़ी परियोजना को पूरा कर पाना शायद सम्भव न हो पाता।

हम इन सभी के प्रति परिसंघ की ओर से हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं और आशा करते हैं कि यह पुस्तक पाठकों के लिए विशेष उपयोगी सिद्ध होगी।

(जे.एल. कौल)
महासचिव
ऑल इण्डिया कन्फेडरेशन ऑफ दि ब्लाइंड,
दिल्ली।

विषय सूची

खण्ड - एक

अध्याय-1 विशिष्ट शिक्षा का अर्थ एवं इतिहास 3
- डॉ. आर.एस. चौहान

अध्याय-2 एकीकृत शिक्षा की योजनाएं 17
- डॉ. सुषमा शर्मा

अध्याय-3 विशिष्ट शिक्षा में विभिन्न विशेषज्ञों की भूमिका 27
- डॉ. आर.एस. चौहान

अध्याय-4 संसाधन कक्ष 39
- डॉ. सुषमा शर्मा

अध्याय-5 एकीकृत एवं समावेशित शिक्षा के प्रसार के उपाय 49
- डॉ. सुषमा शर्मा

अध्याय-6 पाठ्यक्रम 61
- डॉ. आर.एस. चौहान

खण्ड - दो

अध्याय-7 स्पर्श लिपियों का इतिहास 73
- आर.सी. निझावन

अध्याय-8 ब्रेल शिक्षण 89
- आर.सी. निझावन

अध्याय-9 दृष्टिबाधितों की शिक्षा हेतु उपयुक्त उपकरणों का परिचय 103
- डॉ. एस. आर. मित्तल

अध्याय-10 आधुनिक उपकरणों का परिचय एवं उपयोगिता 115
- दीपेन्द्र मिनोचा

अध्याय-11 अनुस्थितिज्ञान एवं चलिष्णुता 125
- श्रीमती स्वर्ण अहूजा

अध्याय-12 ज्ञानेन्द्रिय प्रशिक्षण 137
- डॉ. एस.आर. मित्तल

अध्याय-13 दैनिक क्रियाएं एवं गतिविधियाँ 151
- डॉ. एस.आर. मित्तल

खण्ड - तीन

अध्याय-14 विकलांगता 159
- श्रीमती स्वर्ण अहूजा

अध्याय-15 अभिवृद्धि एवं विकास तथा दृष्टिहीनता 167
- डॉ. सुषमा शर्मा

अध्याय-16 अधिगम एवं दृष्टिहीनता 183
- डॉ. सुषमा शर्मा

अध्याय-17 बुद्धि 195
- डॉ. सुषमा शर्मा

अध्याय-18 व्यक्तित्व एवं दृष्टिहीनता 207
- डॉ. एस.आर. मित्तल

अध्याय-19 अभिवृत्ति 223
- डॉ. राम भजन लाल सोनी

अध्याय-20 प्रत्यय निर्माण एवं विकास 239
- डॉ. एस. सान्याल

खण्ड - चार

अध्याय-21 गणित शिक्षण 249
- डॉ. सुशील कुमार

अध्याय-22 विज्ञान शिक्षण 279
- डॉ. सुशील कुमार

अध्याय-23 दृष्टिबाधितों के लिए सामाजिक अध्ययन शिक्षण 307
- श्रीमती कनक लाल

अध्याय-24 दृष्टिबाधितों के द्वारा भाषा अधिगम 343
- श्रीमती कनक लाल

अध्याय-25 न्यून दृष्टि बालकों की शिक्षा 353
- डॉ. एस. सान्याल

अध्याय-26 नेत्र एवं नेत्रों की देखभाल 373
- डॉ. सन्दीप मल्होत्रा

अध्याय-27 कान एवं कानों की देखभाल 399
- डॉ. सी.पी. थपलियाल

अध्याय-28 दृष्टिबाधितों की शिक्षा व पुनर्वास में सरकारी व गैर-सरकारी संस्थाओं की भूमिका, कार्य व उत्तरदायित्व 407
- डॉ. आर.एस. चौहान

अध्याय-29 पुनर्वास 427
- डॉ. आर.एस. चौहान

अध्याय-30 दृष्टिबाधितों की शिक्षा व पुनर्वास के क्षेत्र में महान विभूतियों का संक्षिप्त जीवन परिचय एवं योगदान 443
- डॉ. आर.एस. चौहान

अध्याय-31 वैयक्तिक विभिन्नताएं 467
- डॉ. सुशील कुमार

अध्याय-32 भारती ब्रेल का विकास 483
- आर. सी. निझावन

संदर्भ साहित्य 497

खण्ड - एक

अध्याय-1

विशिष्ट शिक्षा का अर्थ एवं इतिहास

-डॉ. आर.एस. चौहान

प्रस्तुत अध्याय में शिक्षा का अर्थ तथा उसकी परिभाषा देते हुए विशिष्ट शिक्षा के विकास के इतिहास का उल्लेख किया गया है, ऐसा करते समय भारत तथा पश्चिमी देशों के विकास की अलग-2 चर्चा की गई है।

विशिष्ट शिक्षा का अर्थ एवं परिभाषा:-

सन् 1789 की फ्रांसीसी क्रान्ति विश्व इतिहास की एक ऐसी घटना है जिसे इतिहास के विद्यार्थियों के साथ-साथ सामान्य ज्ञान रखने वाला प्रत्येक व्यक्ति जानता है। 18वीं शताब्दी में ही फ्रांस में दो और क्रान्तियाँ हुईं। विकलांगता के क्षेत्र में इन दोनों ही क्रान्तियों का महत्त्वपूर्ण प्रभाव रहा है। ये क्रान्तियाँ थीं- दृष्टिहीन तथा मानसिक विकलांग व्यक्तियों की औपचारिक शिक्षा का बीजारोपण। इससे पूर्व 16वीं शताब्दी में बधिर बालकों के लिए स्पेन में शिक्षण का दीप प्रज्वलित किया जा चुका था।

स्मरण रहे कि प्रारम्भ में इन तीनों श्रेणियों के पूर्ण अथवा लगभग पूर्ण विकलांगता वाले व्यक्तियों पर ध्यान केन्द्रित किया गया। वह स्वाभाविक भी था।

अगले डेढ़ सौ वर्षों में गुणवत्ता में तथा विद्यालयों की संख्या में निश्चित रूप से सुधार हुआ परन्तु प्रणाली की दृष्टि से सीमित एकीकरण प्रयासों के अतिरिक्त विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। अतः सामान्य शिक्षा प्रणाली से भिन्नता व पहचान की दृष्टि से मन्द-बुद्धि बालकार्थ, मूक-बधिर बालकार्थ तथा/अथवा दृष्टिहीनार्थ विद्यालय/ शिक्षा शब्दावली पर्याप्त एवं उपयुक्त समझी जाती रही।

1950-75 के मध्य इस क्षेत्र में विकास तथा परिवर्तन बहुत इजी से हुए। पश्चिमी जगत में कुछ स्थिति विकास सामने आए।

1. विकलांग व्यक्तियों के लिए सामान्य विद्यालयों में उनके लिए उपयुक्त एवं अनुकूल शिक्षा-सुविधाओं की माँग तेजी से बढ़ी और फलस्वरूप इस दिशा में उल्लेखनीय प्रगति हुई।

2. दृष्टिहीन, मूक-बधिर तथा मानसिक विकलांगों को विकलांगता की मात्रा के आधार पर एक से अधिक श्रेणियों में विभक्त करने की आवश्यकता अनुभव

की गयी तथा अलग-अलग देशों में इनके लिये उपयुक्त शब्द व शब्द-समूह ढूँढे व प्रयुक्त किये जाने लगे।

3.. इन तीन विकलांगताओं के अतिरिक्त शारीरिक एवं व्यवहार सम्बन्धी असामान्यताओं को अन्य विकलांगताओं के रूप में स्वीकार किया जाना अथवा स्वीकृति के लिए प्रयास।

इसी तीव्रगामी परिवर्तन व विकास के दौर में सम्बद्ध शिक्षकों तथा शिक्षाविदों ने ऐसी शब्दावली की आवश्यकता अनुभव की जो परिवर्तित परिवेश में दृष्टिहीन तथा दूसरे विकलांगों को पृथक् विद्यालयों में प्रदान की जाने वाली तथा सामान्य स्कूलों में उपलब्ध शिक्षा सुविधाओं को सामूहिक रूप से व्यक्त कर सके, परिणामस्वरूप 1970 के आसपास पृथक् विद्यालयों में उपलब्ध शिक्षण को 'विशिष्ट शिक्षा' कहा जाने लगा। इस तथ्य की पुष्टि विलियम एल. हेवार्ड तथा माइकल डी. आरलेन्सकी (1980) द्वारा लिखित पुस्तक "एक्सेप्शनल चिल्ड्रन" के एक संक्षिप्त अवतरण से हो जाती है:-

"Regardless of the child's handicap, Special meant 'Separate'. The early history of Special Education was largely a history of separate schools, specially for children who were blind (Schools for the Blind) or deaf (Instead other schools)."

(बालक की विकलांगता चाहे जो हो, विशिष्ट का अर्थ था- पृथक्। विशिष्ट शिक्षा का प्रारम्भिक इतिहास प्राय: पृथक् विद्यालयों का इतिहास रहा है, विशेषकर जो बालक दृष्टिहीन थे (दृष्टिहीनार्थ विद्यालय) या बधिर (इसके अतिरिक्त अन्य विद्यालयों में)

कुछ विशेषज्ञ आज तक भी 'विशिष्ट शिक्षा' को पृथक् शिक्षा प्रणाली के अर्थ में ही लेते हैं, यद्यपि इनकी संख्या वहुत सीमित है। उदाहरण के लिए विशिष्ट शिक्षा परिभाषित करते हुए हचिंसन एनसाक्लोपीडिया (2000) की प्रविष्टि निम्न प्रकार है:-

" Education, often in separate 'Special Schools', for children with specific physical or mental problems or disabilities."

(निश्चित शारीरिक अथवा मानसिक समस्याग्रस्त अथवा विकलांगताग्रस्त बालकों के लिए शिक्षा, प्राय: पृथक् (विशिष्ट विद्यालयों) में।)

परन्तु शीघ्र ही यह अन्तर धूमिल होने लगा तथा विशेषज्ञ 'विशिष्ट शिक्षा' शब्दावली का प्रयोग विशिष्ट विद्यालयों एवं एकीकृत परिवेश में सुलभ करायी जाने

वाली, दोनों प्रकार की शिक्षा सुविधाओं के लिए करने लगे। संयुक्त राज्य अमरीका में सन् 1975 में पारित 'समस्त विकलांग बालकों हेतु शिक्षा' अधिनियम 94-142 ने इस स्थिति को और अधिक सबल किया। इसमें विकलांगों की अनेक नयी श्रेणियों को भी स्वीकार किया गया। इस ऐतिहासिक कानून ने उस देश में 3 से 21 वर्ष के प्रत्येक विकलांग बालक/बालिका को "न्यूनतम प्रतिबन्धित परिवेश में नि:शुल्क व उपयुक्त शिक्षा" प्राप्त करने का अधिकार प्रदान किया। इसे विशिष्ट शिक्षा क्षेत्र में नागरिक अधिकार आन्दोलन के तार्किक परिणाम के रूप में देखा जाना चाहिए। (स्मरण रहे कि इस अधिनियम में कुशाग्र बुद्धि बालकों "Gifted Children" को सम्मिलित नहीं किया गया था। हाँ, बाद में चलकर इस कानून को संशोधित करते समय उन्हें भी शामिल किया जा चुका है)। इसके साथ-साथ एक अन्य बहुअर्थी तथा व्यापक शब्दावली "Exceptional Children" (असाधारण बालक) का भी तेजी से प्रचलन बढ़ा।

हेवार्ड तथा आरलेन्सकी (1980) ने विशिष्ट शिक्षा को निम्न प्रकार से परिभाषित किया है:-

"In one sense, it is a profession, with its own tools, techniques and research efforts, all focussed on improving instructional arrangements and procedures for evaluating and meeting the learning needs of exceptional children and adults. At a more practical level, special education is the individually planned and systematically monitored arrangement of physical settings, special equipment and materials, teaching procedures and other interventions designed to help exceptional children achieve the greatest possible personal self-sufficiency and academic success."

अर्थात् (एक अर्थ में विशिष्ट शिक्षा एक व्यवसाय है जिसके अपने तरीके, तकनीकें तथा शोध प्रयास-सभी असाधारण बालकों व वयस्कों की अनुदेशात्मक व्यवस्थाओं तथा मूल्यांकन प्रक्रियाओं को विकसित करने एवं उनकी अधिगम आवश्यकताओं की पूर्ति पर केन्द्रित होते हैं। व्यावहारिक स्तर पर विशिष्ट शिक्षा वैयक्तिक रूप से योजनाबद्ध तथा व्यवस्थित निरीक्षण पर आधारित भौतिक परिवेश, विशिष्ट उपकरण एवं सामग्री, शिक्षण प्रक्रियाओं व अन्य हस्तक्षेपों वाली प्रणाली है, जिसका उद्देश्य असाधारण बालकों को अधिकतम सम्भव व्यक्तिगत आत्मनिर्भरता तथा बौद्धिक सफलता प्राप्त करने में सहायता करना है)।

इस प्रकार की सहायता विशिष्ट विद्यालयों में हो, एकीकृत शिक्षा परिवेश में हो, पूर्ण विकलांगों के सन्दर्भ में हो, चाहे अत्यन्त सीमित रूप से शारीरिक-मानसिक क्षतिग्रस्त बालकों के सन्दर्भ में हो, यह विशिष्ट शिक्षा ही कहलायेगी।

वास्तव में पिछले 25 वर्षों में विशिष्ट शिक्षा शब्दावली व्यापक से व्यापकतर होती गयी है और कभी-कभी तो वह भ्रामक भी प्रतीत होती है। आगे दी गयी एक परिभाषा से स्पष्ट हो जायेगा कि अब विशिष्ट शिक्षा शब्दावली का प्रयोग विकलांग बालकों की शिक्षा तक सीमित नहीं है।

चिन्तामणी कर (1992) अपनी पुस्तक "Exceptional Children-their Psychology and Education" (असाधारण बालक-उनका मनोविज्ञान तथा शिक्षा) में कहते है:-

"The very term special education includes all aspects of education which are applied to exceptional children-Physical, Mental. Disadvantaged and gifted children. But these methods are not usually adopted for average children."

अर्थात् (विशिष्ट शिक्षा शब्दावली में शारीरिक, मानसिक, पिछड़ेपन तथा कुशाग्र बुद्धि के कारण असाधारण बालकों की शिक्षा में प्रयुक्त होने वाले समस्त आयाम सम्मिलित होते हैं। इन विधियों का प्रयोग प्रायः औसत स्तर के बच्चों के लिए नहीं किया जाता)।

ब्रिटेन में बार्नाक समिति (1978) के प्रतिवेदन में विशिष्ट शिक्षा के सन्दर्भ में "Special educational needs or special needs education" (विशिष्ट शैक्षिक आवश्यकताएं अथवा विशिष्ट आवश्यकता शिक्षा) शब्दावली का प्रयोग किया गया- मदनमोहन झा, "School without walls" (2002). "Exceptional Children" पुस्तक के लेखक डेनियल पी. हेलाइन तथा जेम्स एम. काफमान (1978) के अनुसार:-

"Speical Education means specially designed instruction which meets the unique needs of an exceptional child. Special materials, teaching techniques, equipment and/or fecilities may be required."

(विशिष्ट शिक्षा का अभिप्राय असाधारण बालक की विशिष्ट आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु निर्मित विशेष अनुदेशन से है। इसके लिए विशिष्ट शिक्षण सामग्री, शिक्षण तकनीक, उपकरण तथा/अथवा सुविधाओं की आवश्यकता हो सकती है)।

उपर्युक्त चर्चा व परिभाषाओं का सार सूत्र रूप में निम्नलिखित बिन्दुओं द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है:-

1. 1970 से पूर्व की स्थिति में विशिष्ट शिक्षा का प्रयोग प्रमुख विकलांगताओं से ग्रस्त बालकों के पृथक् अथवा विशिष्ट विद्यालयों के लिए किया जाता है, इसे एतिहासिक मान्यता की संज्ञा दी जा सकती है।

2. 1970 के दशक में विशिष्ट शिक्षा शब्दावली का प्रयोग विशिष्ट विद्यालयों तथा एकीकृत शिक्षा प्रणाली का सामूहिक रूप में एक-दूसरे से भिन्न बताने के लिए किया जाने लगा।

3. शीघ्र ही इसमें अनेक अन्य आयाम जुड़ते गये और इसका क्षेत्र अधिकाधिक व्यापक होता गया।

आजकल इसका प्रयोग न केवल हर प्रकार के विकलांग बालकों की शिक्षा के लिए किया जाता हैं, अपितु कुशाग्र बुद्धि बालकों के लिए की गयी कुछ अतिरिक्त व्यवस्था को भी इसमें सम्मिलित किया जाता है।

निष्कर्ष यह है कि वर्तमान संदर्भ में सामान्य बालकों के अतिरिक्त मानसिक, शारीरिक तथा व्यवहार सम्बन्धी आधार पर न्यूनतम से अधिकतम बाधा वाले बालक को 'असाधारण बालक' की श्रेणी में रखा जाता है तथा उसे प्रदान की जाने वाली शिक्षा 'विशिष्ट शिक्षा' कहलाती है।

यहाँ यह स्पष्ट करना वांछनीय होगा कि इस अध्याय की आवश्यकताओं तथा अन्य कारणों से हम विशिष्ट शिक्षा को बिन्दु नम्बर एक के अन्तर्गत उल्लिखित अर्थ में ही लेंगे।

विशिष्ट शिक्षा की आवश्यकता एवं महत्त्व:-

प्रश्न उठता है कि विकलांग बालकों के लिए विशिष्ट या आवासीय विद्यालय क्यों आरम्भ किये गये और आज भी वे विकासशील देशों में, अपने विरुद्ध सशक्त व संगठित्र आन्दोलन के बावजूद लोकप्रिय क्यों हैं? प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री बरथोल्ड लावेनफेल्ड (1973) ने अपनी पुस्तक "The Visually Handicapped Child in School" में इसके दो कारण बताये हैं। सर्वप्रथम तो दृष्टिहीन बालकों को शिक्षा प्रदान करना इतना दुरूह कार्य समझा गया कि इसमें सफलता के लिए पूर्णतया दृष्टिहीन केन्द्रित विद्यालय अनिवार्य प्रतीत हुए। दूसरी बात यह है कि पहले सार्वजनिक स्कूलों की संख्या कम थी तथा उनके अध्यापकों को दृष्टिहीनों की विशेष शिक्षा आवश्यकताओं को पूरा करने की जानकारी भी नहीं थी। (यही बात अन्य विकलांगों के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है)।

ये दोनों कारण भारत जैसे विकासोन्मुख देश में आज भी एक बड़ी सीमा तक कटु वास्तविकता हैं। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य प्रमुख कारण हैं:

1. निरक्षरता की उच्च दर- अनेक विकलांगों के माता-पिता स्वयं भी निरक्षर हैं और इसीलिए उन्हें विशिष्ट विद्यालय ही अपने बालकों की शिक्षा का एकमात्र सम्भावित उपाय प्रतीत होते हैं।

2. नकारात्मक अभिवृत्ति- अनेक माता-पिता अपने विकलांग बालकों की शिक्षा का महत्त्व नहीं समझते, साथ ही वे ऐसे बालकों को कई बार एक बोझ मानते हैं। आज भी ऐसे कई उदाहरण सामने आते हैं जब माता-पिता अपने बालक को एक बार विशिष्ट विद्यालय में छोड़कर चले जाते हैं और फिर कभी नहीं लौटते। ऐसी स्थिति में अनेक नि:शक्त बालक विशिष्ट शिक्षा के अभाव में स्वावलम्बी व उत्पादक नागरिक बनने की बजाय परावलम्बी, निष्क्रिय तथा परिणामस्वरूप राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था पर भारी बोझ बनकर रह जायेंगे।

3. आर्थिक व प्रशासनिक कठिनाइयाँ- भारत में व्याप्त निम्न आर्थिक स्तर, विकलांग बालकों के लिए सामाजिक सुरक्षा के रूप में आर्थिक सहायता का अभाव एवं एकीकृत शिक्षा योजना के अन्तर्गत नियत सहायता का सत्र के अन्त में मिलना तथा अनेक प्रशासनिक जटिलताएं ऐसे सबल कारक हैं जो विशिष्ट विद्यालयी शिक्षा को लोकप्रिय बनाये हुए हैं।

4. अधिक संख्या व प्रशिक्षण का अभाव इत्यादि- भारत सरकार की एकीकृत शिक्षा योजना तथा सर्व शिक्षा अभियान व डी.पी.ई.पी. में दृष्टिबाधित सहित सभी विकलांगों को सम्मिलित करना एक वांछनीय सरकारी उपाय है, परन्तु इसके उपयुक्त परिणाम आने में काफी समय लगेगा। संयुक्त राज्य अमरीका जैसे सम्पन्न देश में भी सभी बालकों को अभी तक एकीकृत शिक्षा व्यवस्था में सम्मिलित कर पाना सम्भव नहीं हो पाया है जबकि समस्त विकलांग बालकों हेतु शिक्षा अधिनियम वहाँ 1975 में पारित कर दिया गया था, पर्याप्त धनराशि भी उपलब्ध करवायी गयी और अधिनियम को अधिक सबल व व्यापक बनाने के लिए अनेक बार उसे संशोधित भी किया गया।

स्मरण रखना चाहिए कि सामान्य विद्यालयों में प्राथमिक स्तर पर कक्षाओं में कभी-कभी 50-60 छात्र होते हैं, 40 छात्र तो प्राय: मिलेंगे ही। ग्रामीण क्षेत्रों में अनेक एकल-अध्यापक विद्यालय पाये जाते हैं। फिर हमारे देश के बहुसंख्यक लोगों के लिए बालकों की शिक्षा को अधिकार के रूप में प्राप्त करने का विचार अभी दूर की बात है। ऐसी स्थिति में विशिष्ट शिक्षा की आवश्यकता व महत्त्व स्वयंसिद्ध है।

5. **उच्च व्यय-दर एक दुर्बल तर्क-** अनेक बार यह तर्क दिया जाता हैं कि विशिष्ट शिक्षा के अन्तर्गत प्रति व्यक्ति व्यय-दर एकीकृत शिक्षा की तुलना में बहुत अधिक होती है। सर्वप्रथम तो आज तक कोई व्यापक तुलनात्मक अध्ययन इस विषय में उपलब्ध नहीं है जो इस सम्बन्ध में उपयुक्त व मान्य आँकड़े प्रस्तुत कर सके। दूसरी खास बात यह है कि विशिष्ट शिक्षा में अनेक बार अधिक व्यय शिक्षा सम्बन्धी मदों पर नहीं अपितु भोजन व आवास के कारण होता है। इसमें अनेक बार तो स्वयं अधिकारी दोषी होते हैं। यदि भोजन, आवास व वस्त्र सुविधाओं पर तर्कसंगत व्यय हो तथा इन विद्यालयों को पाँचवीं-छठी कक्षा तक सीमित रखा जाये तो प्रति व्यक्ति दर को काफी कम किया जा सकता है।

इस स्थिति का एक और आयाम भी है। भारत में दृष्टिबाधितों के लगभग 60% विशिष्ट विद्यालय जन-पोषित हैं। ऐसी ही स्थिति दूसरे क्षेत्रों में भी होगी। इन संस्थाओं को बन्द कर देने पर क्या जनता इस धन को उनकी (विकलांगों की) शिक्षा के लिए सरकार को उपलब्ध करवायेगी ? निश्चित रूप से नहीं। तो, ध्यान इस ओर दिया जाना चाहिए कि जनता/सरकार द्वारा दिये गये अनुदान का अधिकतम सदुपयोग हो। हमें पाश्चात्य देशों में व्याप्त तथा उनके लिए उपयुक्त तर्क को बिना विचार के अपने देश में दोहराने से बचना चाहिए।

विभिन्न कारकों को ध्यान में रखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे देश में विशिष्ट शिक्षा की आवश्यकता तथा उसका महत्त्व आने वाले कम से कम 50 वर्ष तक तो बना ही रहेगा। अतः इन विद्यालयों को हेय दृष्टि से देखना अनुचित व अवांछनीय है। वर्तमान स्थितियों में इन विशिष्ट विद्यालयों को भी अन्य प्रणालियों के साथ-साथ फलने-फूलने का अवसर देना विकलांगों तथा इस राष्ट्र के हित में होगा।

विशिष्ट शिक्षा का पश्चिमी जगत में विकास एवं प्रसार:

दृष्टिहीनार्थ विशिष्ट शिक्षा-दृष्टिहीन तथा दृष्टिहीन-मूक-बधिर व्यक्तियों की शिक्षा के सम्बन्ध में दार्शनिक धरातल फ्रांसीसी लेखक दिदरो (1713-1784) ने तैयार किया, परन्तु इन विचारों को दृष्टिबाधितों के संदर्भ में मूर्त रूप देने का श्रेय एक अन्य फ्रांसीसी वैंलाती औई (Valentin Hauy) (1745-1822) को जाता है। औई ने सन् 1784 में पेरिस नगर में दृष्टिहीनों के लिए एक विशिष्ट विद्यालय की स्थापना कर नया इतिहास रचा। उन्होंने दृष्टिहीनों की शिक्षा के विषय में एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका के 1786 के संस्करण में एक निबन्ध भी प्रकाशित किया। (दि एनसाइक्लोपीडिया ऑफ स्पेशल एजुकेशन, खण्ड-2, 1987), (लॉवेनफेल्ड, 1973), (फेरल, 1956) तथा (शैविग्नि व ब्रैवरमैन, 1905)।

क्रान्ति के पश्चात् नेपोलियन ने इस विद्यालय को एक अन्य सरकारी संस्था के साथ सम्बद्ध कर दिया। वैचारिक मतभेद के फलस्वरूप औई को 1802 में नौकरी से निकाल दिया गया, जिसके बाद उन्होंने दृष्टिबाधितों के लिए एक अन्य विशिष्ट विद्यालय की स्थापना की जो तीन वर्ष चला। उसके पश्चात् औई रूस चले गये।

औई के प्रत्यक्ष योगदान से जर्मनी तथा रूस में भी दृष्टिहीनार्थ शिक्षा सेवाओं का श्रीगणेश हुआ। इसके अतिरिक्त उनकी सफलताओं की जानकारी के परिणामस्वरूप तथा दूसरे व्यक्तियों की अपनी सोच व सामाजिक चेतना के प्रभाव से 1822 में औई की मृत्यु से पूर्व फ्रांस, जर्मनी व रूस के अलावा ऑस्ट्रिया, इटली, हॉलैण्ड, स्लोवाकिया, स्वीडन, स्विट्जरलैण्ड, आयरलैण्ड, डेनमार्क, स्कॉटलैण्ड, बैल्जियम, इंग्लैण्ड तथा स्पेन में दृष्टिबाधितों के लिए स्कूल शुरू किये जा चुके थे। यह एक प्रशंसनीय उपलब्धि समझी जा सकती है।

1952 बुजुम (हॉलैण्ड) में सम्पन्न एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन के प्रतिवेदन से ज्ञात होता है कि उस समय तक यूरोप के विभिन्न देशों में विशिष्ट शिक्षा का प्रसार हो चुका था। दृष्टिबाधित बालकों के लिए कई देशों में नर्सरी से लेकर माध्यमिक स्तर तक की विशिष्ट शिक्षा उपलब्ध थी और साथ ही साथ कहीं-कहीं तकनीकी शिक्षा एवं विशिष्ट अध्यापकों को प्रशिक्षण की सुविधाएं भी प्रारम्भ हो चुकी थीं, (फैरल, 1956)।

इंग्लैण्ड में प्रारम्भ से ही दृष्टिहीनों की विशिष्ट शिक्षा प्रारम्भ करने व उसका विकास करने में स्वयं दृष्टिबाधितों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। वहाँ का सर्वप्रथम विशिष्ट विद्यालय 1791 में एक दृष्टिबाधित एडवर्ड रशटन द्वारा लिवरपूल में स्थापित किया गया। एक अन्य दृष्टिहीन डेविड मिलर ने एक मिशनरी के साथ मिलकर 1793 में एडिनबरा में एक अन्य विशिष्ट विद्यालय स्थापित किया। इसके पश्चात् ब्रिस्टल में 1793 में, सेन्ट जॉर्जेस साउथ वार्क में 1799 में विशिष्ट विद्यालय स्थापित किये गये।

ब्रिटेन में विशिष्ट शिक्षा आरम्भ होने के पश्चात् पहली शताब्दी में ही दृष्टिहीनों के लिए अनेक विद्यालय सेवाएं प्रदान करने लगे थे। इनमें से कई शिक्षा व व्यावसायिक प्रशिक्षण की दृष्टि से बहुत प्रगतिशील समझे जाते थे। इंग्लैण्ड के अधिकतर शिक्षाविदों का विचार यह था कि दृष्टिहीनों के लिए विशिष्ट विद्यालय अधिक उपयुक्त हैं।

1893 के प्राथमिक शिक्षा अधिनियम द्वारा दृष्टिहीन बालकों को विशिष्ट विद्यालय में शिक्षा सुलभ करवाने का उत्तरदायित्व स्थानीय शिक्षा प्राधिकरणों को सौंपा गया। (झा, 2002)।

लन्दन शिक्षा बोर्ड ने 1879 में दृष्टिबाधितों के लिए एकीकृत शिक्षा कार्यक्रम आरम्भ किया जिसे कुछ वर्ष बाद बन्द करना पड़ा। 1936 के एक सर्वेक्षण के अनुसार शहरी क्षेत्रों के अलावा अन्यत्र ऐसी सुविधाएं व्यावहारिक नहीं थीं। इसी रपट के अनुसार दृष्टिहीनों की शिक्षा, विशेषकर बालकों की शिक्षा को अतिविशिष्ट प्रकृति का बताया गया, जिसे सामान्य प्राथमिक विद्यालयों से सम्बद्ध नहीं किया जा सकता।

इसके परिणामस्वरूप 1944 के कानून के अन्तर्गत व्यवस्था की गयी कि इंग्लैण्ड के सभी दृष्टिहीन बालकों को आवासीय विद्यालयों में पढ़ाया जाये। 1950 के शिक्षा अधिनियम द्वारा स्कॉटलैण्ड में समस्त दृष्टिबाधित बालकों को एडिनबरा के रॉयल ब्लाइण्ड स्कूल में प्रवेश लेने का सुझाव दिया गया। (फैरल, 1956)।

परन्तु इसके कुछ समय पश्चात् ब्रिटेन में भी चाहे धीमी गति से ही सही, एकीकृत शिक्षा की ओर रुझान बढ़ने लगे। 1981 के शिक्षा अधिनियम द्वारा स्थानीय प्राधिकरणों की विशिष्ट आवश्यकता वाले अधिकाधिक बालकों को सामान्य विद्यालयों में शिक्षा प्रदान करने का सुझाव दिया गया परन्तु विशिष्ट विद्यालयों को पूर्णतया बन्द करने के लिए नहीं कहा गया। (हर्चिसन एनसाइक्लोपीडिया, 2000)।

1981 के अधिनियम के अनुसार दृष्टिबाधित बालकों के माता-पिता की राय को ध्यान में रखते हुए, विशेषज्ञों द्वारा मूल्यांकन किया जाता है और उसके पश्चात् ही बालकों को सामान्य अथवा विशिष्ट विद्यालयों में रखने का निर्णय लिया जाता है। कालबर्न-ब्राउन तथा टाबिन ने 1982 में एक सर्वेक्षण किया, जिसके अनुसार विशिष्ट विद्यालयों और सामान्य विद्यालयों में पढ़ने वाले दृष्टिबाधित छात्रों की संख्या लगभग बराबर थी। (एलिजाबेथ के. चैपमैन तथा जूलियट एम. स्टोन, 'Visually Handicapped in your Class-room', 1988)।

संयुक्त राज्य अमेरिका:- यहाँ दृष्टिबाधितों की शिक्षा की औपचारिक शुरुआत 1830 के दशक में ही हो पायी, परन्तु लगभग एक साथ तीन अग्रणीय विशिष्ट विद्यालय सामने आये जो आज भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

'द न्यू इंग्लैण्ड असाइलम फॉर द ब्लाइण्ड' (शीघ्र ही जिसका नाम पर्किन्स इंस्टीट्यूशन एण्ड मैसाचुसेट्स असाइलम फॉर द ब्लाइण्ड हो गया) का पंजीकरण मार्च, 1829 में हुआ तथा इसने जुलाई, 1832 से बोस्टन में काम करना शुरू किया, 'द न्यूयार्क इंस्टीट्यूशन फार द ब्लाइण्ड' का पंजीकरण 1831 में हुआ और उसने न्यूयार्क में मार्च, 1832 में काम शुरू किया जबकि 'पेन्सिलवेनिया इस्टीट्यूशन फॉर द इंस्ट्रक्शन ऑफ द ब्लाइण्ड' की स्थापना व कार्य आरम्भ करने का वर्ष था 1833, इसकी स्थापना फिलाडेल्फिया में हुई।

इन तीनों विशिष्ट विद्यालयों का प्रारम्भिक नेतृत्व क्रमशः सेमुअल ग्रिडले हाओ, जॉन डी. रस तथा जूलियस आर. फ्रायड लेण्डर ने किया। इनमें से हाओ (1801-1876) ने लम्बे समय तक अपनी संस्था का संचालन किया तथा अन्य राज्यों में दृष्टिहीनार्थ शिक्षा आरम्भ करवाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। (लावेनफेल्ड, 1973)।

विशिष्ट विद्यालयों की संख्या 1870 तक बढ़कर 23 हो गयी तथा 1953 में इनकी संख्या 57 तक पहुँच गयी। इनमें से 6 को छोड़कर अन्य सभी सरकारी विद्यालय थे। (फेरल, 1956)।

1948 तक अमरीका में शिक्षा प्राप्त करने वाले दृष्टिबाधित बालकों में से केवल 10% एकीकृत शिक्षा प्रणाली से लाभ उठा रहे थे। इसके पश्चात् एकीकृत शिक्षा परियोजनाओं में ऐसे बालकों की संख्या तेजी से बढ़ी। 1970 तक एकीकृत शिक्षा प्रणाली का लाभ उठाने वाले दृष्टिबाधित छात्रों का प्रतिशत 70 तक पहुँच गया। 1975 के समस्त विकलांग बालकों हेतु शिक्षा कानून 94-142 के पारित होने के पश्चात् सार्वजनिक विद्यालयों में शिक्षा ग्रहण करने वाले दृष्टिबाधित छात्रों की संख्या में और भी वृद्धि हुई परन्तु अब भी वहाँ पर कुछ विशिष्ट विद्यालय सक्रिय हैं।

बधिर एवं मानसिक विकलांगों हेतु विशिष्ट शिक्षाः-

उपलब्ध सूचनाओं के अनुसार श्रवण विकलांगों की शिक्षा प्रारम्भ करने का श्रेय स्पेन के एक संन्यासी पैट्रो पोन्स डि लियों (1520-1584) को जाता है। उन्होंने 1555 में कुछ बधिर बालकों को पढ़ना, लिखना व बोलना सिखाया था। स्पेन के ही एक अन्य नागरिक जुआन पैवलो वानेट ने 1620 में श्रवण विकलांगों की शिक्षा के सम्बन्ध में एक पुस्तक लिखी। इसी विषय पर इंग्लैण्ड के जॉन बुलवर ने भी 1644 में एक पुस्तक प्रकाशित की।

बधिर व्यक्तियों के लिए ब्रिटेन में पहले स्थायी स्कूल की स्थापना एडिनबरा में सन् 1767 में की गयी। जर्मनी में 1780 के दशक में ऐसे व्यक्तियों के लिए संस्था शुरू की गयी परन्तु इसमें अनुदेशन के लिए वाक् विधि (Oral Method) को अपनाया गया तथा ओष्ठ वाचन (Lip Reading) तथा सम्भाषण कौशलों पर विशेष बल दिया जाता था।

फ्रांस के दो नागरिकों ने 18वीं शताब्दी में ही संकेत भाषा के विकास में योगदान दिया।

संयुक्त राज्य अमेरिका में श्रवण विकलांगों के लिए पहला विशिष्ट विद्यालय 1817 में स्थापित किया गया। 1863 तक वहाँ इस प्रकार के 22 विशिष्ट विद्यालय स्थापित हो चुके थे।

मानसिक विकलांगों की शिक्षा की शुरुआत फ्रांसीसी चिकित्सक जाँ इतार्द (1755-1838) द्वारा की गयी जब उन्होंने जंगल से पकड़कर एक ग्यारह वर्षीय लड़के को शिक्षित करने का प्रयास किया। इसके पश्चात् सेगवाँ (1812-1880) ने इस क्षेत्र में फ्रांस व संयुक्त राज्य अमेरिका में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन दोनों ने क्रमश: 1801 तथा 1866 में अपने अनुभवों तथा विधियों को पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया जिससे बाद में आने वाले विशेषज्ञ व शिक्षकों को बहुत लाभ हुआ। ऐसे विशेषज्ञों में मैडम मौन्टेसरी (1870-1952) का भी नाम सम्मिलित है। (एनसाइक्लोपीडिया ऑफ स्पेशल एजुकेशन, खण्ड-2, 1987)।

इंग्लैण्ड में गैर-सरकारी प्रयासों के अतिरिक्त 1914 के प्राथमिक शिक्षा अधिनियम के द्वारा स्थानीय प्राधिकरणों को मानसिक विकलांग बालकों की शिक्षा का प्रबन्ध करने का उत्तरदायित्व सौंपा गया। (झा, 2002)।

संयुक्त राज्य अमेरिका में ऐसे बालकों की शिक्षा का आरम्भ 1839 में हुआ जब पर्किन्स स्कूल में एक मंद बुद्धि दृष्टिहीन को प्रवेश दिया गया। केवल मानसिक विकलांगों के लिए आवासीय विद्यालय मैसाचुसेट्स राज्य में ही वर्ष 1848 में स्थापित किया गया तथा 1917 तक चार राज्यों के अतिरिक्त वहाँ प्रत्येक राज्य में ऐसे बालकों के लिए सुविधाएं स्थापित की जा चुकी थीं। (एनसाइक्लोपीडिया ऑफ स्पेशल एजुकेशन, खण्ड-2, 1987)।

स्वतन्त्रता पूर्व भारत में विशिष्ट शिक्षा का विकास:-

दृष्टिहीनार्थ विशिष्ट शिक्षा-भारत में दृष्टिहीनों के लिए प्रथम विशिष्ट विद्यालय की स्थापना वर्ष 1887 में एक आँग्ल मिशनरी महिला एनी शार्प (1858-1903) द्वारा एक अन्य मिशनरी महिला ह्यूलिट के सहयोग से की गयी। (आर.एस चौहान, Triumph of the Spirit, 1994)। इस संस्था को अमृतसर स्थित सेंट कैथरीन अस्पताल के परिसर में शुरू किया गया तथा नाम रखा गया-नॉर्थ इण्डिया इंडस्ट्रियल होम फॉर क्रिश्चियन् ब्लाइण्ड। इसे 1903 में राजपुर, देहरादून ले जाया गया जहाँ पर यह आज भी 'शार्प मेमोरियल स्कूल फॉर द ब्लाइण्ड' के नाम से कार्य कर रहा है।

इसके पश्चात् पालायम कोटा, तमिलनाडु में 1890, अहमदाबाद, गुजरात में 1895, कोलकाता, पश्चिम बंगाल तथा राँची, झारखण्ड में 1897 तथा मुम्बई

में सन् 1900 में कुछ और विशिष्ट विद्यालयों की स्थापना हुई। (चौहान, Handbook for the Teachers of the Visually Handicapped, 1992 तथा Triumph of the Spirit, 1994)।

20वीं शताब्दी में देश के अन्य भागों में धीरे-धीरे दृष्टिहीनों के लिए कुछ और संस्थाओं की स्थापना हुई। दृष्टिहीनता से सम्बद्ध भारत सरकार के प्रतिवेदन (1944) के अनुसार उस समय तक ऐसी संस्थाओं की संख्या 32 तक पहुँच गयी थी।

स्वतन्त्रता पूर्व दृष्टिबाधितार्थ विशिष्ट शिक्षा की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित थीं :-

(1) अनेक तथाकथित दृष्टिहीनार्थ विद्यालय शिक्षा केन्द्र से अधिक, आश्रय स्थल मात्र थे।

(2) 32 में से केवल कुछ गिने-चुने केन्द्र ही दृष्टिहीनों के लिए शिक्षा के प्रगतिशील एवं वांछनीय स्थान थे।

(3) किसी भी स्कूल में प्राथमिक स्तर से आगे शिक्षा सुविधाएं उपलब्ध नहीं थीं।

(4) समान ब्रेल-संहिता के अभाव में सीमित हस्त-लिखित ब्रेल-सामग्री का अधिकतम उपयोग सम्भव नहीं था।

(5) भारत में कोई ब्रेल प्रेस नहीं था।

(6) सरकारी सहायता नाममात्र की ही थी।

(7) दृष्टिहीनता के साथ-साथ किसी अन्य विकलांगता से ग्रस्त व्यक्तियों के लिए कोई संस्था नहीं थी।

(8) समस्त संस्थाओं में दृष्टिहीनों की कुल संख्या का एक बहुत ही छोटा भाग सुविधाएं प्राप्त कर रहा था- लड़के, लड़की, वयस्क महिला व पुरुष-सबको मिलाकर लाभार्थियों की संख्या लगभग साढ़े बारह सौ थी।

मानसिक विकलांग तथा श्रवण विकलांग हेतु विशिष्ट शिक्षा:- इन दोनों वर्गों के लिए विशिष्ट शिक्षा का बीजारोपण दृष्टिहीनों से पहले हो चुका था। मानसिक विकलांगों के लिए भारत में विशिष्ट शिक्षा का प्रारम्भ 1841 में चेन्नई में स्थापित 'ल्यूनैटिक असाइलम' से माना जाता है।

मूक-बधिर व्यक्तियों के लिए पहला विशिष्ट विद्यालय मजगाँव, मुम्बई में सन् 1885 में स्थापित किया गया। (किसी-किसी दस्तावेज में इसका स्थापना वर्ष 1884 बताया जाता है)।

स्वतन्त्रता पश्चात् भारत में विशिष्ट शिक्षा का प्रसार:-

दृष्टिबाधित - स्वतन्त्रता पश्चात् विशिष्ट शिक्षा की दिशा एक प्रकार से अप्रैल, 1947 में निर्धारित हो गयी थी, जब भारत सरकार के शिक्षा मन्त्रालय में दृष्टिहीनों के लिए छोटी-सी इकाई की स्थापना की गयी। यह एक प्रगतिशील सरकारी कदम था। विशिष्ट शिक्षा के मार्ग की एक प्रबल बाधा 1951 में भारत सरकार द्वारा भारती ब्रेल की स्वीकृति और उसके बाद देहरादून में प्रथम ब्रेल प्रेस की स्थापना के साथ ही समाप्त हो गयी। इसके बाद विशिष्ट विद्यालयों की संख्या सरकारी व गैर-सरकारी दोनों क्षेत्रों में तेजी से बढ़ी। 1960 के दशक के मध्य तक ऐसे विद्यालयों की संख्या 115 हो गयी। राष्ट्रीय दृष्टिबाधितार्थ संस्थान, देहरादून द्वारा 1989 में प्रकाशित सर्वेक्षण में विशिष्ट विद्यालयों की संख्या 190 बताई गयी। (इस सर्वेक्षण में अरुणाचल प्रदेश, असम तथा गोवा को सम्मिलित नहीं किया जा सका था)। 1990 के दशक के मध्य तक यह संख्या बढ़कर लगभग 250 हो गयी। आजकल विभिन्न दस्तावेजों में इन विंद्यालयों की संख्या 250-300 बताई जाती है। निश्चित रूप से 1947 की स्थिति को देखते हुए बहुत प्रगति हुई है, किन्तु दूसरी ओर कटु वास्तविकता यह भी है कि इन विद्यालयों में दृष्टिबाधित बालक-बालिकाओं का बहुत सीमित प्रतिशत ही शिक्षा प्राप्त कर पाता है।

इस अवधि में विशिष्ट शिक्षा के उल्लेखनीय बिन्दु निम्नलिखित हैं:-

(1) स्वतन्त्रता से पूर्व लगभग 17% संस्थाएं सरकार पोषित थीं। इनका प्रतिशत स्वतन्त्रता के पश्चात् 17 से बढ़कर लगभग 40 हो गया। यदि इस क्षेत्र में व्यय पर विचार किया जाये तो सरकारी योगदान इससे कहीं अधिक है क्योंकि अधिकतर गैर-सरकारी स्कूलों को केन्द्रीय सरकार की ओर से अनुदान दिया जाता है।

(2) अब ये विद्यालय प्राथमिक, माध्यमिक तथा उच्चतर माध्यमिक-प्रत्येक स्तर पर उपलब्ध हैं।

(3) शिक्षा की गुणवत्ता की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण विकास हुआ है तथा अधिकतर विद्यालयों में छात्रों को उपयोगी व उत्पादक नागरिक के रूप में विकसित करने पर बल दिया जाता है। निश्चित रूप से अनेक संस्थाओं में सुधार की भी गुंजाइश है, पर यह बात तो सामान्य शिक्षा के सम्बन्ध में भी उसी सीमा तक लागू होती है।

(4) दृष्टिबाधित बालिकाओं को समान तो नहीं परन्तु 1947 की तुलना में काफी अधिक शिक्षा सुविधाएं प्राप्त होने लगी हैं।

(5) 1995 के विकलांगता अधिनियम द्वारा अन्य शिक्षा प्रणालियों के साथ-साथ विशिष्ट शिक्षा को भी महत्त्वपूर्ण समझने तथा उसे विकसित करने की आवश्यकता स्वीकार की गयी है जो एक प्रशंसनीय एवं सामाजिक-आर्थिक वास्तविकताओं के अनुरूप उपाय है।

(6) भारत में अब दृष्टिहीनता के साथ-साथ श्रवण विकलांगता अथवा मानसिक विकलांगता से ग्रस्त बालकों के लिए भी शिक्षा सुविधाएं स्थापित की जा चुकी हैं जो कि एक सराहनीय उपलब्धि है।

(7) राष्ट्रीय दृष्टिबाधितार्थ संस्थान, देहरादून के अतिरिक्त कुछ विश्वविद्यालयों द्वारा भी अब दृष्टिबाधितों के शिक्षकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था करना इस क्षेत्र की एक और महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है।

(8) दृष्टिहीन-बधिर छात्रों के शिक्षकों के लिए भी अब प्रशिक्षण सुविधाएं आरम्भ की जा चुकी हैं।

(9) देश में ब्रेल सामग्री तैयार करने हेतु लगभग 20 ब्रेल प्रेसों के अलावा कई संस्थाओं ने अपनी आवश्यकता पूर्ति के लिए छोटी ब्रेल उत्पादन इकाइयाँ स्थापित कर ली हैं। पिछले दशक में अनेक ब्रेल उत्पादन केन्द्रों को आधुनिकतम कम्प्यूटर प्रणाली प्राप्त हो चुकी है, इसके परिणामस्वरूप ब्रेल उत्पादन की क्षमता काफी बढ़ गयी है।

(10) ब्रेल सामग्री की कमी को पूरा करने तथा ब्रेल न जानने वाले विद्यार्थियों की सहायता के लिए देश में कई छोटे-बड़े केन्द्र ध्वन्यांकित पुस्तकें भी तैयार कर रहे हैं। इन्हें लाभार्थी डाक द्वारा निःशुल्क भेज व प्राप्त कर सकते हैं।

श्रवण विकलांग तथा मानसिक विकलांग:- इन दोनों क्षेत्रों में भी विशिष्ट शिक्षा ने काफी प्रगति की है। इनसे सम्बद्ध शोध कार्य के लिए क्रमशः मुम्बई तथा सिकन्दराबाद में राष्ट्रीय संस्थान स्थापित किये गये हैं, जिनके देश में कई स्थानों पर क्षेत्रीय केन्द्र भी कार्यरत हैं। इनके द्वारा सम्बद्ध विकलागों के लिए शिक्षा व प्रशिक्षण में शोध कार्य तथा भिन्न-भिन्न प्रकार के व्यावसायिक लोगों को प्रशिक्षण प्रदान किया जा रहा है।

भारत में मूक-बधिर व्यक्तियों के लिए 478 व मानसिक विकलांगों के लिए 481 विशिष्ट विद्यालय कार्य कर रहे हैं। (पाण्डे व आडवानी, Perspectives in Disability and Rehabilitation, 1995)।

अध्याय-2

एकीकृत शिक्षा की योजनाएं

- डॉ. सुषमा शर्मा

आज समाज में विकलांग व्यक्तियों ने अपनी क्षमताओं व प्रतिभाओं के प्रदर्शन से अपना एक यथोचित स्थान बना लिया है। शिक्षा प्रत्येक व्यक्ति का मौलिक अधिकार है। सभी के लिए शिक्षा (Education for all) के अन्तर्गत विकलांग बच्चों की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् देश में शैक्षिक अवसरों का पर्याप्त विस्तार हुआ है। परिणामस्वरूप विशेष विद्यालयों की संख्या में भी अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। ये विशेष विद्यालय मुख्य रूप से शहरी इलाकों में है व इनकी संख्या सामान्य विद्यालयों की तुलना में काफी कम है। ये विद्यालय गाँव व पिछड़े इलाकों के विकलांग बच्चों को शैक्षिक सुविधाएं उपलब्ध करा पाने में सक्षम नहीं हैं। इन क्षेत्रों में इन विद्यार्थियों बच्चों के लिए सामान्य विद्यालय ही शैक्षिक अवसर व सुविधाएं उपलब्ध करा सकते हैं। एकीकृत योजना एक विकल्प अथवा पूरक के रूप में मानी जाती है, जिसके द्वारा सभी के लिए शिक्षा (Education for all) के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। एकीकृत शिक्षा योजना के अन्तर्गत विकलांग बच्चों को सामान्य बच्चों के साथ पड़ोस के सामान्य विद्यालय में ही शिक्षा की सुविधाएं उपलब्ध करायी जाती हैं। शोध व अनुभव द्वारा यह स्पष्ट हो गया है कि विकलांग व्यक्तियों की समाज के साथ सभी स्तरों पर भागीदारी ही उन्हें जीवन के संघर्षों के लिए तैयार कर सकती है। समान व्यवहार व समान सहभागिता ही उनमें आत्मविश्वास विकसित कर समाज में गर्व के साथ जीने का साहस दे सकती है। भारत सरकार ने सभी के लिए शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए इस वर्ग के बच्चों की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया है, विकलांगों की शिक्षा 'सर्व शिक्षा अभियान' का भी महत्त्वपूर्ण अंग है। एकीकृत शिक्षा योजना के अनुसार एकीकृत शिक्षा का आशय सामान्य विद्यालयों में विकलांग बच्चों को उनकी आयु के समकक्ष विद्यार्थियों के साथ समान शैक्षिक अवसर उपलब्ध कराना व स्कूल प्रणाली में उन्हें बनाए रखना सुनिश्चित करना है। एकीकृत शिक्षा के अनेक प्रारूप हैं। इनके प्रारूप समझने से पूर्व आवश्यक है कि एकीकृत शिक्षा का अर्थ, आवश्यकता व भारत में इसके प्रारम्भ पर थोड़ा सा प्रकाश डाल लिया जाये।

एकीकृत शिक्षा का अर्थ, आवश्यकता व भारत में प्रारम्भ :

विशेष आवश्यकता वाले विद्यार्थियों, अर्थात् विकलांग विद्यार्थियों को सामान्य विद्यालय में, सामान्य विद्यार्थियों के साथ शिक्षा के अवसर प्रदान करना 'एकीकृत शिक्षा' (Integrated Education) है। एकीकृत शिक्षा के अर्थ को गहराई से समझने के लिए इसके शाब्दिक अर्थ पर भी कुछ ध्यान देना आवश्यक है।

Namegayea (1985) के अनुसार Integrated एक लैटिन शब्द integratus अथवा integare से बना है, जिसका अर्थ होता है-पूर्ण बनाना। दूसरे शब्दों में, विभिन्न भागों को इकट्ठा कर अथवा जोड़कर पूर्ण का निर्माण करना। विभिन्न भागों को इकट्ठा कर एकीकरण करना अथवा जोड़ अथवा योग करना।

फादर बुल्के के अंग्रेजी-हिन्दी कोष के अनुसार, इन-टि-ग्रेट (Integrate) का अर्थ है- संगठित करना अथवा समाकलन। कॉनसाइज ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी (Allan, 1991) के अनुसार भी Integrated का अर्थ है 'पृथक् किये हुए लोगों को पुन: मिश्रित (इकट्ठा) करना' अथवा 'समाज की सदस्यता के समकक्ष लाना'। ये परिभाषाएं स्पष्ट करती हैं कि अलग (पृथक्) किए अंगों को निकट लाकर पूर्ण बनाना ही एकीकरण (Integration) है।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि प्रारम्भ में विकलांग व्यक्तियों को समाज से अलग करके विशेष संस्थाओं में ही रखा जाता था। इन संस्थाओं को आश्रम अथवा Asylum कहा जाता था, जहाँ विकलांगों की रहने व खान-पान की सारी जिम्मेदारी इन संस्थाओं की होती थी। ये संस्थाएं शहर से दूर, अर्थात् बाहर हुआ करती थीं, जहाँ विकलांग व्यक्तियों को दैनिक जीवन कौशल हस्तशिल्प जैसे चाक, बर्तन, निवार व मोमबत्ती आदि बनाने में प्रशिक्षित किया जाता था। इस प्रकार शिक्षा के मूलभूत अधिकार से ये विकलांग, विशेष रूप से दृष्टिहीन, वर्षों तक वंचित रहे। एकीकृत शिक्षा द्वारा विकलांगों को समाज की मुख्यधारा में लाने का प्रयास किया जा रहा है। इस योजना के अन्तर्गत दृष्टिहीन विद्यार्थी समीप के विद्यालय में सामान्य विद्यार्थियों के साथ शिक्षा प्राप्त करते हैं।

इस प्रकार दृष्टिहीन विद्यार्थी अपनी आयु के समकक्ष विद्यार्थियों के साथ शिक्षा ग्रहण करते हैं। विद्यालय की प्रत्येक गतिविधि में समान रूप से भागीदारी करते हैं। एकीकृत शिक्षा में यह भागीदारी शारीरिक, सामाजिक, मानसिक व संवेगात्मक चारों स्तर पर होती है।

एकीकृत शिक्षा का प्रारम्भ स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् 1974 में कल्याण मंत्रालय द्वारा चलाई गयी I.E.D.C योजना (विकलांग बच्चों हेतु एकीकृत शिक्षा

योजना) द्वारा माना जाता है। यह योजना केन्द्रीय सरकार के सहयोग से 100 प्रतिशत वित्तीय सुविधां के साथ उपलब्ध थी। सामान्य विद्यालय शिक्षा मंत्रालय के अन्तर्गत होने के कारण इस योजना का लाभ अधिकांश राज्य नहीं उठा सके । दक्षिण के कुछ राज्य ही इस योजना के अन्तर्गत विकलांग विद्यार्थियों को शैक्षिक सुविधाएं उपलब्ध करा सके । विश्व विकलांग वर्ष 1981 में इस योजना के मूल्यांकन के समय इस योजना के सफलतापूर्वक लागू न हो पाने के कारण इसे शिक्षा मंत्रालय में हस्तांतरित करने का निर्णय लिया गया। इस प्रकार 1982-1983 में यह योजना शिक्षा मंत्रालय के अन्तर्गत भेज दी गयी। तदुपरान्त राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद (NCERT) द्वारा सभी राज्यों के शिक्षा विभागों के अधिकारियों के लिए इस योजना के कार्यान्वयन हेतु 6 माह व 3 माह के प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किये गये। 1987 व 1992 में इस योजना का विस्तृत स्वरूप योजना के कार्यान्वयन हेतु राज्यों को उपलब्ध कराया गया, जिससे विकलांग बच्चे अनेकों राज्यों में इस योजना के अन्तर्गत सामान्य विद्यालयों में, सामान्य विद्यार्थियों के साथ शिक्षा ग्रहण कर सकें। 1989 में NCERT द्वारा यूनिसेफ प्रायोजित (P.I.E.D.) परियोजना के अन्तर्गत एकीकृत शिक्षा के अनेकों प्रारूप (Models) सुझाये गये। इस प्रकार एकीकृत शिक्षा विकलांगों की शिक्षा के लिए एक आर्थिक रूप से सशक्त माध्यम के रूप में स्वीकार की गयी। आज विकलांग विद्यार्थी विशेष विद्यालय में शिक्षा प्राप्त करने के लिए बाध्य नहीं हैं, बल्कि वे अपने घर के निकट सामान्य विद्यालय में एकीकृत शिक्षा योजना के अन्तर्गत अन्य सामान्य विद्यार्थियों के साथ शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं।

एकीकृत शिक्षा के विभिन्न प्रारूप (Models) :

विकलांगों की जनसंख्या के विस्तार के आधार पर एकीकृत शिक्षा के अनेक प्रारूप विकसित हुए हैं। पहाड़ी इलाकों में आवागमन के साधन सुलभ न होने के कारण जनसंख्या गुच्छों में दूर-दूर तक फैली होती है, वहीं मैदानी इलाकों में आवागमन की सुविधा के कारण जनसंख्या काफी घनी होती है। परिणामस्वरूप मैदानी इलाकों में छोटे से क्षेत्रफल में विकलांग बच्चों की उपलब्धता के आधार पर एकीकृत शिक्षा के विभिन्न प्रारूप देखने को मिलते हैं। ये प्रारूप निम्न हैं:-

1. संसाधन कक्ष प्रारूप (Resource Room Model)
2. परिभ्रामी अध्यापक प्रारूप (Itinerant Teacher Model)
3. संयुक्त प्रारूप (Combined Model)
4. गुच्छित अथवा समूह प्रारूप (Cluster Model)

5. सहयोगी प्रारूप (Co-operative Model)
6. द्विशिक्षण प्रारूप (Dual Teaching Model)
7. बहुकौशल शिक्षण योजना प्रारूप (Multi-skilled Teaching Model)

1. संसाधन कक्ष प्रारूप (Resource Room Model) : एकीकृत शिक्षा योजना के इस प्रारूप में सामान्य विद्यालय में एक विशेष कक्ष होता है, जिसे 'संसाधन कक्ष' कहते हैं। इस कक्ष में दृष्टिहीन अथवा विकलांग विद्यार्थियों के विशेष प्रशिक्षण हेतु विशेष सामग्री उपलब्ध होती है। विकलांग विद्यार्थियों की विशेष आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु विशेष प्रशिक्षण की व्यवस्था इस कक्ष में की जाती है। इस कक्ष का पूरा दायित्व विशेष अध्यापक पर होता है, जिसे इस कक्ष के नाम के आधार पर 'संसाधन अध्यापक' कहा जाता है। दृष्टिहीन विद्यार्थी विद्यालय में नियमित प्रवेश के बाद अपनी आयु के समकक्ष विद्यार्थियों के साथ शिक्षा ग्रहण करते हैं। ये विद्यार्थी आवश्यकतानुसार सीमित समय के लिए संसाधन कक्ष में आकर संसाधन अध्यापक से विशेष प्रशिक्षण लेते हैं, जैसे ब्रेल लेखन/पठन, संवेदन प्रशिक्षण, ब्रेलर, टेलर फ्रेम, अबेकस का प्रयोग इत्यादि। यहाँ इन विद्यार्थियों के लिए अनुस्थितिज्ञान व चलिष्णुता के प्रशिक्षण की व्यवस्था भी होती है।

संसाधन कक्ष विद्यालय भवन का वह कक्ष होता है, जिसमें विकलांग विद्यार्थी विशेष प्रशिक्षण के लिए आते हैं। यह भवन के केन्द्रीय भाग में स्थित हो तो उचित होगा, जिससे वे वहाँ सुविधापूर्वक आ-जा सकें।

संसाधन कक्ष का मुख्य उद्देश्य विकलांग विद्यार्थियों को जमा पाठ्यक्रम(plus curriculum) में प्रशिक्षित करना होता है। जमा पाठ्यक्रम में निम्नलिखित प्रशिक्षण सम्मिलित होते हैं:-

1 दैनिक क्रिया कौशल प्रशिक्षण।
2 संवेदन प्रशिक्षण।
3 अनुस्थितिज्ञान व चलिष्णुता प्रशिक्षण।
4 ब्रेल पठन व लेखन प्रशिक्षण।
5 दृष्टिहीन विद्यार्थियों हेतु गणित शिक्षण उपकरण, जैसे अबेकस, टेलर फ्रेम, ज्यामिति बोर्ड आदि में प्रशिक्षण।
6 सामाजिक कौशल प्रशिक्षण।

उपरोक्त में प्रशिक्षण हेतु संसाधन कक्ष में पर्याप्त सामग्री होती है, जिनका वर्णन संसाधन कक्ष के अन्तर्गत किया गया है।

दृष्टिहीन विद्यार्थी के शिक्षण की मुख्य जिम्मेदारी सामान्य अध्यापक पर होती है। एक विद्यालय में संसाधन अध्यापक 8-10 दृष्टिहीन अथवा विकलांग विद्यार्थियों की जिम्मेदारी ले सकता.है। ये विद्यार्थी जहाँ तक सम्भव हो अलग-अलग कक्षाओं में विभाजित होते हैं। प्रयास किया जाता है कि एक कक्षा में दो से अधिक दृष्टिहीन विद्यार्थी न हों। ये विद्यार्थी अलग-अलग समय पर संसाधन कक्ष में प्रशिक्षण के लिए आते हैं, संसाधन कक्ष व्यक्तिगत रूप में एक-एक दृष्टिहीन विद्यार्थी को प्रशिक्षित करता है। एक समय में दो से अधिक विद्यार्थियों को प्रशिक्षित करना कठिन होता है। यहाँ पर ध्यान देने की बात है कि छोटी (निचली) कक्षाओं में (कक्षा 1-3 तक) संसाधन अध्यापक को दृष्टिहीन विद्यार्थियों को अधिक समय देना होता है। बड़ी कक्षाओं में जमा पाठ्यक्रम में प्रशिक्षण होने के पश्चात् इन दृष्टिहीन विद्यार्थियों को संसाधन कक्ष में आकर प्रशिक्षण लेने की कम आवश्यकता होती है। ये बच्चे उन विशेप विषयों को पढ़ने के लिए संसाधन कक्ष में आते हैं जो कि दृष्टि सामग्री से परिपूर्ण होते हैं, जैसे भूगोल, विज्ञान, ज्यामिति इत्यादि।

2. परिभ्रामी अध्यापक प्रारूप (Itinerant Teacher Model) : यदि दृष्टिहीन विद्यार्थियों का समग्र (Population)बिखरा हुआ है, उस अवस्था में संसाधन कक्ष योजना उचित नहीं होती। दूरी के कारण अभिभावक दृष्टिहीन विद्यार्थी को संसाधन कक्ष वाले एकीकृत विद्यालय में भर्ती नहीं करा पाते। आने-जाने की असुविधा के कारण अभिभावक दृष्टिहीन बच्चे को निकट के विद्यालय में शिक्षा प्राप्त करने के लिए भेजना चाहते हैं। ऐसी अवस्था में परिभ्रामी अध्यापक योजना अधिक उचित होती है।

इस योजना के अन्तर्गत दृष्टिहीन विद्यार्थी अपने घर के निकट के विद्यालय में प्रवेश लेकर शिक्षा ग्रहण करता है, जहाँ उसकी शैक्षिक आवश्यकताएं सामान्य व परिभ्रामी अध्यापक के सहयोग से पूरी की जाती हैं। एक परिभ्रामी अध्यापक के पास इस योजना के अन्तर्गत 8-10 विद्यार्थी होते हैं, जो कि विभिन्न सामान्य विद्यालयों में नियमित रूप ने प्रवेश लेकर अपनी आयु के अनुसार सामान्य विद्यार्थियों के साथ शिक्षा प्राप्त करते हैं। इन विद्यालयों में से एक विद्यालय इस परिभ्रामी अध्यापक के लिए मुख्य विद्यालय होता है, जहाँ उसके पास एक कक्ष होता है। यह परिभ्रामी अध्यापक विशेप अध्यापक होता है जो नियमित समयानुसार दृष्टिहीन विद्यार्थियों की विशेष आवश्यकताओं के अनुसार विशेष शिक्षण प्रदान करता है। यह योजना संसाधन कक्ष से निम्न आधार पर भिन्न है-

(1) इस योजना में दृष्टिहीन विद्यार्थी विभिन्न सामान्य विद्यालयों में शिक्षा ग्रहण करते हैं, जबकि संसाधन योजना में दृष्टिहीन विद्यार्थी एक ही विद्यालय की विभिन्न कक्षाओं में शिक्षा ग्रहण करते हैं।

(2) संसाधन कक्ष के स्थान पर इस योजना में संसाधन किट होती है, जिसमें दृष्टिहीन की विशेष आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु विशेष शिक्षण सामग्री, जैसे ब्रेल उपकरण, संवेदन प्रशिक्षण सामग्री, टेलर फ्रेम, सफेद छड़ी, श्रव्य पुस्तक सामग्री आदि होती हैं।

(3) इस योजना में परिभ्रामी अध्यापक विभिन्न विद्यालयों में जाकर दृष्टिहीन विद्यार्थी को आवश्यकतानुसार प्रशिक्षण देता है। परिभ्रामी अध्यापक को वाहन, जैसे स्कूटर, साइकिल अथवा मोटर साइकिल की सुविधा प्रदान की जाती है।

प्रत्येक दृष्टिहीन विद्यार्थी सप्ताह में एक-दो अथवा तीन दिन के आधार पर परिभ्रामी अध्यापक से विशेष आवश्यकताओं के आधार पर प्रशिक्षण प्राप्त करता है। ये सभी विद्यालय 8 कि.मी. की परिधि में होने चाहिएं, लेकिन जहाँ यह दूरी (पहाड़ी व दुर्गम स्थानों पर) कम हो सकती है, वहीं परिवहन के साधन अच्छे होने की अवस्था में यह दूरी कुछ अधिक भी हो सकती है। छोटी कक्षाओं में संसाधन शिक्षण अथवा जमा पाठ्यक्रम पर अधिक समय लगाने की आवश्यकता होती है, अतः परिभ्रामी अध्यापक एक दिन छोड़कर अथवा प्रतिदिन के आधार पर विद्यार्थी को उसके विद्यालय में प्रशिक्षण प्रदान करता है। उच्च कक्षाओं के विद्यार्थियों को संसाधन अथवा जमा पाठ्यक्रम की अधिक आवश्यकता न होने के कारण वह अधिक अन्तराल के साथ विद्यालय जाकर इन विद्यार्थियों की विशेष आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकता है। निम्न कक्षाओं में दृष्टिहीन विद्यार्थियों को ब्रेल लेखन, पठन, दैनिक क्रिया कौशल, अनुस्थितिज्ञान व चलिष्णुता, संवेदन विकास आदि में प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। उच्च कक्षाओं में पहुँचते-पहुँचते दृष्टिहीन विद्यार्थी इनमें पर्याप्त कुशल हो जाते हैं, अतः उन्हें परिभ्रामी शिक्षण की अधिक आवश्यकता नहीं होती। यही कारण है कि इस योजना में छोटी कक्षाओं में अधिक दृष्टिहीन विद्यार्थियों को सम्मिलित नहीं किया जाता है।

3. संयुक्त प्रारूप (Combined Model) : इस योजना के अन्तर्गत कई योजनाओं अथवा प्रारूपों का सम्मिश्रण होता है अथवा एक विशेष अध्यापक की सेवाएं कई योजनाओं के लिए भी ली जाती हैं। किसी भी शहर या कस्बे के कुछ विद्यालय संसाधन कक्ष के आधार पर दृष्टिहीन विद्यार्थियों को प्रशिक्षण प्रदान कर सकते हैं व कुछ विद्यार्थियों को परिभ्रामी प्रारूप के आधार पर। यदि

संसाधन कक्ष वाले विद्यालय में दृष्टिहीन विद्यार्थियों की संख्या कम हो जाती है, क्योंकि दूर निवास करने वाले दृष्टिहीन विद्यार्थी इस विद्यालय में नहीं आ सकते, तब सम्मिश्रित योजना/प्रारूप सबसे अधिक उपयुक्त है। यह योजना बहुत ही लचीली (Flexible) है। एक विशेष अध्यापक एक विद्यालय में एक संसाधन कक्ष योजना के आधार पर दृष्टिहीन विद्यार्थियों की शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है अथवा प्रशिक्षण देता है, वहीं दूर विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों को परिभ्रामी शिक्षा योजना के आधार पर शैक्षिक प्रशिक्षण प्रदान करता है। सप्ताह के कुछ दिन दूर विद्यालय में शिक्षा ग्रहण करने वाले विद्यार्थियों के निर्धारित होते हैं। छोटी कक्षाओं के विद्यार्थियों को संसाधन कक्ष के आधार पर शैक्षिक प्रशिक्षण दिया जाता है। चूंकि इन्हें संसाधन कक्ष में जमा पाठ्यक्रम में प्रशिक्षण लेना होता है, जहां अधिक समय संसाधन कक्ष में देना होता है, वहीं बड़ी कक्षाओं के विद्यार्थियों को विशेष शिक्षण की कम आवश्यकता होती है, चूंकि वह जमा पाठ्यक्रम में प्रशिक्षित होते हैं, अतः इन दृष्टिहीन विद्यार्थियों को विशेष अध्यापक, परिभ्रामी अध्यापक योजना के आधार पर सप्ताह में आवश्यकतानुसार दो या तीन बार शैक्षिक प्रशिक्षण दे सकता है। संसाधन कक्ष योजना व परिभ्रामी अध्यापक का योग होने के कारण इसे संयुक्त (Combined) योजना/प्रारूप कहा जाता है।

4. गुच्छित अथवा समूह प्रारूप (Cluster Model) : पहाड़ी स्थानों में परिवहन के साधन उपलब्ध होने पर भी थोड़ी दूरी को तय करने में काफी समय लग जाता है, वहीं मौसम के कारण यह आवागमन खतरे से भरा होता है। दुर्गम स्थान पर तो ये साधन उपलब्ध भी नहीं होते। सीमित साधन वाले स्थान भी वर्षा व शीतकाल में इन साधनों से पूर्ण वंचित हो जाते हैं। ऐसी परिस्थितियों में विकलांग अथवा दृष्टिहीन विद्यार्थियों की शिक्षा के लिए गुच्छित अथवा समूह योजना/प्रारूप उपयुक्त पाया गया है।

इस योजना के अन्तर्गत एक मुख्य संसाधन केन्द्र होता है, जिसके अन्तर्गत अनेक क्षेत्रीय संसाधन केन्द्र होते हैं। प्रत्येक क्षेत्रीय संसाधन केन्द्र अपने समूह/क्लस्टर (Cluster) के विद्यार्थियों की विशेष आवश्यकताओं के आधार पर शैक्षिक सुविधाएं उपलब्ध कराता है। प्रत्येक क्षेत्रीय संसाधन केन्द्र के अन्तर्गत 8 तक विकलांग/दृष्टिहीन विद्यार्थी होते हैं। मुख्य संसाधन केन्द्र उसके अन्तर्गत आने वाले सभी क्षेत्रीय संसाधन केन्द्रों के अध्यापकों के विशेष प्रशिक्षण की भी व्यवस्था करता है व उनके द्वारा शैक्षिक प्रशिक्षण दिये जाने वाले दृष्टिहीन/विकलांग विद्यार्थियों की आवश्यकताओं के आधार पर सामग्री उपलब्ध कराता है। इस प्रकार प्रत्येक क्षेत्रीय संसाधन केन्द्र अपने एक समूह (Cluster) में आने वाले दृष्टिहीन/विकलांग

विद्यार्थियों को शैक्षिक प्रशिक्षण प्रदान करता है व उनकी सभी शैक्षिक क्रियाओं में समान भागीदारी को सुनिश्चित करता है।

5. सहयोगी प्रारूप (Co-operative Model) : इस प्रारूप में सहयोग के आधार पर विशेष विद्यालयों को एकीकृत शिक्षा के अन्तर्गत सामान्य विद्यालय की कक्षाओं में शिक्षण प्रदान किया जाता है, इसी कारण इसे सहयोगी प्रारूप/योजना कहते हैं। इसे इस प्रकार से समझा जा सकता है कि इसमें सामान्य विद्यालय के अन्दर ही एक विशेष इकाई होती है। इस इकाई में आवश्यकतानुसार कमरे होते हैं। दृष्टिहीन अथवा विकलांग बच्चे मुख्य रूप से इसमें शिक्षा ग्रहण करते हैं। मात्र कुछ विषयों के लिए इन विद्यार्थियों को इनकी आयु के समकक्ष कक्षाओं में शिक्षा ग्रहण करने हेतु भेजा जाता है। विशेष इकाई (Special Unit) उसका मुख्य विद्यालय अथवा कक्ष होता है, जहाँ उसकी विशेष आवश्यकताओं हेतु विशेष प्रशिक्षण उपलब्ध कराया जाता है। इन बच्चों की शिक्षण/प्रशिक्षण की मुख्य जिम्मेदारी इस कक्षा/इकाई पर ही होती है। श्रवण/मानसिक विकलांग अथवा देर से विद्यालय में प्रवेश लेने वाले विकलांग विद्यार्थी अथवा बहुविकलांग विद्यार्थियों के लिए यह बहुत उपयुक्त एकीकृत योजना है।

6. द्विशिक्षण प्रारूप (Dual Teaching Model) : जैसा कि द्विआयामी शब्द से स्पष्ट है, इस प्रारूप में सामान्य अध्यापक ही विशेष अध्यापक की भी भूमिका निभाते हैं। इसी कारण इस प्रारूप अथवा योजना को 'द्विशिक्षण प्रारूप' (Dual Teaching Model) कहा जाता है।

विकासशील देशों में विशेष रूप से गाँवों में, जहाँ आवागमन के साधन उपलब्ध नहीं होते, विकलांग बच्चों को शिक्षा प्रदान करना एक बड़ी चुनौती है। यदि ये दृष्टिहीन विद्यार्थी एक-दूसरे से बहुत दूर रहते हों अथवा इनका समग्र बहुत दूर-दूर फैला हुआ हो तब न तो संसाधन कक्ष योजना के अन्तर्गत इन्हें शिक्षा प्रदान की जा सकती है और न ही परिभ्रामी योजना के अर्न्तगत, चूंकि यह बहुत ही खर्चीली होगी। ऐसे स्थानों के लिए सामान्य अध्यापक को कुछ आर्थिक लाभ (Incentive) देकर इन दृष्टिहीन/विकलांग बच्चों की विशेष आवश्यकताओं के आधार पर शैक्षिक प्रशिक्षण देने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। ध्यान रहे कि इस प्रकार की योजना/प्रारूप के अन्तर्गत दृष्टिहीन विद्यार्थियों की संख्या अधिक नहीं होनी चाहिए। देश में शिक्षक प्रशिक्षण के अनेक केन्द्र हैं, जो कि मानव संसाधन विकास मंत्रालय (MHRD) अथवा समाजिक न्याय एवं आधिकारिता मंत्रालय (MSJ&D) के अन्तर्गत कार्यरत हैं। इस अध्यापक/अध्यापिका को लघु अवधि (Short Term)के प्रशिक्षण कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रशिक्षित किया जा सकता है।

इस प्रकार दृष्टिहीन अथवा विकलांगता वाले विद्यार्थी को एकीकृत शिक्षा के अन्तगत शैक्षिक अवसर प्रदान किये जाते हैं। जब भी विद्यार्थियों की संख्या 8 तक हो जाये तो एक संसाधन अध्यापक की नियुक्ति कर इन विकलांग बच्चों को शिक्षा प्रदान की जानी चाहिए। यह प्रारूप/योजना कम विकलांग विद्यार्थियों की स्थिति में ही उपयुक्त है।

7. बहुकौशल शिक्षण योजना प्रारूप (Multi-skilled Teaching Model) : प्रत्येक विकलांगता का शैक्षिक प्रभाव उस विकलांगता के प्रभाव पर निर्भर करता है। यही कारण है कि प्रत्येक विकलांगता के आधार पर विभिन्न संस्थानों में अध्यापक प्रशिक्षण के कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। दृष्टिहीन विद्यार्थियों को पढ़ाने के लिए ब्रेल पठन, लेखन, चलिष्णुता प्रशिक्षण, संवेदन प्रशिक्षण व विशेष उपकरणों के प्रयोग का ज्ञान आवश्यक है, वहीं श्रवण विकलांग विद्यार्थियों के लिए भाषा शिक्षण, ओष्ठ पठन व दृश्य आधारित सामग्री का प्रयोग किया जाता है।

भारत में दृष्टिहीन विद्यार्थियों को पढ़ाने के लिए शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम देश के विभिन्न भागों में आयोजित किये जा रहे हैं, जहां केवल दृष्टिहीन विद्यार्थियों के लिए आवश्यक कौशल में ही प्रशिक्षित किया जाता है।

ग्रामीण क्षेत्रों में एक ही विद्यालय में दो से अधिक विकलांगता से प्रभावित विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं। ऐसी अवस्था में विशेष शिक्षक को इन विकलांग विद्यार्थियों को प्रशिक्षित करने में कुशल होना चाहिए। भारत में बहुकौशल प्रशिक्षण कार्यक्रम इसी आधार पर आयोजित किये गये। दैनिक जीवनयापन कठिन होने के कारण विशेषज्ञ चिकित्सक ग्रामीण क्षेत्रों में काम करने से बचते हैं। इसी कारण गाँवों में चिकित्सीय सुविधाएं बहुकौशलीय चिकित्सकों के आधार पर ही उपलब्ध करायी जा रही हैं, क्योंकि वहाँ इसी आधार पर बहुकौशलीय विशेष अध्यापकों द्वारा विकलांग विद्यार्थियों को एकीकृत शिक्षा योजना के अन्तर्गत सामान्य विद्यालयों में शैक्षिक अवसर प्रदान किये जाते हैं।

संक्षेप में कह सकते हैं कि विकलांगों हेतु एकीकृत शिक्षा आज भी आवश्यक है। शिक्षा प्रत्येक विद्यार्थी का समान अधिकार है। विकलांगता के आधार पर किसी भी दृष्टिहीन विद्यार्थी को शैक्षिक सुविधाओं से वंचित नहीं किया जा सकता। ये सुविधाएं इन दृष्टिहीन विद्यार्थियों को निकट के सामान्य विद्यालय में ही उपलब्ध करायी जानी चाहिएं। इसी आधार पर एकीकृत शिक्षा के विभिन्न प्रारूप दिये गये हैं, जिन्हें राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद (NCERT) ने पाइड (PIED) योजना के अन्तर्गत सफल बताया है। उपरोक्त प्रारूपों में से किसी

भी एक प्रारूप के अन्तर्गत इन विद्यार्थियों को शैक्षिक अवसर उपलब्ध कराये जा सकते हैं, जिससे ये बच्चे अपने परिवार में रहते हुए शिक्षा का लाभ उठा सकें। इस प्रकार शिक्षा दृष्टिहीन बच्चों को परिवार व समाज से जोड़कर उचित मानव संसाधन के रूप में विकसित करने में अपनी भूमिका निभा सकेगी।

अध्याय-3

विशिष्ट शिक्षा में विभिन्न विशेषज्ञों की भूमिका

-डॉ. आर.एस. चौहान

इस अध्याय में सम्मिलित विशेषज्ञ संसाधन अध्यापक (Resource Teacher) तथा परिभ्रामी/भ्रमणशील अध्यापक (Itinerant Teacher) एवं प्रशासनिक अधिकारियों व कर्मचारियों के कार्य इत्यादि की चर्चा दृष्टिबाधितों के संदर्भ में की जा रही है।

जहाँ तक संसाधन अध्यापक और परिभ्रामी अध्यापक का प्रश्न है, वे एकीकृत शिक्षा के क्षेत्र में विशेष स्थान रखते हैं और यदि वे अपेक्षित कार्यों का 60% भी सफलतापूर्वक कर पाते हैं तो निश्चित रूप से उन्हें 'एकल व्यक्ति संस्था' (Single Person Institution) कहा जाना अधिक उपयुक्त होगा। वास्तव में किसी भी एकीकृत शिक्षा परियोजना में विशिष्ट अध्यापक की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। वह परियोजना के लिए रीढ़ की हड्डी की भूमिका निभाता है।

संसाधन अध्यापक :-

संसाधन अध्यापक की नियुक्ति एकीकृत शिक्षा योजना के अन्तर्गत किसी एक विद्यालय के लिए ही की जाती है। उसकी सेवाएं दृष्टिबाधित बालकों तथा सामान्य शिक्षकों को आवश्यकतानुसार स्कूली घन्टों के दौरान हर समय उपलब्ध होती हैं। वह बालकों को संसाधन कक्ष में व्यक्तिगत रूप से या छोटे-छोटे समूहों में पढ़ाता/सिखाता है।

एकीकृत शिक्षा योजना सबसे पुरानी योजना है, यदि आर्थिक स्थिति आड़े न आए तो दृष्टिबाधित बालकों की विशेष शिक्षा आवश्यकताओं की पूर्ति के दृष्टिकोण से यह योजना सर्वाधिक उपयोगी एवं वांछनीय है।

गुण **(Qualities):-** पर्याप्त सफलता के लिए संसाधन अध्यापक में निम्नलिखित गुण होने चाहिएं:-

1. वाक् पटुता- छात्रों व अपने हित में उसे विद्यार्थियों के माता-पिता, सामान्य अध्यापक, विद्यालय प्रशासक तथा अन्य लोगों से बातचीत करनी पड़ती है। अतः इसके लिए आवश्यक है कि वह अपनी बात को तार्किक व प्रभावी ढंग से प्रस्तुत कर सके तभी सफलता मिल सकती है।

2. सहनशीलता- अनजान माता-पिता, सामान्य शिक्षक व छात्रों की ओर से दृष्टिबाधित बालकों के विषय में अनेक प्रश्न पूछे जा सकते हैं, लेकिन दृष्टिबाधित छात्रों के कक्षा में बहुत कम होने तथा अन्य छात्रों की संख्या बहुत अधिक होने के कारण कक्षा-शिक्षक ऐसे विशेष छात्रों की समस्याओं की ओर प्रायः कम ध्यान दे पाते हैं। इन चुनौतियों का सामना वह अतिरिक्त सहनशीलता के आधार पर ही कर सकता है।

3. जमा पाठ्यक्रम (Plus Curriculum) या माध्यम विषय (Tool Subjects) की अच्छी जानकारी- विशिष्ट विद्यालयों में अनेक प्रशिक्षित अध्यापक होते हैं। यदि एक शिक्षक किसी जमा पाठ्यक्रम क्षेत्र में कमजोर है तो दूसरा शिक्षक उसकी अथवा छात्रों की मदद कर सकता है परन्तु एकीकृत शिक्षा योजना में केवल वही अकेला विशेषज्ञ होता है। इसलिए उसकी कमजोरी का दुष्परिणाम निश्चित रूप से छात्रों को भुगतना पड़ेगा। उसे ब्रेल लिपि के विभिन्न नियमों की भली-भांति जानकारी, ब्रेल-गणित संहिता की जानकारी, ब्रेल-लेखन एवं गणना उपकरणों के प्रयोग की अच्छी जानकारी, भूगोल विषय के लिए उपयोगी स्पर्शीय उपकरणों- मानचित्रों को बनाने और उनका प्रयोग सिखाने की दक्षता, अनुस्थितिज्ञान तथा चलिष्णुता में प्रशिक्षण देने की क्षमता, आवश्यक जीवन उपयोगी कौशल (Daily Living Skills) सिखाने इत्यदि की जानकारी होनी चाहिए।

4. विशिष्ट सामग्री स्त्रोतों की जानकारी- दृष्टिबाधितों के लिए उपयोगी उपकरण व शिक्षण सामग्री हर जगह उपलब्ध नहीं होती। संसाधन अध्यापक को उन देशी-विदेशी संस्थाओं व स्त्रोतों की जानकारी होना आवश्यक है, जहाँ से उन्हें प्राप्त किया जा सकता है।

5. दृष्टिहीनों के प्रति स्वस्थ एवं सकारात्मक अभिवृत्तियाँ- संसाधन अध्यापक निष्ठापूर्वक अपने उत्तरदायित्वों को तभी निभा पायेगा जब उसके मन में दृष्टिबाधितों के प्रति सकारात्मक अभिवृत्तियाँ हों।

6. दृष्टिबाधित विद्यार्थियों तथा उनके माता-पिता, अभिभावकों को आवश्यक मार्गदर्शन एवं परामर्श देने की क्षमता।

7. कठिन परिश्रम का अभ्यास।

8. सामान्य अध्यापक व छात्रों में दृष्टिबाधितों के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति उत्पन्न करने की क्षमता एवं उन्हें दृष्टिबाधित विद्यार्थियों को आवश्यक सहयोग देने के लिए प्रेरित करने की क्षमता।

9. अपने विद्यार्थियों के लिए सामुदायिक संसाधन प्रयोग करने की जानकारी एवं क्षमता।

10. अपने विद्यार्थियों को उच्च शिक्षा तथा व्यवसाय के चुनाव हेतु परामर्श देने की क्षमता।

11. दृष्टिबाधित बालकों की हीन भावना (यदि किसी में हो तो) दूर करने तथा उनमें आत्मसम्मान व सकारात्मक आत्मछवि विकसित करने की योग्यता।

12. विद्यार्थियों को आयु के अनुसार मुख्य अध्यापक की पूर्व अनुमति तथा प्रशिक्षित चिकित्सक के सहयोग से (लड़के-लड़कियों को अलग-अलग) यौन शिक्षा की व्यवस्था करने की योग्यता।

13. छात्रों में उपयुक्त प्रत्यय विकसित करने के लिए उन्हें बाहर ले जाने तथा सामग्री निर्माण के लिए अतिरिक्त समय देने की तत्परता।

14. स्थानीय रूप से प्राप्त तथा अनुपयोगी वस्तुओं से शिक्षण सामग्री तैयार करने की कला (दर्जी से प्राप्त कतरनों का प्रयोग बालकों के स्पर्श को विकसित करने और ठण्डे पेय की बोतलों के ढक्कनों का प्रयोग संख्याओं के प्रत्यय विकसित करने के लिए किया जा सकता है)।

15. सामान्य बाल-मनोविज्ञान तथा दृष्टिबाधित बालकों के मनोविज्ञान को समझना।

16. पाठ्यक्रम में दृष्टिबाधित बालकों की आवश्कताओं के अनुसार संशोधन की क्षमता।

17. निम्न दृष्टि (Low Vision) की पहचान करने का अभ्यास।

18. न्यून दृष्टि बालकों के लिए आवश्यक एवं उपयोगी उपकरणों तथा दृष्टि संवर्धकों की जानकारी।

19. न्यून दृष्टि बालकों को अवशिष्ट दृष्टि के अधिकतम प्रयोग के लिए प्रशिक्षण देने की योग्यता।

20. आगामी शिक्षा सत्र के लिए अनुमानित शिक्षा व्यय का बजट तैयार करने की योग्यता।

21. किये गये व्यय का नियमानुसार लेखा-जोखा रखने की योग्यता।

यह संसाधन अध्यापक के गुणों की अन्तिम सूची नहीं है। हाँ, यदि वह इतना सक्षम हो तो निश्चित रूप से एक सफल व आदर्श विशेषज्ञ सिद्ध होगा।

कार्य एवं उत्तरदायित्व:- संसाधन अध्यापक के कार्यों एवं उत्तरदायित्वों को दो भागों में बाँटा जा सकता है-

(क) प्रत्यक्ष कार्य एवं उत्तरदायित्व

(ख) अप्रत्यक्ष कार्य एवं उत्तरदायित्व

(क) प्रत्यक्ष कार्य एवं उत्तरदायित्व- इस श्रेणी में वे कार्य सम्मिलित होते हैं जिनमें अध्यापक व छात्र प्रत्यक्ष रूप से एक-दूसरे के सम्पर्क में हों तथा अध्यापक प्रशिक्षण, शिक्षण अथवा परामर्श इत्यादि सेवाएं प्रदान करें। ऐसे कार्यों की संख्या तथा उन्हें दिये जाने वाले समय की मात्रा प्रारम्भिक कक्षाओं के विद्यार्थियों के लिए अपेक्षाकृत अधिक तथा बड़ी कक्षाओं के छात्रों के लिए कम होती जाती है। प्रमुख प्रत्यक्ष कार्य-उत्तरदायित्व निम्नलिखित हैं:-

1. प्रवेश के समय बालकों का मनोवैज्ञानिक, दैनिक-कौशल विषयक, संवेदी तथा बोधात्मक मूल्यांकन करना।

2. छात्रों को आवश्यकतानुसार विभिन्न जमा पाठ्यक्रम क्रियाओं में प्रशिक्षण देना।

3. विभिन्न कारणों से अपने किसी एक अथवा अधिक विषय में पिछड़े बालकों का शिक्षण।

4. शैक्षिक रूप से पिछड़े विद्यार्थियों के लिए उपचारात्मक शिक्षण।

5. आवश्यकता पड़ने पर विद्यार्थियों के लिए पाठ्य-पुस्तकों का वाचन।

6. कभी-कभी कुछ बालकों में पाई जाने वाली अवांछनीय शारीरिक क्रियाओं (Mannerisms) की रोकथाम के प्रयास करना।

7. छात्रों को शैक्षिक, व्यावसायिक, उच्च शिक्षा, पारिवारिक एवं यौन समस्याओं के सम्बन्ध में मार्गदर्शन तथा परामर्श देना।

8. उन्हें यथासम्भव अधिकाधिक आत्म-अभिव्यक्ति के माध्यम उपलब्ध करवाने हेतु वाचन, वाद-विवाद, नाटक, कहानी सुनाने व कहानी लेखन, काव्य पाठ, विभिन्न प्रकार के आन्तरिक व बाह्य खेलकूद, निबन्ध लेखन, संगीत व नृत्य, पी.ओ.पी. एवं मिट्टी की अनुकृतियाँ बनाने के लिए प्रोत्साहित करना, प्रशिक्षण देना तथा इनसे सम्बन्धित प्रतियोगिताओं में भाग लेने के लिए प्रेरित करना।

9. न्यून दृष्टि (Low Vision) बालकों को अवशिष्ट दृष्टि के अधिकतम प्रयोग हेतु प्रशिक्षण देना।

10. न्यून दृष्टि विद्यार्थियों को उनके लिए उपयुक्त एवं उपलब्ध दृष्टिवर्धक उपकरणों के प्रयोग में प्रशिक्षित करना।

11. न्यून दृष्टि बालकों को दृष्टि संवर्धक उपकरणों का सामान्य रख-रखाव सिखाना।

12. दृष्टिबाधित छात्रों को यथासम्भव एक-दूसरे की तथा दृष्टिवान छात्रों को सहायता के लिए प्रेरित करना ताकि उनकी सामाजिक स्वीकृति बढ़े और पारस्परिक सहयोग की भावना का विकास हो सके।

13. छात्रों को देश-विदेश के सफल एवं प्रसिद्ध दृष्टिबाधित व विकलांग व्यक्तियों के सम्बन्ध में जानकारी देना।

14. उसी विद्यालय के भूतपूर्व तथा अपने-अपने क्षेत्र में सफल विद्यार्थियों एवं अन्य सफल व प्रसिद्ध दृष्टिबाधितों को निमन्त्रित कर अपने छात्रों से बातचीत करवाना।

(ख) अप्रत्यक्ष कार्य एवं उत्तरदायित्व- इस श्रेणी के अन्तर्गत उन समस्त कार्यों को रखा जा सकता है जिन्हें संसाधन अध्यापक छात्रों की अनुपस्थिति में उनकी शिक्षा प्रक्रिया को सफल व सुगम बनाने के लिए करता है। इनमें से कुछ प्रमुख कार्य व उत्तरदायित्व निम्न प्रकार हैं:-

1. बालकों की खोज तथा उनके माता-पिता को दृष्टिबाधितों की शिक्षा की सम्भावनाओं के विषय में जानकारी उपलब्ध करवाना।

2. बालकों की दृष्टिबाधा का प्रमाणपत्र प्राप्त करने में सहायता करना।

3. बालकों को स्कूल में प्रवेश प्राप्त करने में सहायता प्रदान करना।

4. माता-पिता/अभिभावकों को दृष्टिबाधित बालकों की विशिष्ट आवश्यकताओं के बारे में समझाना।

5. अतिरिक्त समस्या वाले माता-पिता को उपयुक्त परामर्श देना।

6. बालक की शिक्षा प्रक्रिया तथा दैनिक कौशलों के प्रशिक्षण के सम्बन्ध में दृष्टिबाधित बालकों के माता-पिता को प्रशिक्षण देना।

7. बालकों के माता-पिता, अभिभावक, सहपाठी, सामान्य अध्यापक, अन्य स्कूल कर्मचारी तथा समुदाय में मौखिक, लिखित व इलेक्ट्रॉनिक प्रसारण माध्यमों का यथासम्भव उपयोग करते हुए दृष्टिहीनों के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति उत्पन्न करना।

8. सामान्य शिक्षकों को समय-समय पर सामूहिक बैठकों तथा इश्तहारों के माध्यम से दृष्टिबाधित छात्रों के प्रति अपनी कक्षाओं में उनके उत्तरदायित्वों से अवगत करवाना तथा उनके निर्वाह के सम्बन्ध में परामर्श देना।

9. आवश्यकता पड़ने पर सामान्य अध्यापकों को दृष्टिबाधित बालकों की ओर समुचित ध्यान देने के लिए प्रार्थना करना।

10. परीक्षाओं में छात्रों के लिए आवश्यकतानुसार मौखिक अथवा ब्रेल के माध्यम से मूल्यांकन की व्यवस्था करना।

11. ब्रेल में लिखे गये उत्तरों को सामान्य अध्यापकों के लिए दृश्य लिपि में तैयार करना ताकि मूल्यांकन सम्भव हो सके।

12. बड़ी कक्षाओं में छात्रों के लिए उपयुक्त श्रुतलेखक की व्यवस्था करना।

13. आगामी सत्र के लिए शिक्षण सामग्री व उपकरणों का पूर्वानुमान लगाना।

14. पूर्वानुमान के अनुसार शिक्षण सामग्री तथा उपकरणों की व्यवस्था सत्र आरम्भ होने से पूर्व करना ताकि दृष्टिबाधित छात्रों को भी अन्य सहपाठियों के साथ ही अपना कार्य आरम्भ करने में सुविधा हो।

15. योजना के अन्तर्गत प्राप्त धनराशि/सामग्री को छात्रों में वितरित करना।

16. आगामी वित्त वर्ष के लिए बजट तैयार करना तथा उसे मुख्य अध्यापक के माध्यम से सरकार को भिजवाना।

17. पाठ्य-पुस्तकों की रिकॉर्डिंग, ब्रेल-अनुलेखन तथा शिक्षण सामग्री के निर्माण एवं प्रत्यक्ष वाचन के लिए इच्छुक व्यक्तियों को ढूँढना और उन्हें आवश्यक प्रशिक्षण देना।

18. रिकॉर्डिंग/अनुलेखन के लिए आवश्यक सामग्री का चयन करना।

19. समय, आवश्यकता तथा सामग्री के प्रकार के अनुसार उसका रिकॉर्डिंग अथवा ब्रेल अनुलेखन के लिए चुनाव करना।

20. समय, संसाधन तथा अधिकतम लाभ की दृष्टि से शैक्षिक भ्रमण के लिए स्थान का चुनाव करना तथा उनकी सफलता के लिए व्यापक पूर्व योजना बनाना।

उपरोक्त कार्यों एवं उत्तरदायित्वों के विषय में दो टिप्पणियाँ वांछनीय प्रतीत होती हैं। सर्वप्रथम तो यह कि बजट इत्यादि तैयार करना व उसे समय पर भेजना

वास्तव में प्रधानाचार्य का उत्तरदायित्व है, परन्तु भारत में इस उत्तरदायित्व को विभिन्न कारणों से संसाघन अध्यापकों को ही वहन करना पड़ता है क्योंकि इस पर स्वयं उनका अपना वेतन भी निर्भर है।

एक दूसरी बात यह है कि ऊपर बताई सूची को अन्तिम अथवा अनिवार्य नहीं समझना चाहिए। अन्तिम इसलिए नहीं क्योंकि अलग-अलग स्थानों पर परिवेश भी अलग-अलग होता है और उसके अनुसार संसाधन अध्यापक के कार्य व उत्तरदायित्वों में कमी अथवा बढ़ोतरी हो सकती है। साथ ही वांछनीय तथा दृष्टिबाधित छात्रों के लिए आवश्यक होते हुए भी इन कार्यों को अनिवार्य कहना अनुचित होगा। कारण यह है कि हम जानते हैं कि अनेक विशिष्ट अध्यापक बहुत-सी सीमाओं में काम करते हैं। कई बार प्रशिक्षण से पहले ही उन्हें विशिष्ट शिक्षक के रूप में नियुक्त कर दिया जाता है। ऐसी स्थिति में वे इनमें से अनेक कार्यों के लिए स्वयं को अक्षम पायेंगे परन्तु इस कारण से उनमें हीन भावना का विकास अथवा अपराध-बोध का जन्म नहीं होना चाहिए। उन्हें यथासम्भव और यथाशीघ्र स्वयं को इनके लिए तैयार करने का प्रयास करना चाहिए। इस कार्य-सूची को मात्र सुझाव के रूप में लिया जा सकता है।

परिभ्रामी अध्यापक:-

परिभ्रामी अध्यापक किसी एक स्कूल विशेष में सेवाएं प्रदान करने की बजाय दो अथवा तीन विद्यालयों में पूर्व निर्धारित समय-सारिणी के अनुसार प्रतिदिन अथवा निश्चित दिन/दिनों में जाकर वहाँ शिक्षा ग्रहण कर रहे दृष्टिबाधित बालकों को व्यक्तिगत आधार पर या छोटे-छोटे समूहों में सेवाएं प्रदान करता है- जमा पाठ्यक्रम क्रियाओं का शिक्षण, विशेष उपकरण, शिक्षण सामग्री एवं परामर्श देता है। वह आवश्यकतानुसार सामान्य अध्यापकों एवं बालकों के माता-पिता को भी सहयोग देता है ताकि दृष्टिबाधित छात्रों की शिक्षा सुचारु रूप से चल सके।

परिभ्रामी अध्यापक योजना संसाधन अध्यापक योजना की तुलना में कम खर्चीली है क्योंकि इसके अन्तर्गत यदि अध्यापक को एक स्कूल में आठ बालक उपलब्ध न हों तो 2-3 स्कूलों में 8-10 बालक उसे प्राप्त हो जाते हैं जो सामान्यत: एक विशिष्ट अध्यापक के लिए वांछनीय संख्या समझी जाती है। इसके फलस्वरूप बालक अपने निकटतम विद्यालय में जाते हैं तथा उन्हें वहीं पर विशिष्ट अध्यापक की सेवाएं भी प्राप्त हो जाती हैं। यह योजना ग्रामीण क्षेत्रों के लिए अधिक उपयुक्त समझी जाती है। भारत के महाराष्ट्र, गुजरात, हरियाणा, उत्तर प्रदेश तथा बिहार इत्यादि राज्यों में इसका बड़े पैमाने पर प्रयोग किया जा रहा है। परिणाम भी संतोषजनक बताये जाते हैं।

कुछ विशेषज्ञ यह अवश्य मानते हैं कि इसके अन्तर्गत अन्य बातों के समान होने पर, शिक्षा की गुणवत्ता संसाधन अध्यापक की तुलना में कम होगी क्योंकि बालकों को पूर्णकालिक आधार पर विशिष्ट अध्यापक की सेवाएं उपलब्ध नहीं हो पातीं।

संसाधन कक्ष के स्थान पर परिभ्रामी अध्यापक न्यूनतम आवश्यक विशिष्ट शिक्षण-सामग्री तथा उपकरण से भरा एक बस्ता या संदूकची का प्रयोग करता है जिसे आमतौर पर 'संसाधन किट' कहते हैं। वह एक-एक किट प्रत्येक बालक को उपलब्ध करवाता है तथा एक किट स्वयं अपने पास रखता है।

समय की बचत की दृष्टि से अलग-अलग संस्थाओं ने उनके अन्तर्गत काम करने वाले परिभ्रामी अध्यापकों को आर्थिक स्थिति के अनुसार साइकिल/मोटर-साइकिल/स्कूटर आदि दे रखे हैं।

गुण (Qualities):-

1. **समय की पाबन्दी (Punctuality)-** यह गुण सभी में वांछित है परन्तु परिभ्रामी अध्यापक के संदर्भ में इसका विशेष महत्व है। दृष्टिबाधित बालकों को दिन में एक या आधा घण्टा अथवा वैकल्पिक दिनों में कुछ समय के लिए ही विशिष्ट अध्यापक की सेवाएं मिल पाती हैं। यदि विशिष्ट अध्यापक समय पर नहीं पहुँच पाता तो उन्हें एक या दो दिन के लिए प्रतीक्षा करनी होगी और इस बीच उनके समक्ष आयी समस्याओं की संख्या बढ़ती जायेगी। छोटे बालक अपनी कठिनाइयाँ भूल भी सकते हैं और इस प्रकार वे अन्य सहपाठियों से पिछड़ने लगेंगे।

2. **आत्म-अनुशासन (Self-Discipline)-** परिभ्रामी अध्यापक संसाधन अध्यापक की तुलना में अधिक स्वतन्त्र होता है, इसीलिए एक विद्यालय से दूसरे विद्यालय को जाते समय उसे समय की बर्बादी से स्वयं बचना होगा तथा प्रत्येक स्थान पर नियत समय पर पहुँचने के लिए उसे अधिक आत्म-अनुशासन की आवश्यकता है। इनके अतिरिक्त परिभ्रामी अध्यापक में भी वे ही गुण अपेक्षित हैं जो संसाधन अध्यापक के संदर्भ में बताये गये हैं।

कार्य :- कार्यों एवं उत्तरदायित्वों के सम्बन्ध में भी परिभ्रामी तथा संसाधन अध्यापक की स्थिति समान है, अतः पहले संसाधन अध्यापक के लिए बताये गये कार्यों एवं उत्तरदायित्वों की पुनरावृत्ति अनावश्यक है। दोनों के अन्तिम उद्देश्य भी समान हैं- सामान्य शैक्षिक लक्ष्यों के साथ-साथ दृष्टिबाधित छात्रों को उनके लिए आवश्यक विशिष्ट कौशलों में दक्ष बनाना, उनमें पारस्परिक सहयोग, आत्मविश्वास,

आत्मसम्मान की भावना विकसित करना तथा कठोर परिश्रम की आदत डालना ताकि बड़े होकर वे न केवल समाज में सक्रिय, सम्मानित व उत्पादक और उत्तरदायी नागरिक की भूमिका निभा सकें बल्कि दृष्टिबाधित के सामने आने वाली अतिरिक्त कठिनाइयों का सामना भी साहसपूर्वक कर सकें।

एकीकृत शिक्षा में प्रशासनिक अधिकारियों तथा कर्मचारियों की भूमिका एवं उत्तरदायित्व:-

प्रश्न उठता है कि इस संदर्भ में प्रशासनिक अधिकारियों तथा कर्मचारियों के अन्तर्गत किस-किस को सम्मिलित किया जाये? लेखक के विचार से अधिकारियों की श्रेणी में राज्य/केन्द्र शासित प्रदेश के एकीकृत शिक्षा प्रकोष्ठ के अधिकारियों तथा एकीकृत शिक्षा परियोजना वाले विद्यालयों के प्रधानाचार्य/मुख्य अध्यापकों को सम्मिलित किया जा सकता है। कर्मचारियों में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका सम्बद्ध विद्यालयों के सामान्य अध्यापकों की बनती है। अत: इस बिन्दु के अन्तर्गत उनकी भूमिका और उत्तरदायित्वों की चर्चा भी की जायेगी।

(क) एकीकृत शिक्षा प्रकोष्ठ के अधिकारी- भारत सरकार की विकलांग बालकों हेतु एकीकृत शिक्षा (IEDC) योजना 1992 के अनुसार राज्य अथवा केन्द्र शासित प्रदेश में योजना को कार्यान्वित करने के लिए सम्बद्ध सरकार के शिक्षा विभाग को उत्तरदायित्व वहन करना होगा। उसे कम से कम उपनिदेशक स्तर के अधिकारी की देख-रेख में एक प्रशासनिक कोष्ठ का गठन इस योजना के कार्यान्वयन, पर्यवेक्षण तथा मूल्यांकन के लिए करना चाहिए। प्रकोष्ठ में उपनिदेशक के अतिरिक्त एक समन्वयक तथा एक विशिष्ट शिक्षाविद् (Special Educator) होगा। योजना के अनुसार सम्मिलित रूप से इन अधिकारियों के निम्नलिखित कार्य व उत्तरदायित्व बताये गये हैं:-

1. विकलांग बालकों की पहचान के लिए उपयुक्त फार्म (Form) तैयार करना।

2. उन्हें विभिन्न क्षेत्रों में बाँटना।

3. कुछ मानदेय देकर अध्यापकों से विकलांग बालकों की पहचान करवाना।

4. विशिष्ट उपकरणों की व्यवस्था करना।

5. आवश्यक शिक्षण सामग्री की व्यवस्था करना।

6. विकलांग बालकों के मूल्यांकन हेतु उपयुक्त व्यवस्था करना।

यह मूल्यांकन प्रवेश से पहले किया जाना चाहिए ताकि निर्णय लिया जा सके कि किसी बालक को सीधे स्कूल में भर्ती किया जा सकता है अथवा उसे स्कूल पूर्व तैयारी केन्द्र में प्रशिक्षण के बाद भर्ती किया जाये। मूल्यांकन दल में एक-एक चिकित्सक, मनोवैज्ञानिक तथा विशिष्ट शिक्षाविद् को सम्मिलित करने के लिए कहा गया है।

उपर्युक्त बिन्दुओं से इन अधिकारियों के जो अन्य कार्य एवं उत्तरदायित्व उभरते हैं, वे इस प्रकार हैं:-

7. विभिन्न संचार माध्यमों द्वारा अपने-अपने राज्य/केन्द्र शासित प्रदेश में एकीकृत शिक्षा योजना के विषय में समय-समय पर जानकारी देना।

8. सम्बद्ध योजना के अन्तर्गत विकलांग बालकों को प्राप्त सुविधाओं, लाभ एवं छूट के विषय में समय-समय पर जानकारी प्रसारित करना।

9. एकीकृत शिक्षा परियोजना वाले विद्यालयों के प्रधानाचार्यों तथा सामान्य अध्यापकों के लिए गोष्ठियाँ आयोजित करना ताकि वे अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह भली प्रकार से कर सकें।

10. विभिन्न विद्यालयों से प्राप्त बजट को बिना देरी के केन्द्र सरकार को अग्रसारित करना।

11. अनुदान को यथाशीघ्र सम्बद्ध विद्यालयों को आवंटित करना, जिससे कि विशिष्ट अध्यापकों को समय पर वेतन और विकलांग बालकों को आवश्यक सुविधाएं, शिक्षण सामग्री तथा आर्थिक सहायता उपयुक्त समय पर प्राप्त हो सके।

(ख) प्रधानाचार्य/मुख्य अध्यापक (Principal/Head Master) के कार्य तथा उत्तरदायित्व:-

1. दृष्टिबाधित बालकों को अपने विद्यालयों में सुगमतापूर्वक प्रवेश देना।

2. उन्हें प्रवेश के समय नियमानुसार आयु सम्बन्धी छूट देना।

3. विशिष्ट अध्यापक को यथासम्भव अधिकाधिक सहयोग देना।

4. परियोजना का बजट बनाना तथा उसे यथासमय सरकार को भेजना।

5. विशिष्ट उपकरण तथा शिक्षण सामग्री की खरीद में विशिष्ट अध्यापक की सहायता करना।

5. विशिष्ट उपकरण तथा शिक्षण सामग्री की खरीद में विशिष्ट अध्यापक की सहायता करना।

6. सामान्य अध्यापकों तथा अन्य कर्मचारियों को विशिष्ट अध्यापक से सहयोग के लिए समय-समय पर परामर्श देना।

7. सामान्य अध्यापकों, छात्रों तथा कर्मचारियों को दृष्टिबाधित छात्रों के प्रति सहयोग व सहकारपूर्ण व्यवहार के लिए परामर्श देना।

8. विशिष्ट अध्यापक को एक अतिरिक्त अध्यापक न समझना।

9. दृष्टिबाधित छात्रों को भी सामान्य छात्र समझना तथा उन्हें सामान्य अनुशासन में रखना।

10. दृष्टिबाधित छात्रों के लिए एक सुरक्षित, शान्त तथा यथासम्भव ग्राउंड फ्लोर पर संसाधन कक्ष उपलब्ध करवाना।

11. अनुदान विलम्ब से प्राप्त होने की स्थिति में विशिष्ट अध्यापक को किसी अन्य फंड से यथासमय वेतन देना ताकि वह अपने उत्तरदायित्वों के प्रति निष्ठावान रह सके।

12. विशिष्ट अध्यापक की सहायता से सामान्य अध्यापक तथा कर्मचारियों के लिए प्रत्येक शिक्षा सत्र के आरम्भ व मध्य में एकीकृत शिक्षा सम्बन्धी एवं दृष्टिबाधित छात्रों के प्रति सामान्य अध्यापकों/कर्मचारियों की भूमिका व उत्तरदायित्व, दृष्टिबाधित विद्यार्थियों की कक्षा में समस्याओं व समाधान तथा उनके प्रति सकारात्मक अभिवृत्तियाँ विकसित करने के लिए बैठक आयोजित करना।

13. दृष्टिवान छात्रों को अधिक जानकारी व सकारात्मक अभिवृत्ति विकास के लिए दृष्टिबाधितार्थ विद्यालयों में शैक्षिक भ्रमण के लिए भेजना।

14. दृष्टिवान छात्रों को दृष्टिबाधित विद्यार्थियों के लिए ब्रेल अनुलेखन, श्रुतलेखन तथा मार्गदर्शन, रिकॉर्डिंग तथा प्रत्यक्ष वाचन इत्यादि कार्यों के लिए प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से विशेष पुरस्कार योजनाएं आरम्भ करना।

15. दृष्टिबाधित छात्रों को परीक्षाओं के दौरान योग्यतानुसार मूल्यांकन के लिए विशिष्ट अध्यापक के परामर्श को ध्यान में रखते हुए उपयुक्त माध्यम सुलभ करवाना।

16. अपने विद्यालय में ख्याति प्राप्त व सफल दृष्टिबाधितों को विद्यार्थियों से वार्तालाप के लिए आमन्त्रित करना।

(ग) सामान्य अध्यापक:- सामान्य अध्यापकों के कार्य एवं उत्तरदायित्व निम्न प्रकार है:-

1. सामान्य छात्रों की तरह दृष्टिबाधित छात्रों के प्रति भी अपना उत्तरदायित्व समझना।

2. कक्षा में उनकी विशिष्ट समस्याओं को समझना व समाधान करना।

3. भली-भाँति सुन पाने की दृष्टि से उन्हें कक्षा में प्रथम पंक्ति में स्थान देना।

4. श्यामपट पर लिखी जाने वाली सामग्री को दृष्टिबाधित छात्रों की सुविधा के लिए मौखिक रूप से दोहराना।

5. उनमें समानता व आत्मसम्मान विकसित करने के लिए उन्हें भी योग्यता के अनुसार उत्तरदायित्व सौंपना।

6. दृष्टिबाधित विद्यार्थियों पर भी अनुशासन के समान नियम लागू करना।

7. उनसे गृह कार्य करने व लाने की अपेक्षा रखना।

8. कक्षा के दृष्टिवान तथा दृष्टिबाधित छात्रों में पारस्परिक सहयोग विकसित करने के उद्देश्य से, उनके दो-दो के समूह बनाना।

9. कक्षा में अपेक्षाकृत धीमी गति से स्पष्ट उच्चारण का प्रयोग करना ताकि दृष्टिबाधित छात्र भी अधिकतम लाभ उठा सकें व टिप्पणियाँ लिख सकें।

10. दृष्टिबाधित छात्रों के विषय में शिक्षण सम्बन्धी समस्या आने पर उसके समाधान के लिए विशिष्ट अध्यापक से परामर्श करना।

एकीकृत शिक्षा व्यवस्था में यदि विशिष्ट अध्यापक, सामान्य अध्यापक तथा प्रशासनिक अधिकारी अपनी-अपनी भूमिका निष्ठापूर्वक निभाएं तो निश्चित रूप से यह प्रणाली दृष्टिबाधित विद्यार्थियों के चहुँमुखी विकास, सन्तुलित व्यक्तित्व तथा सामाजिक परिवर्तन का एक सशक्त व सफल माध्यम सिद्ध हो सकती है।

अध्याय-4

संसाधन कक्ष

-डॉ. सुषमा शर्मा

दृष्टिहीन अथवा विकलांग विद्यार्थियों की विशेष आवश्यकताएं होती हैं, जिनकी पूर्ति की जिम्मेदारी विशेष अध्यापक पर होती है। इन विशेष आवश्यकताओं को जमा-पाठ्यक्रम के अन्तर्गत सम्मिलित किया जाता है। निश्चित रूप से इन विशेष आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विशेष शिक्षण सामग्री की भी आवश्यकता होती है। विशेष विद्यालय में तो इस सामग्री को कक्षा में भी रखा जा सकता है, वहीं एकीकृत शिक्षा के अन्तर्गत इस सामग्री को एक विशेष कक्ष में रखा जाता है, जिसे संसाधन कक्ष कहते हैं, जिसका वर्णन प्रस्तुत अध्याय में किया गया है।

संसाधन कक्ष-अर्थ व आवश्यकता :

संसाधन शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है - सं+साधन। सं का अर्थ है सहित व साधन का अर्थ है सामग्री, अर्थात् वह कक्ष जो सामग्री सहित हो- अर्थात् वह कक्ष जहाँ विशेष आवश्यकताओं के आधार पर विशेष सामग्री हो, जिसके द्वारा दृष्टिहीन विद्यार्थियों की विशेष शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सके। इसे 'संपूरक कक्ष' भी कहा जा सकता है, अर्थात् वह कक्ष जो दृष्टिहीन विद्यार्थियों के लिए दृष्टि की क्षति पूरक के रूप में कार्य करे।

सामान्य विद्यालय में एकीकृत शिक्षा योजना के अन्तर्गत संसाधन कक्ष प्रारूप में संसाधन कक्ष विद्यालय का एक महत्त्वपूर्ण अंग होता है, जिसमें दृष्टिहीन विद्यार्थियों के शैक्षिक प्रशिक्षण के लिए उचित सामग्री रखी जाती है। दृष्टि के अभाव में दृष्टिहीन विद्यार्थियों को अपने अन्य संवेदों पर निर्भर रहना पड़ता है, जिनके प्रशिक्षण के लिए उचित सामग्री संसाधन कक्ष में ही रखी जाती है। इस कक्ष में दृष्टिहीन विद्यार्थी प्रतिदिन संसाधन अध्यापक/अध्यापिका के पास प्रशिक्षण के लिए आते हैं। यह प्रशिक्षण व्यक्तिगत रूप से ही इन दृष्टिहीन विद्यार्थियों को उपलब्ध कराया जाता है। दृष्टिहीन विद्यार्थी मुख्य रूप से स्पर्श व श्रवण के आधार पर संसाधन कक्ष में प्रशिक्षण लेते हैं। यह सामग्री अत्यन्त महंगी व स्थान घेरने वाली होती है, जिसकी आवश्यकता प्रतिदिन इन दृष्टिहीन बच्चों को होती है। अत: इनको रखने व इनके प्रयोग के लिए संसाधन कक्ष का होना अत्यन्त आवश्यक है। छोटी कक्षाओं में दृष्टिहीन विद्यार्थियों को जमा पाठ्यक्रम कौशल प्रशिक्षण लेना होता है, जिससे वह

सामान्य विद्यार्थियों के साथ सामान्य कक्षा में बराबरी से भाग ले सकें। दृष्टिहीन विद्यार्थियों द्वारा प्रयुक्त शैक्षिक सामग्री में अन्तर होता है। उदाहरण के लिए, दृष्टिवान की पुस्तकें रंगीन व छपी हुई होती हैं, वहीं दृष्टिहीन विद्यार्थियों की पुस्तकें ब्रेल लिपि में अथवा स्पर्श पुस्तकें होती हैं। इन पुस्तकों को संसाधन कक्ष में ही रखा जाता है, जहाँ दृष्टिहीन विद्यार्थी आकर प्रयोग करते हैं।

संसाधन कक्ष की संरचना :

दृष्टिबाधित बालक मुख्य रूप से दो प्रकार के होते हैं- (1) दृष्टिहीन (2) न्यून-दृष्टि। संसाधन कक्ष की स्थापना के लिए कुछ विशेष दिशा निर्देश को ध्यान में रखना आवश्यक है, ये इस प्रकार हैं:-

(1) संसाधन कक्ष की संरचना के समय इन दोनों समूहों की विशेष आवश्यकताओं का ध्यान रखा जाता है। यह कक्ष विद्यालय का कोई भी कक्ष हो सकता है, परन्तु प्रयास किया जाता है कि विद्यालय में एक ऐसे कक्ष को संसाधन कक्ष बनाया जाए, जो विद्यालय भवन के मध्य में हो व जहाँ से पानी व शौच की सुविधाएं बहुत ज्यादा दूर न हों।

(2) यह शान्तिपूर्ण स्थान पर स्थापित हो तो ज्यादा उचित होगा, चूंकि दृष्टिबाधित विद्यार्थी को श्रवण प्रशिक्षण में निपुणता प्राप्त करना आवश्यक होता है, अत: शोर से उन्हें बचाना चाहिए।

(3) संसाधन कक्ष भूमितल/निचली मंजिल (Ground Floor) पर होना चाहिए और उस तक पहुँचने वाला रास्ता सरल व सुगम होना चाहिए। इस मार्ग पर खतरनाक अवरोध नहीं होने चाहिएं।

(4) इस कक्ष में न्यून-दृष्टि बच्चों की आवश्यकताओं के आधार पर पीला व नीला रंग प्रयोग किया जाना चाहिए।

(5) इस कक्ष में प्रकाश की पर्याप्त व्यवस्था होनी चाहिए।

(6) संसाधन कक्ष में दृष्टिहीन व न्यून-दृष्टि विद्यार्थियों की आवश्यकतानुसार कुर्सी, मेज व सामग्री रखने हेतु अलमारी व रैक्स आदि की व्यवस्था होनी चाहिए।

संसाधन कक्ष के कार्य :

संसाधन कक्ष का मुख्य कार्य दृष्टिबाधित विद्यार्थियों की विशेष आवश्यकताओं हेतु प्रशिक्षण उपलब्ध कराना है। यह वह कक्ष है जहाँ जमा पाठ्यक्रम क्रियाएं

सिखायी जाती हैं व उन्हें विभिन्न कौशलों में प्रशिक्षण व अभ्यास दिया जाता है। इस कक्ष में अनुस्थितिज्ञान व चलिष्णुता के प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाती है।

ब्रेल में पठन व लेखन इसी कक्ष में सिखाया जाता है। स्पर्शीय सामग्री इसी कक्ष में तैयार की जाती है व रखी जाती है। थर्मोफार्म मशीन की व्यवस्था भी संसाधन कक्ष में ही होती है। गणित शिक्षण हेतु दृष्टिबाधितों के लिए प्रयोग किये जाने वाले उपकरणों, जैसे अबेकस व टेलर फ्रेम भी संसाधन कक्ष में होते हैं, जहाँ इनका प्रयोग सिखाया जाता है। ध्वन्यांकित पुस्तकें (Talking Books) इसी कक्ष में आवश्यकतानुसार तैयार की जा सकती हैं व बाहर से उपलब्ध पुस्तकों का इस कक्ष में प्रयोग किया जा सकता है। विज्ञान व भूगोल से सम्बन्धित स्पर्शीय सामग्री भी इसी कक्ष में उपलब्ध करायी जाती है। प्रत्यय विकास में संसाधन अध्यापक आवश्यकतानुसार इस सामग्री का प्रयोग करता है, जिससे दृष्टिबाधित विद्यार्थी सामान्य विद्यार्थी के समकक्ष आ सके। इस प्रकार जिन कौशलों को दृष्टिबाधित सामान्य कक्षा में प्राप्त नहीं कर सकते उनका विकास इस कक्ष में संसाधन अध्यापक द्वारा किया जाता है। दूसरे शब्दों में, जिन कुशलताओं व योग्यताओं को दृष्टिबाधित विद्यार्थी सामान्य विद्यार्थियों के साथ, सामान्य कक्षाओं में प्राप्त नहीं कर सकते वहाँ संसाधन कक्ष क्षतिपूरक के रूप में दायित्व निभाता है। इस प्रकार संसाधन कक्ष में कार्यों को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है-

संसाधन कक्ष का मुख्य उद्देश्य दृष्टिहीन विद्यार्थियों में उन दक्षताओं अथवा कुशलताओं को विकसित करना है, जिनके द्वारा कक्षा में उनकी भागीदारी समान रूप से हो सके व पाठ्यक्रम की हर सामग्री को वे आत्मसात् कर सकें। वे भी सामान्य विद्यार्थियों की भांति शैक्षिक उद्देश्य की प्राप्ति कर सकें, जिसके आधार पर मूल्यांकन द्वारा उन्हें अग्रिम कक्षा में भेजा जा सके। ये दक्षताएं निम्न प्रकार से हैं-

1. ब्रेल पठन व लेखन सीखना : विद्यालय में प्रवेश के साथ ही सामान्य विद्यार्थी हिन्दी व अंग्रेजी के शब्दों को लिखना व पढ़ना सीखना प्रारम्भ कर देता है। दृष्टिहीनों के संदर्भ में यह दृश्य पठन-लेखन नहीं बल्कि स्पर्शीय पठन व लेखन का रूप ले लेता है। ब्रेल लिपि में लिखे हुए शब्दों को पढ़ना पहले सिखाया जाता है, चूंकि ब्रेल लेखन के लिए प्रयुक्त कलम (स्टाइलस) का प्रयोग दृष्टिहीन विद्यार्थी के लिए छोटी कक्षाओं में अति कठिन होता है। उनमें पर्याप्त ताकत हो तभी वे ब्रेल पेपर पर कलम (स्टाइलस) द्वारा छिद्र करके लिख सकते हैं।

जैसा कि आपको विदित ही होगा यह ब्रेल लिपि 6 उभरे बिन्दुओं के प्रयोग से बनी है। ब्रेल लेखन कलम (स्टाइलस) से स्लेट द्वारा दायें से बायें के आधार पर होता है, जबकि पठन बायें से दायें के आधार पर होता है, अर्थात् (ढ) लिखते समय दाहिनी तरफ, परन्तु पढ़ने की अवस्था में (ढ) का उभार बायीं तरफ हो जाएगा। यह सीखने की एक व्यक्तिगत प्रक्रिया है, जिसमें संसाधन अध्यापक को पहले दृष्टिहीन विद्यार्थी को ब्रेल पठन व लेखन के लिए शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक रूप से तैयार करना पड़ता है, तत्पश्चात् विभिन्न ब्रेल काइर्स के आधार पर पंक्ति पर अंगुली चलाने से लेकर पुस्तक को ठीक प्रकार से पकड़ना आदि सिखाना होता है। ब्रेल कोड के आधार पर पढ़ना व लिखना सिखाना संसाधन अध्यापक के मुख्य उत्तरदायित्वों में से एक है। इसके आधार पर ही दृष्टिहीन विद्यार्थी अपनी उम्र के अन्य दृष्टिवान विद्यार्थियों के साथ कक्षा में विभिन्न शैक्षिक क्रियाओं में भाग लेता है।

कक्षा 4 अथवा 5 में ब्रेल टाइपराइटर (ब्रेलर) का प्रयोग भी संसाधन कक्ष में सिखाया जा सकता है। विकसित देशों में तो ब्रेलर का प्रयोग प्रारम्भ में ही सिखाया जाता है। जब बच्चे की मांसपेशियों का विकास इतना हो जाता है कि वह विभिन्न अंगुलियों को ब्रेलर की विभिन्न कुंजियों (Keys) पर रखने के योग्य हो तो ब्रेलर का प्रयोग सिखाना प्रारम्भ कर दिया जाता है।

भारत के विशेष विद्यालयों में ब्रेलर की संख्या अधिक न होने के कारण इसका प्रयोग बड़ी कक्षा के बच्चे ही कर पाते हैं।

2. संवेदन प्रशिक्षण : दृष्टि मुख्य ज्ञानेंद्रिय है, जिसके द्वारा वातावरण की 80-90 प्रतिशत सूचनाएं व्यक्ति ग्रहण करता है। यह एक वैज्ञानिक तथ्य है कि एक ज्ञानेंद्रिय के काम न कर पाने की स्थिति में अन्य ज्ञानेंद्रियाँ क्षतिपूरक के रूप में कार्य करने के योग्य हो सकती हैं। अतः दृष्टि के अभाव में अन्य ज्ञानेंद्रियों को इतना प्रशिक्षित करना आवश्यक होता है कि वे क्षतिपूरक की तरह सफलतापूर्वक कार्य कर सकें।

सामान्य बालक के संदर्भ में, जैसा कि देखने में आता है वह अनायास देखकर ही वातावरण की अनेक चीजों को जान जाता है। जीवन का प्रत्येक अनुभव उसके लिए सीखने का अवसर प्रदान करता है। लौवनफेल्ड ने दृष्टिहीनता की सीमाओं का वर्णन करते हुए लिखा है कि दृष्टिहीनता के कारण व्यक्ति के अनुभवों की व्यापकता व विभिन्नता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। ये अनुभव काफी सीमित हो जाते हैं। ये अन्य ज्ञानेंद्रियाँ ही हैं, जो इस कमी को पूरा करने में महत्त्वपूर्ण

भूमिका अदा करती हैं। यही नहीं अनुस्थितिज्ञान व चलिष्णुता के लिए भी दृष्टिहीन विद्यार्थी को स्पर्श व श्रवण पर निर्भर करना पड़ता है, जिसका प्रशिक्षण संसाधन कक्ष में संसाधन अध्यापक द्वारा दिया जाता है।

दृष्टि के अभाव में जो मुख्य दो ज्ञानेंद्रियाँ क्षतिपूरक के लिए महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं वे हैं- स्पर्श व श्रवण। दृष्टिहीन की अंगुलियों के संदर्भ में तो यहाँ तक कहा जाता है कि उसकी अंगुलियाँ ही उसकी आँखें हैं। वातावरण के सभी अनुभवों व प्रत्ययों को दृष्टिबाधित स्पर्श द्वारा ही ग्रहण करते हैं। श्रवणेंद्रिय व घ्राणेंद्रिय द्वारा वह अपने वातावरण में उपस्थित वस्तुओं को जानता है व चलने-फिरने में स्वतन्त्र होता है। इन सबका प्रशिक्षण व्यक्तिगत स्तर पर संसाधन अध्यापक ही प्रत्येक दृष्टिहीन विद्यार्थी को प्रदान करता है।

दैनिक क्रिया कौशल का प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। ये अधिगम दृष्टिवान विद्यार्थी में स्वाभाविक रूप से ही हर समय होते रहते हैं। किसी को विशेष प्रयास नहीं करने पड़ते। दृष्टिहीन विद्यार्थी के लिए इन सब में विशेष रूप से प्रशिक्षण देना आवश्यक होता है व इनको विकसित करने की जिम्मेदारी संसाधन अध्यापक पर ही होती है। इन कौशलों के अभाव में दृष्टिहीन समाज में समायोज़ित नहीं हो सकता और न ही उसमें आत्मविश्वास उत्पन्न हो सकता है। इसके विपरीत वह अपने अन्य साथियों पर बोझ बन जाता है। सभी उस दृष्टिहीन विद्यार्थी से बचने का प्रयास करते हैं, जो दैनिक क्रियाओं में कुशल नहीं होता।

3. अनुस्थितिज्ञान व चलिष्णुता प्रशिक्षण : विद्यालय के भवन का पूरा अनुस्थितिज्ञान कराना तथा भवन के मुख्य अंग, जैसे पानी पीने का स्थान, शौचालय, खेल का मैदान, पुस्तकालय, विज्ञान प्रयोगशाला, भूगोल कक्ष व मुख्य रूप से संसाधन कक्ष की जानकारी दृष्टिहीन विद्यार्थी को होनी चाहिए, जिससे वह अपने वातावरण को जानकर उसमें स्वतन्त्रतापूर्वक आ-जा सके। संसाधन शिक्षक की जिम्मेदारी होती है कि वह विभिन्न स्पर्शीय चित्रों के माध्यम से दृष्टिबाधित विद्यार्थी को विद्यालय भवन से पूरी तरह से परिचित कराये। विद्यालय भवन में दृष्टिबाधित विद्यार्थियों की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए कहीं भी चोट लगने वाले अथवा तेज धार वाले सामान रास्ते में नहीं होने चाहिएं। सीढ़ियों पर रेंलिग लगी होनी चाहिए। खिड़कियों में सुरक्षा की दृष्टि से फ्रेम लगे होने चााहिएं, जिससे कोई भी विद्यार्थी वहाँ से गिर न सके। बिजली के प्लग टूटे अथवा खुले नहीं होने चाहिएं। इन सभी व्यवस्थाओं का उत्तरदायित्व संसाधन कक्ष में कार्यरत शिक्षक का होता है।

4. विशेष उपकरणों का प्रयोग : संसाधन कक्ष के अन्दर विशेष उपकरणों की व्यवस्था होती है, उनके प्रयोग को सामान्य कक्षा में नहीं बल्कि संसाधन कक्ष में संसाधन (विशेष) अध्यापक द्वारा दृष्टिहीन विद्यार्थियों को बताया जाता है व अभ्यास कराया जाता है। ये उपकरण निम्न हैं:-

- गणित से सम्बन्धित उपकरण, जैसे अबेकस व गणित पट्टी (टेलर फ्रेम)।
- ज्यामिति उपकरण (Geo Board)।
- विज्ञान में प्रयुक्त होने वाले उपकरण।
- सामाजिक कौशल विकास हेतु उपकरण।
- खेल सम्बन्धी उपकरण, जैसे शतरंज, लूडो, आवाज वाली गेंद, क्रिकेट बल्ला आदि।
- भूगोल के लिए अनेक उभरे दो आयामी नक्शे व स्पर्शीय ग्लोब।
- विभिन्न मॉडल व स्पर्शीय चित्र।

5. टंकण (टाइपराइटिंग) सिखाना : ब्रेल पठन लेखन में निपुण होने के बाद बड़ी कक्षाओं में टाइपराइटिंग भी सिखाया जाना आवश्यक है। यह प्रशिक्षण उन्हें दृष्टिवान समाज में व्यवसाय के लिए तैयार करता है। इसके माध्यम से वे दृष्टिवान साथियों से सम्पर्क बना सकते हैं।

6. ध्वन्यांकित पुस्तकें उपलब्ध कराना : ब्रेल पुस्तकों के उपलब्ध न होने की स्थिति में दृष्टिहीन विद्यार्थियों के लिए पठन सामग्री उपलब्ध कराना संसाधन कक्ष-शिक्षक की जिम्मेदारी होती है। बड़ी कक्षाओं में यह समस्या आम है। इन पुस्तकों को ध्वन्यांकित पुस्तकालयों से भी उपलब्ध कराया जा सकता है। यदि इन पुस्तकालयों में भी ये पुस्तकें उपलब्ध न हों तो इस स्थिति में संसाधन अध्यापक इस सामग्री को ध्वन्यांकित रूप से दृष्टिबाधित विद्यार्थियों को उपलब्ध कराता है।

7. रीडर की सुविधाएं उपलब्ध कराना : दृष्टिहीन विद्यार्थियों की उपलब्धियों में रीडर की सेवाओं की एक मुख्य भूमिका होती है। सरकार द्वारा एकीकृत शिक्षा योजना में रीडर के लिए धन की भी व्यवस्था की गयी है। संसाधन अध्यापक द्वारा इन रीडरों का चयन किया जाता है। समाज के आम नागरिक को भी रीडर सेवाओं के लिए प्रेरित किया जा सकता है। ये रीडर दृष्टिबाधित विद्यार्थी को पठन सामग्री पढ़कर सुनाते हैं। समय के अभाव में अथवा अधिक पठन सामग्री

होने पर इन रीडरों द्वारा पठन सामग्री रिकॉर्ड करके भी दृष्टिबाधित विद्यार्थियों को उपलब्ध करायी जा सकती है।

8. न्यून-दृष्टि विद्यार्थियों की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु : न्यून-दृष्टि विद्यार्थियों द्वारा प्रयोग किये जाने वाले आतिशी शीशे (Magnifying Glasses), पठन स्टैण्ड (Reading Stand), बड़े अक्षर वाली पुस्तक व न्यून दृष्टि को प्रभावशाली बनाने हेतु प्रशिक्षण कार्यक्रम संसाधन कक्ष में ही उपलब्ध कराये जाते हैं। CCTV का प्रयोग भी संसाधन कक्ष में ही सिखाया जाता है। शैक्षिक सामग्री उचित रंग विभेद के साथ न्यून-दृष्टि विद्यार्थियों के लिए तैयार की जाती है। कम्प्यूटर द्वारा बड़ी आकृति के आधार पर न्यून-दृष्टि बालक को प्रशिक्षण दिया जाता है, जिसका उत्तरदायित्व संसाधन अध्यापिका/अध्यापक पर ही होता है।

9. आर्थिक सुविधाओं का वितरण : एकीकृत शिक्षा योजना के अन्तर्गत विकलांग बच्चों के लिए आर्थिक सुविधाएं उपलब्ध कराई जा सकती हैं, जैसे पुस्तकों व वर्दियों के लिए धन देना, परिवहन के लिए भत्ता, वाचन (रीडर) भत्ता, उपकरणों के लिए वास्तविक मूल्य का भुगतान आदि। इन सभी को खरीद कर देना अथवा रसीद के आधार पर भुगतान करना संसाधन कक्ष-शिक्षक का उत्तरदायित्व होता है। न्यून-दृष्टि बच्चों को अल्प दृष्टि हेतु चश्मे बनवाकर देना अथवा आतिशी शीशों को उपलब्ध कराना व उनके प्रयोग के लिए प्रशिक्षण देना आदि भी संसाधन कक्ष-शिक्षक की जिम्मेदारी है।

10. दृष्टिहीन विद्यार्थियों की खोज : समाज में दृष्टिबाधित व्यक्ति अभी उपेक्षित हैं। प्राय: माता-पिता इनके विषय में बताते हुए संकोच करते हैं। इनके शिक्षण के सम्बन्ध में इन्हें कोई जानकारी नहीं होती। संसाधन अध्यापक की जिम्मेदारी है कि वे इन बच्चों की जानकारी का पता लगाएं व अभिभावकों को बच्चों को विद्यालय भेजने के लिए प्रेरित करें।

11. एकीकरण हेतु विद्यालय प्रशासन, शिक्षक एवं गैर-शिक्षक कर्मचारी, विद्यार्थियों व अभिभावकों की तैयारी : संसाधन अध्यापक की यह जिम्मेदारी होती है कि दृष्टिबाधित विद्यार्थी के प्रवेश से पूर्व वह विद्यालय प्रशासन, शिक्षकों व गैर-शिक्षकों को सामान्य जानकारी दे। यही नहीं विद्यालय के सभी विद्यार्थियों व अभिभावकों की भी तैयारी आवश्यक है, जिससे दृष्टिबाधित विद्यार्थी का समायोजन सरलता से हो सके। दृष्टिबाधित विद्यार्थी के साथ पढ़ने वाले उसके सहपाठियों को भी उसकी विशेष आवश्यकताओं से परिचित होना चाहिए, जिससे कक्षा व विद्यालय का वातावरण सौहार्दपूर्ण बने, परिणामस्वरूप

दृष्टिहीन विद्यार्थी विद्यालय के सभी क्रियाकलापों में सक्रिय व समान रूप से भाग ले सके।

12. दृष्टिहीन विद्यार्थी के अभिभावकों व अन्य पारिवारिक सदस्यों के साथ समायोजन हेतु तैयारी : संसाधन अध्यापक दृष्टिहीन विद्यार्थी के परिवार व विद्यालय के बीच एक कड़ी के रूप में कार्य करता है। घर का वातावरण स्वस्थ न होने पर विद्यालय में किये गये सभी प्रयास असफल हो जाएंगे, अत: वह समय-समय पर उन्हें उचित परामर्श देता है। अनेक क्रियाएं, जैसे दैनिक क्रिया कौशल का प्रयोग दृष्टिहीन विद्यार्थी घर पर ही करता है। अत: माता-पिता को उनको सिखाने व करने की उचित जानकारी होनी चाहिए, जिससे दृष्टिहीन बच्चे को घर पर उचित अभ्यास के अवसर मिल सकें।

संसाधन कक्ष में रखे जाने वाले उपकरण :

संसाधन कक्ष के कार्यों से स्पष्ट है कि इस कक्ष में जमा पाठ्यक्रम की क्रियाएं सिखायी जाती हैं, अत: संसाधन कक्ष में जमा पाठ्यक्रम से सम्बन्धित साधन व सामग्री उपलब्ध होती है। संसाधन कक्ष वह कक्ष है, जो विकलांग विद्यार्थियों की विशेष आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए होता है। यह विकलांगता किसी भी प्रकार की हो सकती है। दृष्टिबाधित में दो तरह के विद्यार्थी-पूर्ण दृष्टिहीन व आंशिक दृष्टिवान-सम्मिलित होते हैं, अत: सामग्री भी इन दोनों समूहों की आवश्यकतानुसार उपलब्ध होती है।

1. पूर्ण दृष्टिहीन विद्यार्थियों हेतु : इन विद्यार्थियों को सभी दृश्य सामग्री को स्पर्शीय सामग्री में परिवर्तित करके सिखाया जाता है, जहाँ तक सम्भव हो वास्तविक वस्तुओं के आधार पर भी प्रत्यय ज्ञान कराया जाता है। द्वि-आयामी, त्रि-आयामी शिक्षण सामग्री उपलब्ध करायी जाती है, जिससे उनके प्रत्यय ज्ञान में कोई कमी न रह जाये। बाजार में उपलब्ध अनेक मॉडल का प्रयोग भी दृष्टिहीन विद्यार्थियों के प्रत्यय ज्ञान के लिए संसाधन कक्ष में किया जाता है। जमा पाठ्यक्रम शिक्षण हेतु निम्न साधन अथवा सामग्री संसाधन कक्ष में उपलब्ध होनी चाहिए -

1. ब्रेल स्लेट, कलम (स्टाइलस) व ब्रेल कागज।
2. पाठ्यक्रम के आधार पर ब्रेल पुस्तकें।
3. गणित शिक्षण सामग्री, जैसे गणित शिक्षण किट।
4. अबेकस।
5. टेलर फ्रेम व टाइप्स।

6. ब्रेलर (ब्रेल टाइपराइटर) तथा सामान्य टाइपराइटर।

7. संवेदी प्रशिक्षण उपकरण।

8. ध्वन्यांकित पुस्तकें तथा टेपरिकॉर्डर।

9. थर्मोफार्म मशीन व थर्मोफार्म शीट।

10. ज्यामिति सिखाने हेतु उपकरण।

11. चलिष्णुता हेतु सामग्री, जैसे लम्बी छड़ी।

12. भूगोल व विज्ञान शिक्षण हेतु सामग्री जैसे विभिन्न स्पर्शीय नक्शे व विज्ञान के स्पर्शीय चित्र व मॉडल।

13. पुस्तकों के लिए विभिन्न अलमारियाँ व रैक्स।

14. दृष्टिबाधित विद्यार्थियों के बैठने हेतु मेज व कुर्सियाँ।

15. अध्यापक मेज व कुर्सी।

16. बुलेटिन बोर्ड।

17. खेल-कूद हेतु उपकरण, जैसे शतरंज, ध्वनिपूर्ण सामग्री, जैसे श्रवण गेंद (Auditory Ball) इत्यादि।

18. दृष्टिबाधित बच्चों की पहचान हेतु सामग्री।

19. उच्च उपलब्धि वाले दृष्टिबाधित विद्यार्थियों की केस रिपोर्ट।

20. दृष्टिबाधित हेतु उपयुक्त बोलने वाले सॉफ्टवेयर सहित कम्प्यूटर।

2. न्यून-दृष्टि विद्यार्थियों हेतु : न्यून-दृष्टि बालक अपनी अल्पदृष्टि का अधिकतम प्रयोग शिक्षा के लिए कर सकें, इसका दायित्व संसाधन अध्यापक पर ही होता है, जो इसके प्रशिक्षण के लिए सामग्री व उपकरण संसाधन कक्ष में ही उपलब्ध कराता है। ये साधन अथवा सामग्री व उपकरण निम्न हैं-

1. बड़े छापे (Large Print) वाली पुस्तकें।

2. टंकण मशीन (टाइपराइटर)।

3. टेप रिकॉर्डर।

4. आतिशी शीशे (Magnifying Glasses)।

5. पठन स्टैण्ड (Reading Stand)।

6. फैल्ट पेन (मोटा कलम)।

7. टेबल लैम्प्स।

8. उचित रंग विभिन्नता के साथ शैक्षिक सामग्री गाढ़े नीले व पीले रंग के साथ ।

9. उचित प्रकाश व्यवस्था के लिए विभिन्न खिड़कियाँ व बल्ब/ट्यूब लाइट्स।

10. क्लोज्ड सर्किट टी.वी. (CCTV)।

11. मैग्नीफाइंग सॉफ्टवेयर सहित कम्प्यूटर।

इन सभी उपकरणों के कुशल प्रयोग में न्यून दृष्टिबाधित छात्रों को सक्षम बनाने में संसाधन कक्ष की विशेष भूमिका है, क्योंकि इसी कक्ष में संसाधन अध्यापक न्यून दृष्टिबाधित छात्रों को इन उपकरणों का प्रयोग सिखाता है। अत: हम संक्षेप में कह सकते हैं कि दृष्टिहीनों हेतु एकीकृत शिक्षा योजना में संसाधन कक्ष का बहुत महत्त्व है, जहाँ दृष्टिहीन विद्यार्थियों की विशेष आवश्यकताओं हेतु प्रशिक्षण, सामग्री उपलब्ध होती है। यह संसाधन अध्यापक ही है, जो दृष्टिहीन विद्यार्थी को पूर्ण प्रशिक्षित कर विद्यालय में समायोजित होने में मदद करता है। यह विद्यालय व घर के बीच कड़ी के रूप में कार्य करता है। प्रत्येक दृष्टिजन्य अनुभव को वह दृष्टिहीन विद्यार्थी को उपलब्ध कराकर उसके प्रत्यय दोषों को दूर करता है। दृष्टिहीन विद्यार्थी का विद्यालय में समायोजन संसाधन अध्यापक के प्रयासों पर ही निर्भर करता है। संसाधन कक्ष में उपलब्ध अनुभव दृष्टिहीन विद्यार्थी में आत्मविश्वास पैदा कर उसे स्वावलम्बी बनाते हैं।

अध्याय-5

एकीकृत एवं समावेशित शिक्षा के प्रसार के उपाय

-डॉ. सुषमा शर्मा

सभी के लिए शिक्षा (EFA) के उद्देश्य की प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि विकलांगों की शिक्षा पर समुचित ध्यान दिया जाए। यही कारण है कि समावेशित (Inclusive) शिक्षा आज की आवश्यकता है, जिसे अनदेखा नहीं किया जा सकता। समावेशित शिक्षा एकीकृत शिक्षा का परिशोधित अथवा परिमार्जित रूप है। कुछ शिक्षाविद् समावेशित शिक्षा को एकीकृत शिक्षा का विस्तार (Extension) मानते हैं। जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है, एकीकृत शिक्षा का प्रारम्भ भारत में कल्याण मंत्रालय द्वारा 1974 से माना जाता है। इसे एकीकृत शिक्षा योजना (IEDC) के रूप में केन्द्रीय सरकार के सौ प्रतिशत अनुदान द्वारा प्रारम्भ किया गया। दुर्भाग्य से इस योजना का लाभ भारत के सभी राज्य नहीं उठा सके, परिणामस्वरूप इसके लिए दिये गये अनुदान की राशि 1980 तक घटाकर आधी कर दी गयी। अन्तर्राष्ट्रीय विकलांग वर्ष, 1981 के उपरान्त यह योजना 1982-83 में शिक्षा मंत्रालय को हस्तान्तरित कर दी गई। आज यह योजना मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अन्तर्गत सभी राज्यों में कार्यान्वित है। यह योजना 1987 में सर्वप्रथम संशोधित (Revise) की गयी तदुपरान्त 1992 में। आज यह योजना पुन: संशोधित की जा रही है। बदली हुई परिस्थितियों में विश्व स्तर पर हुए विकास को ध्यान में रखते हुए एकीकृत शिक्षा योजना को समावेशित शिक्षा योजना के रूप में लागू करने की सिफारिश चल रही है। प्रस्तुत अध्याय में एकीकृत व समावेशित शिक्षा के अन्तर को स्पष्ट करते हुए इसके संचालन के विभिन्न पक्षों व उसके लिए प्रयुक्त उपायों की चर्चा की गई है :-

एकीकृत व समावेशित शिक्षा में अन्तर :

एकीकृत अथवा इन-टि-ग्रेट का अर्थ है, पृथक् किये हुए लोगों को पुन: मिश्रित करना अथवा जोड़ना अथवा विकलांग व्यक्तियों को समाज की सदस्यता के समकक्ष लाना।

विशेष आवश्यकता वाले विकलांग विद्यार्थियों के साथ सामान्य विद्यालय में शैक्षिक सुविधाएं व शैक्षिक अवसर उपलब्ध कराना ही 'एकीकृत शिक्षा हैं। समावेशित शिक्षा का अभिप्राय विकलांग विद्यार्थियों को सामान्य विद्यालय की सभी

शैक्षिक गतिविधियों में सम्मिलित करके शैक्षिक अवसर व सुविधाएं उपलब्ध कराना है। समावेशित शिक्षा व एकीकृत शिक्षा के अन्तर को निम्नलिखित आधारों पर समझा जा सकता है:-

1. समावेशित शिक्षा सामाजिक प्रारूप (Social Model) व एकीकृत शिक्षा व्यक्तिगत प्रारूप (Individual Model) पर आधारित है।

2. समावेशित शिक्षा में समाज/विद्यालय से सामंजस्य हेतु परिवर्तन अपेक्षित हैं, वहीं एकीकृत शिक्षा में विकलांग व्यक्ति से विद्यालयानुरूप सामंजस्य हेतु परिवर्तन अपेक्षित हैं।

एकीकृत शिक्षा में विकलांग व्यक्ति से अपेक्षा की जाती है कि वह स्वयं को विद्यालय की आवश्यकतानुसार अपेक्षित सुधार कर सामंजस्य स्थापित करे, जबकि समावेशित शिक्षा में विद्यालय का उत्तरदायित्व है कि वह विकलांग विद्यार्थी की विशेष आवश्यकताओं के अनुरूप पाठ्यक्रम में अनुकूलन करे व विद्यालय के भवन व अन्य सुविधाओं को उसे उपलब्ध कराने हेतु उचित प्रबन्ध करे।

3. समावेशित शिक्षा एक लम्बी अवधि की प्रक्रिया (Long Process) है, जबकि एकीकृत शिक्षा एक न्यूनतम अवधि का उद्देश्य (Short term goal) कहा गया है। एकीकृत शिक्षा के अन्तर्गत विकलांग विद्यार्थियों को सामान्य विद्यालय में शिक्षा के अवसर उपलब्ध कराए जाते हैं। इसे 'Short term goal' कहा गया है, क्योंकि विकलांग विद्यार्थियों को सामान्य विद्यालय में भर्ती कराना कोई अधिक कठिन काम नहीं है। यह एकीकरण आंशिक भी हो सकता है व पूर्ण भी। एकीकरण से इस बात की कोई गारंटी नहीं कि विद्यालय में विकलांग विद्यार्थी कुछ सीख पा रहे हैं अथवा शिक्षा प्राप्त कर पा रहे हैं।

समावेशित शिक्षा एकीकृत शिक्षा का परिमार्जित रूप है। यह एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है, जिसमें विकलांग विद्यार्थियों की भागीदारी को हर स्तर पर सुनिश्चित किया जाता है, जिसमें विकलांग विद्यार्थियों में पूर्णरूप से सम्मिलित होकर समान अवसर का लाभ उठाते हुए समान रूप से भाग ले सकें।

4. समावेशित शिक्षा में विद्यालय की क्रियात्मक भागीदारी आवश्यक है, जबकि एकीकृत शिक्षा में विकलांग व्यक्ति से क्रियात्मक भागीदारी की अधिक अपेक्षा होती है। एकीकृत शिक्षा में विकलांग विद्यार्थी से अपेक्षा की जाती है कि वह विद्यालय के कार्यक्रम व पाठ्यक्रम के लिए स्वयं को समायोजित करे, जबकि समावेशित शिक्षा में विद्यालय के कार्यक्रम व पाठ्यक्रम में इस प्रकार बदलाव

लाया जाता है कि वह विकलांग व्यक्ति के अनुरूप हो सके ताकि वह उसका लाभ उठा सके।

5. समावेशित शिक्षा में विकलांग बच्चे की विद्यालय की प्रत्येक क्रिया में भागीदारी सुनिश्चित की जाती है, जबकि एकीकृत शिक्षा विकलांग बच्चे को प्राय: विद्यालय में प्रवेश कराने तक ही सीमित रह जाती है।

एकीकृत शिक्षा में विकलांग विद्यार्थियों को सामान्य विद्यालय में प्रवेश कराना ही अन्तिम उद्देश्य है। यह एकीकरण आंशिक व सामाजिक भी हो सकता है, जिसमें विकलांग विद्यार्थी केवल खेल अथवा खाने के समय समान वातावरण में सकलांग विद्यार्थियों के साथ भाग लेते हैं।

समावेशित शिक्षा में विकलांग की भागीदारी हर स्तर पर सुनिश्चित की जाती है। यही कारण है कि इसे एक लम्बी अवधि में पूरी होने वाली प्रक्रिया कहा गया है।

6. समावेशित शिक्षा एकीकृत शिक्षा के आधारभूत सिद्धान्त पर ही आधारित है, इसी कारण इस एकीकृत शिक्षा का परिवर्धित अथवा परिमार्जित रूप भी कहा गया है, जो कि विकलांग विद्यार्थियों के लिए समान अवसर व समान सहभागिता को सुनिश्चित करता है।

समावेशित शिक्षा हेतु प्रशासनिक उपाय:

सर्वप्रथम विकलांग बच्चों हेतु समावेशित शिक्षा के लिए उचित सकारात्मक वातावरण का निर्माण करना आवश्यक है। प्राय: देखा गया है कि विकलांगता के प्रति नकारात्मक अभिवृत्तियाँ उनके विद्यालय प्रवेश में प्रमुख बाधाएं हैं, परिणामस्वरूप प्रधानाचार्य इन विद्यार्थियों को विद्यालय में प्रवेश देने से मना कर देते हैं। उनकी धारणा होती है कि ये विकलांग बच्चे उनके विद्यालय की शैक्षिक गतिविधियों को नकारात्मक रूप से प्रभावित करेंगे। सामान्य बच्चों की शिक्षा भी प्रभावित होगी व साथ ही अध्यापकों की जिम्मेदारी भी अनावश्यक रूप से बढ़ जाएगी। दूसरे शब्दों में, सामान्य विद्यालय विकलांग बच्चों की शिक्षा की जिम्मेदारी नहीं ले सकते, अक्सर देखने में आता है कि वे विकलांग अथवा दृष्टिहीन विद्यार्थियों की क्षमताओं से अपरिचित रहने के कारण उनकी विकलांगता को अधिक आँकते हैं। प्रधानाचार्य प्रत्येक विद्यालय की धुरी होता है। यदि वह विकलांग बच्चों की क्षमताओं से परिचित हो तो बिना किसी समस्या के इन बच्चों की विशेष आवश्यकताओं के आधार पर विद्यालय में परिवर्तन लाते हुए शैक्षिक अवसर उपलब्ध कराकर अपने विद्यालय

को आदर्श विद्यालय के रूप में प्रस्तुत कर सकता है। समावेशित विद्यालय में बच्चों में परस्पर सहयोग व सहभागिता की भावनाओं का विकास होता है। अपने विकलांग सहपाठी का सहयोग करते हुए, ऊँच-नीच भूलकर समान अवसरों का लाभ उठाते हुए उनकी क्षमताओं से परिचित होते हैं। विकलांग विद्यार्थी में कोई हीन भावना विकसित नहीं होती है। सामान्य विद्यार्थी विकलांग विद्यार्थी की विशेष आवश्यकताओं व विशेष उपकरणों से परिचित हो जाते हैं। उदाहरण के लिए, ब्रेल लिपि, अनुस्थितिज्ञान व चलिष्णुता आदि से परिचित होने का सामान्य विद्यालय से अच्छा वातावरण भला और क्या हो सकता है? प्राय: देखने में आता है कि सामान्य विद्यार्थी दृष्टिहीन सहपाठी के कारण दृष्टिवान मार्गदर्शक तकनीक (Sighted Guide Technique) व ब्रेल लिपि आदि से खेल-खेल में ही परिचित हो जाते हैं। प्रशासन का सहयोग इस अधिगम को और अधिक सुचारु व क्रमबद्ध बना सकता है। इस संदर्भ में समावेशित शिक्षा के सफल नियोजन के लिए निम्नलिखित उपाय आवश्यक हैं:-

1. प्रशासनिक अधिकारियों हेतु परिचयात्मक (Sensitization) कार्यक्रम- विकलांगता के प्रति नकारात्मक अभिवृत्तियों का प्रमुख कारण विकलांग व्यक्तियों की क्षमताओं से अनभिज्ञ रहना है, अत: आवश्यक है कि प्रशासनिक अधिकारियों को उनकी क्षमताओं के साथ-साथ उनकी विशेष आवश्यकताओं से भी परिचित कराया जाय। विकलांगता अथवा दृष्टिहीनता व्यक्ति की सोचने की शक्ति को इतना प्रभावित नहीं करती कि वह शिक्षा प्राप्त करने योग्य ही न रहे। शिक्षक शिक्षण प्रक्रिया में विशेष आवश्यकता के अनुरूप अनुकूलन कर उन्हें सामान्य विद्यार्थियों की भांति ही शिक्षा प्रदान कर सकते हैं।\हेलन केलर, सूरदास, मिल्टन जैसे अनेकों उदाहरण अतीत में देखे जा सकते हैं, वहीं वर्तमान के जीवन्त उदाहरण व उनके द्वारा किये जाने वाले योगदान उनकी अभिवृत्तियों में यथापरिवर्तन कर उचित वातावरण का निर्माण करने में सहायक होते हैं। विकलांग व्यक्ति को दया की नहीं, समानता की आवश्यकता होती है। उनकी शिक्षा से सम्बन्धित सभी मुद्दों (issues) से उन्हें परिचित कराना चाहिए। समावेशित शिक्षा योजना व P.W.D. अधिनियम आदि की जानकारी भी उन्हें उपलब्ध करानी चाहिए, ताकि वे विकलांग बच्चे के उचित शिक्षार्थ उचित वातावरण व सामग्री उपलब्ध कराते हुए उन्हें समान अवसर प्रदान करा सकें।

2. दृश्य-श्रव्य (Audio-visual) सामग्री द्वारा विद्यालय के कर्मचारियों व विद्यार्थियों हेतु संवेदीकरण (Sensitization) कार्यक्रम का आयोजन - जिस विद्यालय में विकलांग विद्यार्थियों हेतु समावेशित शिक्षा

लागू की जा रही हो, सर्वप्रथम वहाँ उचित वातावरण हेतु सभी शिक्षक, गैर-शिक्षा कर्मियों व सामान्य विद्यार्थियों की तैयारी अति आवश्यक है। प्राय: उनकी अभिवृत्तियाँ नकारात्मक होती हैं, अत: आवश्यकता है कि इस दिशा में सक्रिय कदम उठाए जाएं। दृश्य-श्रव्य सामग्री विकलांग व्यक्ति की क्षमताओं से परिचित कराने का सशक्त माध्यम है। विभिन्न राष्ट्रीय विकलांग संस्थान, सामाजिक न्याय एवं आधिकारिता मंत्रालय, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, मुख्य आयुक्त (नि:शक्त व्यक्ति), भारत सरकार तथा गैर-सरकारी संस्थाओं द्वारा दृश्य-श्रव्य सामग्री विकसित की गयी है। उनको विद्यालय में उपलब्ध कराकर विभिन्न स्तर के कर्मचारियों को प्रशिक्षित करने में उसका उपयोग करना चाहिए।

3. विकलांग बच्चों की खोज हेतु संवेदीकरण शिविर का उपयोग- विकलांग बच्चों की खोज एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। प्राय: माता-पिता बच्चों की विकलांगता को स्वीकार न कर या तो विभिन्न चिकित्सकों के चक्कर में पड़े रहते हैं अथवा स्वयं ही विकलांगता को समस्या मानकर हीन भावना से ग्रसित रहते हैं। अपने पूर्व जन्मों की सजा मानकर विकलांगता को किसी से बताते हुए भी घबराते हैं, विद्यालय भेजना तो बहुत ही दूर की बात है। अत: समाज को झकझोरने के लिए संवेदीकरण शिविर का आयोजन आवश्यक है ताकि विकलांग बच्चों की खोज हो सके, जिससे कोई भी विकलांग बच्चा शिक्षा के अपने मौलिक अधिकार से वंचित न रह सके।

4 संसाधन कक्ष व संसाधन सामग्री विद्यालय के लिए उपलब्ध कराना- प्रशासनिक उपायों में आवश्यक है कि विद्यालय में संसाधन कक्ष उपलब्ध कराया जाए। यह विद्यालय का कोई भी कक्ष या कमरा हो सकता है। आवश्यक है कि विकलांग विद्यार्थियों के लिए यह सुविधाजनक स्थिति में हो, केन्द्र में स्थित हो तो उत्तम होगा। ऐसे कक्ष के उपलब्ध न होने की स्थिति में कक्ष का निर्माण कराना आवश्यक हो जाता है। भवन का प्रत्येक कक्ष विकलांग विद्यार्थियों की पहुँच में होना चाहिए, जिसमें तिपहिया साइकिल (wheel chair) वाले विद्यार्थी व दृष्टिहीन विद्यार्थी बिना किसी समस्या के स्वतन्त्र रूप से आ-जा सकें। विकलांग विद्यार्थी की विशेष आवश्यकताओं के अनुरूप संसाधन कक्ष में संसाधन सामग्री भी उपलब्ध कराना प्रशासन का उत्तरदायित्व है। दृष्टिहीन विद्यार्थियों के लिए ब्रेल सामग्री, स्पर्शीय सामग्री व ध्वन्यांकित पुस्तकें संसाधन कक्ष में होनी चाहिए, वहीं श्रवण विकलांग विद्यार्थियों हेतु दृश्य सामग्री, श्रवण सहायक यंत्र (Hearing Aids), Speech Therapy आदि उपलब्ध कराई जानी आवश्यक है।

5. विकलांग बच्चों हेतु आकलन दल (assessment team) का नियोजन– प्रत्येक विकलांग बच्चा स्वयं में एक इकाई है, उसकी शिक्षा के लिए आवश्यक है कि आकलन दल उसका आकलन (assessment) कर उसके विद्यालय प्रवेश के लिए निर्देश दे। विद्यालय प्रवेश नियम विकलांग बच्चों के लिए लचीले होने चाहिएं। प्रवेश के समय लिया गया गलत निर्णय उनके भावी जीवन के लिए घातक हो सकता है।

6. विकलांग विद्यार्थियों हेतु सह-चिकित्सकीय अधिकरियों (para-medical staff) की सेवाओं को उपलब्ध कराना– विकलांग विद्यार्थियों की प्रायः अनेक आवश्यकताएं होती हैं, जिनकी पूर्ति के लिए सह-चिकित्सकीय सेवाओं को उपलब्ध कराना अति आवश्यक है। यही नहीं सामान्य विद्यार्थियों में प्रायः छिपी हुई विकलांगताएं होती हैं, जैसे अधिगम विकलांगता अथवा श्रवण विकलांगता। सह-चिकित्सकीय अधिकारियों (para-medical staff) द्वारा ऐसे बच्चों की खोज कर अविलम्ब चिकित्सकीय लाभ पहुँचाकर उनके विकास में सकारात्मक भूमिका निभाई जा सकती है।

7. विद्यालय के भौतिक वातावरण में परिवर्तन– दृष्टिहीन व न्यून-दृष्टि विद्यार्थियों की आवश्यकताओं के अनुरूप विद्यालय के भौतिक वातावरण में परिवर्तन नितान्त आवश्यक है, जिससे दृष्टिहीन व न्यून-दृष्टि बालक दृष्टिवान विद्यार्थियों के समान ही प्रत्येक क्रियाविधि में भाग ले सके। विद्यालय भवन के बरामदों व सीढ़ियों में विभिन्न रंगों के फर्श उनकी चलिष्णुता में सहायक हो सकते हैं। इससे दुर्घटनाओं को कम किया जा सकता है। दरवाजों के किनारे नुकीले व लोहे के न हों तो उचित होगा। दरवाजे पूरे खुले होने से भी दुर्घटनाओं को कम किया जा सकता है। आधे खुले-आधे बन्द दरवाजों से भी दुर्घटना की सम्भावना बढ़ जाती है। जगह-जगह स्पर्शीय संकेत लगाए जा सकते हैं, जो उनके लिए दिशा-निर्देश का कार्य कर उनमें आत्मविश्वास पैदा कर सकते हैं।

सूचनापट दृष्टिहीन व न्यून दृष्टिवान की पहुँच में लगाने चाहिएं, जिस पर ब्रेल अथवा रंग विभेद के आधार पर सूचनाएं लगायी जा सकती हैं। खेल का मैदान, पुस्तकालय, विज्ञान कक्ष, भूगोल कक्ष में भी इन विद्यार्थियों की आवश्यकताओं के अनुरूप परिवर्तन लाकर इनकी भागीदारी को सुनिश्चित किया जा सकता है। प्रशासन को इनकी तैयारी साथ-साथ करानी चाहिए।

सामग्री सम्बन्धी उपायः

दृष्टिहीन बच्चों की अनेक विशेष आवश्यकताएं होती हैं, जिनकी पूर्ति हेतु आवश्यक सामग्री जुटाना अध्यापक का ही कार्य है। विशेष बच्चों के लिए जमा पाठ्यक्रम (plus curriculum) का अत्यधिक महत्त्व है, जिसके निम्नलिखित अनेकों घटक (components) हैं :-

1. ब्रेल लेखन व पठन।
2. अनुस्थितिज्ञान एवं चलिष्णुता।
3. संवेदन प्रशिक्षण।
4. दैनिक क्रिया-कौशल विकास।
5. सामाजिक कौशल।
6. विशेष उपकरणों का प्रयोग, जैसे अबेकस, टेलर फ्रेम इत्यादि।
7. भूगोल व विज्ञान से सम्बन्धित शिक्षण सामग्री।

इनमें प्रशिक्षण के लिए उपयुक्त सामग्री को दृष्टिहीन बच्चों को उपलब्ध कराना संसाधन विशेष अध्यापक का उत्तरदायित्व है। संसाधन/विशेष अध्यापक दृष्टिहीन वच्चों को उपर्युक्त जमा पाठ्यक्रम में प्रशिक्षित कर दृष्टिवान के समकक्ष लाने का प्रयास करता है, ताकि वह कक्षा व विद्यालय में होने वाली प्रत्येक क्रियाविधि में भाग ले सके।

संसाधन अध्यापक के अनेक उत्तरदायित्व होते हैं। विकलांग अथवा दृष्टिहीन बच्चे की शीघ्रातिशीघ्र पहचान कर उसे विद्यालय में प्रवेश हेतु तैयार करना व माता-पिता को परामर्श देना प्रमुख है। इससे सम्बन्धित सामग्री जुटाना भी उसकी जिम्मेदारी है। वह न केवल प्रशासनिक अधिकारियों के साथ तालमेल बैठाकर इस सामग्री को उपलब्ध कराने वाली संस्थाओं के विषय में उन्हें जानकारी प्रदान करता है, बल्कि उन्हें उचित अनुमति लेकर अपने विद्यालय में उपलब्ध भी कराता है, जिनके माध्यम से वह दृष्टिहीन विद्यार्थियों को प्रशिक्षण देता है।

माता-पिता एवं अभिभावकों की भूमिकाः

एकीकृत एवं समावेशित शिक्षा में माता-पिता एवं अभिभावकों की भूमिका अति महत्त्वपूर्ण होती है। घर बच्चे के लिए प्रथम पाठशाला कही गयी है। शोध द्वारा पता चला है कि प्रारम्भ के 6 वर्ष इतने महत्त्वपूर्ण हैं कि 90 से 95 प्रतिशत तक बौद्धिक विकास इस अवस्था में हो जाता है। दृष्टिहीन बच्चे के संदर्भ में तो

माता-पिता व अभिभावकों की अहम् भूमिका होती है। दृष्टिहीन बच्चे को न तो तिरस्कृत करना चाहिए और न ही अति संरक्षण देना चाहिए।

दृष्टिहीन बच्चा तो इससे अनभिज्ञ होता है कि वह अन्य से भिन्न है। इस बात का ध्यान तो उसके परिवार के सदस्य माता-पिता, अभिभावक, भाई-बहिन, पड़ोसी दिलाते हैं कि उसका जीवन अति कठिन है, क्योंकि वह देख नहीं सकता/सकती। उनकी चिन्ता दृष्टिहीन बच्चे को सोचने पर विवश करती है कि वह अन्य व्यक्तियों, माता-पिता व भाई-बहिनों से भिन्न है, जो कि उन सभी के लिए चिन्ता का विषय है। उसका कोमल मन व बुद्धि कुछ भी समझ पाने में असमर्थ होती है। माता-पिता विभिन्न चिकित्सकों के पास चक्कर इस आशा से लगाते रहते हैं कि उनका बच्चा दृष्टिहीन नहीं हो सकता, ईश्वर उनके साथ इतना बड़ा अन्याय नहीं कर सकता, बच्चे की दृष्टि वापिस आ जाएगी। इस प्रकार दर-दर की ठोकरें खाते हुए उसके माता-पिता उसके जीवन के प्रारम्भिक वर्षों को व्यर्थ में ही गंवा देते हैं, परिणामस्वरूप दृष्टिहीन बच्चे के जीवन के प्रारम्भिक वर्ष कुछ सीखने की अपेक्षा इसी संघर्ष में गुजर जाते हैं। यदि माता-पिता शिक्षित हैं व उन्हें समयानुसार विशेष शिक्षा व विशिष्ट विद्यालय की जानकारी मिल जाती है तो बच्चे की शिक्षा उचित समय पर प्रारम्भ हो जाती है।

ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में विशेष शिक्षा की सुविधाओं में बहुत अन्तर है। ग्रामीण क्षेत्रों में अभिभावकों को दृष्टिहीन बच्चों को शिक्षा प्राप्ति के लिए शहरी क्षेत्र में भेजना आवश्यक हो जाता है, क्योंकि ज्यादातर विशिष्ट विद्यालय शहरी क्षेत्रों में ही स्थित होते हैं। आवासीय विशिष्ट विद्यालय भेजने से पहले यदि गाँव में समेकित बाल विकास योजना (ICDS) के अन्तर्गत बालवाड़ी लगाई जाती हो तो दृष्टिहीन बच्चों को वहाँ भेजना चाहिए। घर में उसे दैनिक क्रिया-कौशल में प्रशिक्षित करना चाहिए। निकट के आवासीय विशिष्ट विद्यालय से समय-समय पर इस संदर्भ में परामर्श लिया जा सकता है।

बच्चों में अच्छी आदतों का विकास बाल्यावस्था से ही प्रारम्भ हो जाता है। दृष्टिहीन बच्चों को अन्य सामान्य बच्चों के समान ही इन आदतों से परिचित कराकर उनका पालन करने के लिए प्रेरित करना चाहिए, ताकि उनमें अच्छी आदतों का विकास हो सके। विशिष्ट विद्यालय चूँकि प्रायः आवासीय होते हैं, अतः दृष्टिहीन बच्चे को प्रवेश से पूर्व दैनिक क्रिया-कौशल में निपुण होना आवश्यक होता है।

सक्षम/सकलांग सहपाठियों की भूमिका:

विद्यालय में सक्षम/सकलांग सहपाठियों की बहुत ही महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। वे न केवल कक्षा व विद्यालय में स्वस्थ प्रोत्साहन प्रदान करने वाले वातावरण

का निर्माण करते हैं, बल्कि समकक्ष होने के कारण उनके स्वप्रत्यय विकास में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। विद्यालय का वातावरण सौहार्दपूर्ण होने से दृष्टिहीन बच्चे का प्रत्येक अनुभव सुखद हो जाता है। आज के समय में शोध द्वारा सिद्ध हो गया है कि बच्चे प्रौढ़ अध्यापक की तुलना में अपने समकक्ष विद्यार्थियों से ज्यादा सफलता से सीखते हैं। विशेष रूप से कमजोर अथवा पिछड़े बच्चों पर अध्यापक व्यक्तिगत रूप में अधिक ध्यान दे सकते हैं, यदि सामान्य स्तर की समस्याएं उनके सहपाठियों की सहायता से हल हो सकें।

दृष्टिवान सहपाठियों को इस प्रकार तैयार किया जा सकता है कि वे दृष्टिहीन विद्यार्थियों की विशेष आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सक्रिय भूमिका अदा कर सकें। दृष्टिहीनता का एक प्रमुख प्रभाव चलिष्णुता पर पड़ता है। दृष्टिवान, मार्गदर्शक की भांति एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने में दृष्टिहीन विद्यार्थी की सहायता कर सकता है। कक्षा में लिखित सामग्री के संदर्भ में भी दृष्टिवान सहपाठी मददगार हो सकता है। श्यामपट पर लिखित सामग्री की एक प्रतिलिपि बनाकर दृष्टिहीन विद्यार्थी को देकर उसे ब्रेलर अथवा ब्रेल स्लेट से लिखने की कठिनाई से बचा सकते हैं। कक्षा में ब्रेलर अथवा ब्रेल स्लेट का प्रयोग दृष्टिहीन विद्यार्थी के लिए कठिन तो है ही, वहीं वह कक्षा की शान्ति को भी भंग कर सकता है।

दृष्टिवान सहपाठी दृष्टिहीन विद्यार्थियों को वाचक की सुविधा भी प्रदान कर सकते हैं। दृष्टिहीन विद्यार्थी के लिए जोर से पढ़ना उसके स्वयं के लिए भी लाभकारी होता है। दृष्टिहीन विद्यार्थी को आस-पास के वातावरण की जानकारी देना भी दृष्टिवान सहपाठी का उत्तरदायित्व है। दृष्टिवान सहपाठी एकीकृत/समावेशित विद्यालय में शिक्षा ग्रहण करते हुए अनके मानवीय मूल्यों को विकसित करने में सक्षम हो जाते हैं, जैसे एक-दूसरे की मदद करना, सहन-शक्ति, समान भागीदारी व दूसरों की आवश्यकताओं का आदर करना आदि।

नियमित अध्यापकों की भूमिका एवं उत्तरदायित्व:

एकीकृत व समावेशित शिक्षा में नियमित अध्यापकों की सक्रिय भूमिका होती है। उन्हें विशेष विद्यार्थी के संदर्भ में विशेष अध्यापक के सम्पर्क में रहना होता है, ताकि विद्यार्थी पढ़ाए जाने वाले विषय को आत्मसात् कर सके न कि उसमें आने वाली समस्याओं से अकेला जूझता रहे। दृष्टिहीन विद्यार्थी को कक्षा में अन्य सामान्य विद्यार्थियों की भांति समान रूप से सम्मिलित होना चाहिए। सर्वप्रथम कक्षा का वातावरण सौहार्दपूर्ण हो, जहाँ किसी भी विद्यार्थी के साथ विकलांगता के कारण भेद न किया जाए। जहाँ तक सम्भव हो सके नियमित अध्यापक द्वारा

कक्षा में चलने वाली प्रत्येक क्रिया में दृष्टिहीन विद्यार्थी की भागीदारी सुनिश्चित की जानी चाहिए। उसके बैठने का स्थान इस प्रकार सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि उसे आने-जाने की असुविधा न हो व बाहर का शोर भी उसे प्रभावित न करता हो। नियमित अध्यापक को कक्षा में पढ़ने वाले दृष्टिहीन विद्यार्थी की विशेष आवश्यकताओं से परिचित होना चाहिए। उसके प्रयोग में लाए जाने वाले उपकरणों की भी जानकारी उसे होनी चाहिए। उसकी उपलब्धि का आकलन कैसा होगा? उसकी मूलभूत समस्याएं अथवा कठिनाइयाँ क्या हो सकती हैं? ये अनेक प्रश्न नियमित अध्यापक को परेशान कर सकते हैं। उसे विशेष अध्यापक से इन पर चर्चा कर लेनी चाहिए अथवा इन बच्चों से सम्बन्धित साहित्य अथवा सामग्री विशेष अध्यापक से प्राप्त कर पढ़ लेनी चाहिए, जिससे उसके पूर्वाग्रह समाप्त हो जाएं।

नियमित अध्यापक को दृष्टिहीन विद्यार्थियों द्वारा प्रयोग में लाए जाने वाले उपकरणों की जानकारी के साथ-साथ इन बच्चों द्वारा प्रयोग में लाई जाने वाली द्वि-आयामी और त्रि-आयामी स्पर्शीय सामग्री व स्पर्शीय मॉडल आवश्यकतानुसार कक्षा में उपलब्ध कराने चाहिएं, जिनके माध्यम से दृष्टिहीन के साथ-साथ दृष्टिवान विद्यार्थी भी लाभान्वित हो सकेंगे।

विभिन्न क्रियाकलापों में भाग लेते समय दृष्टिहीन विद्यार्थियों की भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए नियमित अध्यापक को विशिष्ट अध्यापक से परामर्श लेना चाहिए, ताकि दृष्टिहीन विद्यार्थी अर्थपूर्ण क्रिया कर अपने अधिगम को स्थायी बना सके व साथ-साथ सामूहिक क्रिया में अपनी बराबर की भागीदारी सुनिश्चित कर सके। ये अनुभव उसमें आत्मविश्वास की वृद्धि करेंगे व परिणामस्वरूप उसमें स्वस्थ स्वप्रत्यय का विकास भी होगा।

कक्षा में किसी प्रकार की फर्नीचर आदि द्वारा रुकावटें उत्पन्न न हों, इसका समुचित ध्यान रखना नियमित अध्यापक का दायित्व है। दृष्टिहीन विद्यार्थी के आने-जाने में किसी प्रकार की रुकावट नहीं होनी चाहिए। प्रारम्भ में उसके सहपाठियों में से एक-एक की जिम्मेदारी लगानी चाहिए कि वे उसे साथ लेकर विद्यालय में एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाएं, विशेष रूप से विज्ञान कक्ष, खेल का मैदान, पानी पीने का स्थान, शौच आदि का स्थान इत्यादि। धीरे-धीरे दृष्टिहीन में स्वतन्त्र रूप से एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने की योग्यता का विकास करना चाहिए। उचित प्रशिक्षण प्राप्त कर दृष्टिहीन विद्यार्थी प्रायः विद्यालय में स्वतन्त्र रूप में घूम-फिर सकते हैं।

विद्यालय में होने वाले सभी आयोजनों में दृष्टिहीन विद्यार्थियों को भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। विद्यालय में श्यामपट कार्य प्राथमिक कक्षाओं

में अधिक होता है। श्यामपट पर अध्यापक को बोल-बोल कर लिखना चाहिए ताकि दृष्टिहीन विद्यार्थी यदि लिखना चाहे तो लिख सके। नियमित अध्यापकों को यह जानकारी होनी चाहिए कि ब्रेल लेखन एक कठिन व धीरे-धीरे चलने वाली प्रक्रिया है। अतः दृष्टिहीन को लिखने में अधिक समय लग सकता है। यदि दृष्टिहीन ब्रेल लिखने में कठिनाई महसूस करे तो दृष्टिवान विद्यार्थियों की मदद ली जा सकती है। दृश्य सामग्री के प्रयोग के समय नियमित अध्यापक को विशेष अध्यापक की मदद लेने में संकोच नहीं करना चाहिए, जिससे दृष्टिहीन विद्यार्थियों की कक्षा में भागीदारी हो सके और वे भी विषय को अच्छी प्रकार समझ सकें।

आंगनवाड़ी-बालवाड़ी कार्यकर्ताओं की भूमिका:

गाँवों में दृष्टिहीन शिशुओं हेतु आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं (केवल महिला कार्यकर्ता) द्वारा बालवाड़ी की व्यवस्था की जाती है, जहाँ पूर्व प्राथमिक शिक्षा के साथ-साथ विटामिन युक्त भोजन वितरित किया जाता है। महिला व बाल विकास मंत्रालय द्वारा चलाई जाने वाली इस योजना में आंगनवाड़ी कार्यकर्ता युवा गर्भवती महिलाओं को भी सेवाएं प्रदान करती हैं।

दृष्टिहीन बच्चों के संदर्भ में आवश्यक है कि आंगनवाड़ी कार्यकर्ता अन्य दृष्टिवान बच्चों में इन दृष्टिहीन बच्चों के प्रति उचित अभिवृत्तियों के विकास के लिए उचित वातावरण का निर्माण करें, जिससे ये बच्चे बालवाड़ी की प्रत्येक क्रिया में समान रूप से भाग ले सकें। प्रायः यहाँ खेल द्वारा अथवा बोलकर शिक्षा प्रदान की जाती है, जिसमें दृष्टिहीन भी समान रूप से भाग ले सकते हैं। गिनती, भाषा ज्ञान व स्वास्थ्य शिक्षा की यहाँ मुख्य रूप से शिक्षा प्रदान की जाती है। खेल द्वारा शिक्षा प्रदान करने से सभी विद्यार्थी लाभान्वित होते हैं।

आंगनवाड़ी कार्यकर्ता को दृष्टिहीन बच्चों के माता-पिता व परिवार को भी परामर्श सेवाएं प्रदान करनी आवश्यक होती हैं। प्रायः माता-पिता, विशेष रूप से गाँवों में मौलवी, पण्डित व ढोंगी चिकित्सकों के चक्कर में पड़कर बच्चे के जीवन के महत्त्वपूर्ण वर्ष बर्बाद कर देते हैं। दृष्टिहीन बच्चे की प्रारम्भिक तैयारी कराकर तथा माता-पिता को उचित निर्देश देकर वे बच्चे के जीवन को एक सुनिश्चित दिशा प्रदान कर सकती हैं। समाज कल्याण विभाग द्वारा प्रत्येक जिले में कार्यरत विशेष विद्यालय इन बच्चों के लिए शिक्षा सुविधाएं उपलब्ध कराते हैं। वह एक कड़ी के रूप के कार्य कर उचित समय पर इन विद्यालयों में इन बच्चों की भर्ती सुनिश्चित कर सकती हैं। समयानुसार विद्यालय में प्रवेश कर दृष्टिहीन विद्यार्थी शिक्षा का लाभ उठा सकते हैं। प्रायः देखने में आता है कि गाँव के दृष्टिहीन विद्यार्थी

गाँवों से शहरों में आकर विशिष्ट विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त कर गाँव के लिए एक आदर्श स्थापित करते हैं।

इस प्रकार इक्कीसवीं शताब्दी समावेशित शिक्षा की सुविधाएं उपलब्ध कराकर दृष्टिवान व दृष्टिहीन की दूरी पाटने की दिशा में कृतसंकल्प है। विश्व भर में समावेशित शिक्षा के लिए प्रयास जारी हैं। आदर्श समाज में सभी की भागीदारी होनी आवश्यक है। विकलांगता के आधार पर विभेद करना मानव अधिकारों का हनन है, अतः आवश्यक है कि विद्यालय की समावेशित शिक्षा के आधार पर समावेशित समाज का निर्माण किया जाए, जहाँ प्रत्येक व्यक्ति अपने मानव अधिकारों का लाभ उठाकर समाज, देश व विश्व निर्माण में अपनी भागीदारी सुनिश्चित कर सके।

अध्याय-6

पाठ्यक्रम

–डॉ. आर.एस. चौहान

प्रस्तुत अध्याय में पाठ्यक्रम के अर्थ तथा परिभाषा के साथ-साथ पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धान्त, विभिन्न उपागम (approaches) जमा-पाठ्यक्रम के अन्तर्गत सम्मिलित निपुणताओं की चर्चा की गई है।

अर्थ एवं परिभाषा:-

पाठ्यक्रम का पारम्परिक दृष्टिकोण संकुचित था। इसे शिक्षण के लिए उपयोगी समझे जाने वाले कुछ विषयों तक सीमित माना जाता था। इसके विपरीत पाठ्यक्रम की आधुनिक अवधारणा बहुत व्यापक है। वर्तमान काल में इसके अन्तर्गत उन समस्त संगठित तथा असंगठित क्रियाओं व अनुभवों को रखा जाता है, जिन्हें विद्यार्थी विद्यालय के परिसर और अपनी कक्षाओं में सीखते एवं प्राप्त करते हैं।

प्रत्येक राष्ट्र अपनी राष्ट्रीय तथा स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार शिक्षा नीति अथवा नीतियाँ निर्धारित करता है। इन नीतियों के कुछ विशेष उद्देश्य होते हैं। पाठ्यक्रम इन उद्देश्यों की पूर्ति का माध्यम बनता है। इसलिए उपयुक्त पाठ्यक्रम के निर्माण के लिए आवश्यक है कि शिक्षा के लक्ष्यों और उद्देश्यों को यथासम्भव स्पष्ट रूप से परिभाषित किया जाए।

प्रत्येक शिक्षाशास्त्री के सम्मुख उसके अपने परिवेश में निर्धारित शिक्षा उद्देश्य होते हैं। वह इन्हीं के अनुसार पाठ्यक्रम को परिभाषित करता है। यही कारण है कि इसकी अनेक परिभाषाएं मिलती हैं। इनमें से कुछ इस प्रकार हैं :-

(1) पाठ्यक्रम के विषय में कर्निंघम का कथन है, "कलाकार (शिक्षक) के हाथ में यह (पाठ्यक्रम) एक साधन है, जिससे वह पदार्थ (शिक्षार्थी) को अपने आदर्श (उद्देश्य) के अनुसार अपने स्टूडियो (स्कूल) में ढाल सके।"

आज के संदर्भ में इस परिभाषा को स्वीकार करना सम्भवत: कठिन होगा क्योंकि पाठ्यक्रम निर्माण में आजकल शिक्षकों की भूमिका अत्यधिक सीमित होती है।

(2) फ्रोबेल- "पाठ्यक्रम को मानव जाति के सम्पूर्ण ज्ञान तथा अनुभवों का सार समझना चाहिए।"

(3) मुनरो- "पाठ्यक्रम में वे सब क्रियाएं सम्मिलित हैं, जिनका हम शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए विद्यालय में उपयोग करते हैं।"

(4) माध्यमिक शिक्षा आयोग- "पाठ्यक्रम का अर्थ रूढ़िवादी ढंग से पढ़ाये जाने वाले बौद्धिक विषयों से नहीं है परन्तु उसके अन्दर वे सभी क्रियाकलाप आ जाते हैं जो बालकों को कक्षा के बाहर तथा भीतर प्राप्त होते हैं।" (डॉ. आर.ए. शर्मा, पाठ्यक्रम विकास, 1994)।

(5) पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में स्मिथ का कथन है- "A Sequence of Potential Experiences is Set up in the School for the purpose of Disciplining Children and Youth in group Ways of thinking and acting." (The International Encyclopedia of Education, Vol. 2-C, 1985).

अर्थात् पाठ्यक्रम विद्यालय में निर्धारित सम्भावित अनुभवों के उस क्रम को कहते हैं जिसका उद्देश्य बालकों तथा वयस्कों को सामूहिक रूप से विचार करने तथा कार्य करने के लिए अनुशासित करना होता है।

ऊपर दी गयी पाठ्यक्रम की विभिन्न परिभाषाओं से दो स्पष्ट तथ्य उभरते हैं :-

(1) अध्ययन और शिक्षण में सुगमता की दृष्टि से अधिकतर विद्वान पाठ्यक्रम को आवश्यक मानते हैं।

(2) पाठ्यक्रम की किसी सर्वमान्य परिभाषा को ढूँढना असम्भव नहीं तो बहुत कठिन अवश्य है।

पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धान्त :-

पाठ्यक्रम निर्माण का काम काफी मुश्किल भरा होता है। इस काम के लिए नियुक्त व्यक्ति या समिति को अनेक सिद्धान्तों तथा कारकों को ध्यान में रखना पड़ता है। इसके लिए आवश्यक कुछ सिद्धान्तों की चर्चा यहाँ संक्षेप में की जा रही है:

(1) दार्शनिक सिद्धान्त - प्रत्येक समाज या राष्ट्र का एक विशिष्ट चरित्र होता है जो उसके दर्शन का प्रतिबिम्ब बनता है। दर्शन के अन्तर्गत सम्बद्ध समाज के नैतिक, सामाजिक, पारिवारिक मूल्य, उच्च मानवीय गुण जैसे सच्चाई, न्यायप्रियता व सहिष्णुता के प्रति आस्था और राजनीतिक तथा आर्थिक विश्वास एवं विचार सम्मिलित हैं। इस सम्मिश्रण में विभिन्न विचार, जीवन-मूल्य तथा प्रेरक विश्वास घनिष्ट रूप से घुले-मिले रहते हैं। किस राष्ट्र में इनमें से किन अथवा किस आयाम

पर कितना बल दिया जाता है, इसे समझने के लिए गहन अध्ययन तथा विश्लेषण की जरूरत पड़ती है।

दर्शन शिक्षा के उद्देश्य एवं लक्ष्य निर्धारित करता है और उद्देश्यों तथा लक्ष्यों की प्राप्ति सुनिश्चित करने के लिए पाठ्यक्रम माध्यम बनता है। यही कारण है कि प्रत्येक देश के पाठ्यक्रम में अन्तर पाया जाता है। वर्तमान भारतीय परिवेश में धर्मनिरपेक्षता, जनतन्त्र, अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता इत्यादि पर एक प्रकार की सहमति है। साथ-ही-साथ, अब महिलाओं के अधिकार तथा दृष्टिहीनों समेत अन्य विकलांगों के अधिकारों के प्रति भी कुछ-कुछ सहमति बन रही है। छानबीन करने पर आप इन विन्दुओं से सम्बद्ध सामग्री हमारे पाठ्यक्रम में देख सकते हैं।

इस विश्लेषण से शिक्षा पर दर्शन के प्रभाव और अन्ततः पाठ्यक्रम निर्धारण में इसका महत्व स्पष्ट हो जाता है।

दार्शनिक सिद्धान्त शिक्षाशास्त्रियों को पाठ्यक्रम बनाते समय शिक्षा के उद्देश्य व लक्ष्य निर्धारण, उन उद्देश्यों और लक्ष्यों के मध्य पारस्परिक सम्बन्ध समझने और अन्ततः उपयुक्त शिक्षण-सामग्री संजोने तथा अनुकूल विधियों का सुझाव देने में सहायक सिद्ध होता है। (जॉन एफकर द्वारा सम्पादित "Changing the Curriculum", 1969 के अन्तर्गत पॉल एच. हर्ष्ट का "The Contribution of the Philosophy to the study of the Curriculum" लेख)।

(2) समाजशास्त्रीय सिद्धान्त- समाजशास्त्र के दृष्टिकोण से शिक्षा वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से समाज की सांस्कृतिक धरोहर को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाया जाता है। स्वाधीनता पूर्व डॉ. जाकिर हुसैन की अध्यक्षता में गठित शिक्षा समिति के प्रतिवेदन में कहा गया है कि अपने पूर्वजों के विश्वास तथा मूल्यों को जीवित रखने और अगली पीढ़ियों तक पहुँचाने के लिए शिक्षा सशक्त माध्यम है।

संस्कृति में समाज विशेष की सम्पूर्ण जीवनशैली सम्मिलित होती है। समाजशास्त्री संस्कृति को व्यापक दृष्टिकोण से देखते हैं और इसमें मानव-निर्मित तथा उसके द्वारा सीखी गयी प्रत्येक वस्तु और रीति-रिवाज को सम्मिलित करते हैं। सांस्कृतिक संप्रेषण समाज को अनावश्यक उथल-पुथल से बचाता है तथा उसे प्रगति के लिए आवश्यक स्थिरता प्रदान करता है।

प्रत्येक समाज की संस्कृति में क्षेत्रीय तथा जातीय आधार पर उपसंस्कृतियाँ अथवा संस्कृति की उपधाराएं स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती हैं। एक सीमा तक वे

स्वयं को मुख्य संस्कृति का अविच्छिन्न अंग बना लेती हैं तो अपने कुछ आयामों को स्पष्ट रूप से पृथक् भी रखती हैं। भारतीय संस्कृति इसका एक अनोखा उदाहरण है।

सम्पूर्ण संस्कृति को अगली पीढ़ियों तक पहुँचाना कठिन होता है इसलिए उसके श्रेष्ठ तथा चयनित अंशों को विद्यालय पाठ्यक्रम के माध्यम से संप्रेषित किया जाता है। यही कारण है कि स्कूल पाठ्यक्रम में समाज के प्रसिद्ध त्यौहारों, रीति-रिवाजों और अग्रणीय सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक नेताओं के विचारों और जीवन-मूल्यों से सम्बद्ध सामग्री शामिल की जाती है। अतः पाठ्यक्रम निर्माण में समाजशास्त्रीय सिद्धान्त भी महत्वपूर्ण होता है। (मल्ला रेड्डी मामिदी तथा एस. रवि शंकर, "Curriculum Development and Educational Technology" 1981)।

(3) मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त- बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में शिक्षा मनोविज्ञान तथा बाल मनोविज्ञान का तेजी से विकास हुआ जो अब मनोविज्ञान की प्रमुख शाखाओं के रूप में विकसित हो चुकी है। साथ ही यह भी अनुभव किया जाने लगा कि बालकों को सिखाते समय न केवल शिक्षा एवं बाल मनोविज्ञान के सिद्धान्तों का ध्यान रखा जाना चाहिए बल्कि मनोविज्ञान के सामान्य सिद्धान्तों तथा तकनीकों का भी अधिगम-शिक्षण प्रक्रिया में प्रयोग करना आवश्यक है। बालकों को किस आयु में क्या सिखाया जाए तथा चयनित सामग्री को किस क्रम तथा कैसी भाषा में संजोया जाए ताकि बालकों के सम्बद्ध समूह को सीखने में सरलता हो और अधिकतम लाभ हो सके, इसके लिए भी मनोविज्ञान की तकनीकों एवं सिद्धान्तों का उपयोग जरूरी है। मनोविज्ञान पाठ्यक्रम प्रस्तुति के साथ-साथ उसके समय निर्धारण में भी सहायक सिद्ध होता है। बालकों की एकाग्रता सम्बन्धी सीमाओं को समझकर विद्यालय में कालांशों की अवधि निश्चित की जाती है। मनोविज्ञान की मान्यताओं के अनुसार ही ऐसे विषय प्रातःकाल अथवा प्रारम्भ में रखे जाते हैं जो अपेक्षाकृत अधिक कठिन हों। पाठ्यक्रम के तत्त्वों को ज्यादा-से-ज्यादा अधिगम स्थानान्तरण योग्य बनाने के लिए भी मनोविज्ञान ही हमारी सहायता करता है। अतः पाठ्यक्रम निर्माण में मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त को ध्यान में रखना वांछनीय भी है और अनिवार्य भी। (मल्ला रेड्डी मामिदी तथा एस. रवि शंकर "Curriculum Development and Educational Technology", 1989)।

(4) शिक्षा शास्त्रीय सिद्धान्त- स्वयं शिक्षाशास्त्र (Pedagogy) के सिद्धान्तों तथा तकनीकों पर बीसवीं शताब्दी में काफी शोध किया गया है। बालकों के अधिगम को सरल व सफल बनाने के लिए शैक्षिक अथवा शिक्षा शास्त्रीय सिद्धान्त को ध्यान में रखना पाठ्यक्रम के निमार्ण में अनिवार्य है। उदाहरण के

लिए किसी सामग्री को भाषण विधि से भी पढ़ाया जा सकता है और कहानी विधि से भी, परन्तु यदि यह सामग्री दूसरी या तीसरी कक्षा के बालकों को पढ़ाई जानी हो तो इसकी प्रस्तुति में कहानी विधि को अपनाना अधिक श्रेयस्कर होगा। पाठ्यक्रम निर्माण करते समय हम किस स्तर पर कौन-सी विधि को अपनाएं, इसके लिए शिक्षाशास्त्र हमारी मदद करता है। अतः इस सिद्धान्त को ध्यान में रखना भी उत्तम पाठ्यक्रम के लिए जरूरी है।

दृष्टिबाधितों के लिए पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धान्त:-

विद्यालय स्तर पर शुरू से ही आजकल दृष्टिबाधितों के आवासीय विद्यालयों में भी प्रायः सरकार द्वारा स्वीकृत पाठ्यक्रम का ही प्रयोग किया जाता है। एकीकृत शिक्षा कार्यक्रमों में तो ऐसा करना सामान्य एवं अनिवार्य है ही।

यह पाठ्यक्रम दृष्टिवान बालकों की जरूरतों को ध्यान में रखते हुए बनाए जाते हैं। फलतः इनमें ऐसे अनेक तत्त्व अथवा अंश होते हैं जो दृष्टिबाधितों को समान शैक्षिक अनुभव देने में बाधक बन जाते हैं। पाठ्यक्रम में ऐसे बाधक तत्त्वों/अंशों को दृष्टिबाधितों के लिए उपयुक्त बनाने के उद्देश्य से पाठ्यक्रम में कुछ परिवर्तनों की आवश्यकता पड़ती है। इसके कुछ नियम हैं। इन्हीं को "दृष्टिबाधितों के लिए पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धान्त" कहा जाता है। लेखक के विचार से इस प्रक्रिया को 'दृष्टिबाधितों के लिए पाठ्यक्रम अनुकूलन के नियम' कहना अधिक उपयुक्त होगा। इनकी चर्चा निम्नलिखित अनुच्छेदों में की जा रही है:-

(1) प्रतिस्थापन (Substitution)- प्राथमिक स्तर पर पाठ्यक्रम में दृष्टिमूलक विचारों की भरमार होती है। इन्हें दृष्टिबाधा की सीमाओं के कारण ऐसे बालकों के लिए समझना कठिन हो जाता है। उनके लिए संशोधन से समझना भी जब कठिन/असम्भव हो जाए तो प्रतिस्थापन की सहायता लेनी पड़ती है। इसका अभिप्राय है कि पाठ्यक्रम में उपलब्ध पाठ के स्थान पर दृष्टिबाधित बालकों के लिए किसी अन्य पाठ की व्यवस्था करना जो यथासम्भव पाठ्यक्रम में सम्मिलित पाठ जैसा हो तथा उसके जैसे अथवा उससे मिलते-जुलते अनुभव प्रदान कर सकें।

(2) रूपान्तरण (Modification)- पाठ में छोटे-मोटे संशोधन करना रूपान्तरण कहलाता है। पाठ में कई बार लिखा रहता है- "ऊपर दिये चित्र को देखकर बताओ कि उसमें कुछ व्यक्ति या पशु क्या कर रहे हैं?" ब्रेल पुस्तक में चित्र शामिल करना लगभग असम्भव है। अतः दृष्टिबाधित छात्रों के लिए यह वाक्य भ्रामक है। इस वाक्य को उन छात्रों के लिए संशोधित किया जा सकता है अथवा चित्र का वर्णन किया जा सकता है। यह रूपान्तरण का उदाहरण होगा।

(3) हटाना (Omission)- इसका अभिप्राय यह है कि जब प्रतिस्थापन, रूपान्तरण अथवा द्विगुणित में से किसी भी नियम का प्रयोग सम्भव न हो तो उस पाठ को छोड़ देना। प्राथमिक स्तर पर कभी-कभी इसकी आवश्यकता पड़ जाती है।

(N.C.E.R.T., "Source Book for Teachers of Visually Impaired", 1987)।

(4) द्विगुणित (Duplication)- द्विगुणित नियम का अभिप्राय द्विगुणन तक सीमित नहीं है। अनेक बार छपी हुई पाठ्य-सामग्री के स्थान पर ब्रेल अथवा दीर्घाक्षर (Large Print) सामग्री दृष्टिबाधित बालकों के लिए सुलभ नहीं होती। उस स्थिति में अध्यापक को उस पाठ्य-सामग्री की ब्रेल अथवा दीर्घाक्षर प्रतियाँ, स्वयं बनानी पड़ती हैं अथवा वह किसी और व्यक्ति/व्यक्तियों की सहायता से बनवाता है। यह द्विगुणन का उदाहरण हुआ।

इसके अतिरिक्त द्विगुणित का अभिप्राय वास्तविक अनुभव न दे पाने की स्थिति में उसके स्थान पर दृष्टिबाधित बालक को अनुलिपिक (उससे मिलता-जुलता) अनुभव प्रदान करने से भी होता है।

पाठ्यक्रम निर्माण के विभिन्न उपागम (Approaches):-

क. मध्यस्थ अधिगम का महत्व: सीमित दृष्टि अथवा दृष्टि के अभाव तथा कुछ एक अन्य कारणों से दृष्टिबाधित बालकों को अनेक शैक्षिक अनुभव शिक्षक के माध्यम से प्राप्त होते हैं। इस प्रकार के अधिगम को 'मध्यस्थ अधिगम' का नाम दिया जाता है। यहाँ यह स्पष्ट करना उचित होगा कि मध्यस्थ अधिगम की आवश्यकता दृष्टिवान छात्रों को भी पड़ती है, यद्यपि उसकी मात्रा अपेक्षाकृत कम होती है। दृष्टिबाधितों को इसकी आवश्यकता प्राय: तथा अधिक मात्रा में पड़ती है। इस प्रकार के अधिगम की गुणवत्ता एवं सफलता की मात्रा माध्यम (शिक्षक अथवा माता-पिता) द्वारा प्रयुक्त तरीकों, सहनशीलता तथा आवश्यकतानुसार पुनरावृत्ति का प्रयोग तथा बहुसंवेदी दृष्टिकोण अपनाने पर निर्भर करती है। यह दृष्टिबाधित छात्रों की शिक्षा की धुरी है। अत: इसका महत्व स्वयंसिद्ध है।

ख. दृष्टिमूलक प्रत्ययों को अदृष्टिमूलक अनुभवों में परिवर्तित करने की प्रक्रिया व सिद्धान्त:- दृष्टिमूलक प्रत्यय वे होते हैं, जिनकी जानकारी अथवा अधिकतम अनुभव प्राथमिक रूप में दृष्टि पर निर्भर करता है। उदाहरण के लिए सूरज, चाँद, उड़ान भरते हुए पक्षी तथा वायुयान इत्यादि। दृष्टिबाधित छात्रों

को भी निर्धारित पाठ्यक्रम का अध्ययन करना पड़ता है तथा विद्यालय के पश्चात् और शिक्षा के दौरान उन्हें भी समाज में रहते हुए अनेक दृष्टिमूलक प्रत्ययों का प्रयोग पारस्परकि व्यवहार में करना पड़ता है। इसलिए ऐसे प्रत्ययों की यथा सम्भव जानकारी व अनुभत्र उन्हें देना अनिवार्य है। इस उद्देश्य को निम्नलिखित तरीकों से प्राप्त किया जा सकता है:-

(1) अवशिष्ट दृष्टि का प्रयोग- आजकल विकसित चिकित्सा की सेवाओं के कारण अनेक दृष्टिबाधित वालक कुछ-न-कुछ देख सकते हैं। उनकी अवशिष्ट दृष्टि का अधिकतम प्रयोग किया जाना चाहिए। यद्यपि ऐसे विद्यार्थियों को दृष्टिमूलक प्रत्ययों को समझने के लिए काफी पास लाना पड़ सकता है या उनके (प्रत्ययों के) वड़े रूप दिखाने पड़ सकते हैं, परन्तु इस प्रक्रिया से ऐसे विद्यार्थियों को बहुत लाभ होगा और वे अवशिष्ट दृष्टि तथा अन्य ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से दृष्टिमूलक प्रत्ययों के विषय में अनुभव प्राप्त कर सकेंगे।

(2) यथासम्भव वास्तविक वस्तुओं का प्रयोग- थोड़ा प्रयास करने, परन्तु बिना किसी अतिरिक्त व्यय अथवा बहुत कम व्यय पर, वास्तविक वस्तुओं का प्रयोग प्रत्यय निर्माण के लिए वांछनीय होगा। कार, ट्रक, बस, लैटर बॉक्स, विभिन्न प्रकार के पेड़-पौधे व फूल हमारे परिवेश में आसानी से मिल जाते हैं। इनकी अनुकृतियाँ दिखाने के बजाय दृष्टिबाधित बालकों को एक-दो बार निश्चित रूप से इनका वास्तविक अनुभव करवाना आवश्यक है क्योंकि दृष्टिवान बालकों की तरह उनके लिए आकस्मिक अधिगम (Incidental Learning) के अवसर बहुत सीमित होते हैं।

(3) अनुकृतियों का प्रयोग- दूरस्थ, बहुत छोटी या बड़ी अथवा खतरनाक वस्तुओं के लिए अनुकृतियों का प्रयोग किया जाना चाहिए। स्थिर अनुकृतियों (Stationary Models) की अपेक्षा प्रत्यय निर्माण के लिए अलग-अलग हिस्सों में बँटने वाली अनुकृतियों (Detachable Models) तथा सक्रिय अनुकृतियों (Functional Models) का उपयोग करना अधिक उत्तम होगा।

(4) मृत पशु-पक्षियों का प्रयोग- शेर, चीता या चील, बाज अथवा मगरमच्छ इत्यदि का वास्तविक अनुभव करवाना दृष्टिबाधित बालक के लिए असम्भव है, किन्तु मृत्यु के वाद इन प्राणियों के सुरक्षित ढाँचों को दृष्टि विकलांग बालक/बालिका सफलतापूर्वक और अपनी सुविधानुसार देख सकते हैं।

(5) बहुसंवेदी (Multisensory) दृष्टिकोण अपनाना- किसी भी वस्तु/प्राणी का अनुभव देते समय अवशिष्ट दृष्टि समेत अधिक-से-अधिक अवशिष्ट

ज्ञानेन्द्रियों का प्रयोग करवाएं। उदाहरण के लिए गेंदे के पौधे/फूल का प्रत्यय विकसित करने के लिए दृष्टिबाधित बालक को उसे छूने, सूंघने तथा अवशिष्ट दृष्टि होने पर उसे निकट से देखने और रंग पहचानने एवं दोनों हाथों की सहायता से उसका आकार, तने की मोटाई, फूल की कोमलता इत्यादि का अनुभव प्राप्त करने के लिए प्रेरित करें।

(6) मौखिक अनुदेशन तथा प्रश्न- अध्यापक वस्तुओं के पूर्णतया दृष्टिमूलक गुणों के विषय में आवश्यक जिज्ञासा उत्पन्न करने के बाद मौखिक जानकारी दे सकते हैं। अन्त में यह जानने के लिए कि बालक कितना समझ पाए हैं अथवा किन बिन्दुओं पर अभी वे अस्पष्ट हैं इसके लिए उपयुक्त प्रश्न पूछकर, जरूरत के मुताबिक अनुभवों की आंशिक पुनरावृत्ति ऐसे बालकों के लिए महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगी। इस प्रकार दृष्टिमूलक प्रत्ययों के लिए अदृष्टिमूलक अनुभव प्रदान किये जा सकते हैं।

उपर्युक्त बिन्दुओं का प्रयोग करते समय निम्नलिखित सावधानियाँ बरतना उपयोगी रहेगा :-

1. अनुभव देते समय बालकों को अपने दोनों हाथ इस्तेमाल करने के लिए कहें।

2. मौखिक अनुदेशन उपयुक्त समय तथा उपयुक्त मात्रा में हो।

3. छात्रों को प्रश्न पूछने के लिए प्रोत्साहित करें तथा अनर्गल लगने पर भी प्रश्नों को गम्भीरतापूर्वक लें और उनके उत्तर दें।

जमा पाठ्यक्रम का अर्थ व महत्व:-

दृष्टिबाधाजन्य सीमाओं के कुप्रभाव को कम करने, आकस्मिक अधिगम की कमी को पूरा करने तथा विद्यालय में दृष्टिवान बालकों को सिखाए जाने वाले कुछ कौशलों के स्थान पर दृष्टिबाधितों को प्रदत्त वैकल्पिक तथा कुछ अतिरिक्त शैक्षिक अनुभवों के समूह को जमा पाठ्यक्रम कहा जाता है।

पहली श्रेणी में अनुस्थितिज्ञान तथा चलिष्णुता (Orientation and Mobility), दूसरी श्रेणी में दैनिक कौशल, तीसरी श्रेणी के अन्तर्गत ब्रेल या दीर्घाक्षरी सामग्री पढ़ना-लिखना और अन्तिम श्रेणी में विशिष्ट उपकरणों-अबेकस, टेलर फ्रेम, स्पर्शीय मानचित्रों का प्रयोग, ब्रेलर तथा निम्न दृष्टि (Low Vision) उपकरणों का प्रशिक्षण सम्मिलित किया जा सकता है। जमा पाठ्यक्रम को 'उपकरण विषय' (Tool

Subject) भी कहा जा सकता है क्योंकि यह दृष्टिबाधित बालकों को अपने दृष्टिवान सहपाठियों की भाँति शैक्षिक प्रक्रिया को सुचारु रूप से आगे बढ़ाने में सहायता प्रदान करता है। इसका महत्व यह है कि यह दृष्टिबाधित बालकों को एक बड़ी सीमा तक अपनी शैक्षिक प्रक्रिया को सामान्य रूप से चलाने में सक्षम बनाता है। जमा पाठ्यक्रम में सम्मिलित किये जाने वाले कौशलों की संख्या छात्रों के स्तर विद्यालय विशेष में उपलब्ध आर्थिक व शिक्षा सामग्री हेतु संसाधन, प्रशिक्षित शिक्षक तथा स्थान विशेष में उपलब्ध प्रौद्योगिकी (Technology) पर निर्भर करती है, अत: इनकी अन्तिम सूची देना सम्भव नहीं।

जमा पाठ्यक्रम की निपुणताएं:

इनमें कक्षा के अनुसार ब्रेल लिपि का वाचन/लेखन, निम्न दृष्टि बालकों के लिए दीर्घाक्षर सामग्री का वाचन/लेखन, विभिन्न दैनिक कौशलों तथा विशिष्ट उपकरणों इत्यादि का प्रशिक्षण सम्मिलित है। इस संदर्भ में निम्नलिखित प्रमुख बिन्दुओं को ध्यान में रखा जाना चाहिए :-

1. बालक की पृष्ठभूमि तथा आवश्यकता का आकलन करने के बाद ही उसे अनुस्थितिज्ञान तथा चलिष्णुता, संवेदी-ज्ञान तथा दैनिक कौशलों का प्रशिक्षण देना वांछनीय होगा।

2. ब्रेल सिखाते समय पहले वाचन और उसके बाद लेखन का अभ्यास कराएं।

3. ब्रेल शिक्षण से पहले न्यूनतम ब्रेल-वाचन तत्परता (Braille Reading Readiness) अवश्य विकसित करें।

खण्ड - दो

अध्याय-7

स्पर्श लिपियों का इतिहास

-आर.सी. निझावन

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य और उत्तरार्द्ध में जब यूरोप और अमेरिका के कई भागों में दृष्टिहीनों द्वारा ब्रेल लिपि का व्यापक इस्तेमाल होने लगा तो मानो उनके जीवन में एक क्रान्ति-सी आ गयी। शिक्षा के क्षेत्र में दृष्टिहीन लोगों को ब्रेल लिपि ने न केवल दृष्टिवान लोगों के समकक्ष खड़ा कर दिया बल्कि उनमें आत्मविश्वास तथा आत्मसम्मान की एक लहर-सी दौड़ा दी। परन्तु ब्रेल लिपि अपने आपमें कोई ऐसी लिपि न थी जो एक दिन में तैयार कर दी गयी हो बल्कि यह उन प्रयासों की परिणति थी, जिनका लक्ष्य सैकड़ों वर्षों से दृष्टिहीनों के लिए ऐसी सहज और सरल विधि तैयार करना था, जिसके द्वारा दृष्टिहीन लोग सुगमता से अपने आप पढ़-लिख सकें और जिसकी लिखावट के लिए किन्हीं बोझिल यंत्रों की आवश्यकता न रहे। यहाँ यह स्मरण रखना भी आवश्यक होगा कि ब्रेल लिपि के आविष्कार के बहुत बाद तक भी नई-नई स्पर्श लिपियों का निर्माण जारी रहा।

स्पर्श लिपियों का इतिहास अपने आप में एक बड़ा रोचक व अविस्मरणीय ब्यौरा प्रस्तुत करता है, जिसके द्वारा हम सभी परोक्ष रूप में इस विकास यात्रा के सहभागी बन सकते हैं। यदि इतिहास के पन्ने पलटे जाएं तो पहले-पहल एलेग्जेंड्रिया (Alexandria) निवासी डिडिमस (Didymus) का नाम सामने आता है, डिडिमस एक प्रसिद्ध दार्शनिक थे। उन्होंने अपनी जिज्ञासा को शांत करने के लिए लकड़ी काटकर कुछ दृष्टिगत अक्षर बनाए इन अक्षरों की आकृतियों को देखकर वह अपने मन में इनके स्वरूप की कल्पना कर सकते थे।

चौदहवीं शताब्दी में, जहाँ पर वर्तमान इराक स्थित है, वहाँ के Moustansiryeh विश्वविद्यालय के एक अरबी प्राचार्य जैन-दीन अल एमदी (Zain-Din Al Amidi) ने एक ऐसी विधि तैयार की जो उभरी हुई आकृतियों द्वारा निर्मित की गयी थी और जिसके द्वारा वे अपनी आवश्यकतानुसार जरूरी जानकारियाँ निरूपित कर सकते थे, परन्तु उनके द्वारा अपनाई गयी विधि का खुलासा कहीं नहीं मिलता। बताया जाता है कि पंद्रहवीं शताब्दी में सरगोसा (Sargossa) नगर के निवासी फ्रांसिसको लुकस (Francisco Lucas) ने लकड़ी पर कुरेदकर कुछ अक्षर बनाने की कोशिश की, लेकिन डिडिमस की तरह ही उनका प्रयास भी किसी उपयोगी लिपि के निर्माण के लिए नहीं था बल्कि केवल अपनी जिज्ञासा को शान्त करना ही था।

तत्पश्चात् रोम (Rome) नगर के निवासी रैम्पेनसेटो (Rampansetto) ने इसी विधि को आगे बढ़ाते हुए लकड़ी पर कुरेदने की बजाय उभरे हुए अक्षरों का उपयोग किया। 1547 में एक इतालवी (Italian) चिकित्सक गिरोलामो कारडानो (Girolama Cardano) ने एक ऐसी विधि को जन्म दिया जिसे लुई ब्रेल द्वारा बनाई गयी लिपि के अनुकूल बताया जाता है परन्तु इसकी चर्चा केवल कागजों में ही है और इसका कोई ठोस प्रमाण हमारें सामने नहीं हैं। बताया गया है कि 1640 में पेरिस निवासी पियर मोरो (Pierre Moreau) नामक नोटरी ने सिक्के (Lead) में ढालकर कुछ अक्षरों को बनाने भर का प्रयास तो किया परन्तु आर्थिक कमजोरी के कारण वे अपने कार्य को बहुत दूर न ले जा सके। तकरीबन उसी समय के दौरान कोनेसबर्ग (Konigsberg) के निवासी शोनबर्गर (Schonberger) ने टिन को काटकर अक्षर बनाए। 1651 में न्यूरमबर्ग (Nuremburg) के जॉर्ज हॉर्सडॉरफर (George Harsdorffer) ने एक बार फिर उस पुरानी शास्त्रीय विधि का उपयोग किया, जिसके द्वारा उसने मोम की तह जमाकर उस पर नुकीले औजार से अक्षर काटने की विधि अपनाई। 1676 में इटली के एक पादरी (Jesuit) ने एक उभरी हुई लिपि को जन्म दिया, जिसके द्वारा मोटे कागज पर वर्गाकार एवं अन्य आकृतियों के द्वारा एक उद्‌भृत प्रणाली को निर्मित करने का प्रयास किया गया, जिसे हम मोर्स कोड के आधार पर एक स्पर्श लिपि बनाए जाने की कोशिश का नाम दे सकते हैं। उन्होंने एक ऐसी विधि की भी वकालत की जिसे डोरी में अलग-अलग प्रकार की गांठें बनाकर तैयार किया गया था। बताया जाता है कि यह दक्षिणी अमेरिका में व्यापक रूप से इस्तेमाल की जाती रही। इस डोरीनुमा विधि में 7 मुख्य गांठें होती थीं, जिनके आकार अलग-अलग रहते थे और जिन्हें दूसरी गांठों से जोड़कर अलग-अलग अक्षरों के लिए निर्धारित किया गया था। ब्रिटेन में इस डोरीनुमा विधि का प्रयोग एडनबरा (Edinburgh) के दो दृष्टिहीन निवासियों रॉबर्ट मिलने तथा डेविड मैकबैथ (Robert Milne and David McBeth) ने व्यापक रूप से किया। ग्लासगो (Glasgow) में स्थित दृष्टिहीनों के एक आश्रयस्थल (Asylum) में एक डोरीनुमा विधि का वर्षों तक उपयोग होता रहा। कहते हैं कि बाइबिल के कुछ अंशों को इस विधि में एक रील पर उतारा गया, जिसे दृष्टिहीन लोग धीरे-धीरे डोरी को निकालकर पढ़ते रहते थे।

प्रसिद्ध दार्शनिक और दृष्टिहीनों की शिक्षा के घोर समर्थक डिडरो (Diderot) ने पेरिस निवासी एक ऐसी दृष्टिहीन लड़की की चर्चा की है, जो कि कागज से कटे हुए अक्षरों का उपयोग करती थी। इसी सिलसिले में वियना स्थित एक मारिया थरेसा वॉन पैराडिस (Maria Theresa von Paradis) का नाम बहुचर्चित हुआ, जो न केवल एक प्रसिद्ध और उत्तम श्रेणी की प्यानो वादक ही थीं बल्कि जिन्होंने

शिक्षा ग्रहण करने के अनेक सफल प्रयास भी किये। बताया जाता है कि उन्होंने गद्दी में पिन चुभोकर उनकी ऊँचाई के अनुसार एक अक्षर लिपि तैयार की, जिसे वह पढ़ने के काम में लाती थी। मारिया थरेसा वॉन पैराडिस ने तत्पश्चात् मैनहीम (Mannheim) निवासी विजनबर्ग (Weissenberg) द्वारा निर्मित गत्ते पर पिन द्वारा चुभोकर बनाए गये अक्षरों को पढ़ने के लिए इस्तेमाल किया। बताया जाता है कि इस जिज्ञासु लड़की ने इस पद्धति के लिए प्रेस का निर्माण करवाया, जिसके द्वारा जर्मन अक्षरों को उभारकर निरूपित किया जाता था।

जैसा कि हम शुरू में ही बता चुके हैं कि उपरोक्त विधियाँ बड़ी अटपटी व अव्यावहारिक थीं और दृष्टिहीनों ने या उनके शुभचिन्तकों ने बड़े परिश्रम और लगन से इन्हें बनाया था, लेकिन स्पष्ट ही है कि इनका व्यापक इस्तेमाल न सम्भव था, न सम्भव हुआ ये इतिहास के पन्नों में ही सिमटकर रह गईं।

वैलेन्टीन औंई (Valentin Hauy) तथा लाइन टाइप प्रणालियाँ:

हम यहाँ यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि पहले-पहल जिन लोगों ने दृष्टिहीनों के पढ़ने के लिए उभरे हुए अक्षरों की सहायता ली, उन्होंने प्रायः यह मान लिया कि दृष्टिहीनों के लिए निर्मित अक्षर दृष्टिगत अक्षरों जैसे या उनसे मिलते-जुलते होने चाहिएं। यह विचार विभिन्न जानकारों के मस्तिष्क में घर कर चुका था, परन्तु इसका कारण भी स्पष्ट है कि दृष्टिगत अक्षरों के समान आकृतियों वाले उभरे हुए अक्षर दृष्टिवान लोगों द्वारा भी आसानी से पढ़े जा सकते थे और इनके इस्तेमाल के लिए उन्हें किसी प्रशिक्षण या विशेष प्रयास की आवश्यकता नहीं थी। हाँ, इतना अवश्य है कि इन्हें मशीनों द्वारा ही छापा जा सकता था।

हम नहीं जानते कि वैलेन्टीन औंई द्वारा बनाए गये उभरे अक्षरों की कहानी में कितना सत्य है केवल इतना ही कह सकते हैं कि कुछ इतिहासकारों का कथन है कि वैलेन्टीन औंई द्वारा निर्मित कोई भी अक्षर विधि कभी वजूद में नहीं आई।

कुछ इतिहासकारों का कथन है कि वैलेन्टीन औंई, जिनका जन्म 1745 में हुआ और जो कि फ्रांसीसी क्रान्ति के प्रवर्तक रूसो (Russeau) और वॉल्टेयर (Voltaire) के समकालिक थे, उन्होंने उभरे हुए अक्षरों की एक विधि तैयार की। इससे पहले कि हम उनके द्वारा बनाई गयी विधि का विवरण दें, यहाँ यह कह देना आवश्यक होगा कि यदि वैलेन्टीन औंई जैसे व्यक्ति न पैदा हुए होते तो दृष्टिहीनों की शिक्षा-दीक्षा वर्षों पीछे पिछड़ जाती। उन्होंने ही 1784 में पाश्चात्य जगत् में दृष्टिहीनों के लिए पेरिस में एक स्कूल की स्थापना की, जिसे दृष्टिहीनों हेतु संसार का पहला स्कूल माना गया है।

वैलेन्टीन औईं द्वारा निर्मित पद्धति, उभरे हुए रोमन कैपिटल्स् (Roman Capitals) और उनके छोटे स्वरूप की मिलावट से बनाई गयी पद्धति बताई जाती है। कुछ लोगों का कहना है कि वैलेन्टीन औईं ने प्रारम्भ में अक्षरों को बड़ा आकार दिया परन्तु धीरे-धीरे उनकी आकृति अपेक्षाकृत छोटी कर दी, जिसे स्पर्श द्वारा पढ़ने में अधिक आसानी होती थी। उन्होंने इन अक्षरों पर आधारित पुस्तकें भी तैयार कीं, जिनको पन्नों के एक ही ओर चिपकाया जाता था, परन्तु इन्हें स्पर्श द्वारा पढ़ना काफी कठिन और पीड़ादायक था। इतिहासकारों का यह भी कहना है कि वैलेन्टीन औईं ने तत्पश्चात् इन्हीं अक्षरों के दाईं ओर झुके (Italicised) अक्षरों का इस्तेमाल किया। यह भी बताया जाता है कि वियना की मारिया वॉन पैराडिस ने स्वयं पेरिस जाकर वैलेन्टीन औईं को विजनबर्ग (Weissenberg) द्वारा निर्मित पद्धति के बारे में जानकारी दी, परन्तु मारिया, वैलेन्टीन औईं को प्रभावित करने में असफल रहीं। वैलेन्टीन औईं द्वारा निर्मित पद्धति का उनके द्वारा स्थापित्त स्कूल में व्यापक प्रयोग होता रहा, ऐसा हमें बताया जाता है। कुछ जानकारों का कहना है कि पहले-पहल इस स्कूल में पढ़ाई के लिए लकड़ी की टहनियों से काटकर बनाए गये अक्षरों के द्वारा शिक्षा दी जाती थी। क्या सत्य है और क्या काल्पनिक--हमारे लिए यह कहना मुश्किल है।

यह भी कहा जाता है कि वैलेन्टीन औईं द्वारा निर्मित लाइन टाइप ऐसी अनेकों पद्धतियों में सबसे पहली पद्धति रही होगी, जिसे थोड़ा-बहुत अदल-बदल करके अनेकों लाइन टाइप पद्धतियाँ यूरोप और अमेरिका के विभिन्न भागों में अस्तित्व में आईं और प्रत्येक ऐसी विधि दूसरी विधियों पर बढ़त पाने की कोशिश में रही।

ब्रेल विधि की उत्पत्तिः

ब्रेल की उत्पत्ति की कहानी का ब्यौरा विभिन्न लेखकों द्वारा अलग-अलग रूप में दिया गया है। वास्तविकता क्या है? इस पर निश्चित रूप से कहना असम्भव है।(क्या ब्रेल लिपि सचमुच लुई ब्रेल ने बनाई अथवा क्योंकि यह लिपि उनके द्वारा ही प्रचारित-प्रसारित की गयी, इसलिए इस लिपि का नाम 'ब्रेल लिपि' पड़ा। इस विषय में फ्रांसीसी फौज के तोपखाने के एक अवकाश प्राप्त अधिकारी चार्ल्स बारबेयर (Charles Barbier) का नाम बहुत जगह पढ़ने-सुनने में आता है। कहते हैं कि चार्ल्स बारबेयर ने बिन्दु से बनी लाइन (Dot and Dash) पर आधारित एक ऐसी उभरी हुई विधि का आविष्कार किया था, जिसमें 12 बिन्दुओं का समावेश था और जो रात के अंधेरे में फौजियों तक संदेश पहुँचाने के लिए निर्मित की गयी थी। चार्ल्स बारबेयर ने इस विधि को दृष्टिहीनों के पठन-पाठन के लिए भी उपयोगी बताया था। इस विधि में कितने बिन्दु चौड़ाई में थे और कितने लम्बाई

में यह भी नहीं कहा जा सकता। एक इतिहासकार ने तो कहा है कि बारबेयर की पद्धति में कितने बिन्दु थे, इसका तो सवाल ही नहीं उठता। उन्होंने तो उभरे हुए बिन्दुओं से गोलाकार, चतुर्भुज और तिकोन जैसी सरल आकृतियाँ बनाईं, जिन्हें विभिन्न संदेशों के लिए इस्तेमाल में लाना निश्चित किया गया होगा। उदाहरणस्वरूप यदि यह संदेश भेजना है कि फौज चारों ओर से घिर गयी है तो गोलाकार चिह्न इस्तेमाल किया जाए। तीन ओर से आक्रमण करना है या चारों ओर से तो क्रमशः तिकोन या चतुर्भुज का प्रयोग किया जाए आदि-आदि।

लिपि 12 बिन्दुओं की हो या इससे अधिक बिन्दुओं की, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन किन्हीं लेखकों ने इसे 14 बिन्दुओं पर आधरित होने की चर्चा भी की है, जिनके अनुसार इस लिपि में चौड़ाई में 2 बिन्दु और लम्बाई में 7 बिन्दु रहे होंगे परन्तु महत्त्व तो बिन्दुओं पर आधारित लिपि का है। हमारा स्पर्श सीधी-सपाट लाइनों की अपेक्षा बिन्दुओं को कहीं अधिक सुगमता से पहचानने के योग्य है और इसलिए बिन्दुओं पर आधारित लिपि बनाने के लिए चार्ल्स बारबेयर को श्रेय मिलना चाहिए। जैसा हम ऊपर कह चुके हैं कि यदि उन्होंने उभरे हुए बिन्दुओं की वकालत न की होती तो सम्भवतः ब्रेल लिपि भी अस्तित्व में न आती।

जैसा हमने कहा कहानियाँ अनेक हैं। क्या लुई ब्रेल ने बारबेयर की लिपि के बारे में सुना और वे चार्ल्स बारबेयर को मिलने गये अथवा जैसा कि कहा जाता है बारबेयर स्वयं 1829 में लुई ब्रेल के स्कूल में पधारे और वहाँ के विद्यार्थियों को अपनी लिपि दिखाई---कुछ भी कहना कठिन है। बहरहाल जब लुई ब्रेल ने इस लिपि को देखा होगा तो वे इससे बहुत प्रभावित हुए होंगे। कारण यह कि उन्होंने इसी लिपि के आधार पर ही 6 बिन्दुओं वाली लिपि तैयार की। एक और बात जो यहाँ बताने योग्य है कि बिन्दु आधारित लिपि को स्पर्श द्वारा केवल पहचान लेना भर ही आसान न था बल्कि इसे एक पाटी के द्वारा कागज पर उतारना भी पर्याप्त सहज था। पढ़ने में फुर्ती और लिखने में सुगमता---इन्हीं दोनों तथ्यों में बिन्दु लिपि का जादू निहित है।

लुई ब्रेल की जीवनी के विषय में यहाँ अधिक तो नहीं लिखा जा सकता, परन्तु संक्षेप में इतना भर बताना आवश्यक है कि वे कूवरे (Coupvray) नामक फ्रांसीसी गाँव में चमड़े का काम करने वाले एक व्यक्ति साइमन ब्रेल (Simon Braille) के यहाँ पैदा हुए। अनेकों लेखकों के अनुसार 3 वर्ष की आयु में जब लुई ब्रेल अपने पिता की कार्यशाला में खेल रहे थे तो चमड़ा सिलने वाला सूजा उनकी एक आँख में धंस गया, परिणामस्वरूप उस आँख से खून बह निकला और वह आँख बेकार हो गयी। इसके बाद कुछ ही दिनों में उनकी दूसरी आँख

भी प्रभावित हुई और वह भी पूरी तरह खराब हो गयी। लुई ब्रेल निश्चित रूप से एक बहुत संवेदनशील और मेधावी बालक थे। उन्हें 10 साल की आयु में वैलेन्टीन औई के पेरिस स्थित स्कूल में प्रवेश के लिए ले जाया गया। वे एक अति योग्य संगीतज्ञ बन गये और उसी स्कूल में छात्रों को उन्हें संगीत सिखाने के लिए अध्यापक के रूप में नियुक्ति मिल गयी। एक बात अवश्य है कि उनका स्वास्थ्य कभी अच्छा नहीं रहा, फिर भी उन्होंने कड़े परिश्रम और अपनी तेज-तर्रार कल्पनाशक्ति से सब लोगों को प्रभावित कर दिया।

यह कहना उचित ही होगा कि यदि लुई ब्रेल, बारबेयर द्वारा निर्मित उभरी बिन्दुओं की पद्धति की ओर ध्यान न देते और अपनी कुशाग्र बुद्धि को इस्तेमाल करके उसे 6 बिन्दुओं में सीमित न कर देते तो आज दृष्टिहीनों के लिए पढ़ने-लिखने की कोई मानक विधि न होती। लोग बारबेयर की 12, 14 या 16 विन्दुओं की पद्धति को भूल जाते और उनका कोई नाम लेने वाला तक न होता। कहते हैं कि लुई ब्रेल ने अपनी अथक मेहनत और लगन से 1821 तक यानी 12 साल की अल्प आयु में ही 6 बिन्दुओं की पद्धति को विकसित कर लिया था और इसी से उन्होंने एक संगीत संहिता भी तैयार कर ली थी।

परन्तु खेद की बात यह है कि जैसे बताया जाता है लुई ब्रेल द्वारा विकसित लिपि को बहुत वर्षों तक उन्हीं की पाठशाला में मान्यता नहीं मिली। लुई ब्रेल और उनके सहपाठी इसे चोरी-चोरी इस्तेमाल में लाते रहे। उस स्कूल के अध्यापक व प्रशासन तो वैलेन्टीन औई द्वारा दृष्टिगत अक्षरों से मिलती-जुलती उभरे अक्षरों की पद्धति के पक्ष में ही रहे, क्योंकि उन्हें ऐसी लिपि को पढ़ना ब्रेल लिपि की तुलना में बहुत सहज प्रतीत होता था।

ब्रेल लिपि को फ्रांसीसी सरकार ने लुई ब्रेल की मृत्यु के उपरान्त 1854 में सरकारी मान्यता प्रदान की और यह तेजी से यूरोप के कई देशों और अमेरिका में इस्तेमाल होने लगी, लेकिन ब्रेल लिपि के निर्माण के बाद भी अनेकों लाइन टाइप का बनना, बनकर मिट जाना या किन्हीं का अनेकों वर्षों तक प्रयोग में आते रहना जारी रहा।

गॉल पद्धति (Gall's Type):

जेम्स गॉल (James Gall) एडिनबर्ग (Edinburgh) के रहने वाले एक मुद्रक और प्रकाशक थे। कहते हैं कि वे वैलेन्टीन औई के द्वारा निर्मित पद्धति से बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने 1826 से अपने प्रयोग शुरू कर दिये। उन्होंने रोमन कैपिटल्स् की कोण बदलकर उसे स्पर्श द्वारा अधिक सुगमता से पढ़े जाने

की नीति पर जोर दिया और इस पर आधारित उभरे हुए अक्षर बना डाले। उन्होंने 1827 में अपनी पहली पुस्तक प्रकाशित की, जिसमें दृष्टिहीनों को पढ़ने की कला सिखाने का विवरण दिया गया। इस पुस्तक में कुछ भाग तो दृष्टिगत लिपि में था और कुछ भाग संशोधित रोमन कैपिटल्स् के रूप में था। इसके बाद गॉल ने कई और पुस्तकें भी लिखीं, परन्तु अन्तत: उन्हें भी महसूस हुआ कि सीधी-सपाट लाइनों की तुलना में टूटी लाइनें स्पर्श द्वारा अधिक सुगमता से पहचान में आती हैं और फिर उन्होंने टूटी हुई लाइनों के आधार पर एक लिपि तैयार की। बताया जाता है कि जेम्स गॉल ने इसी लिपि में ब्रिटिश एण्ड फॉरेन बाइबल सोसाइटी (British and Foreign Bible Society) और अन्य धार्मिक संस्थाओं के लिए कई पुस्तकें तैयार कीं।

फ्राई और एल्सटन (Fry and Alston):

जैसा कि पहले कहा जा चुका है दृष्टिहीनों की शिक्षा और उनके पढ़ने-लिखने की पद्धतियों से जुड़े तमाम लोग हमेशा किसी ऐसी उभरी हुई पद्धति की फिराक में रहते थे जो कि रोमन अक्षरों से मिलती-जुलती हो और इस मनोवृत्ति का कारण भी बताया जा चुका है। सवाल केवल यही रहा कि ऐसे उभरे हुए अक्षर, रोमन अक्षरों के बिल्कुल समान आकृति वाले हों अथवा उनमें थोड़ा-बहुत अदल-बदल करके ऐसे बनाया जाए जिसे स्पर्श द्वारा अपेक्षाकृत आसानी से पढ़ा जा सके।

इसी संदर्भ में 1832 में एडिनबर्ग की कला सोसायटी (Edinburgh Society of Arts) ने एक स्वर्ण पदक की घोषणा की। सबसे अच्छी पद्धति बनाने वाले को यह स्वर्ण पदक दिया जाना तय हुआ। इसके परिणाम में अनेकों पद्धतियाँ अस्तित्व में आईं और कम से कम 19 पद्धतियाँ एडिनबर्ग कला सोसाइटी को प्रेषित की गयीं। इनमें से 16 पद्धतियाँ ऐसी थीं जो कि रोमन अक्षरों पर आधारित नहीं थीं बल्कि जिनकी आकृति स्पर्श द्वारा अधिक सुगमता से पहचानने योग्य समझी जाती थीं। इस प्रतियोगिता में लंदन के डॉ. एडमंड फ्राई (Dr. Edmund Fry) विजेता रहे, जिन्होंने सीधे-सापाट रोमन अक्षरों का इस्तेमाल किया, अर्थात् इन अक्षरों में से उन्होंने कोणों को निकाल दिया। तत्पश्चात् ग्लासगो असाइलम फॉर द ब्लाइंड (Glasgow Asylum for the Blind) के जॉन एल्स्टन (John Alston) ने अपनी पाठशाला में इसी में थोड़ा फेर-बदल करके अपने विद्यार्थियों के लिए इसे अपना लिया। एल्स्टन ने एक मुद्रणालय की भी स्थापना कर डाली और अपने द्वारा अपनाई गयी पद्धति में उन्होंने सम्पूर्ण बाइबिल को 19 खण्डों में प्रकाशित भी कर डाला। एल्स्टन द्वारा प्रयोग में लाए गये अक्षर छोटी-बड़ी दो आकृतियों में थे। बड़े अक्षर

अपेक्षाकृत वृद्ध लोगों द्वारा इस्तेमाल किये जाते थे, जो बड़े तीखे और नुकीले थे। एल्स्टन द्वारा तैयार पुस्तकें ब्रिटेन और अमेरिका में व्यापक रूप में इस्तेमाल की गईं।

बॉस्टन लाइन लैटर (Boston Line Letter):

लाइन पर आधारित अक्षरों की वकालत अमेरिका में भी जोर-शोर से की गयी। इनके जबरदस्त समर्थकों में पर्किन्स स्कूल फॉर दी ब्लाइंड (Perkins School for the Blind) के पहले निदेशक डॉ. सेमुअल हाओ (Dr. Samuel Howe) भी थे। इस सिलसिले में डॉ. हाओ ने यूरोप का दौरा भी किया और अनेकों स्थानों पर किसी उपयुक्त लाइन पद्धति की खोज में घूमते रहे। वे 1832 में पेरिस स्थित लुई ब्रेल के विद्यालय में भी गये। यह समय उस ऐतिहासिक समय से दो वर्ष पूर्व ही रहा होगा जबकि बताया जाता है कि लुई ब्रेल ने अपनी पद्धति को अन्तिम स्वरूप दे दिया, जिसे बाद में कभी भी संशोधित नहीं किया गया। अन्ततः सेमुअल हाओ ने एक ऐसी पद्धति सुनिश्चित की जो कि एल्स्टन टाइप का किंचित् बदला हुआ स्वरूप ही था और जो कि छोटे आकार वाले रोमन अक्षरों पर आधारित थी। यह पद्धति बॉस्टन लाइन लैटर के नाम से प्रसिद्ध हुई और बाद में कैपिटल अक्षरों को भी इसमें सम्मिलित कर लिया गया और यह अनेकों वर्षों तक अमरीका में जोर-शोर से इस्तेमाल होती रही। याद रहे कि पर्किन्स स्कूल अमेरिका के बॉस्टन नगर में ही स्थित है।

आशुलिपि आधारित पद्धतियाँ (Shorthand Systems):

इसी दौरान आशुलिपि आधारित कुछ उभरी हुई लिपियाँ भी सामने आईं, जिनमें दृष्टिगत आशुलिपि की तरह ही लाइनों, बिन्दुओं और आड़ी-तिरछी भुजाओं को आधार बनाया गया और जिनमें बिन्दु की स्थिति के आधार पर उनकी ध्वनि निर्धारित होती थी। इन उभरी हुई आशुलिपियों के निर्माताओं में लुकस और फ्रायर (Lucas and Frere) के नाम प्रसिद्ध हैं। लुकस द्वारा निर्मित आशुलिपि को यूरोप और अमेरिका में व्यापक रूप से इस्तेमाल किया गया और बताया जाता है कि इस लिपि पर आधारित एक संगीत संहिता भी अस्तित्व में आई।

फ्रायर द्वारा निर्मित आशुलिपि भी ध्वनि सूचक थी, जिन्हें सीधी, टेढ़ी, वृत्ताकार या अर्द्धवृत्ताकार लाइनों से अंकित किया जाता था। दो-दो पंक्तियों को आपस में जोड़ दिया जाता था। पहली पंक्ति को बाएं से दाएं और दूसरी पंक्ति को दाएं से बाएं पढ़ा जाता था। हालाँकि आशुलिपियों पर आधारित पुस्तकें लाइन टाइप पर आधारित पुस्तकों से कम जगह घेरती थीं, परन्तु इन लिपियों को पढ़ना

भी उतना ही बोझिल था, जितना कि लाइन टाइप अक्षरों को पढ़ना। फ्रायर की पद्धति का इस्तेमाल टीन की प्लेटों पर अक्षरों को टंकित कर उनसे कागज पर छापा जाता था, परन्तु प्लेटों को प्रेस मशीन में न डालकर उन्हें खूब गरम करके उनकी प्रतियाँ कागज पर निकाली जाती थीं।

मून (Moon):

लाइन पर आधारित पद्धतियों में मून का नाम सबसे आगे रहा। ब्रिटेन में तो मून को बूढ़े दृष्टिहीन व्यक्तियों को पढ़ने के लिए हाल तक भी इस्तेमाल किया जाता रहा है, जो ब्रेल पढ़ने में असमर्थ थे। इस विधि का आविष्कार ब्रिटेन में स्थित ब्राइटन (Brighton) नामक नगर के निवासी विलियम मून (William Moon) ने 1847 में किया। विलियम मून 21 वर्ष की आयु में दृष्टिहीन हो गये थे और उन्होंने अपने समय में प्रचलित समस्त लाइन पद्धतियों का अध्ययन किया, परन्तु वे किसी भी प्रचलित विधि से सन्तुष्ट न हुए और उन्होंने अपनी ही पद्धति विकसित कर डाली जो उनके नाम से प्रसिद्ध हुई। उनके विचार में प्रचलित विधियों का सरलीकरण बहुत आवश्यक था ताकि दृष्टिहीन लोगों को इन्हें पढ़ने में आसानी हो, इसलिए उन्होंने रोमन कैपिटल्स् का ही सहारा लिया और इन्हीं को कभी तल नीचे, कभी शीश ऊपर और कभी तल ऊपर, कभी शीश नीचे अथवा कभी आकृति बाएं और कभी आकृति दाएं करके अक्षर बनाए। पढ़ने की गति तेज करने के लिए उन्होंने भी फ्रायर की भाँति दो-दो पंक्तियाँ जोड़ दीं अर्थात् पहली पंक्ति बाएं से दाएं पढ़ी जाती और दूसरी पंक्ति दाएं से बाएं। उन्होंने कुछ संकोच और संक्षेप भी बनाए।

मून की तुलना ब्रेल से करना एक बड़ा उलझा हुआ प्रश्न है। चाहे दृष्टिहीन व्यक्ति वृद्ध हो अथवा युवक-- कोई भी लाइन टाइप, ब्रेल का मुकाबला नहीं कर सकती। इंग्लैड में ब्रेल की तुलना में वृद्ध लोगों द्वारा मून के इस्तेमाल को पसन्द करना-- यह बात कुछ गले नहीं उतरती। हाँ, यह तो कहा जा सकता है कि अंग्रेजों की परम्परागत हठधर्मिता और अपने-आपको दुनिया के देशों से अलग साबित करना मून के इस्तेमाल के पीछे मुख्य कारण रहा होगा। शायद इसके पीछे वृद्ध लोगों की सनक भी हो सकती है, जो यह कहते होंगे कि हम तो ऐसी ही लिपि का इस्तेमाल करेंगे जो दृष्टिगत लिपि से मिलती-जुलती हो।

मून को मशीनों पर टाइप सैटिंग करके ही लिखा जा सकता है। पहले-पहल तो एक लकड़ी का हाथ से चलने वाला प्रेस बनाया गया, जिस पर लोहे की प्लेटों पर टीन की तारों से बने अक्षरों के द्वारा छपाई होने लगी। मून टाइप

का इस्तेमाल यूरोप और अमेरिका में बहुत दिनों तक होता रहा। इस पद्धति में बहुत-सी पुस्तकें और पत्रिकाएं भी तैयार की गईं।

ब्रेल का प्रसार:

जैसा कि हम ऊपर बता चुके हैं लुई ब्रेल ने 1832 तक 6 बिन्दुओं की इस पद्धति को अन्तिम रूप दे दिया। विदित हो कि 6 बिन्दुओं की इस लिपि से क्रमसंचय (Permutation Combination) के आधार पर कुल 63 चिह्न बनते हैं। लुई ब्रेल ने एकरूपता के आधार पर इन 63 चिह्नों को 7 पंक्तियों में विभाजित किया (देखें चित्र-1)। हालाँकि 7 पंक्तियों का यह विभाजन बाद में बहुत उठा-पटक और वाद-विवाद का कारण बना, परन्तु अन्ततः मान्यता इसे ही प्राप्त हुई। लुई ब्रेल की मौलिकता और परिश्रम का यह भी एक प्रमाण है।

शुरू से ही ब्रेल में संगीत प्रणालियों को लिपिबद्ध करने का काम हाथ में लिया गया। दृष्टिहीन संगीत प्रेमियों के लिए यह एक बहुत बड़ी देन थी। गणित व विज्ञान के लिए भी ब्रेल में लिपियाँ तैयार हुईं, जो कि दृष्टिहीनों द्वारा व्यापक रूप से प्रयोग में लाई जाती हैं और जिनसे हजारों दृष्टिहीन छात्र अपने दृष्टिवान सहपाठियों की बराबरी करने के योग्य बन पाते हैं। इसके अलावा ब्रेल में नापने के फीते और फुट रूल भी अंकित किये जाते हैं।

इससे पूर्व कि हम कम्प्यूटरीकृत ब्रेल की बात करें, हमें स्पर्श लिपियों के इतिहास के बारे में कुछ और ब्यौरा देना आवश्यक होगा। जहाँ तक भारत का सवाल है, इस देश में भी ब्रेल की एक समान लिपि के लिए काफी और लम्बी बहस चलती रही और अनेकों प्रयोग किये गये और अन्ततः यह मामला 1951 में जाकर किसी नतीजे पर पहुँचा, परन्तु इसकी चर्चा हम अलग अध्याय में करेंगे।

ब्रिटेन, अमेरिका और यूरोप में ब्रेल का प्रयोग:

जैसा कि हम बता चुके हैं बहुत-सी लाइन विधियाँ ब्रेल के आविष्कार के बाद भी निर्मित होती रहीं। इस प्रकार लाइन विधियों और बिन्दु प्रणाली (ब्रेल) में एक संघर्ष-सा चल गया, जो कि कुछ जरूरत से ज्यादा खिंच गया। लाइन टाइप के बारे में तो हम बता ही चुके हैं कि इनके समर्थक काफी संख्या में थे और वे वर्षों तक अपने द्वारा तैयार की गयी विधियों के लिए परस्पर लड़ते-झगड़ते रहे। अन्ततः ब्रेल को ही मान्यता मिली। इस लम्बे संघर्ष का एक कारण यह था कि अधिकतर अध्यापक व आविष्कारक दृष्टिवान थे और वे दृष्टिगत लिपि से

लुई ब्रेल द्वारा 7 पंक्तियों में विभाजित 63 चिह्न

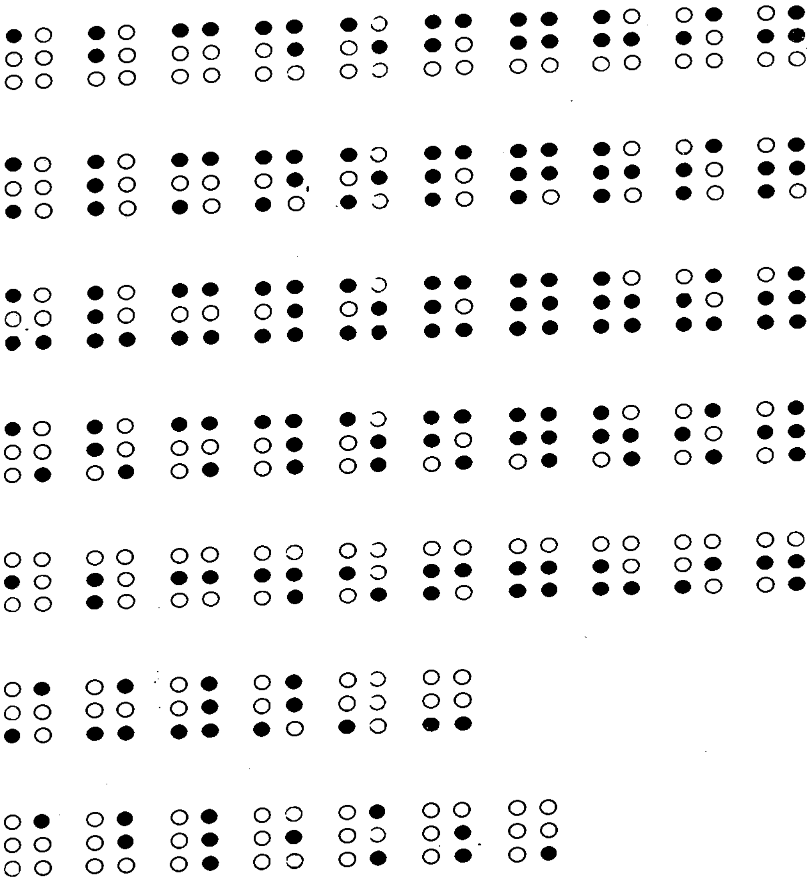

संकेत :

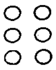

एक सैल में बिना उभरे 6 बिन्दुओं के निश्चित स्थान ।

● उभारा हुआ बिन्दु/उभारे हुए बिन्दु ।

○ बिना उभारा बिन्दु/बिना उभारे बिन्दु ।

मिलती-जुलती उभरी हुई लिपियों के जबरदस्त समर्थक थे। यह बात हमें बार-बार दोहरानी पड़ रही है, जिससे हम यह सिद्ध करना चाहते हैं कि दृष्टिवान शोधकर्ता इस बात में ज्यादा दिलचस्पी लेते रहे कि जो उन्हें अच्छा प्रतीत होता है, वही सही है। उन्होंने इस बात की चिन्ता नहीं की कि दृष्टिहीनों के लिए कौन-सी लिपि अधिक सुगम और उपयोगी हो सकती है। पर हम यहाँ इन दृष्टिवान व्यक्तियों पर कोई दोषारोपण नहीं करना चाहते। यह तो स्वाभाविक ही है कि उन्होंने वही किया जो उन्हें अच्छा लगा या उन्हें अच्छा समझ में आया। हालाँकि उनकी इस हठधर्मिता से ब्रेल की आम स्वीकृति में विलम्ब अवश्य हुआ।

इंग्लैंड को ही लीजिए, वहाँ के डॉ. थॉमस रोड्स आर्मिटेज (Dr. Thomas Rhodes Armitage), जो इस देश के बड़े प्रभावी व्यक्ति थे और स्वयं नेत्रहीन थे, उन्हें लाइन पद्धतियों के मुकाबले ब्रेल लिपि को वरीयता देने में कुछ समय लगा परन्तु अन्त में उन्होंने अपने कुछ बुद्धिजीवी साथियों से परामर्श कर 1868 में ब्रेल लिपि की सर्वोच्चता को स्वीकार कर लिया। ये वही आर्मिटेज साहब थे, जिन्होंने ब्रिटिश एण्ड फॉरन ब्लाइंड एसोसियेशन (British and Foreign Blind Association) की स्थापना की, जिस संस्था को बाद में रॉयल नेशनल इन्स्टीट्यूट फॉर द ब्लाइंड (Royal National Institute for the Blind) के नाम से जाना जाने लगा।

अब हम देखेंगे कि अमेरिका में ब्रेल को कैसे मान्यता मिली।

पहले-पहल 1860 में St. Louis स्थित स्कूल फॉर दी ब्लाइंड (School for the Blind) ने ब्रेल लिपि को अपनाया, लेकिन बाद में इस लिपि को लेकर बहुत-से प्रयोग होने लगे।

न्यूयॉर्क प्वाइंट व अन्य लिपियाँ:

1868 में न्यूयार्क इन्स्टीट्यूशन फार द ब्लाइंड (New York Institution for the Blind) के अधीक्षक विलियम बैल वेट (William Bell Wait) ने बिन्दुओं पर आधारित अपनी ही लिपि बना डाली, जो कि लम्बाई में दो बिन्दुओं पर आधारित थी, लेकिन जिसकी चौड़ाई घटती-बढ़ती रहती थी-- कभी दो बिन्दु कभी तीन बिन्दु और कभी चार बिन्दु। 1871 में अमेरिकन एसोसियेशन ऑफ इन्स्ट्रक्टर्स ऑफ द ब्लाइंड (American Association of Instructors of the Blind) ने न्यूयॉर्क प्वाइंट (New York Point) को मान्यता दे दी और यह विधि लगभग 40 वर्ष तक अमेरिका में इस्तेमाल होती रही।

अमेरिकन ब्रेलः

इसके साथ-साथ अमेरिका में एक और लिपि भी अस्तित्व में आई, जो लुई ब्रेल द्वारा रचित 6 बिन्दुओं पर ही आधारित थी, पर जिसके अनुसार लुई ब्रेल द्वारा 63 चिह्नों पर 7 लाइनों के विभाजन वाली पद्धति को तो स्वीकार नहीं किया वरन् अक्षरों की आवृत्ति के अनुसार उन्हें ब्रेल चिह्न दिये गये अर्थात् जो अक्षर अंग्रेजी भाषा में सबसे अधिक इस्तेमाल होते हैं उनके लिए अपेक्षाकृत कम बिन्दुओं वाले अक्षर सुनिश्चित किये गये। इस पद्धति के जन्मदाता पर्किन्स स्कूल फॉर दी ब्लाइंड (Perkins School for the Bilind) के ज्यूल डब्ल्यू स्मिथ (Joel W. Smith) नामक एक व्यक्ति थे जो पेशे से प्यानो (Piano) अध्यापक थे। हालाँकि तथाकथित अमेरिकन ब्रेल को बहुत व्यापक मान्यता नहीं मिली, परन्तु इस पद्धति को लोगों ने न्यूयॉर्क प्वाइंट के मुकाबले में खड़ा कर दिया।

ब्रिटिश ब्रेलः

न्यूयॉर्क प्वाइंट और अमेरिकन ब्रेल के साथ-साथ लुई ब्रेल द्वारा 7 पंक्तियों में विभाजित पद्धति भी अमेरिका में चलती रही, जिसे हम मौलिक ब्रेल (Original Braille) का नाम देना पसन्द करेंगे, पर जिसे अमेरिका में ब्रिटिश ब्रेल के नाम से जाना जाने लगा, क्योंकि ब्रिटेन में तो लुई ब्रेल द्वारा गठित 7 लाइनों वाली पद्धति ही प्रयोग में आ रही थी इसलिए अमेरिका वालों ने इसे ब्रिटिश ब्रेल कहा।

एक ही देश में 3 विभिन्न पद्धतियों का इस्तेमाल किसी विनाश से कम न था क्योंकि कोई व्यक्ति विशेष 3 लिपियों को एक साथ अपने मस्तिष्क में उतारने के काबिल कैसे हो सकता था, परन्तु यह प्रक्रिया तो 40 वर्ष तक चलती ही रही और अन्ततः 1917 में व्यापक विचार-विमर्श के उपरान्त लुई ब्रेल की मौलिक बंदिश को ही स्वीकार कर लिया गया और 1931-32 में आज की मानक स्टैण्डर्ड इंग्लिश ब्रेल (Standard English Braille) वजूद में आ गयी, जिसे 1955 में 3-4 संक्षेप और संकोच (Abbreviations and Contractions) जोड़कर और 3-4 संक्षेपों में फेर-बदल कर बिना किसी भारी उलट-पलट के आज तक इस्तेमाल में लाया जा रहा है। यहाँ तक स्मरण रहे कि मानक ब्रेल में 190 के लगभग संकोच और संक्षेप इस्तेमाल किये जाते हैं। अमेरिका में चलने वाली अंग्रेजी ब्रेल लिपियों के नियमों में कुछ अन्तर जरूर है। एक मुख्य अन्तर यह है कि इंग्लैंड में इस्तेमाल होने वाली अंग्रेजी ब्रेल में कैपिटल लैटर के लिए प्रायः चिह्न का इस्तेमाल नहीं होता। दूसरा मुख्य अन्तर यह है कि अमेरिकन पद्धति में यदि किसी संकोच का उच्चारण के आधार पर दो खण्डों में विभाजन हो तो उस संकोच को इस्तेमाल

में नहीं लाया जाता, जैसे-- 'reduce' शब्द में ed का संकोच इस्तेमाल नहीं होगा या 'enormous' और 'erect' शब्दों में क्रमशः en तथा er के संकोच उपयोग में नहीं लाए जाते।

यूरोप के अन्य देशों में भी ब्रेल का प्रयोग 1860 के दशक से शुरू हो गया। जर्मनी में भी कुछ ना-नुकर के बाद लुई ब्रेल की मौलिक बंदिश को अपना लिया गया। जर्मनी के बाद यह अन्य यूरोपीय देशों में भी इस्तेमाल होने लगी। 1878 में पेरिस में आयोजित इन्टरनेशनल काँग्रेस ऑन वर्क फॉर द ब्लाइंड (International Congress on Work for the Blind) में ब्रेल को व्यापक समर्थन मिला और इस पर अंतर्राष्ट्रीय बिरादरी की मोहर लग गयी।

यदि हम उपरोक्त तथ्यों पर जरा ध्यान से सोचें तो हम स्पर्श लिपियों के इतिहास को 3 भागों में बाँट सकते हैं। पहला भाग तो लाइन टाइप से पहले का रहा जबकि दृष्टिहीनों और उनके अध्यापकों ने लकड़ी, मोम, टीन की पत्तियों आदि की सहायता से कुछ उभरे हुए अक्षरों को बनाने का प्रयास किया, जिनका प्रयोजन इसके अतिरिक्त और कुछ न था कि दृष्टिहीनों को दृष्टिगत अक्षरों की थोड़ी-बहुत जानकारी दी जाए और उनकी आकृति कैसी है, उसकी पहचान करवाई जाए। स्वाभाविक रूप से यह प्रयास अत्यन्त बोझिल प्रकार के थे और वे कभी भी किसी व्यावहारिक उभरी हुई लिपि का निर्माण न कर सके। दूसरा दौर 18वीं सदी के अन्त से शुरू होकर 19वीं शताब्दी के अन्त तक मान लिया जाए, जिस युग में रोमन कैपिटल्स् पर आधारित या उनकी सरलीकृत आकृतियों से उभरे अक्षर बनाए गये, जो कभी थोड़ा-बहुत सफल तो हुए परन्तु दृष्टिहीनों के पढ़ने-लिखने का अनुकूल माध्यम न बन सके। सीधी-सपाट लाइनों पर आधारित या उनके कोणीय प्रतिरूपों को आधार बनाकर जो लिपियाँ बनी उनमें सबसे अधिक सफलता मून को मिली। तीसरा दौर बिन्दुओं पर आधारित लिपियों का था, जो कि 19वीं शताब्दी के तीसरे चौथे दशक के साथ शुरू हुआ और ब्रेल के आविष्कार के उपरान्त और इस लिपि की सर्वोच्चता स्थापित होने के बाद भी लाइन टाइप प्रणालियों का बनना-बिगड़ना जारी रहा। लेकिन सबसे बड़ा वाद-विवाद का कारण लुई ब्रेल द्वारा 6 बिन्दुओं की विधि से उपजे 63 चिह्नों को 7 लाइनों में एकरूपता के आधार पर विभाजित करना रहा और यह बंदिश झगड़े का कारण बनी रही।

एशिया और पूर्वी देशों में ब्रेल का प्रसारः

एशियाई और पूर्वी देशों में ब्रेल के प्रचार-प्रसार में ईसाई मिशनरियों का बहुत बड़ा हाथ रहा। परिणामस्वरूप 1868 में एक अरबी (Arabic) ब्रेल कोड

अस्तित्व में आया और लगभग इसी समय चीन में पीकिंग (Peking) ब्रेल का निर्माण हुआ। 1890 के दशक में भारत के विभिन्न क्षेत्रों के लिए अनेक ब्रेल कोड (संहिता) वजूद में आए। 1887 में एक जापानी ब्रेल का निर्माण हुआ और उसके तुरन्त बाद सिंहली भाषा (Sinhalese), कोरियन भाषा, फारसी भाषा, आरमीनियम भाषा और तुर्क आदि भाषाओं के लिए ब्रेल लिपियाँ बनाई गईं और 20वीं शताब्दी के आते-आते सारे सभ्य विश्व में ब्रेल दृष्टिहीनों की शिक्षा के लिए एक मान्यता प्राप्त लिपि बन गयी।

ब्रेल मुद्रण:

ब्रेल लिपि की मशीनों के आविष्कार ने ब्रेल के प्रचार-प्रसार में जमकर मदद की। 1893 में अमेरिका के फ्रैंक एच. हॉल (Frank H. Hall) ने ब्रेल राइटर बनाया और उन्होंने ही 20वीं शताब्दी के आते-आते ब्रेल मुद्रण के लिए स्टीरियोटाइपिंग (Stereotyping) प्रेस ईजाद कर लिया और इन प्रेसों को 1911 तक बिजली से चलाया जाने लगा। इन प्रेसों में स्टीरियो टाइप मशीनों पर जस्ते या टीन की शीटों पर ब्रेल लिखी जाती थी और फिर इन प्लेटों को प्रेस में लगाकर कागज पर उतारा जाता था।

यूरोप और अमेरिका में तो कम्प्यूटर द्वारा ब्रेल मुद्रण का कार्य सन् 1970 के दशक से ही शुरू हो गया था परन्तु बाद में कम्प्यूटरों में ज्यों-ज्यों सुधार होता गया त्यों-त्यों इनकी सार्थकता बढ़ती गयी। धीरे-धीरे ऐसे सॉफ्टवेयर तैयार हो गये, जिन्हें स्वचालित (Automatic) रूप से इस्तेमाल किया जाने लगा। कम्प्यूटर की -बोर्ड (key-board) पर किसी भाषा में मूल सामग्री को छापिये तो वह स्वतः ही ब्रेल में संकोचों और संक्षपों सहित परिवर्तित हो जाती है। ऐसे सॉफ्टवेयर तो अब भारतीय भाषाओं के लिए भी उपलब्ध होने लगे हैं। याद रहे कि इस प्रक्रिया में कम्प्यूटर लिपिक को ब्रेल लिपि की जानकारी की आवश्यकता नहीं होती। अब तो ऐसी ग्राफिक्स मशीन भी बना ली गयी है, जिसके द्वारा रेखाचित्रों (Diagrams) और मानचित्रों की आकृति को हूबहू उभरी हुई शक्ल में नकल किया जा सकता है।

अध्याय-8

ब्रेल शिक्षण

-आर.सी. निझावन

इससे पूर्व कि हम ब्रेल शिक्षण के विषय में बात करें, आइये हम ब्रेल लिपि पर कुछ दृष्टि डालें। शायद यह कहना गलत न होगा कि ब्रेल लिपि त्रुटिरहित नहीं है या यूँ भी कहा जा सकता है कि हमारी स्पर्श शक्ति इतनी श्रेष्ठ नहीं है कि वह किसी तरह से भी दृष्टि का मुकाबला कर सके। जब हम पढ़ने की बात करते हैं तो ऐसा लगता है कि दृष्टि काफी बड़े शब्द-समूह को एक ही बार में ग्रहण कर लेती है। ऐसा ब्रेल पढ़ते समय प्रतीत नहीं होता, परन्तु यदि हम तीव्र गति से पढ़ने वाले ब्रेल पाठकों द्वारा अपनाई गयी क्रिया को ध्यान से देखें तो हमें यह महसूस होगा कि वे भी उंगली के एक ही झटके में बहुत-से अक्षरों अथवा शब्दों को पढ़-समझ लेते हैं। ब्रेल-पठन के नियम में कुछ और तथ्य जो हमारे सामने लाये गये वे इस प्रकार है:-

पहली बात यह कि हमारा मस्तिष्क दो भागों में विभक्त है। मस्तिष्क का बाँया भाग शरीर के दायें भाग को नियन्त्रित करता है और दायाँ भाग बायें हिस्से को संकेत देता है। यहाँ स्मरण रखने वाली बात यह है कि मस्तिष्क का दायाँ भाग आकृतियों को पहचानने में विशेष रूप से सक्षम है, क्योंकि ब्रेल भी छः बिन्दुओं द्वारा निर्मित की गयी आकृतियों का खेल है, इसलिए यह कहना ठीक होगा कि ब्रेल पढ़ने में मस्तिष्क के दायें भाग की विशेष भागीदारी होती है। दूसरे शब्दों में दायें हाथ की तुलना में बायें हाथ से पढ़ना बेहतर होगा। ब्रेल सम्बन्धी दूसरा तथ्य यह है कि सीधी-सपाट लाइनों से बनी आकृतियों की तुलना में बिन्दुओं से बनी हुई आकृतियाँ स्पर्श द्वारा कहीं अधिक सुगमता से समझी-पहचानी जा सकती हैं।

एक और तथ्य जो हमें याद रखना है, वह यह है कि मानव-मस्तिष्क लगभग 11-12 वर्ष की आयु तक पूरी तरह से विकसित हो जाता है। इसका मतलब यह हुआ कि यदि बच्चों को 11-12 वर्ष की आयु से पूर्व ब्रेल का ज्ञान करवाया जाए, जबकि मस्तिष्क विकास की ओर अग्रसर होता है, तो मस्तिष्क का वह हिस्सा जो स्पर्श को नियन्त्रित करता है अधिक सुदृढ़ हो जाएगा, जिसके कारण 11-12 वर्ष की अवस्था से पहले ब्रेल सीखने वाले बच्चे दूसरे की तुलना में ब्रेल को अधिक सुगमता व गति से पढ़ सकेंगे। यहाँ यह कहने की आवश्यकता नहीं है

कि ब्रेल को बेहतर ढंग से सीखने की क्रिया में उचित वातावरण व बुद्धि का विशेष योगदान होता है। यहाँ यह भी बताना जरूरी है कि मस्तिष्क का वही भाग जो दृष्टि को नियन्त्रित करता है और जिसे Visual Cortex कहा जाता है, वही भाग स्पर्श शक्ति को भी नियन्त्रित करता है, इसलिए शायद यह कहना भी उचित होगा कि स्पर्श से पढ़ने की प्रक्रिया दृष्टि से पढ़ने की प्रक्रिया से थोड़ी-बहुत मिलती-जुलती है, परन्तु जैसा हम ऊपर कह चुके हैं कि दृष्टि के विस्तार की तुलना में स्पर्श की सीमा बहुत ही कम है, इसलिए यह प्रक्रिया दृष्टिगत पठन से कुछ मायनों में भिन्न भी है।

उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए आइये अब हम ब्रेल शिक्षण विषय की बात करें।

बहुत-से विशेषज्ञ ब्रेल शिक्षण विधियों की चर्चा करते समय 'अक्षर विधि' की भी बात करते हैं। हमारी समझ में अक्षर विधि-जिसके अन्तर्गत बच्चों को पहले अक्षर पहचानना व पढ़ना सिखाया जाता है और तत्पश्चात इन्हीं अक्षरों को जोड़कर शब्दों को पढ़ना सिखाया जाता है- यह एक निहायत ही त्रुटिपूर्ण विधि है। बड़े खेद की बात तो यह है कि कई संस्थाओं में तो शिक्षक अक्षर विधि से भी कहीं पीछे चले जाते हैं। इनका तमाशा देखिये कि वे बच्चों को पहले तो वर्णमाला के अक्षरों को बिन्दुओं के आधार पर जबानी रटाते रहते हैं और जब बच्चों को इन बिन्दुओं के नम्बर रट जाते हैं तो फिर कहीं जाकर ब्रेल के दर्शन कराए जाते हैं। आप कहेंगे कि अन्ततोगत्वा ऐसे बच्चे भी तो ब्रेल पढ़ना सीख लेते हैं, परन्तु इसका हम उत्तर देना मुनासिब नहीं समझते।

इससे पूर्व कि हम शब्द या वाक्य विधि की बात करें, हमारे लिए यह अनिवार्य है कि हम कुछ विचार पठन तत्परता (Reading Readiness) के विषय पर रखें। पहले हम दृष्टिवान बालकों की चर्चा करेंगे कि उनमें पढ़ने की रुचि कैसे पैदा होती है। यह कहना तो आवश्यक नहीं कि पढ़ना-लिखना हमारी संस्कृति का एक अभिन्न अंग है। दृष्टिवान बच्चे अपने माता-पिता या बड़े भाई-बहिनों को या अपने आस-पास के अन्य लोगों को पढ़ते-लिखते देखते हैं। बहुत-से बच्चे तो अल्पायु में ही इन लोगों की नकल करना शुरु कर देते हैं। किसी पुस्तक या पत्र-पत्रिका को उठा लेते हैं और उसे देख मुँह ही मुँह में कुछ बोलते हैं- मानो वे पढ़ रहे हों। दृष्टिवान बच्चों के पठन-पाठन की प्रक्रिया में चित्रों व मानचित्रों का विशेष महत्त्व होता है। चित्रों के नीचे लिखे हुए शब्दों से दृष्टिवान बच्चों के मन में चित्रों और उनके नीचे लिखे हुए शब्दों में एक रिश्ता कायम हो जाता है। मान लीजिए, खरगोश, बिल्ली अथवा हाथी आदि के चित्रों के नीचे यदि खरगोश,

बिल्ली व हाथी लिखा हो, जैसा कि दृष्टिवान बच्चों की पुस्तकों में प्रायः होता ही है, तो बच्चे 'खरगोश', 'बिल्ली' अथवा 'हाथी' जैसे शब्दों से उनकी आकृति को देखकर ही पहचान लेते हैं। कुछ समय में यह प्रक्रिया स्वतः अथवा Automatic हो जाती है। ऐसी पुस्तकें दृष्टिहीन बच्चों के लिए भी बनाई जा सकती हैं। प्लास्टिक की बनी हुई बहुत-सी आकृतियाँ आजकल सुलभ हैं, जिन्हें किताब पर चिपकाकर या गुड़िया आदि को किताब के पृष्ठ पर सिलकर चिपकाया जा सकता है और उनके नीचे उनके नाम ब्रेल में लिखे जा सकते हैं। इन चिपकी हुई वस्तुओं, जैसे- चम्मच, कंघा, बैट, छोटी और मोटी गुड़िया, ढोलक, साइकिल इत्यादि को पहचानकर बच्चे इनके नीचे दिये हुए ब्रेल में अंकित नामों से उनकी आकृतियों से परिचित हो जाते हैं। यह प्रक्रिया ठीक उसी तरह की होगी जैसी कि दृष्टिवान बच्चों में होती है।

स्मरण रहे कि प्रत्येक सचित्र ब्रेल पुस्तिका के हर पृष्ठ पर ऊपर के भाग में लाइन खिंची होनी चाहिए, जिससे कि बच्चा पुस्तक को ठीक ढंग से पकड़ने का आदी हो जाए और सचित्र पुस्तिका बहुत भारी या बड़ी नहीं होनी चाहिए जिसे सम्भालने में बच्चे को कठिनाई हो, बल्कि ऐसी कई छोटी-छोटी पुस्तकें होनी चाहिएं जिससे कि बच्चे की स्पर्श शक्ति को और भी सक्षम बनाया जा सकता है। बच्चा अपनी रुचि की पुस्तक विशेष ढूँढेगा, जिससे उसकी स्पर्श शक्ति को बल मिलेगा।

ऊपर की प्रक्रिया से पूर्व बहुत छोटे बच्चों के लिए एक और अभ्यास की प्रक्रिया भी हो सकती है:

एक पुस्तिका ऐसी तैयार की जा सकती है जिसमें ब्रेल की छोटी-बड़ी समानान्तर लाइनें दी हों और बच्चे से छोटी-बड़ी लाइनें पहचानने का अभ्यास करवाया जाए, परन्तु ध्यान रखने योग्य बात यह है कि बच्चा उन्हीं बातों में रुचि अधिक लेता है जो उसके लिए अधिक-से-अधिक दिलचस्पी का कारण हो। कुछ विशेषज्ञ जब शब्द विधि की बात करते हैं तो वह कहते हैं कि इस विधि को प्रयोग में लाते समय पहले ब्रेल-सुगम शब्दों का प्रयोग करना चाहिए, जैसे- 'बल', 'कल' अथवा 'पल', परन्तु बच्चों के लिए ऐसे शब्द अर्थहीन हैं। ये विशेषज्ञ शायद यह भूल जाते हैं कि बच्चों की स्पर्श-शक्ति बड़ी तीव्र होती है और वे अर्थपूर्ण शब्दों को पढ़ना अधिक पसन्द करेंगे और पढ़कर पहचान भी लेंगे, चाहे ऐसे शब्द आकार में बड़े अथवा जटिल ही क्यों न हों।

शब्द अथवा वाक्य विधि को अपनाते समय जिन बातों का ध्यान रखना जरूरी है, वे इस प्रकार हैं:

(1) प्रयोग में लाये गये शब्द ऐसे हों, जिनके अर्थ बच्चों को भली-भाँति ज्ञात हों अथवा ऐसे शब्द हों जो उनकी दैनिक गतिविधियों के अंग हों।

(2) एक ही शब्द अथवा मिलते-जुलते शब्द/वाक्य बार-बार दोहराए जाएं, जैसे-

कमला, कमला, कमला
गमला, गमला, गमला
कमला, गमला, कमला, गमला
बिमला, बिमला, बिमला
विमला, विमला, विमला
शीला, शीला, शीला
लीला, लीला, लीला
कालू, कालू, लालू, लालू
शालू, शालू, आलू, आलू
यह गुड़िया है।
यह गुड़िया छोटी है।
यह गुड़िया बड़ी है।
यह गुड़िया मोटी है।
यह गुड़िया नाटी है।
यह गुड़िया पतली है।
गुड़िया मोटी है।
गुड़िया नाटी है।
गुड़िया बड़ी है।
यह गुड़िया छोटी है।
छोटी और वड़ी गुड़िया।
यह गुड़िया मेरी है।
मोटी गुड़िया, छोटी गुड़िया।
कमला की गुड़िया।
कमला की गुड़िया बड़ी है।
कमला की गुड़िया, बिमला की गुड़िया।
यह कमला की गुड़िया है।

यह गुड़िया कमला की है।
गुड़िया कमला की है।
कमला की गुड़िया बड़ी है।
बिमला की गुड़िया छोटी है।
कमला की थाली।
कमला की बड़ी थाली है।
यह कमला की थाली है।
थाली कमला की है।
कमला की थाली यह है।

ऊपर दिये गये वाक्यों से स्पष्ट है कि इनमें जिन शब्दों का प्रयोग किया गया है, वे प्रतिदिन की बोलचाल के शब्द हैं। इसी प्रक्रिया को खेल के रूप में भी दोहराया जा सकता है। कोई बच्चा कमला, बिमला या शालू बन जाए और वाक्यों को पढ़ने के बाद अलग-अलग बच्चों को थाली या गुड़िया पकड़ाई जाए। छोटी गुड़िया या बड़ी गुड़िया, छोटी थाली या बड़ी थाली के अनुसार भी यह खेल दोहराया जा सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि ब्रेल पठन खेल-ही-खेल में सिखाया जाए तो बच्चों के लिए अधिक रुचिकर होगा।

ऊपर दिये गये अभ्यासों के अतिरिक्त स्कूल के वातावरण में और भी कई विधियाँ अपनाई जा सकती हैं। कक्षा में रखे कुर्सी और मेजों पर बच्चों के नाम ब्रेल में लिखकर चिपकाए जा सकते हैं। दरवाजों तथा खिड़कियों पर कक्षा या कमरे का नम्बर या उनमें बैठकर पढ़ने वाले बच्चों के नाम ब्रेल में अंकित कर चिपकाए जा सकते हैं। विभिन्न प्रकार की गुड़ियाएं लेकर उनके ऊपर ब्रेल में उनके नाम लिखे जा सकते हैं और जैसा कि ऊपर बताया गया है, छोटी-छोटी पुस्तकों में विभिन्न वस्तुओं के उभरे हुए प्रतिरूप चिपकाकर उनके नीचे उनके नाम लिखे जा सकते हैं। जब बच्चे कुछ शब्दों को आसानी से पढ़ने के अभ्यस्त हो जाएं उसके बाद छोटी-छोटी रोचक कहानियों की बारी आती है।

शब्द अथवा वाक्य विधियों के लाभ:

एक-एक अक्षर को अलग-अलग पढ़ना और फिर उन्हें जोड़कर शब्द बनाने और पढ़ने की तुलना में शब्द और वाक्य विधियाँ बहुत श्रेष्ठ हैं। शब्द अथवा वाक्य विधियों के द्वारा बच्चों की पढ़ने की गति में शुरू से ही बेहतरी होती है एक-एक अक्षर पढ़ना और उसे जोड़कर शब्द बनाना-यह प्रक्रिया निश्चित रूप से मंद गति से पढ़ने की आदत डालने जैसी है।

कुछ पाठकों को शब्द विधि अवश्य ही अटपटी-सी लगेगी, जिसका कारण केवल इस विधि से अनभिज्ञता होना ही ठहराया जा सकता है। जो आदत प्रारम्भ से पड़ जाती है, प्राय: वही आदत जीवन-पर्यंत चलती रहती है, इसलिए हमें चाहिए कि हमारा रवैया प्रयोगात्मक हो और वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित हो।

ऊपर दिये गये विचार मनोविज्ञान के Gestalt स्कूल के निष्कर्षों पर आधारित हैं, जिसके अनुसार यह कहा जाता है कि पूर्ण सदैव अंशों के योग से बड़ा होता है। (The whole is qualitatively bigger than the sum of its parts)

जब बच्चे 25-30 शब्दों को उनकी आकृति से पहचानने लगें तभी इन शब्दों का विश्लेपण कर बच्चों को अलग-अलग अक्षरों की पहचान करवानी चाहिए। धीरे-धीरे यह सिलसिला जारी रखते हुए नये शब्द प्रयोग में लाने चाहिएं और उनका विश्लेपण कर नये अक्षरों की पहचान जारी रखनी चाहिए।

जैसा कि हम ऊपर बता चुके हैं कि लगभग 11-12 वर्ष की आयु तक बच्चे के मस्तिष्क का विकास पूरा हो जाता है इसलिए ब्रेल सिखाने का सिलसिला यदि 7-8 वर्ष की आयु में शुरू हो जाए तो बच्चे के लिए उपयुक्त रहेगा। ब्रेल पठन तत्परता तो इससे दो वर्ष पहले ही आरम्भ हो जाए तो अच्छा है। दृष्टिहीन बच्चों की स्पर्श-शक्ति का विकास तो जितनी जल्दी प्रारम्भ हो सके, किया जाना चाहिए। बहुत-से अभिभावक या माता-पिता अपने दृष्टिहीन बच्चों को छोटी उम्र में खिलौने आदि या दूसरी वस्तुएं नहीं देते, क्योंकि वे यह समझते हैं कि बच्चा उन्हें तोड़-फोड़ देगा या अपने आपको किसी प्रकार से चोट पहुँचा लेगा। यह बड़ी ही गलत धारणा है। उन्हें चाहिए कि दृष्टिहीन बच्चों को दृष्टिवान बच्चों की तरह अल्पायु में ही बहुत-सी वस्तुओं से- जिनमें खिलौने आदि शामिल हों-खेलने का प्रोत्साहन दें। शुरू में तो सब बच्चे तोड़-फोड़ का खेल खेलते ही रहते हैं। वस्तुओं को मुँह में डाल लेते हैं और उन्हें इधर-उधर पटक-पटक कर उनके अंग भंग करते रहते हैं। यह एक प्राकृतिक प्रक्रिया है, जिससे बच्चे-दृष्टिहीन हों या दृष्टिवान-सबको गुजरना ही पड़ता है। फिर दृष्टिहीन बच्चों के साथ भेदभाव क्यों? इस पटका-पटकी के खेल से बच्चों की मांसपेशियाँ ही सुदृढ़ नहीं होतीं बल्कि उनकी नैसर्गिक प्रवृत्तियों (Instincts) को व्यक्त करने का अवसर भी मिलता है और इसी के साथ-साथ स्पर्श द्वारा वस्तुओं को पहचानने का लाभ भी मिलता है।

हमने ऊपर ब्रेल पठन प्रक्रिया पर केवल एक सरसरी नजर ही डाली है और इस तरह से ब्रेल शिक्षण की कुछ विधियों की भी चर्चा कर डाली। इन सब बातों का उद्देश्य अपने पाठकों के लिए ब्रेल सीखते समय बच्चे किन अवस्थाओं

से गुजरते हैं, उसका कुछ वर्णन करना भी है। पहले हम यह देखने का प्रयास करेंगे कि दृष्टिवान बच्चे कैसे पढ़ते हैं और क्या दृष्टिहीन बच्चों की पढ़ने की प्रक्रिया दृष्टिवान बच्चों की प्रक्रिया से बहुत भिन्न है? हालाँकि हम यह भी कह चुके हैं कि इन दोनों प्रक्रियाओं में एकरूपता भी है और कुछ भिन्नता भी। दृष्टिवान बच्चे जब पढ़ते हैं तो उनकी आँखें लिखित सामग्री पर पंक्तिबद्ध तरीके से पड़ती रहती हैं, परन्तु वे 2-3-4 शब्द पढ़ने के बाद एक सैकेण्ड के छोटे से भाग के लिए रुक जाते हैं। जब उनकी दृष्टि इस छोटे समय के लिए रुकती है, तब भी वे उन 3-4 शब्दों को पढ़ रहे होते हैं जिन पर वे दृष्टि डाल चुके हैं। यदि आप दृष्टिवान बच्चों को पढ़ते हुए ध्यान से देखें तो आपको इस प्रक्रिया का आभास होगा। सैकेण्ड के कुछ भाग में उन्होंने अपनी दृष्टि घुमाई, फिर बहुत ही अल्प समय के लिए नजर रुकी, फिर उनकी दृष्टि घूमी और फिर रुकी। जैसा कि हम कह चुके हैं जब उनकी दृष्टि एक जगह पर रुकती है या Fix हो जाती है, तब भी वे पढ़ रहे होते हैं। इसी रुकावट के दौरान ही उन्हें पठन-सामग्री का बोध (Perception) होता है। इस प्रकार नजर दौड़ाने और नजर रोकने का सिलसिला जारी रहता है, परन्तु ब्रेल पढ़ने के दौरान कम-से-कम उस समय तक, जब तक कि बच्चे तेज गति से पढ़ना सीख नहीं पाते, स्पर्श द्वारा पढ़ने की प्रक्रिया ऊपर लिखी प्रक्रिया से भिन्न होती है अथवा शायद हमें ऐसा लगता है। इसका कारण दृष्टिगत सामग्री और ब्रेल सामग्री के पढ़ने में गति का जो अन्तर होता है, भी हो सकता है।

पश्चिम में अंग्रेजी ब्रेल के साथ जो प्रयोग किये गये हैं उनसे पता चलता है कि जहाँ दृष्टिवान बच्चे 250-300 शब्द प्रति मिनट पढ़-समझ लेते हैं, वहीं दृष्टिहीन बच्चे 150-180 शब्द प्रति मिनट ही पढ़ते हैं।

उपरोक्त प्रयोग 15-16 वर्ष की आयु के बच्चों के साथ ही किया गया है, जो कि जूनियर हाई स्कूल से थोड़ा आगे निकल चुके होते हैं। यह स्मरण रहे कि अंग्रेजी ब्रेल में संकोच और संक्षेप (Contractions and Abbreviations) इस्तेमाल किये जाते हैं। यहाँ दो-तीन बातें और भी याद रखनी होंगी। पढ़ने की प्रक्रिया में बुद्धि का विशेश योगदान रहता है। अधिक बुद्धिमान बच्चे कम बुद्धिमान बच्चों की तुलना में अधिक गति से पढ़ सकते हैं। चूँकि पठन प्रक्रिया में संदर्भों का विशेष महत्त्व होता है इसलिए भाषा ज्ञान में अधिक निपुण छात्र उन बच्चों की तुलना में अधिक गति से पढ़ेंगे ही, जिनका भाषा ज्ञान अपेक्षाकृत उतना सुदृढ़ नहीं होता। एक बात और वह यह कि हम प्रायः परिचित सामग्री को अधिक तेजी से पढ़ते हैं और ऐसी सामग्री को उतनी तेजी से नहीं पढ़ सकते, जिसमें ऐसे शब्दों का प्रयोग हुआ हो, जिनसे हम परिचित ही न हों बल्कि अपरिचित शब्दों पर तो हम रुक से ही जाते हैं।

आइये, अब हम स्पर्शगत और दृष्टिगत सामग्री के पढ़ने में आने वाले अन्तर को देखें।

जब हम किसी दृष्टिहीन बच्चे को स्पर्श द्वारा ब्रेल पढ़ते हुए देखते हैं तो ऐसे लगता है कि वह पहले एक-एक अक्षर पढ़ता है, फिर उन अक्षरों को जोड़कर शब्दों को पहचानता-समझता है, परन्तु जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, यह परिस्थिति ब्रेल सीखने के प्रारम्भ में ही दृष्टिगोचर होती है। बहुत-से छात्र अंग्रेजी ब्रेल को 100-120 शब्द प्रति मिनट की गति से पढ़ते हैं। यदि आप औसतन एक शब्द में 5 अक्षरों को भी लें तो यह सिद्ध हुआ कि एक दृष्टिहीन छात्र ऐसी स्थिति में लगभग 500 अक्षरों को स्पर्श द्वारा प्रति मिनट पढ़ रहा होता है। इन 500 अक्षरों में शब्दों के बीच की रिक्तियाँ (Spaces) सम्मिलित नहीं हैं। इसका अर्थ यह भी हुआ कि तेज गति से पढ़ने वाले छात्र एक सैकेण्ड में 8-9 अक्षर पढ़ लेते हैं। एक सैकेण्ड में 8-9 अक्षर पढ़ने का मतलब यह हुआ कि वे एक ही बार में अक्षर-समूहों या शब्दों की पहचान कर लेते हैं न कि एक-एक अक्षर को पढ़कर और उन्हें जोड़कर शब्द बनाते हैं या यूँ कहा जाए कि यह प्रक्रिया दृष्टिगत प्रक्रिया से कुछ मिलती-जुलती-सी होती है, हालाँकि गति के लिहाज से यह दृष्टिगत पठन से काफी कम होती है।

आइये, अब कुछ ध्यान ब्रेल लिपि को समझने की ओर दें।

जैसा कि हमने ऊपर कहा ब्रेल लिपि त्रुटिरहित नहीं है। इसका कारण इस लिपि का छः बिन्दुओं के ढाँचे (Matrix) के भीतर सीमित होना है।

(1) बहुत-सी एक जैसी आकृतियाँ ब्रेल सैल के ऊपर वाले 4 बिन्दुओं या नीचे वाले 4 बिन्दुओं में आती हैं, जिन्हें पहचानना कठिन हो जाता है कि क्या 'वे' में ऊपर के भाग वाली आकृतियाँ हैं या नीचे के भाग वाली।

(2) ऐसी भी एक जैसी आकृतियाँ होती हैं जो 6 बिन्दुओं के ढाँचे के अन्तर्गत बिन्दु 1-2-3 या बिन्दु 4-5-6 के बिन्दु समूह में पड़ती हैं, जैसे-बिन्दु 1-2 या बिन्दु 4-5.

(3) बहुत-सी आकृतियाँ एक-दूसरे की ठीक उलट होती हैं, जिनके पहचानने में गलती होना स्वाभाविक है, जैसे-बिन्दु 1-3-4 और बिन्दु 1-4-6.

(4) इसके बाद यदि हम किसी भाषा के कोड को देखें तो हम पाएँगे कि एक ही आकृति शब्द अथवा वाक्य के किस स्थान पर स्थित है, उसी के अनुसार उसके अर्थ बदल जाते हैं, जैसे-बिन्दु 3-5-6 'झ' अक्षर के लिए है और 'बन्द उद्धरण चिह्न' के लिए भी।

आइये, अब हम कुछ बात संकोचों (Contractions) के प्रयोग के बारे में करें।

यह पहले से ही स्पष्ट करना होगा कि इस विषय में मतैक्य का अभाव है। कुछ लोग इनका कड़ाई से विरोध करते हैं और कुछ लोग इनके पक्षधर हैं। हाल ही में यूरोप में जो स्थिति उत्पन्न हुई है, उसके अन्तर्गत इंग्लैण्ड को छोड़कर शेष तमाम यूरोपीय देशों ने संकोचों का बहिष्कार करने का निर्णय लिया है। अंग्रेजी भाषा-भापी देश जैसे-संयुक्त राज्य' अमेरिका, कनाडा, इंग्लैण्ड और ऑस्ट्रेलिया निरन्तर संकोचों का इस्तेमाल करते रहेंगे।

इस विषय में यह कहना अत्यन्त कठिन है कि कौन-सा पक्ष सही है और कौन-सा पक्ष गलत। संकोचों के प्रयोग के पक्ष में भी बहुत-से तर्क दिये जा सकने हैं और विरोध में भी। संकोचों के इस्तेमाल से एक बात तो निश्चित है कि यदि छात्र इनको अच्छी तरह से सीख लें तो उनकी पढ़ने की गति तेज हो सकती है, क्योंकि वे एक ही समय में ज्यादा ब्रेल सामग्री पढ़ सकते हैं, परन्तु यदि उन्हें संकोचों पर महारत हासिल नहीं है तो निश्चित रूप से उन्हें पढ़ने में कठिनाई होगी ही, बल्कि यूँ कहना ठीक होगा कि वे ब्रेल को पढ़ ही नहीं पाएँगे। इसलिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि यदि संकोचों का प्रयोग होना ही है तो संकोच-संहिता बहुत आसान-सी हो, संकोचों की संख्या बहुत अधिक न हो और संकोचों के प्रयोग सम्बन्धी नियम जटिल न हों। यदि हम स्टैंडर्ड अंग्रेजी ब्रेल में इस्तेमाल होने वाले संकोचों को देखें तो हमें ज्ञात होगा कि इनके इस्तेमाल के नियम बहुत जटिल हैं और बहुत-से छात्र इन पर महारत हासिल करने में असफल रहते हैं। संकोचों के प्रयोग की समस्या और भी जटिल तब हो जाती है जब हम इन्हें प्रौढ़ अवस्था में दृष्टिहीन हुए व्यक्तियों की नजर से देखें। यूरोपीय देशों ने संकोचों के बहिष्कार का जो निर्णय लिया है, उसका एक बड़ा कारण यह भी हो सकता है कि इन देशों में दृष्टिहीनता की समस्या अब वृद्धावस्था की समस्या हो गयी है। कहा जाता है कि स्विट्जरलैण्ड में कई वर्षों से कोई दृष्टिहीन शिशु पैदा ही नहीं हुआ है और न ही बाल्यावस्था में दृष्टिहीनता का शिकार हुआ है, किन्तु भारत में स्थिति बिल्कुल इसके विपरीत है। अनेक कारणों से इस देश में हजारों शिशु दृष्टिहीन पैदा होते हैं और हजारों बाल्यावस्था में दृष्टि खो बैठते हैं।

हमारे विचार में संकोचों के विषय में रूढ़िवादी रवैया अपनाना सही नहीं है। हमें बीच का रास्ता अपनाना होगा। हमारे विचार में संकोचों का होना लाभप्रद हो सकता है, परन्तु इसकी शर्त यह है कि संकोच बहुत आसान हों और उनके प्रयोग के नियम बिल्कुल भी जटिल न हों। यही बात कुछ हद तक संक्षेपों के

इस्तेमाल पर भी लागू होती है, लेकिन संक्षेपों का पढ़ना और उन्हें समझना संकोचों की तुलना में बहुत आसान होता है।

एक बात और जिसके विषय में हम चर्चा करना चाहेंगे, वह यह है कि कुछ लोगों के मतानुसार संकोचों के इस्तेमाल का एक दुष्परिणाम यह होता है कि ब्रेल पाठकों की वर्तनी का बोध बुरी तरह से प्रभावित होता है, परन्तु हमें यह मत कुछ ठीक नहीं लगता। स्टैंडर्ड अंग्रेजी ब्रेल में 200 से कुछ ही कम संकोच व संक्षेप हैं और इनमें से भी सम्पूर्ण शब्दों (Whole Words) के लिए प्रयोग किये गये संकोचों की संख्या और भी कम है, परन्तु अंग्रेजी भाषा में तो लाखों शब्द हैं, तो यह कैसे मान लिया जाए कि संकोचों के इस्तेमाल से पाठकों का वर्तनी बोध बुरी तरह से प्रभावित होता है। हमारे विचार में वर्तनी बोध की समस्या के कारणों को कहीं और ढूँढना होगा।

अब कुछ बात हम पठन प्रक्रिया के संदर्भ में कौन-से हाथ का इस्तेमाल करना बेहतर होता है, उसकी चर्चा करेंगे।

जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं कि हमारा बायाँ हाथ मस्तिष्क के दायें भाग से प्रभावित होता है और मस्तिष्क का दायाँ भाग आकृतियों को पहचानने में मुख्य भूमिका अदा करता है, इसलिए दायें हाथ की तुलना में बायें हाथ से पढ़ना बेहतर होगा, परन्तु आमतौर पर हम हर काम करने के लिए दायें हाथ का ही प्रयोग अधिक करते हैं। कुछ लोग अनेक कारणों से बायें हाथ से भी काम करते हैं और कुछ दोनों हाथों से काम करने में बराबर समर्थ होते हैं, इसलिए प्राय: ब्रेल पढ़ने में दायें हाथ का ही वर्चस्व रहता है। इस विषय पर कोई ज्यादा खोजबीन नहीं हुई है, इसलिए विश्वसनीय रूप से कुछ भी कहना कठिन है। इस प्रक्रिया में ब्रेल पढ़ने वाले की तुलना में ब्रेल पढ़ाने वाले का अधिक दखल रहता है। ऐसा देखा गया है कि यदि कोई अध्यापक बायें हाथ से पढ़ने का आदी है तो वह अपने छात्रों को बायें हाथ से ही पढ़ने के लिए प्रेरित करता है। हमने कई ब्रेल पाठकों को बायें हाथ से बहुत तेज गति से ब्रेल पढ़ते हुए देखा है, परन्तु जैसा हमने कहा कि किसी अन्तिम नतीजे पर पहुँचना बहुत मुश्किल है। एक बात तय है कि जितनी अधिक उंगलियों से पढ़ा जाए, प्राय: उतना ही अच्छा परिणाम निकलता है। एक प्रयोग आप स्वयं भी कर सकते हैं। आप किसी दूसरे व्यक्ति से कहें कि वह कागज पर अपने मन से कोई भी अक्षर लिखे, फिर आप उसे बारी-बारी से उस उंगली से पढ़ने की कोशिश करें जिससे आप पढ़ने के आदी नहीं है, उदाहरणस्वरूप-यदि आप तर्जनी से ब्रेल पढ़ते हैं तो इस अक्षर को आप दायें व बायें हाथ की बड़ी उंगली से बारी-बारी से पढ़ने की कोशिश करें। आपको

स्वयं ही पता चल जाएगा कि अक्षर पहचानने में आपका कौन-सा हाथ ज्यादा सक्षम है।

विशेषज्ञ आमतौर पर दोनों हाथों की तर्जनियों को एक विशेष प्रकार से इस्तेमाल करने की सलाह देते हैं। उनके अनुसार ब्रेल की पंक्ति पर आपकी दोनों तर्जनी रहनी चाहिएं। आप उस पंक्ति को दायीं तर्जनी से पढ़ें और कुछ दूरी तक बायीं तर्जनी भी साथ-साथ चले, फिर बायीं तर्जनी पंक्ति के बीच में ही छोड़ दें और पंक्ति का शेष भाग केवल दायीं तर्जनी से ही पढ़ें। ज्यों ही पहली पंक्ति समाप्त होने वाली हो तो अपने बायें हाथ की तर्जनी को अगली लाइन के शुरू में ले जाएं। पहली लाइन के समाप्त होते ही बायीं तर्जनी अगली पंक्ति के कुछ शब्द पढ़ ले और फिर शेष भाग दायीं तर्जनी पढ़े। इस प्रक्रिया से पढ़ने का तारतम्य बना रहेगा, परन्तु इस आदत को डालने के लिए विशेष प्रयास करना होगा। जैसा कि हमने कहा प्रायः छात्र अकेले दायें हाथ की तर्जनी से पढ़ने के आदी होते हैं और उनमें से बहुत-से अच्छी गति से भी पढ़ लेते हैं। एक बार जैसी भी आदत पड़ जाए उसका बदलना यदि असम्भव नहीं तो काफी मुश्किल तो है ही, परन्तु अध्यापकों का उत्तरदायित्व यह है कि वे अपने छात्रों में शुरू से ही पढ़ने की अच्छी आदत डालें। ब्रेल पुस्तक रखने के लिए उचित ऊँचाई की मेज का होना जरूरी है और बैठने वाली बेंच या कुर्सी की ऊँचाई मेज की ऊँचाई से बहुत ज्यादा या कम न हो, इससे पुस्तक पर हाथ चलाने में कठिनाई हो सकती है।

अब हम उन बालकों की बात करेंगे जो अध्यापक के हर प्रकार के प्रयास के बावजूद ब्रेल पढ़ना नहीं सीखते।

यह कहना तो सम्भव नहीं है कि ऐसे बालकों की संख्या का प्रतिशत कितना है, परन्तु हर स्कूल में आपको कुछ ऐसे बच्चे अवश्य मिल जाएँगे। उनकी ब्रेल पढ़ने में अयोग्यता का कारण बताना तो और भी कठिन है क्योंकि हमने आज तक ऐसा कोई प्रयोगात्मक अध्ययन कहीं नहीं पाया, केवल कुछ अनुमान ही लगाए जा सकते हैं। हो सकता है ऐसे बच्चों का स्नायुतन्त्र स्पर्श द्वारा भेजे गये संकेतों को समझने में असफल हो। यहाँ याद रखना होगा कि ऐसा नहीं है कि ब्रेल पढ़ने के अयोग्य बच्चे बौद्धिक स्तर में दूसरे बच्चों की तुलना में कमजोर हों। ऐसा अवश्य कहा जा सकता है कि देखने में मानसिक रूप से स्वस्थ बच्चे पढ़ने के प्रति यदि उदासीन हों तो वे शायद किन्हीं विकृत मनोवृत्ति का शिकार हों। बच्चों पर यदि अल्पायु में ही पढ़ने के लिए जोर-जबरदस्ती की जाए तो शायद उनके मन में अचेतन रूप से विरोधी भावनाएं जागृत हो सकती हैं। यहाँ मतलब यह है कि जिन बच्चों को पढ़ने में असफल रहने पर यातनाएं दी जाएं अथवा यातनाओं का

भय पैदा किया जाए तो इसका एकदम विपरीत प्रभाव पड़ सकता है, इसलिए यह आवश्यक है कि बच्चों को किसी तरह से भी डराया-धमकाया न जाए। यह भी हो सकता है कि अभी उन्हें पढ़ना सीखने में दो-तीन वर्ष और लगें। जिन घरों से वे बच्चे आए हैं, उनका वातावारण कैसा रहा होगा उसको जान लेना भी आवश्यक है। क्या ऐसा तो नहीं कि अध्यापक किसी बालक विशेष को किन्हीं कारणों से पसन्द न करता हो या उसके प्रति दुर्व्यवहार के लिए जिम्मेदार हो? इस सब कारणों का सूक्ष्म विश्लेषण करना होगा।

ऐसा भी कोई विश्लेषणात्मक अध्ययन हमारे सामने नहीं है, जिससे यह ज्ञात हो सके कि आवासीय विद्यालयों (Residential Schools) और अनावासीय विद्यालयों (Day Schools) में ब्रेल पढ़ने के अयोग्य छात्रों की तुलनात्मक संख्या क्या है? ऐसे अध्ययन से यह बात सुनिश्चित करने में आसानी होगी कि बच्चों पर उनके माता-पिता के रवैये का क्या प्रभाव पड़ता है।

अब हम इस विषय पर बात करेंगे कि ब्रेल पठन की गति को बढ़ाने के लिए क्या कुछ किया जा सकता है।

विशेषज्ञों का मत है कि हम इसलिए मंद गति से पढ़ते हैं क्योंकि हम मंद गति से ही पढ़ते हैं (We read slowly because we read slowly)। दूसरे शब्दों में यदि हम ब्रेल लाइनों पर अपनी स्वाभाविक गति से तेज हाथ चलाएं तो हमारे पढ़ने की गति स्वयं तेज हो जाएगी। यहाँ यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि इस प्रक्रिया से गति तो तेज होगी ही परन्तु क्या पठन-सामग्री का अर्थ-बोध भी होगा? अमेरिका में ऐसी अनेक कार्यशालाओं का आयोजन किया गया है, जिनमें तीन सप्ताह तक पाठकों को सुविचारित ढंग से तेज गति से पढ़ने का प्रशिक्षण दिया गया है। इन कार्यशालाओं में पाठकों से कहा जाता है कि वे ब्रेल पंक्तियों पर जितनी भी गति से अपनी उंगली को चला सकते हैं चलाएं, शर्त केवल यह रहती है कि उनकी उंगली प्रत्येक बिन्दु को छुए जरूर। इस तरह पढ़ने से पाठकों को पहले-पहल कहीं-कहीं एक-आध शब्द ही पल्ले पड़ता है, परन्तु धीरे-धीरे ऐसे शब्दों की संख्या बढ़ जाती है, जिन्हें पाठक समझ लेते हैं। याद रहे कि पाठक से यह अपेक्षा की जाती है कि वह इस प्रशिक्षण के दौरान अपनी गति में कमी न लाए। कुछ ही दिनों में पाठक तीव्रतम गति के रहते सम्पूर्ण सामग्री को समझने योग्य हो जाता है। दावा किया गया है कि इन कार्यशालाओं के खत्म होने तक पाठक आश्चर्यजनक गति से पढ़ने में कामयाब होते है। हमारे लिए इन दावों को स्वीकार करना चाहे मुश्किल हो, पर उनके अनुसार पढ़ने की गति 600 या 700 शब्द प्रति मिनट तक पहुँच जाती है। ये कार्यशालाएं दृष्टिवान लोगों के लिए चलाई

गयी कार्यशालाओं के सिद्धान्तों पर आधारित हैं। दृष्टिवान लोगों के लिए आयोजित ऐसी कार्यशालाओं में दावे के साथ कहा गया है कि पढ़ने की गति 3,000 शब्द प्रति मिनट तक हो जाती है। धीरे-धीरे पढ़ी हुई सामग्री पूरी तरह समझ में आने लगती है। परन्तु खेदजनक बात यह है कि इन कार्यशालाओं में सफलतापूर्वक अच्छे परिणाम प्राप्त करने के बाद जब प्रतिभागी अपने साधारण जीवन की ओर लौटते हैं तो वे पुनः अपनी पुरानी पठन गति पर आ जाते हैं अथवा उनके पढ़ने की गति में प्रति मिनट दो-चार या पाँच-छः शब्दों का ही इजाफा होता है। हमारा मानना है कि यदि हम सुविचारित ढंग से अपनी स्वाभाविक गति में तेजी लाएं तो कुछ-न-कुछ लाभ अवश्य ही होगा, परन्तु शर्त वही रहेगी कि बढ़ी हुई गति से पढ़ने की आदत को बरकरार रखने के लिए बहुत समय तक सचेत कोशिश जारी रखनी होगी, क्योंकि किसी भी नई आदत को अपने व्यवहार का हिस्सा बनाने के लिए स्व-प्रेरणा (Motivation) अत्यावश्यक है। हम यहाँ फिर दोहराना चाहेंगे कि शब्द या वाक्य विधि के द्वारा पढ़ना सीखना हर अगले कदम के लिए बुनियादी जरूरत है। यदि ऐसा नहीं तो आगे कुछ भी नहीं।

तेज गति से पढ़ने की प्रेरणा बच्चों को कहाँ से मिले? यह एक सटीक प्रश्न है। बच्चों के लिए ऊँची कक्षाओं में तेज गति से पढ़ने वाले प्रेरणा स्रोत मॉडल्स् (Role Models) की भूमिका बहुत अहम है। प्रत्येक कक्षा में थोड़े-थोड़े अंतराल के बाद पठन प्रतियोगिताओं का आयोजन करना भी जरूरी है। हर कक्षा और पूरे स्कूल में 'फास्टैस्ट ब्रेल रीडर' (Fastest Braille Reader) जैसे खिताबों से अलंकृत पदों (Positions) को प्राप्त करने के लिए बच्चों में होड़ लग जाए, ऐसा वातावरण निर्मित करना होगा। इस सम्बन्ध में 'ऑल इण्डिया कन्फेडरेशन ऑफ दी ब्लाइंड, दिल्ली' के प्रयासों की सराहना अवश्य करनी होगी, जो प्रतिवर्ष राष्ट्रीय स्तर पर ब्रेल पठन प्रतियोगिताओं का आयोजन करती है, हम तो यह चाहते हैं कि हर प्रदेश में ऐसी प्रतियोगिताओं का आयोजन हो और जो बच्चे इस प्रकार सर्वश्रेष्ठ साबित हों, ऑल इण्डिया कन्फेडरेशन ऑफ दी ब्लाइंड द्वारा उन्हीं बच्चों के मध्य राष्ट्रीय स्तर पर प्रतियोगिता आयोजित करे।

यहाँ हम एक और बात भी कहना चाहेंगे। आप पूछ सकते हैं कि भारतीय भाषाओं में ब्रेलीकृत सामग्री के अभाव में आप कैसे अपेक्षा करेंगे कि बच्चों में ब्रेल पठन-पाठन की आदत जागृत की जाए। यहाँ तो यह स्थिति है कि ऐसे बहुत-से दृष्टिहीन छात्र स्नातक व स्नातकोत्तर उपाधियाँ प्राप्त कर रहे हैं, जिन्हें ब्रेल का सिरे से ज्ञान ही नहीं है या अगर कुछ है तो वह न के बराबर ही है। यहाँ पर विश्व पटल पर घटित एक सकारात्मक कदम का हम बयान करना जरूरी समझते

हैं, वह यह कि संयुक्त राज्य अमेरिका में हाल ही के वर्षों में प्रत्येक दृष्टिहीन बालक के लिए ब्रेल का ज्ञान प्राप्त करना अनिवार्य कर दिया गया है। भारत में हाल ही में नये-नये अनेक ब्रेल प्रेसों की स्थापना हुई है, जिसके कारण ब्रेल सामग्री की उपलब्धता में काफी वृद्धि हुई है, परन्तु इसका फायदा क्या है? पढ़ने वाले भी तो चाहिएं और ऐसे विद्यालय भी हों जहाँ ब्रेल पठन-पाठन पर विशेष बल दिया जाता हो और जहाँ वर्तनी या Spelling में कमजोरी को तिरस्कार की नजर से देखा जाए। ऑल इण्डिया कन्फेडरेशन ऑफ दी ब्लाइंड की एक बार फिर सराहना करनी होगी, जिन्होंने नेशनल बुक ट्रस्ट और प्रादेशिक बुक ट्रस्टों को उनके द्वारा छपी हुई रुचिकर पुस्तकों को ब्रेलीकृत करवाने के लिए राजी किया है और जिसके प्रयास इस ओर भी बराबर जारी हैं कि भारतीय भाषाओं के लिए ऐसे सॉफ्टवेयर निर्मित किये जाएं जिनके निमित्त कम्प्यूटरों द्वारा भारतीय भाषाओं का ब्रेलीकरण स्वचल (Automatic) हो सके, जैसा कि अंग्रेजी ब्रेल अथवा दूसरी पश्चिमी भाषाओं के लिए होता है। यदि ऐसी स्थिति उत्पन्न होती है तो फिर दृष्टिहीन बच्चों के लिए दृष्टिवान बच्चों का मुकाबला करने का मैदान साफ हो जाएगा। ब्रेल लिपि में कॉमिक्स आदि आसानी से उपलब्ध होने लगेंगे, जिसका सुपरिणाम स्पष्ट है।

उपरोक्त अनुच्छेदों में हमने ब्रेल शिक्षण के विभिन्न पहलुओं पर सरल भाषा में अपने विचार रखे हैं। ब्रेल शिक्षण की शब्द और वाक्य विधि को ब्रेल शिक्षण का एकमात्र और सही साधन साबित करने का प्रयत्न किया है। स्पर्श से पढ़ने के लिए कौन-से बोधात्मक घटक कैसी भूमिका अदा करते हैं, इसका विश्लेषण करने का भी प्रयास किया है। इसके अतिरिक्त विश्व में ब्रेल की क्या स्थिति है, उसकी भी थोड़ी-बहुत चर्चा की है। हम इस लेख का इस आशा के साथ उपसंहार करते हैं कि हमारा प्रयास हमारे पाठकों के लिए विचारोत्तेजक सिद्ध होगा।

अध्याय-9

दृष्टिबाधितों की शिक्षा हेतु उपयुक्त उपकरणों का परिचय

-डॉ. एस. आर. मित्तल

शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को उसकी क्षमता व योग्यता के अनुरूप समाज के लिए अधिक-से-अधिक उपयोगी बनाना तथा व्यक्ति का सर्वांगीण विकास करना है। किसी भी व्यक्ति को शिक्षा प्रदान करने के लिए ज्ञानेन्द्रियों की बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है, किसी ज्ञानेन्द्रिय/ज्ञानेन्द्रियों के अभाव में शिक्षा प्रदान करना एक कठिन कार्य होता है, किन्तु यदि ऐसी दशा में कुछ विशेष क्रियाओं या क्रियाविधि का उपयोग किया जाए तो यह कार्य सुगम हो सकता है।

दृष्टिबाधिता या दृष्टिविकलांगता एक ऐसी दशा है, जिसमें एक ज्ञानेन्द्रिय-दृष्टि द्वारा व्यक्ति को सूचना प्राप्त नहीं हो पाती है। दृष्टिवान व्यक्ति लगभग 80 प्रतिशत सूचनाएं दृष्टि के माध्यम से प्राप्त करता है। अतः दृष्टिबाधित व्यक्ति इन सूचनाओं से वंचित हो जाता है, जिससे उसे शिक्षा प्राप्त करने में कठिनाई होती है, किन्तु कुछ विशेष साधनों तथा क्रियाओं का प्रयोग करके इस कठिनाई को दूर किया जा सकता है। ये उपकरण या साधन तथा क्रियाएं विभिन्न विषयों का ज्ञान देने में सहायक होती हैं। दृष्टिबाधित बालकों की शिक्षा को सुगम बनाने के लिए कुछ उपकरणों या साधनों का प्रयोग किया जाता है। इन्हें मुख्यतः दो भागों में बाँट सकते हैं:

1. परंपरागत उपकरण
2. आधुनिक उपकरण

प्रस्तुत अध्याय में केवल प्रथम श्रेणी अर्थात् परंपरागत उपकरणों का वर्णन किया जा रहा है।

परंपरागत उपकरण वे उपकरण हैं, जिनका प्रयोग दृष्टिबाधित बालकों को शिक्षा देने के लिए बहुत पहले से ही किया जा रहा है। इनमें से कुछ आज भी प्रयोग किये जाते हैं तथा कुछ उपकरणों का प्रयोग बंद या कम हो गया है। इसका कारण उन उपकरणों की कुछ कमियाँ हैं। परंपरागत उपकरणों को निम्नलिखित चार प्रमुख भागों में बाँटा जा सकता है:-

(क) लेखन उपकरण
(ख) गणितीय उपकरण
(ग) अनुस्थिति व चलिष्णुता उपकरण
(घ) ब्रेल उत्पादन उपकरण

(क) लेखन उपकरण:

दृष्टिबाधित बालकों की शिक्षा के लिए पूर्व में कई प्रकार की विधियाँ अपनाई गईं। इन सभी विधियों में ब्रेल सबसे अधिक सुगम व प्रचलित रही है। ब्रेल लिखने के लिए कई प्रकार के उपकरणों का प्रयोग किया जाता है, जो कि निम्न प्रकार हैं:

1. **ब्रेल स्लेट**- ब्रेल लेखन हेतु ब्रेल स्लेट का प्रयोग किया जाता है। इसमें ब्रेल लिखने के लिए खाँचे बने होते हैं, जिनसे एक नुकीली पिन अर्थात् स्टाइलस की सहायता से दबाकर ब्रेल के बिंदु उभारे जाते हैं। यह आरम्भिक अवस्था में लिखना सिखाने का एक बहुत सशक्त माध्यम है, जो कि बहुत आसानी से उपलब्ध है। ब्रेल स्लेट या ब्रेल लेखन पाटी दो प्रकार की होती है। पहली लकड़ी द्वारा निर्मित तथा दूसरी प्लास्टिक से निर्मित होती है। लकड़ी की ब्रेल स्लेट में सबसे ऊपर की ओर पेपर को रोकने के लिए एक क्लैम्प लगा होता है तथा स्लेट की दोनों साइडों में छोटे-छोटे छिद्र समान अन्तर पर बने होते हैं, जिनमें लेखन गाइड को फंसाकर ब्रेल लिखी जाती है (देखें चित्र-1)। लकड़ी की ब्रेल स्लेट दो आकार की होती है। बड़ी ब्रेल स्लेट का माप 355 मि.मी. x 245 मि.मी. तथा छोटी ब्रेल स्लेट का माप 285 मि.मी. x 188 मि.मी. होता है। प्लास्टिक की ब्रेल स्लेट को 'मार्बर्ग ब्रेल स्लेट' के नाम से भी जाना जाता है (देखें चित्र-2)। इसमें दो पृष्ठ होते हैं। एक पृष्ठ पर ब्रेल लेखन हेतु खाँचे बने होते हैं तथा दूसरे पृष्ठ पर स्टाइलस से दबाव बनाने के लिए छोटे-छोटे गड्ढे होते हैं। प्लास्टिक वाली ब्रेल स्लेट में 27 लाइनें होती हैं। इस स्लेट की विशेष बात यह है कि इसमें ब्रेल लिखते समय दो पंक्तियों के बीच लाइन छोड़ने की आवश्यकता नहीं होती है, जबकि लकड़ी की ब्रेल स्लेट में एक लाइन लिखने के बाद एक लाइन की जगह खाली छोड़नी होती है तथा पूरा पेज भर जाने के बाद पेपर को पलटकर लिखा जाता है। दोनों प्रकार की ब्रेल स्लेटों में ब्रेल लिखना थका देने वाला कार्य हो सकता है, क्योंकि ब्रेल लिखते समय प्रत्येक बिंदु को दबाकर लिखा जाता है।

2. **स्टेन्स्बी**- ब्रेल लेखन हेतु एक विशेष प्रकार की मशीन प्रयोग में लाई जाती थी, जिसे स्टेन्सबी कहते थे। इस मशीन से ब्रेल का एक अक्षर लिखने

के लिए एक साथ उस अक्षर के बिंदुओं को दबाया जा सकता था। इस मशीन में ब्रेल के 6 बिंदुओं के लिए 6 बटन बने होते थे। स्टेन्सबी के बटनों पर उंगलियों को रखने का तरीका बहुत विकृत था अर्थात् कलाई को टेढ़ा करके लिखना पड़ता था: अतः इससे ब्रेल लिखते समय बहुत जल्दी थकान हो जाती थी, इसलिए इस मशीन का प्रयोग धीरे-धीरे कम हो गया।

3. **ब्रेलर-** ब्रेलर ब्रेल लिखने की एक ऐसी मशीन है जिसके द्वारा एक बार में ब्रेल के एक अक्षर के सभी बिंदु उभारे जा सकते हैं। इस मशीन में ब्रेल के 6 बिंदुओं के लिए 6 बटन होते हैं, जिसमें बटन या बटनों को एक साथ दबाया जाता है। ब्रेलर से ब्रेल लिखते समय क्या लिखा गया है, उसे साथ-ही-साथ पढ़ा भी जा सकता है। ब्रेलर की सहायता से बहुत तेजी से ब्रेल लिखी जा सकती है। हमारे देश में तीन प्रकार के ब्रेलर-पर्किन्स ब्रेलर, ताज ब्रेलर तथा मार्बर्ग ब्रेलर-प्रयोग में लाये जाते हैं। इनमें से पर्किन्स ब्रेलर (देखें चित्र-3) का प्रयोग अधिक किया जाता है क्योंकि यह अधिक कार्यकुशल है। इस ब्रेलर के विभिन्न भागों को विदेश से आयात किया जाता है, फिर दक्षिण भारत में कटपड़ी (तमिलनाडु) नामक स्थान में इन विभिन्न भागों को जोड़कर ब्रेलर का निर्माण किया जाता है। इस यंत्र में लाइन को बदलने के लिए एक लाइन चेन्जर बिंदुओं वाले 6 बटनों के बायीं तरफ लगा होता है। कुछ गलती हो जाने पर बैक स्पेसर की सहायता से लिखने वाले बिंदु को पीछे की ओर भी लाया जा सकता है, जो कि 6 बटनों के दायीं ओर लगा होता है। ब्रेलर में पीछे की ओर दायाँ व बायाँ मार्जिन सेट करने के लिए बटन बने होते हैं।

4. **पॉकेट फ्रेम-** ब्रेल स्लेट का आकार बड़ा होने के कारण उसे इधर से उधर ले जाना एक कठिन कार्य होता है। इसे ध्यान में रखते हुए पॉकेट फ्रेम का निर्माण किया गया (देखें चित्र-4)। जैसा कि नाम से ही ज्ञात होता है, इस यंत्र को जेब में रखकर इधर से उधर लाया-ले जाया जा सकता है। इसके द्वारा ब्रेल कागज के एक छोटे भाग पर या एक छोटे ब्रेल कागज पर लिखा जा सकता है। पॉकेट फ्रेम 2, 4, 6 या इससे अधिक लाइनों वाला हो सकता है और अपनी आवश्यकतानुसार किसी का भी प्रयोग किया जा सकता है। यह प्लास्टिक का बना हुआ होता है।

स्टाइलस: ब्रेल स्लेट व पॉकेट फ्रेम पर ब्रेल लिखने के लिए स्टाइलस का प्रयोग किया जाता हैं (देखें चित्र-5)। इस यंत्र में धातु की नुकीली संरचना होती है तथा उसके ऊपर पकड़ने के लिए प्लास्टिक से बनी संरचना होती है। ब्रेल लिखते समय जिस बिंदु को दबाना है उस बिंदु पर स्टाइलस रखकर उसे

दबाते हैं, जिससे दूसरी ओर ब्रेल लिपि उभरकर आती है। संरचना के आधार पर स्टाइलस कई प्रकार के होते हैं, जैसे-साधारण स्टाइलस, एल्यूमीनियम धातु का बना सुरक्षित स्टाइलस, मोटी पकड़ वाला स्टाइलस इत्यादि।

चित्र 1
लकड़ी की स्लेट

चित्र 2
मार्बर्ग स्लेट

चित्र 3
पर्किन्स ब्रेलर

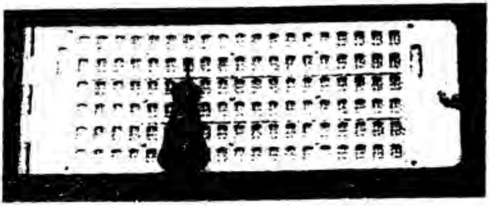

चित्र 4
पॉकेट फ्रेम

चित्र 5
विभिन्न प्रकार के स्टाइलस

(ख) गणितीय उपकरण :

दृष्टिबाधित बालकों के गणित शिक्षण के लिए कई प्रकार के उपकरण प्रयोग में लाये जाते हैं। उच्च कक्षाओं में गणित में कुछ सामग्री दृश्य माध्यम में होती है, जिसे विभिन्न उपकरणों का प्रयोग करके स्पर्श माध्यम में बदल दिया जाता है, जिससे दृष्टिबाधित बालकों के गणित शिक्षण में आसानी होती है। दृष्टिबाधित बालकों को गणित पढ़ाने के लिए विभिन्न उपकरण निम्न प्रकार हैं:-

1. **टेलर फ्रेम-** टेलर फ्रेम (देखें चित्र-6) एक ऐसा यंत्र है जिसकी सहायता से अंकगणित तथा बीजगणित में प्रयुक्त होने वाले चिह्न व संख्याओं को प्रकट करते हैं या लिखते हैं। जैसा कि नाम से विदित है, इसमें एक लकड़ी का फ्रेम होता है, जिसके अन्दर एल्यूमीनियम की एक मोटी चादर (Sheet) लगी होती है। इस चादर में अष्टकोणीय छिद्र बने होते हैं। इन छिद्रों में विशेष प्रकार से बने टाइप्स को अलग-अलग प्रकार से लगाकर संख्याएं, विभिन्न चिह्नों व प्रतीकों को लिखा जाता है। टेलर फ्रेम में टाइप्स रखने के लिए दाहिनी ओर एक छोटा-सा स्थान होता है। टेलर फ्रेम के टाइप्स शीशे के बने होते हैं। टेलर फ्रेम के प्रयोग करने के बाद हमेशा साबुन से हाथ धो लेना चाहिए। टेलर फ्रेम टाइप्स दो प्रकार के होते हैं। पहले अंकगणितीय टाइप्स, जिनकी सहायता से 1, 2, 3, ...0, +, -, x, ÷ , ., = लिखा जाता है व दूसरे बीजगणित टाइप्स, जिनकी सहायता से A, B, C ....X, Y, Z, (), {}, [], वर्ग चिह्न आदि लिखे जाते हैं। इस उपकरण के द्वारा प्रश्नों को हल करने के विभिन्न चरणों को प्रभावशाली ढंग से समझाया जा सकता है, परन्तु प्रत्येक अंक के लिए टाइप उठाकर लगाने के कारण समय अधिक लगता है तथा शीशे की धातु के टाइप बने होने के कारण टाइप्स का प्रयोग स्वास्थ्य के लिए हानिकारक माना जाता है क्योंकि बच्चे प्राय: जिस चीज का प्रयोग करते हैं, उसे अक्सर मुँह में भी डालते हैं। चूँकि शीशा जहरीली धातु है, अतः यह असावधानी की स्थिति में बहुत हानिकर हो सकता है।

2. **अबेकस-** अबेकस (देखें चित्र-7) एक ऐसा यंत्र है, जिसकी सहायता से विभिन्न अंकगणितीय संक्रियाएं की जाती हैं, जिसमें गिनती, गुणा, भाग, जोड़ना, घटाना आदि शामिल हैं। अबेकस का सर्वप्रथम प्रयोग चीन में किया गया। अबेकस आयताकार होता है, जिसमें लम्बवत् रूप में लोहे की 13 या 15 मोटी तारें होती हैं, जिनमें मोती पिरोये हुए होते हैं तथा एक तार में 5 मोती होते हैं। क्रेनमर ने दृष्टिबाधित बालकों के लिए अबेकस प्रयोग हेतु कुछ परिवर्तन किये। दृष्टिबाधित व्यक्ति जब अबेकस पर कार्य करने के लिए अबेकस को स्पर्श करते थे तो मोती ऊपर-नीचे हिल जाते थे, जिससे अबेकस पढ़ना व उस पर कार्य करना

दृष्टिबाधितों के लिए कठिन कार्य था; अतः मोतियों के नीचे फोम लगा दिया जाता है, जिससे कि मोतियों को स्पर्श करने पर वे आसानी से नहीं हिलते। अबेकस में प्लास्टिक से ही बनी एक त्रिभाजन रेखा होती है, जिसके ऊपर प्रत्येक तार में एक मोती व नीचे की ओर चार मोती होते हैं। विभाजन रेखा के ऊपर के सभी मोती अंक पाँच को निरूपित करते हैं जबकि नीचे का प्रत्येक मोती अंक एक को निरूपित करता है। अबेकस की सहायता से जोड़, घटा, गुणा, भाग आदि बहुत जल्दी व आसानी से किये जा सकते हैं। अबेकस के प्रयोग से मानसिक अंकगणित करने की क्षमता भी बढ़ती है। अबेकस के द्वारा किसी सवाल को करने के बाद हम सिर्फ उत्तर को पढ़ सकते हैं, किन्तु उसका प्रश्न क्या था, इस बात की जानकारी नहीं हो पाती। अबेकस को आसानी से जेब में रखकर इधर से उधर ले जाया जा सकता है। अबेकस का विस्तृत प्रयोग समझने के लिए 'अबेकस ज्ञान' (राष्ट्रीय दृष्टिबाधितार्थ संस्थान, 116 राजपुर मार्ग, देहरादून, उत्तरांचल- 248001) अथवा 'Abacus Made Easy' (American Foundation for the Blind, U.S.A.) अथवा (S.R.K.V. College of Education, Post S.R.K.V., Coimbatour) का अध्ययन करें।

3. ज्यामितीय किट- बिना किसी उपकरण की सहायता से दृष्टिबाधित बालकों को रेखागणित पढ़ाना व विभिन्न रेखागणितीय प्रत्यय देना एक बहुत कठिन कार्य है, क्योंकि रेखागणित के अधिकतर प्रत्यय दृश्य आधारित होते हैं। इस कठिनाई को दूर करने हेतु एक ज्यामितीय किट राष्ट्रीय दृष्टिबाधितार्थ संस्थान, देहरादून द्वारा विकसित की गयी, जिसमें दृष्टिबाधित बालकों को रेखागणित के विभिन्न प्रत्यय देने के लिए कई यंत्रों का समावेश किया गया (देखें चित्र-8)। इस किट में ब्रेल स्लेट की भाँति एक बोर्ड होता है, जिस पर रबर लगी होती है तथा सबसे ऊपर की ओर पेपर को पकड़े रखने के लिए क्लैम्प लगा होता है। इसके अलावा इसमें विभिन्न नाम के वृत्त बनाने के लिए विशेष रूप से निर्मित परकार, मशीन से उभारा गया स्केल, लेखन हेतु गाइड, स्टाइलस, समानान्तर रेखा खींचने हेतु प्लास्टिक का समबाहु व समद्विबाहु त्रिभुज, जिसके किनारों पर उभरी हुई लाइनें बनी होती हैं, इत्यादि सामग्री होती है। इस किट की सहायता से दृष्टिबाधित बालक ज्यामिति के विभिन्न प्रत्ययों का ज्ञान प्राप्त कर उन्हें स्वयं निर्मित कर सकते हैं। इस किट द्वारा बनाई गयी ज्यामितीय आकृतियाँ उभरकर ऊपर की ओर आती हैं, जिससे बालक उसे छूकर उसी समय देख सकता है। इस ज्यामितीय किट को किस प्रकार उपयोग किया जाता है, इस बारे में कोई लिखित सामग्री उपलब्ध न होने के कारण विभिन्न स्थानों पर इसे भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रयोग किया जाता है।

4. **स्पर्शीय ज्यामितीय बोर्ड**- स्पर्शीय ज्यामितीय बोर्ड एक ऐसा बोर्ड है, जिस पर रेखागणित के विभिन्न प्रत्ययों को बनाकर आसानी से समझाया जा सकता है। इस बोर्ड में लकड़ी के बोर्ड पर जाली लगी होती है, जिस पर कोई भी कागज रखकर यदि किसी नुकीली चीज से कोई आकृति बनाई जाए तो पेपर के दूसरी ओर उसी आकृति का प्रतिबिम्ब बन जाता है। यह बोर्ड अध्यापकों के लिए बहुत लाभकारी है, क्योंकि इसकी सहायता से वह आकृतियों को चरणबद्ध रूप में बनाकर समझा सकता है। इस बोर्ड में ध्यान रखने वाली बात यह है कि जो कुछ आकृति बनाई जाती है, उसका प्रतिबिम्ब दूसरी ओर उभरकर आता है इस बोर्ड का प्रयोग रेखागणित में ही नहीं अपितु अन्य विषयों को पढ़ाने में भी किया जा सकता है।

5. **बनहम ज्यामिति यंत्र**- पश्चिम के देशों में ज्यामिति के चित्रों को बनाने के लिए बनहम यंत्र का प्रयोग किया जाता था। इस यंत्र में लकड़ी का एक आयताकार बोर्ड होता है, जिस पर छिद्र बने हुए होते हैं तथा कागज पर निशान बनाने के लिए एल्यूमीनियम की छोटी-छोटी कीलनुमा पिन होती थीं। लकड़ी के बोर्ड पर रेखा खींचने के लिए एक दांतेदार पत्ती लगी होती थी। कागज पर कोई आकृति बनाने के लिए छोटी कीलनुमा पिन से उभरे हुए निशान बनाकर आकृति बनाई जाती थी। वृत्त बनाने के लिए एक स्पर व्हील का प्रयोग किया जाता था जिसके एक ओर ऊर्ध्वाधर रूप में धातु का एक दाँतेदार गोला होता था। इस यंत्र की सबसे बड़ी कमी यह थी कि इसमें कागज को फँसाने के लिए कुछ भी यंत्र नहीं था, बल्कि कागज को प्रयोग करने वाला स्वयं उसे नियंत्रित करता था इसलिए कम उम्र के बालक उसे प्रयोग नहीं कर पाते थे। दूसरा, इसकी छोटी-छोटी कीलनुमा आकृति अक्सर खो जाती थी, अतः इसका चलन भारत में सम्भव नहीं हो पाया।

(ग) अनुस्थिति व चलिष्णुता उपकरणः

दृष्टिबाधिता के कारण व्यक्ति पर पड़ने वाले प्रमुख प्रभावों में स्वतंत्रतापूर्वक चलने-फिरने की सीमा मुख्य है। इस कारण दृष्टिबाधित व्यक्ति अपने आसपास के वातावरण की विभिन्न सूचनाओं से वंचित हो जाता है क्योंकि वह स्वयं सूचनाओं तक नहीं पहुँच सकता। दृष्टिबाधित व्यक्तियों की इस सीमा को दूर करने के लिए कई प्रकार के यंत्र या उपकरण प्रयोग में लाये जाते हैं, जिनका विवरण आगे दिया जा रहा है:

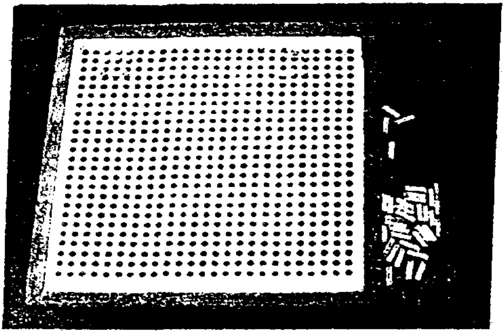

चित्र 6
टेलर फ्रेम

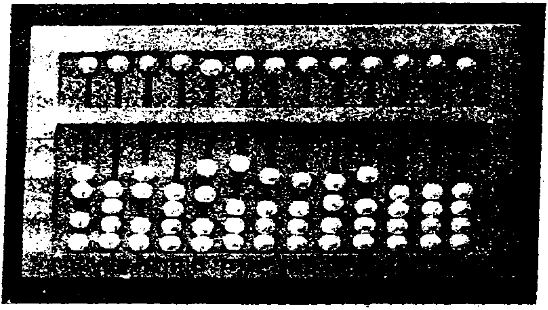

चित्र 7
अबेकस

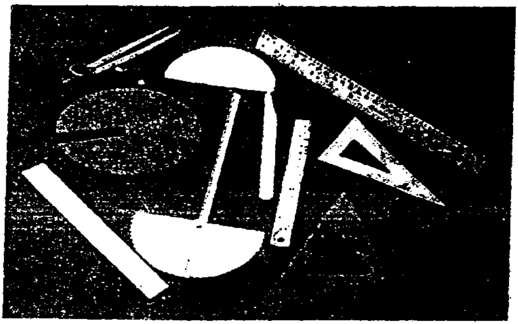

चित्र 8
ज्यामितीय किट

1. गाइड डॉग- पाश्चात्य देशों में अनेक दृष्टिबाधित व्यक्ति अपने साथ कुत्ता लेकर चलते रहे हैं, जो कि उनका मार्गदर्शन तो करता ही है साथ ही मार्ग में आने वाले संकटों का भी आभास करा देता है। अक्सर जब दृष्टिबाधित व्यक्ति के पास दृष्टिवान सहायक नहीं होता है तो वह इसका प्रयोग करता है। इस कार्य के लिए मादा कुत्तों का चयन किया जाता है क्योंकि नर कुत्ते स्वभाव से अधिक उग्र होते हैं। इन मादा कुत्तों को विशेष प्रकार का प्रशिक्षण दिया जाता है। कुत्तों का प्रयोग सर्वदा इसलिए किया जाता है क्योंकि जानवरों में सबसे वफ़ादार व स्वामीभक्त प्रजाति कुत्तों की ही है, किन्तु भारतीय परिस्थितियों में गाइड डॉग का प्रयोग सम्भव नहीं है, क्योंकि अक्सर कुत्ता बिना किसी आपात सूचना के ही भौंकना शुरू कर देता है या दूसरे व्यक्ति या बालक उसे भौंकने के लिए उत्तेजित करते हैं।

2. छड़ी- दृष्टिबाधित व्यक्ति मार्ग में आने वाली विभिन्न बाधाओं से बचाव हेतु बहुत पहले से ही छड़ी का प्रयोग करते आ रहे हैं। दृष्टिबाधित व्यक्ति को चलने-फिरने के लिए स्वावलम्बी बनाने में छड़ी की बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका है। इसकी सहायता से व्यक्ति स्वयं अपने आस-पास के वातावरण में स्वतंत्रतापूर्वक तथा आत्मविश्वास के साथ चल सकता है क्योंकि उसे छड़ी को प्रयोग करने के लिए किसी दृष्टिवान सहायक की आवश्यकता नहीं होती। छड़ी भिन्न-भिन्न माप की आती है। सबसे उपयुक्त छड़ी की लम्बाई उसे प्रयोग करने वाले व्यक्ति की छाती तक होती है। छड़ी के एक सिरे को पकड़कर जब दूसरे सिरे को किसी सतह से टकराया जाता है तो छड़ी यह आभास करा देती है कि टकराने वाली सतह क्या है। छड़ी मुख्यत: दो प्रकार ही होती है- लम्बी छड़ी (देखें चित्र-9) तथा फोल्डिंग छड़ी (देखें चित्र-10)। दोनों ही प्रकार ही छड़ियों की अपनी-अपनी विशेषताएं तथा कमियाँ हैं। लम्बी छड़ी पूर्ण रूप से एल्यूमीनियम के पाइप की बनी होती है। जब यह किसी सतह से टकराती है तो इससे उत्पन्न तरंगें पाइप से होती हुई व्यक्ति के हाथ तक पहुँचती हैं। इस छड़ी का प्रयोग न करते समय इसे संभालकर रखना एक कठिन कार्य है क्योंकि यह मोड़ी नहीं जा सकती। इसके विपरीत फोल्डिंग छड़ी को मोड़ा जा सकता है क्योंकि यह एल्यूमीनियम के छोटे-छोटे चार या पाँच पाइपों को मिलाकर बनाई जाती है, जिसके बीच में इलास्टिक लगी हुई होती है। इसका प्रयोग न करते समय इसे आसानी से मोड़कर थैले या अटैची में रखा जा सकता है। छड़ी का प्रयोग घर या भवन के बाहर आसानी से किया जा सकता है। छड़ी के प्रयोग की कई विधियाँ हैं।

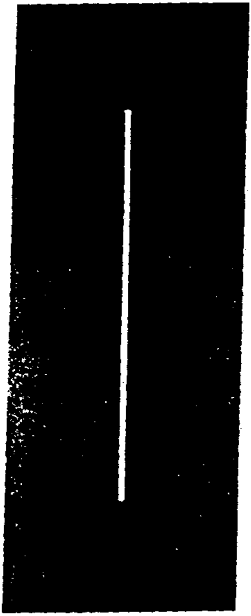

चित्र 9

लाँग केन (LONG CANE)

चित्र 10

फोल्डिंग केन (FOLDING CANE)

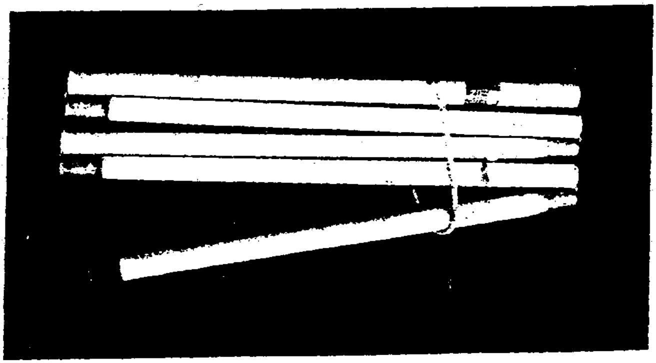

3. विद्युत उपकरण- चलिष्णुता के लिए प्रयोग किये जाने वाले सभी विद्युत उपकरण, उस उपकरण से वातावरण का ज्ञान प्राप्त करने के लिए भेजे जाने वाले संकेत तथा उन्हें प्राप्त करने पर आधारित हैं। इन सभी उपकरणों की यह सीमा होती है कि ये सभी एक निश्चित क्षेत्र में प्रयोग किये जा सकते हैं। इन उपकरणों से विशेष प्रकार के संकेत या ध्वनि निकलती है तथा वातावरण की विभिन्न वस्तुओं से टकराकर वापस लौटती है। इन उपकरणों में मोवात सेंसर, सोनिक गाइड आदि हैं। एक अन्य प्रकार की छड़ी का प्रयोग घर या भवन के अन्दर किया जा सकता है, क्योंकि इसके प्रयोग करने के लिए विद्युत परिपथ का प्रयोग किया जाता है। इन इलेक्ट्रानिक उपकरणों का विस्तृत विवरण एक अन्य अध्याय में दिया गया है।

(घ) ब्रेल उत्पादन उपकरण :

दृष्टिबाधित व्यक्ति के शिक्षण में ब्रेल उत्पादन का बहुत महत्त्व है। प्रारम्भ से ही दृष्टिबाधित व्यक्तियों को लिखित सामग्री उपलब्ध कराने के प्रयास किये जाते रहे हैं, जिससे कि दृष्टिबाधित व्यक्ति भी समाज का एक उपयोगी अंग बन सके और स्वयं को समाज की मुख्य धारा में शामिल कर सके। प्राचीन काल में ब्रेल उत्पादन के लिए किये जाने वाले कार्य वैयक्तिक थे, लेकिन समय बीतने पर और अधिक ब्रेल सामग्री व पुस्तकों की आवश्यकता हुई। इसके लिए विभिन्न ब्रेल मुद्रणालयों की स्थापना हुई। इन मुद्रणालयों में प्रयोग किये जाने वाले उपकरण निम्न प्रकार हैं:

साधारण प्रतिलिपिकरण यंत्र- इस यंत्र में एक बोर्ड पर मोटी पिनों के द्वारा पेज तैयार किया जाता था फिर उस पर कागज रखकर रोलर घुमाकर पेज पर स्पर्शीय सामग्री उभारी जाती थी। एक अन्य विधि के अन्तर्गत स्टीरियो टाइपिंग मशीन द्वारा जस्ते या एल्यूमीनियम की प्लेट पर मास्टर शीट तैयार की जाती है और उस प्लेट को एक प्रिंटिंग प्रेस में फिट करके उस पर कागज रखकर बिजली द्वारा रोलर घुमाकर पुस्तकें तैयार की जाती हैं। वर्तमान में स्टीरियो टाइपिंग मशीन धीमी गति द्वारा कार्य करने के कारण अधिक उपयोगी नहीं समझी जा रही है क्योंकि आज का युग इलेक्ट्रानिक युग होने के कारण तीव्र गति से मुद्रण करने वाले उपकरण बाजार में उपलब्ध हैं। इसके अलावा एक अन्य मशीन, जिसे थर्मोफार्म मशीन कहते हैं, का भी प्रयोग किया जाता है। इस मशीन द्वारा स्पर्शीय चित्र बनाए जाते हैं। इसमें सबसे पहले एक मास्टर शीट तैयार करनी होती है, फिर मास्टर शीट को मशीन में रखकर उस पर ब्रेल ऑन शीट (प्लास्टिक) रखने तथा विद्युत

द्वारा उचित ताप देने से मास्टर शीट पर उभरी आकृति प्लास्टिक शीट पर अंकित हो जाती है।

सारांश:

दृष्टिबाधितों की शिक्षा में उपकरणों की आवश्यकता अपरिहार्य है। उक्त लिखित उपकरणों के आविष्कार व प्रचार ने दृष्टिबाधितों की शिक्षा को सुलभ बनाया है। आवश्यकता इस बात की है कि ये उपकरण सभी दृष्टिबाधितों को सुगमता से उपलब्ध हों तथा अध्यापक व माता-पिता दृष्टिहीनों को इन उपकरणों के प्रयोग में उचित प्रशिक्षण दें तथा इनका प्रयोग करने के लिए प्रेरित करें। साथ ही इन उपकरणों की गुणवत्ता व उपयोगिता में सुधार के लिए आवश्यक अनुसंधान भी इनकी उपयोगिता को प्रभावशाली बनाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकेंगे।

इन सभी उपकरणों की उपलब्धता हेतु निम्न स्थानों पर सम्पर्क कर सकते हैं:

1. राष्ट्रीय दृष्टिबाधितार्थ संस्थान, (सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार के अधीन) 116, राजपुर मार्ग, देहरादून, उत्तरांचल- 248001, फोन : 0135-2744979, फैक्स : 0135-2748147, e-mail : nivh@vsnl.com

2. ऑल इण्डिया कन्फेडरेशन ऑफ दी ब्लाइंड, ब्रेल भवन, सैक्टर-5 रोहिणी, दिल्ली- 110085, फोन : 011-27054082, टेलीफैक्स : 011-27050915, e-mail : aicbdelhi@yahoo.com

3. ब्लाइंड पीपल्स् एसोसिएशन, डा. विक्रम साराभाई रोड, वस्त्रापुर, अहमदाबाद, गुजरात- 380015, Tel. : 079-26440082, 26442070, e-mail : bpa@vsnl.com

4. अलिमको, कानपुर, उत्तरप्रदेश।

अध्याय–10

आधुनिक उपकरणों का परिचय एवं उपयोगिता

– दीपेन्द्र मिनोचा

विकलांगता अपेक्षित, आर्थिक व सामाजिक कार्यों को करने में बाधा उत्पन्न करती है। यदि हम विकलांगता को दूर नहीं भी कर पाते, तब भी उपयुक्त प्रौद्योगिकी एवं उपकरणों का प्रयोग करके कार्यों को करने में आने वाली बाधाओं को कम अवश्य कर सकते हैं। यदि कोई व्यक्ति अल्पदृष्टि होने के कारण किताब में लिखे सामान्य अक्षरों को नहीं पढ़ पाता है, तो मैग्नीफाइंग लैंस (Magnifying Lens) का प्रयोग करके उसकी इस बाधा को दूर अथवा कम किया जा सकता है।

दृष्टिबाधित व्यक्ति के लिए सबसे गम्भीर बाधा उसके लिखने अथवा पढ़ने की अक्षमता है। सामान्य रूप से सूचना वितरित करने के माध्यम दृश्य माध्यम हैं। इस सूचना को दृष्टिबाधित व्यक्ति तक पहुँचाने के लिए उसे श्रव्य अथवा स्पर्श माध्यम में परिवर्तित करना होता है। ब्रेल तथा बोलती पुस्तकें ऐसे ही माध्यमों के उदाहरण हैं, पूर्वकाल में, अत्यन्त सीमित प्रस्तुत सूचनाएं ही इन माध्यमों में प्रस्तुत हो पाती थीं, जिन्हें दृष्टिबाधित व्यक्ति स्वयं स्वतन्त्र रूप से पढ़ सकें। अतः लेखन एवं पठन कार्यों के लिए दृष्टिबाधित व्यक्ति दृष्टिवान व्यक्तियों पर आश्रित रहे हैं। इस निर्भरता को कम करने के लिए सूचना प्रौद्योगिकी एवं उपकरणों ने अनेकों हल प्रस्तुत किए हैं, जिनमें से कुछ के उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं:

इलेक्ट्रॉनिक लेखन उपकरण:

दृष्टिबाधित व्यक्ति की लेखन क्रिया को मूल रूप से दो भागों में बाँटा जा सकता है:-

1. ब्रेल लिपि में लिखना।
2. सामान्य देवनागरी अथवा रोमन लिपि में लिखना।

ब्रेल लिपि में लिखने के लिए साधारणतः ब्रेल स्लेट अथवा ब्रेलर (ब्रेल का टाइपराइटर) का उपयोग होता है। हाथ के ज़ोर से ही लिखे जाने के कारण इन उपकरणों के माध्यम से लिखने में अधिक समय एवं परिश्रम लगता है। इन उपकरणों के माध्यम से ब्रेल सीधे कागज पर लिखी जाती है एवं जो भी कुछ लिखा जा चुका है, उसे मिटाना अथवा परिवर्तित कर पाना अपेक्षाकृत कुछ कठिन है। इस प्रकार से लिखी गयी सामग्री को सामान्यतया दृष्टिबाधित ही पढ़ पाता है।

दृष्टिबाधित व्यक्ति के लिए देवनागरी एवं रोमन लिपियों को आम व्यक्तियों की तरह कलम से लिखना सम्भव नहीं है। 19वीं शताब्दी में टाइपराइटर जैसे उपकरण का आविष्कार दृष्टिहीन व्यक्तियों के लिए इन लिपियों में लिखने के लिए एक वरदान सिद्ध हुआ, किन्तु इसमें सबसे बड़ी बाधा इस बात की है कि दृष्टिबाधित व्यक्ति जो टंकित कर रहा है, वह स्वयं उसे पढ़ नहीं सकता है। ऐसी कुछ कमियों को ध्यान में रखते हुए निम्नलिखित कई इलेक्ट्रॉनिक उपकरण बनाए गये, जो कि दृष्टिबाधित व्यक्ति को ब्रेल अथवा सामान्य लिपि में लिखने की सुविधा प्रदान करते हैं:-

1. इलेक्ट्रॉनिक नोट टेकर– इलेक्ट्रॉनिक नोट टेकर को सीमित क्षमताओं वाला एक छोटा कम्प्यूटर कह सकते हैं। इसका आकार एक वीडियो कैसेट के जितना होता है। साधारणतः इस उपकरण में एक ब्रेलर की तरह 7 कुंजियाँ लगी होती हैं, जिनका प्रयोग करके ब्रेल के अक्षरों को टाइप किया जा सकता है। अन्तर केवल इतना होता है कि सीधे कागज पर टाइप होने की बजाय ये अक्षर इसी उपकरण के स्मृति पटल पर अंकित हो जाते हैं। इस पर लिखे गये अक्षरों को एक प्रिंटर के माध्यम से साधारण लिपि में छापा जा सकता है। ब्रेल प्रिंटर के माध्यम से इसी सामग्री को ब्रेल में भी छापा जा सकता है। इस नोट टेकर में ध्वनि निकास प्रबन्ध होने से दृष्टिबाधित व्यक्ति इस उपकरण का संचालन करते हैं तथा इसमें लिखी सामग्री को तत्काल पढ़ सकते हैं, जिससे यह उपकरण एकीकृत शिक्षा (Integrated Education) में बहुत उपयोगी हो जाता है। आधुनिक इलेक्ट्रॉनिक नोट टेकर्स् के कई प्रकार उपलब्ध हैं, जिसमें से कुछ को सीधा मॉडैम से लगाकर ई-मेल आदि भी किए जा सकते हैं।

नोट टेकर का ही एक प्रकार ऐसा भी है, जिसमें 7 कुंजियों की जगह पर एक टाइपराइटर जैसा कुंजी पटल होता है। कुछ अन्य प्रकारों में नोट टेकर में लिखी सामग्री को पढ़ने के लिए ध्वनि के स्थान पर ब्रेल निकास प्रबन्ध का प्रयोग करते हैं। इस उपकरण पर ब्रेल के 18 से 80 सैल हो सकते हैं। इन सैलों के छिद्रों में से ब्रेल अक्षरों के अनुरूप छोटी-छोटी कांटियाँ बाहर निकलती हैं।

समय के साथ-साथ इन नोट टेकरों की क्षमता में वृद्धि होती जा रही है। कुछ नोट टेकर्स् की क्षमता आज से 5 वर्ष पूर्व के डेस्क टॉप कम्प्यूटरों जितनी हो गयी है। ब्रेल एन स्पीक और पैकमेट ऐसे ही नोट टेकरों का उदाहरण हैं।

2. ब्रेलर संवर्धक उपकरण– एकीकृत शिक्षा (Integrated Education) की सूचना प्रणाली की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए कुछ ऐसे

ही उपकरण बनाए गये हैं, जिनको साधारण ब्रेलर के साथ लगा देने पर वह ब्रेलर में लिखे जाने वाले ब्रेल अक्षरों को सामान्य लिपि में परिवर्तित कर कागज पर छाप देते हैं। रॉबॉटरॉन कम्पनी ने ऐसा ही एक उपकरण बनाया है। इस उपकरण के साथ साधारण प्रिंटर को जोड़ दिया जाता है। जब साधारण ब्रेलर को इस उपकरण पर रखकर ब्रेल अक्षर टाइप किए जाते हैं, तो वह उन्हें साधारण अक्षरों में परिवर्तित कर प्रिंटर के माध्यम से कागज पर छाप देता है। ऐसी कक्षा में जहाँ दृष्टिबाधित सामान्य छात्रों के साथ बैठकर पढ़ रहे हों तथा जहाँ अध्यापक दृष्टिवान हो और ब्रेल न जानता हो, यह उपकरण अत्यन्त उपयोगी हो सकता है। इसी श्रेणी में माउंट बैटन ब्रेलर भी आता है। यह स्वतन्त्र रूप से एक इलेक्ट्रॉनिक ब्रेलर है। 6 कुंजियों की सहायता से इस पर ब्रेल लिखी जा सकती है तथा इसके साथ साधारण प्रिंटर को लगाकर उन्हीं अक्षरों को ब्रेल की अपेक्षा साधारण लिपि में छापा जा सकता है। इस पर लिखी सामग्री को एक फ्लॉपी पर भी उतारा जा सकता है। साधारण कम्प्यूटर का की-बोर्ड भी इस उपकरण के साथ लगाया जा सकता है।

भारत की एक कम्पनी वैबल मीडियाट्रॉनिक्स ने आई.आई.टी., खड्गपुर की सहायता से साधारण ब्रेलर को कम्प्यूटर के साथ लगने वाले ब्रेल प्रिंटर में परिवर्तित करने की प्रणाली का विकास किया है।

कम्प्यूटर पर 6 कुंजियों द्वारा ब्रेल छापने की प्रणाली का प्रयोग करते हुए अक्षरों को टाइप किया जा सकता है एवं उन अक्षरों को इस परिष्कृत ब्रेलर द्वारा ब्रेल में अथवा साधारण प्रिंटर द्वारा सामान्य लिपि में छापा जा सकता है।

3. स्क्रीन रीडिंग सॉफ्टवेयर वाला कम्प्यूटर - दृष्टिबाधित व्यक्तियों के लिए कम्प्यूटर एक वरदान के रूप में आया है। लिखने व पढ़ने के माध्यम के रूप में कम्प्यूटर एक अत्यन्त क्रान्तिकारी उपकरण है। ध्वनि अथवा रिफ्रेशेबल ब्रेल (Refreshable Braille) के माध्यम से दृष्टिबाधित व्यक्ति कम्प्यूटर को चलाने में सक्षम हो पाते हैं। घरों अथवा कार्यालयों में पाए जाने वाले किसी भी कम्प्यूटर को दृष्टिबाधित व्यक्ति के लिए उपयुक्त कम्प्यूटर में सरलता से परिवर्तित किया जा सकता है। यह परिवर्तन मात्र एक सॉफ्टवेयर को प्रतिस्थापित कर किया जा सकता है, जिसे हम 'स्क्रीन रीडिंग सॉफ्टवेयर' कहते हैं। यह स्क्रीन रीडिंग सॉफ्टवेयर वास्तव में दो भिन्न सॉफ्टवेयरों से मिलकर बनने वाली प्रणाली है।

(क) स्क्रीन रीडर- यह सॉफ्टवेयर का वह हिस्सा है, जो यह बताता है कि क्या बोला जाए। कम्प्यूटर के स्क्रीन पर विभिन्न विशिष्ट (Application) सॉफ्टवेयरों में से सूचना को अलग-अलग प्रकार से पढ़ने की आवश्यकता होती

है। उदाहरण के लिए, माइक्रोसॉफ्ट वर्ड (Microsoft Word) में प्रालेख (Document) पढ़ते समय डाउन ऐरो (Down Arrow) की कुंजी दबाने पर जहाँ पूरी पंक्ति को बोलने की आवश्यकता होती है, वहीं सारणी (Table) में डाउन ऐरो (Down Arrow) की कुंजी दबाने पर यह आवश्यक है कि कम्प्यूटर पूरी पंक्ति न बोलकर उस पंक्ति में एक कॉलम (Column) की सूचना को ही पढ़कर सुनाए अतः किसी साफ्टवेयर के स्क्रीन पर से कौन-सी सूचना कम्प्यूटर को पढ़कर सुनानी है अथवा कौन-सी कुंजी दबाने पर स्क्रीन से सूचना कम्प्यूटर प्रयोग करने वाले व्यक्ति को पढ़कर सुनानी है यह सब स्क्रीन सॉफ्टवेयर का काम होता है। इस सूचना को स्क्रीन रीडिंग सॉफ्टवेयर टेक्स्ट टु स्पीच (Text to Speech) व्यवस्था अथवा ब्रेल प्रदर्शक (Display) को भेज देता है।

(ख) टेक्स्ट टु स्पीच (Text to Speech)- यह वह सॉफ्टवेयर है, जो किसी भी अक्षर को उसके ध्वनि प्रारूप में परिवर्तित करता है। इस सॉफ्टवेयर को जो भी सूचना स्क्रीन रीडिंग सॉफ्टवेयर के माध्यम से मिलती है, उसे वह ध्वनि में परिवर्तित कर देता है। इस प्रक्रिया में किसी भी भाषा के सभी नियमों व अपवादों का ध्यान रखना होता है। कम्प्यूटर की ध्वनि की गुणवत्ता इसी सॉफ्टवेयर पर निर्भर होती है, परन्तु कम्प्यूटर द्वारा दी जाने वाली सूचना की उपयोगिता अथवा ध्वनि से मिलने वाली सूचना से दृष्टिबाधित व्यक्ति कम्प्यूटर में किन-किन सॉफ्टवेयरों में काम कर सकता है, यह स्क्रीन रीडिंग सॉफ्टवेयर पर निर्भर करता है।

स्क्रीन रीडिंग सॉफ्टवेयर जहाँ मात्र दृष्टिबाधित व्यक्तियों के लिए बनाया गया है, वहीं टेक्स्ट टु स्पीच (Text to Speech) का उपयोग सूचना प्रौद्योगिकी अथवा संचार उद्योग की अन्य कई प्रणालियों में होता है।

स्क्रीन रीडिंग सॉफ्टवेयर की सहायता से दृष्टिबाधित व्यक्ति कम्प्यूटर में स्वयं अत्यन्त उत्कृष्ट प्रालेख तैयार कर सकता है और ये प्रालेख वह स्वयं भी पढ़ सकता है तथा उसी रूप में अन्य सभी लोग भी पढ़ पाते हैं।

आधुनिक पठन उपकरण :

किसी भी पुस्तक और पत्रिका अथवा समाचार पत्र को स्वयं पढ़ पाना एक ऐसा सपना है, जिसे साकार करने का मार्ग आधुनिक उपकरणों ने प्रशस्त किया है। ऐसे ही कुछ उपकरणों का विवरण नीचे दिया जा रहा है:-

1. स्क्रीन रीडिंग सॉफ्टवेयर वाला कम्प्यूटर- समाचार पत्र, पत्रिकाएं, पुस्तकें एवं लेख आदि के साथ-साथ इंटरनेट पर असीमित सूचनाएं

उपलब्ध हैं। विभिन्न संस्थान जैसे-इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय आदि डिजिटल (Digital) पुस्तकालय की स्थापना कर रहे हैं फलस्वरूप स्क्रीन रीडिंग सॉफ्टवेयर वाले कम्प्यूटर का उपयोग एक पठन उपकरण के रूप में अत्यधिक सफलतापूर्वक किया जा रहा है।

2. ऑप्टिकल कैरेक्टर रिकॅग्नीशन (ओ.सी.आर.) एवं स्कैनर (Optical Character Recognition (OCR) and Scanner- बोलने की प्रणाली से लैस कम्प्यूटर के साथ स्कैनर (Scanner) लगा दिया जाए तो दृष्टिबाधित व्यक्ति इसका उपयोग कागज पर लिखी किताबों को पढ़ने के लिए कर सकते हैं। स्कैनर एक भौतिक उपकरण है, जो कि उस पर रखे कागज के प्रतिबिंब को कम्प्यूटर पर भेजता है। इस प्रतिबिंब में लिखे अक्षरों को ओ.सी.आर. नामक सॉफ्टवेयर कम्प्यूटर में निर्धारित किए गये संकेतों के रूप में कम्प्यूटर के स्मृति पटल पर अंकित करता है। इन अक्षरों को कम्प्यूटर की सॉफ्टवेयर प्रणाली ध्वनि में परिवर्तित कर पाती है।

Kurzweil 1000, Open Book आदि ऐसे ही ओ.सी.आर. सॉफ्टवेयरों के उदाहरण हैं।

3. टेक्स्ट रीडिंग मशीन (Text Reading Machine)- आजकल कुछ ऐसे उपकरण भी उपलब्ध हैं, जिनमें कम्प्यूटर, स्क्रीन रीडिंग सॉफ्टवेयर, स्कैनर तथा ओ.सी.आर को एक स्वतन्त्र सम्मिलित उपकरण के रूप में बनाया गया है, जिसमें कम्प्यूटर का साधारण स्क्रीन नहीं होता है। ऐसे उपकरण को टेकस्ट रीडिंग मशीन (Text Reading Machine) कहा जाता है। इसका उपयोग करना अत्यन्त सरल होता है। मात्र 10 या 12 कुंजियों की सहायता से इस उपकरण के माध्यम से किताबों को पढ़ा जा सकता है। अत: इसे उपयोग करने के लिए गहन प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं होती।

रॉवटॉन कम्पनी की रेनबो अथवा गैलीलियो टेकस्ट रीडिंग मशीनें (Text Reading Machines) ऐसे ही उदाहरण हैं।

4. क्लोज सर्किट टेलीविज़न (सी.सी.टी.वी.) (Close Circuit Television, CCTV)- अल्पदृष्टि वाले व्यक्तियों के लिए सी.सी. टेलीविज़न अत्यन्त उपयोगी है। इस उपकरण में कैमरे द्वारा पुस्तक के प्रतिबिंब को टेलीविज़न के स्क्रीन पर दिखाया जाता है। कागज पर लिखे अक्षर के इस प्रतिबिंब को दो से बारह गुना तक बड़ा किया जा सकता है, जिससे अल्पदृष्टि वाले व्यक्ति उन अक्षरों को सरलता से पढ़ सकें।

5. टेप रिकॉर्डर– पिछले कई दशकों से बोलती पुस्तकें दृष्टिबाधित व्यक्तियों के लिए पठन उपकरण के रूप में अत्यन्त सफल रही हैं। विश्व के हर कोने में विशेष पुस्तकालयों की स्थापना हुई है, जिनमें बोलती पुस्तकें संकलित एवं ध्वन्यांकित की जा रही हैं। एक साधारण टेप रिकॉर्डर का प्रयोग इन बोलती पुस्तकों को पढ़ने के लिए किया जाता है। कई देशों में साधारण कैसेट को आधी गति पर चलाकर इन पुस्तकों को ध्वन्यांकित किया जाता है। इसके अतिरिक्त साधारण कैसेट पर 2 की जगह 4 ट्रैक्स पर अलग-अलग ध्वन्यांकन कर चार गुना सामग्री को एक ही कैसेट पर उतारा जा सकता है। उदाहरण के लिए, आधी गति एवं चार ट्रैक्स वाले 60 मिनट के कैसेट पर चार घण्टे की रिकॉर्डिंग की जाती है। इन कैसेटों के चलाने के लिए विशेष कैसेट प्लेयर की आवश्यकता पड़ती है, जिन्हें साधारण कैसेट प्लेयर में कुछ परिवर्तन करके तैयार किया जा सकता है।

6. डेज़ी प्लेयर– आधुनिक युग में पुस्तकों को कैसेट के स्थान पर सी.डी. पर ध्वन्यांकित किया जाने लगा है। साधारण ध्वन्यांकन के साथ-साथ ऐसी पुस्तकों पर पृष्ठ अथवा पुस्तक के अध्याय की सूचना भी विशेष रूप में सम्मिलित की जाती है, जिससे कि इन पुस्तकों को पढ़ते समय दृष्टिबाधित व्यक्ति पुस्तक के किसी भी पृष्ठ अथवा अध्याय पर सीधे पहुँच सकते हैं। ऐसी पुस्तकों को सुनने के लिए विशेष सी.डी. प्लेयर की आवश्यकता होती है। एक साधारण एम.पी. 3 (MP3) प्लेयर पर भी डेज़ी प्रणाली की बोलती पुस्तकों को सुना जा सकता है, किन्तु एम.पी. 3 प्लेयर पर पुस्तक के किसी पृष्ठ पर पहुँच पाना सम्भव नहीं हो पाता, तथापि पुस्तक के किसी भी अध्याय पर सीधे पहुँचा जा सकता है।

7. पोर्टेबल टेक्स्ट रीडर (Portable Text Reader)- कुछ ऐसे छोटे-छोटे उपकरणों का आविष्कार भी किया गया है, जिनमें कम्प्यूटर के प्रालेखों को स्थानान्तरित कर दिया जाता है। इन प्रालेखों को इस उपकरण के द्वारा कृत्रिम ध्वनि (Synthesised Voice) के माध्यम से पढ़ा जाता है। छोटे आकार के कारण इनका उपयोग अत्यन्त सरल है तथा एक बार में कई पुस्तकें इनके स्मृति पटल पर रखी जा सकती हैं। रोड रनर इस प्रकार के उपकरण का एक उदाहरण है। ब्रेल एन स्पीक नोट टेकर का प्रयोग इसी प्रकार पुस्तकों को पढ़ने के लिए भी किया जा सकता है।

ब्रेल उत्पादन उपकरण:

ब्रेल लिपि ने दृष्टिबाधित लोगों के लिए ज्ञान एवं शिक्षा के द्वार खोले हैं। इस लिपि में उपयुक्त एवं समुचित मात्रा में पुस्तकों एवं पठन सामग्री का उत्पादन

सदैव से कठिन कार्य रहा है। इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों के माध्यम से इस कठिन कार्य को कुछ सरल बनाया जा सका है। ब्रेल उत्पादन में प्रयोग किए जाने वाले इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों का विवरण इस प्रकार है:-

1. कम्प्यूटरकृत ब्रेल प्रेस (Computerised Braille Press)- इस ब्रेल प्रेस को कम्प्यूटर के साथ उसके प्रिंटर के स्थान पर लगा दिया जाता है। कम्प्यूटर पर टंकित की गयी पुस्तकों को यह ब्रेल प्रिंटर सीधे ही एक मोटे कागज पर ब्रेल में छाप देता है। एक बार जो सूचना अथवा पठन सामग्री कम्प्यूटर पर तैयार कर ली जाती है, उसकी ब्रेल प्रतियाँ किसी भी समय बनाई जा सकती हैं। आज के समय में ये प्रिंटर लगभग 200 से 800 ब्रेल अक्षर प्रति सैकेण्ड की रफ़्तार से छापते हैं। ब्रेलो 400 ऐसा ही एक उदाहरण है।

2. ब्रेल प्रिंटर- बड़ी ब्रेल प्रेस के स्थान पर कम्प्यूटर के साथ ब्रेल प्रिंटर की सहायता से ब्रेल पुस्तकें तैयार की जा सकती हैं। ब्रेल प्रिंटर की क़ीमत ब्रेल प्रेस की क़ीमत का दसवां हिस्सा ही होती है। विभिन्न क्षमताओं वाले ब्रेल प्रिंटर बाज़ार में उपलब्ध हैं, जो 15 ब्रेल अक्षर प्रति सैकेण्ड से लेकर 100 ब्रेल अक्षर प्रति सैकेण्ड तक छाप सकते हैं। Index, Everest तथा Braille Blaizer ऐसे ही ब्रेल प्रिंटरों के उदाहरण हैं।

3. इलेक्ट्रॉनिक ब्रेल प्लेट प्रिंटर- परम्परागत ब्रेल प्रेस में ब्रेल के अक्षरों को पहले धातु की पट्टिकाओं (Sheet) पर छाप लिया जाता है, तत्पश्चात् हाथ अथवा बिजली से चलने वाले प्रेस में ब्रेल की धातु वाली एक शीट से कागज पर उसकी 100-100 प्रतियाँ निकाली जाती हैं। ऐसी पुस्तकें, जिनकी सैकड़ों प्रतियाँ तैयार करनी हों, उसके लिए कम्प्यूटर के साथ साधारण ब्रेल प्रेस अथवा ब्रेल प्रिंटर के स्थान पर ब्रेल प्लेट प्रिंटर लगाकर धातु की शीट तैयार की जा सकती है। प्यूमा ब्रेल प्लेट प्रिंटर ऐसे ही प्रिंटर का उदाहरण है।

4. ब्रेल ट्रांसलेशन सॉफ्टवेयर- जिस पठन सामग्री को ब्रेल प्रिंटर के माध्यम से छापा जाता है, उस पठन सामग्री को कम्प्यूटर में तैयार करना होता है। ब्रेल ट्रांसलेशन सॉफ्टवेयर यही काम करने में हमारी मदद करता है।

पठन सामग्री को साधारण टंकण प्रणाली से कम्प्यूटर पर टंकित किया जाता है, तत्पश्चात् ब्रेल ट्रांसलेशन सॉफ्टवेयर इस सामग्री को ब्रेल प्रिंटर पर छापने लायक बना देता है। साधारणतः ऐसे सॉफ्टवेयर में कम्प्यूटर की स्क्रीन पर ही ब्रेल के अक्षर देखे जा सकते हैं, जिससे छापने से पहले ही इस सामग्री में त्रुटियों को सुधारा जा सकता है।

Duxbury ब्रेल ट्रांसलेशन सॉफ्टवेयर का एक उदाहरण है।

अनुस्थितिज्ञान एवं चलिष्णुता के लिए आधुनिक उपकरण:

दृष्टिबाधित व्यक्तियों के लिए किसी भी भीतरी तथा बाहरी वातावरण में चलिष्णुता को सम्भव बनाने के लिए जो कारक सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, वह है अनुस्थितिज्ञान। किसी भी क्षेत्र का पूर्व-अनुस्थितिज्ञान से दृष्टिबाधित व्यक्ति उस वातावरण में निर्विवाद रूप से भ्रमण कर सकते हैं।

इस अनुस्थितिज्ञान को कराने के लिए निम्नलिखित उपकरणों को बनाने का प्रयास किया गया है :

1. **बोलने वाला दिशा-सूचक यंत्र (Talking Compass)-** इस उपकरण के माध्यम से दृष्टिबाधित व्यक्ति स्वयं किस दिशा की ओर मुख करके खड़ा है, इसका ज्ञान उसे हो पाता है। दिशा भ्रम होने की स्थिति में यह उपकरण अत्यन्त लाभकारी होता है।

2. **ग्लोबल पोजिशनिंग सिस्टम (Global Positioning System)-** यह एक अत्यन्त परिष्कृत एवं पेचीदा प्रणाली है। इस प्रणाली का विकास रक्षा अथवा कुछ अन्य कारणों से विकसित राष्ट्रों में हुआ है। इस प्रणाली के अन्तर्गत प्रयोगकर्ता के पास कम्प्यूटरीकृत उपकरण रहता है, जिससे उपग्रह से प्राप्त होने वाले संकेतों के आधार पर अक्षांशों की वस्तुस्थिति ज्ञात होती है। इसी उपकरण में उस शहर का एक अत्यन्त विस्तृत डिजिटल मानचित्र भी होता है। अक्षांशों की वस्तुस्थिति ज्ञान एवं इस विस्तृत मानचित्र के आधार पर यह निर्धारित किया जाता है कि प्रयोगकर्ता किस स्थान पर है तथा उसके आस-पास कौन से मार्ग एवं भवन हैं। इस सूचना को ध्वनि के माध्यम से दृष्टिबाधित व्यक्तियों तक पहुँचाने के लिए कुछ उपकरणों का आविष्कार हुआ है। Visuaide Company द्वारा बनाया गया ट्रैक्कर (Trekker) ऐसे ही उपकरण का उदाहरण है।

यह सुविधा सिर्फ़ उन्हीं शहरों में उपलब्ध कराई जा सकती है, जिसका विस्तृत डिजिटल मानचित्र तैयार किया जा चुका है तथा जहाँ उपग्रह से अक्षांशीय संदेश प्राप्त हो सकें।

3. **इलैक्ट्रॉनिक बीपर-** बीपर का प्रयोग अनुस्थितिज्ञान कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। साधारणत: दृष्टिवान व्यक्ति दृश्य दिशा संकेतों के आधार पर ही रास्तों को पहचानते हैं। दृष्टिबाधित व्यक्तियों के लिए बीपर के माध्यम से श्रव्य दिशा संकेत बनाए जा सकते हैं। उदाहरण के लिए, दृष्टिबाधितार्थ संस्थाओं

के प्रवेश द्वार पर बीपर को लगाया जाता है, जिससे प्रवेशद्वार की ठीक स्थिति का ज्ञान किसी भी दृष्टिबाधित व्यक्ति को दूर से ही हो जाता है। विभिन्न स्वरों अथवा स्वर समूहों वाले बीपर के माध्यम से विभिन्न प्रकार के संकेत दृष्टिबाधित व्यक्ति तक पहुँचाये जा सकते हैं। उदाहरण के लिए, भिन्न स्वरों वाले बीपर का प्रयोग चौराहों पर लाल अथवा हरी बत्ती के संकेतों को ध्वनि के माध्यम से व्यक्त करने के लिए भी किया जाता है।

4. ध्वनि से देखो (Seeing with Sound)- यह एक अनूठा प्रयोग है। ध्वनि से देखो एक सॉफ्टवेयर है, जो किसी भी चित्र अथवा दृश्य के अलग-अलग हिस्सों की प्रकाश की तीव्रता को ध्वनि के स्वरों के उतार-चढ़ाव के माध्यम से व्यक्त करता है। इस सॉफ्टवेयर को छोटे कम्प्यूटर अथवा मोबाइल फोन पर लगाकर उसमें वैब कैमरा (Web Camera) से प्राप्त होने वाले चित्रों को ध्वनि में व्यक्त करके चलिष्णुता सहायक उपकरण के रूप में प्रयोग किया जाता है। यह ऐसा पहला उपकरण है, जो कि वास्तविक दृश्य को दृष्टिबाधित व्यक्तियों को संप्रेषित कराने का प्रयास कराता है।

5. अल्ट्रासॉनिक अथवा इन्फ्रारेड किरणों वाली छड़ियाँ- साधारण छड़ी चलिष्णुता में प्रयोग किया जाने वाला सबसे प्रभावकारी उपकरण है, किन्तु यह सामान्य छड़ी मात्र कुछ फुट की दूरी तक की बाधाओं अथवा दिशा संकेतों का ही ज्ञान करा सकती है। छड़ी की इस कमी को दूर करने के लिए अल्ट्रासॉनिक अथवा इन्फ्रारेड किरण प्रेक्षण तथा संवेदीय उपकरण लगाकर कुछ प्रयोग किए गये हैं। ऐसी छड़ियों से साधारण छड़ियों का काम लेने के साथ-साथ तीन से चार मीटर दूर की बाधाओं अथवा गड्ढों का ज्ञान भी सम्भव हो पाया है।

खेलकूद, मनोरंजन एवं श्रमापहार उपकरण:

खेलकूद, मनोरंजन एवं श्रमापहार किसी भी व्यक्ति के मानसिक विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। दृष्टिबाधित व्यक्तियों के लिए ऐसी क्रियाओं के अवसर कम ही उपलब्ध हो पाते हैं। कम्प्यूटर ने ऐसे अवसर प्रदान करने वाले कई द्वार खोलें हैं। कम्प्यूटर पर खेले जाने वाले ऐसे कई खेल बनाए गये हैं, जिनका उद्देश्य मनोरंजन के साथ-साथ अनौपचारिक शिक्षण अथवा सामान्य ज्ञान एवं भाषा ज्ञान की वृद्धि भी है। उदाहरण के लिए, विन बोर्ड (Win Board) कम्प्यूटर पर खेला जाने वाला एक ऐसा सॉफ्टवेयर है, जिसको स्क्रीन रीडिंग सॉफ्टवेयर (Screen Reading Software) की सहायता से खेला जा सकता है। इसी प्रकार स्क्रीन

रीडिंग सॉफ्टवेयर (Screen Reading Software) की सहायता से खेले जाने वाले कुछ खेल, जैसे वर्ड स्ट्रैबल, वर्ड फाइनडर, बैटलशीप इत्यादि उपलब्ध हैं।

कई देशों में इंटरनेट का प्रयोग करके अलग-अलग स्थानों पर बैठे दृष्टिबाधित व्यक्ति आपस में मिलकर कम्प्यूटर पर खेले जाने वाले पोकर, बेसबॉल इत्यादि अनेक खेल खेलते हैं।

1. **बीपर युक्त बेल्ट एवं फ्रिज्बी-** बीपर युक्त बेल्ट दृष्टिबाधित व्यक्तियों को किसी भी खेल में दूसरे खिलाड़ी की स्थिति का ज्ञान कराने में सहायक होती है। इससे कई छोटे-मोटे खेल, जैसे लंगड़ी टांग, कबड्डी, पकड़न-पकड़ाई इत्यादि खेले जा सकते हैं। इसी प्रकार बीपर लगी हुई फ्रिज्बी से भी दृष्टिबाधित व्यक्ति फ्रिज्बी से खेले जाने वाले सभी खेल खेल पाते हैं।

अध्याय-11

अनुस्थितिज्ञान एवं चलिष्णुता

-श्रीमती स्वर्ण अहूज

चलने-फिरने में स्वातंत्र्य-नि:संकोच होकर, बिना किसी की सहायता लिए निडरता के साथ एक जगह से दूसरी जगह जा सकने की सहज योग्यता भगवान का दिया वरदान है। प्राय: इसे साधारण योग्यता समझकर मूल अधिकार मान लिया जाता है। परन्तु, विकलांग व्यक्ति के लिए चलना-फिरना अर्थात् चलिष्णुता एक गम्भीर समस्या बन जाती है। समस्या की गम्भीरता विकलांगता के स्वरूप और मात्रा के अनुरूप होती है।

दृष्टिहीनता व्यक्ति की चलिष्णुता पर जबरदस्त अवरोध लगाती है। उसके लिए चलिष्णुता एक बहुत बड़ी समस्या बन जाती है। कभी-कभी तो अपने जीवन की सामान्य से सामान्य आवश्यकताओं के लिए भी दृष्टिहीन व्यक्ति को दूसरों की सहायता लेनी पड़ती है। चलिष्णुता की इस अक्षमता के कारण उसकी नौकरी छूट सकती है अथवा नौकरी मिलने में कठिनाई हो सकती है। मानसिक दृष्टि से ऐसा परावलम्बन व्यक्ति के व्यक्तित्व पर गहरी और हानिपूर्ण चोट कर सकता है। अतएव, यह बहुत आवश्यक है कि दृष्टिहीनों के लिए किसी भी प्रकार के पुनर्वसन कार्यक्रम में चलिष्णुता प्रशिक्षण को विशेष महत्त्व दिया जाए।

चलिष्णुता अपने आप में कोई लक्ष्य नहीं। परन्तु, जीवन की एक मूल आवश्यकता है। यह लक्ष्य साधने का माध्यम है- इसके बिना तो जीवन जीना केवल कठिन ही नहीं, लगभग असम्भव हो सकता है। इसीलिए शायद यह क्षमता भगवान ने केवल मानव को ही नहीं, सम्पूर्ण जीव-जगत् को दी है। लक्ष्य तो सामान्य-सा भी हो सकता है, जैसे कि प्यास लगने पर मटके के पास जाकर पानी पीना, कमरे के दूसरे कोने में रखे रेडियो को चलाना, पड़ोस की दुकान से बीड़ी लाना अथवा बहुत महत्त्वपूर्ण भी हो सकता है, जैसे कि नौकरी के स्थान पर जाना।

चलिष्णुता शिक्षण का मुख्य उद्दिष्ट है- आत्मविश्वास का विकास करते हुए चलिष्णुता में स्वावलम्बन लाना। परन्तु, इसका यह अर्थ नहीं कि विशेष साधनों का प्रयोग नहीं किया जाए अथवा मानवीय सहायता न ली जाए। एक दृष्टिहीन व्यक्ति सफेद छड़ी की सहायता से बस स्टॉप तक चलकर जाता है, बस पकड़कर अपने कार्यालय पहुँचता है और दूसरा दृष्टिहीन व्यक्ति, जिसके पास अपनी मोटरगाड़ी

है, मोटर में बैठकर अपने कार्यालय जाता है अथवा अन्य किसी वाहन से ऑफिस पहुँचता है- दोनों ही एक समान गतिशील है। महत्त्व है उस आत्मविश्वास का जिसके बल पर दृष्टिहीन व्यक्ति आवश्यकतानुसार एक जगह से दूसरी जगह आ-जा सकने की क्षमता और योग्यता रखता है, न कि वहाँ जाने के लिए अपनाए गए साधन का।

दृष्टिहीन व्यक्ति के लिए अकेले भ्रमण करना एक अविरत चुनौती है। यद्यपि अपंग व्यक्ति की तरह दृष्टिहीन व्यक्ति की कोई शरीरिक कठिनाई नहीं होती, न ही उसे किसी बैसाखी का सहारा चाहिए, फिर भी उसका प्रत्येक कदम अज्ञात में एक साहसी कर्म होता है। जीवन एक सबाध दौड़ बन जाता है। घर के अन्दर खटिया, पाटला, कुर्सी, मेज आदि वस्तुओं का हमेशा निश्चित स्थान पर न रहना, अधखुला दरवाजा इत्यादि दृष्टिहीन व्यक्ति की चलिष्णुता में रुकावटें बनकर आते हैं। घर के बाहर बत्ती का खम्बा, पोस्ट बॉक्स, किसी घर का बाहर की ओर खुला हुआ मुख्य द्वार, वृक्ष की नीची झुकी टहनी, अपने ही ख्यालों में डूबा पथिक, रास्ते में बैठे भिखारी- ये सब अपने आप में अड़चनें हैं। बड़े शहरों में तो दृष्टिहीन व्यक्ति की चलिष्णुता में अन्य भी बहुत-सी रुकावटें आती हैं, उदाहरणार्थ- खुला हुआ गटर, खुदाई की हुई असुरक्षित जगह, आवारा कुत्ते, स्टेशन पर सिर पर सामान लादे कुली इत्यादि। जहाँ सड़क पार करना दृष्टिवान व्यक्ति के लिए भी आसान नहीं वहाँ दृष्टिहीन व्यक्ति के लिए उस कठिनाई की गम्भीरता का क्या कहना।

अड़चनों और रुकावटों की सूची तो अन्तहीन हो सकती है, परन्तु सौभाग्य से दृष्टिहीन व्यक्ति इन बाधाओं और खतरों से न घबराते हुए हमेशा इस चुनौती का सामना करते आए हैं। दृष्टिहीन पुरुषों और महिलाओं ने समय-समय पर अपने ढंग से इस चुनौती का सामना किया है- समस्या को सुलझाया है- किसी ने मानवीय सहायता ली तो किसी ने छड़ी की।

चलिष्णुता में स्वावलम्बन व आत्मविश्वास का विकास करने के लिए आवश्यक है कि दृष्टिहीन व्यक्ति अपने वातावरण से पूरी तरह परिचित हो और वातावरण में घट रही घटनाओं के प्रति सचेत रहे।

अनुस्थितिज्ञान:

अपने वातावरण में अपना स्थान कहाँ है और वातावरण के साथ अपना सम्बन्ध क्या है, यह जानने और पहचानने की योग्यता ही अनुस्थितिज्ञान है।

शिक्षण तकनीक:

(1) ज्ञानेन्द्रिय विकास- दृष्टि के अभाव में वातावरण से परिचित और गतिशील होने के लिए दृष्टिहीन व्यक्ति को अपनी शेष ज्ञानेन्द्रियों का कुशल प्रयोग करना सीखना होगा। स्पर्श, श्रवण, गंध और काइनैस्थैटिक (Kinesthetic) ज्ञानेन्द्रियों द्वारा मिलने वाली सूचनाएं और ज्ञान व्यक्ति को उसके वातावरण का परिचय देते हैं। इनका चलिष्णुता शिक्षण में विशेष स्थान है। ये संकेत और सूचनाएं केवल पथ निर्देशन ही नहीं, पथ निर्धारित करने में भी सहायक होती हैं।

(2) सूचनाओं को पहचानना व ग्रहण करना- विभिन्न ज्ञानेन्द्रियों द्वारा मिल रहे संकेतों और सूचनाओं को पहचानना और ग्रहण करना बहुत महत्त्व रखता है। चलिष्णुता-दक्षताओं के विकास में स्पर्श, श्रवण और गंध से बहुत सहायता मिलती है। उदाहरणार्थ-मार्ग पर चलते हुए दृष्टिहीन व्यक्ति को पाँव के स्पर्श से सड़क और पथिकपथ (Footpath) के कच्चे-पक्के रास्ते की सतह में अन्तर पता लगने लगता है। सड़क के दोनों ओर के उतार से यह भी पता लगता है कि वह सड़क के दाईं ओर है या बाईं ओर। पदचापों की प्रतिध्वनि, पार्श्वभूमि में विभिन्न आवाजों का शोर, चलते वाहनों की विभिन्न आवाजें-सब संकेतक बनते हैं। लहलहाते खेत की खुशबू, कुएँ से रहट की आवाज, मन्दिर की घण्टी, पान वाले के चम्मच की टन-टन, फूल वाले के पुष्पों की सुगन्ध, रैस्टॉरेंट से काफ़ी-चाय आदि की महक- ये सब दृष्टिहीन व्यक्ति को उसके वातावरण से परिचित कराते हुए उसमें उसकी स्थिति बताते हैं और अपने मुकाम तक पहुँचने में सहायता करते हैं।

(3) भौगोलिक ज्ञान- अपने नजदीकी वातावरण का भौगोलिक ज्ञान और प्रतिदिन के आने-जाने वाले स्थानों के रास्तों की जानकारी भी जरूरी है। प्रभावी स्पर्शीय मानचित्रों द्वारा ऐसी जानकारी आसानी से दी जा सकती है। ऐसा करने से प्राय: दृष्टिहीन व्यक्ति अपने रोजाना आने-जाने के रास्तों का मानसिक चित्र बना लेते हैं, जिससे उन्हें गतिशील होने में सहायता मिलती है।

(4) प्रत्यक्ष अनुभव- दृष्टिहीन व्यक्ति को अधिक-से-अधिक अनुभवों का अवसर दिया जाना चाहिए। विविध प्रकार के अनुभव उसे विविध प्रकार के वातावरण से परिचित तो कराते ही हैं, साथ-ही-साथ प्रत्यक्ष ज्ञान देते हुए निर्दोष संकल्पनाओं का भी निर्माण करते हैं। उदाहरणार्थ- बगीचे की सैर, सब्जी मण्डी में खरीददारी, रैस्टॉरेंट में खाना/अल्पाहार लेना, सागर तट पर मौज-मस्ती, चिड़ियाघर घूमना इत्यादि। विविध वातावरण से इस प्रकार का पूर्व-परिचय चलिष्णुता में सहायक हो सकता है।

(5) मार्ग निर्देशन लेना- चलिष्णुता में सुगमता लाने के लिए आवश्यकता पड़ने पर ठीक-ठीक मार्ग निर्देशन लेना सीखना चाहिए। इसकी कभी भी आवश्यकता पड़ सकती है। किसी का इतना ही बता देना पर्याप्त नहीं कि बस से उतरने के बाद उसका कार्यालय केवल दो मिनट के रास्ते पर है। उसके लिए विस्तार में यह जानना बहुत आवश्यक है कि उसको रास्ते में क्या कोई और रास्ता पार करना पड़ेगा अथवा दाईं-बाईं ओर मुड़ना होगा इत्यादि।

क्योंकि चलिष्णुता जीवन की दैनिक क्रिया है, अनुस्थितिज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। जब-जब हमारा वातावरण बदलेगा-वातावरण नवीन होगा, तब-तब उस अपरिचित नवीन वातावरण से परिचय करना अनिवार्य हो जाएगा। एक बार अनुस्थितिज्ञान प्राप्त करने की कला सीखने के बाद यह कोई कठिन काम नहीं। कभी-कभी तो अनुभवी दृष्टिहीन व्यक्ति का अनुस्थितिज्ञान इतना प्रभावी होता है, अपने वातावरण के साथ इतना श्रेष्ठ और पूर्ण परिचय होता है कि वे दृष्टिवान व्यक्ति का भी मार्ग-निर्देशन कर सकते हैं।

निःसन्देह, चलिष्णुता में प्रशिक्षित दृष्टिहीन व्यक्ति छड़ी की सहायता से स्वतन्त्रता के साथ और बिना किसी खतरे के एक जगह से दूसरी जगह आ-जा सकते हैं। शोध द्वारा छड़ी के प्रयोग के प्रभावी तरीके ढूँढे गये हैं। विद्युत साधनों का विकास किया जा रहा है। कुत्तों को प्रशिक्षण देकर उन्हें मार्गदर्शक बनाया जा रहा है। इन सब प्रयासों का एक ही उद्दिष्ट है- दृष्टिहीन व्यक्ति की चलिष्णुता में अधिकाधिक कुशलता और स्वावलम्बन लाना।

इस उद्दिष्ट की प्राप्ति के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रमों की आयोजना की गयी है, जिनमें दृष्टिहीन व्यक्ति को चलिष्णुता के उचित तरीके सिखाए जाते हैं। साथ ही शेष ज्ञानेन्द्रियों द्वारा मिल रहे संकेतों और सूचनाओं में समन्वय साधकर चलिष्णुता में उनकी सहायता कैसे ली जा सकती है-सिखाया जाता है। पारम्परिक लम्बी-मोटी लाठी की जगह अब संवेदनशील सफेद छड़ी ने ले ली है। छड़ी का उपयोग मानो हाथ का विस्तार करना है, जिससे रास्ते में आने वाली बाधाओं और अड़चनों का पता लगता रहता है।

चलिष्णुता शिक्षण तकनीक:

अपने वातावरण में सहजता और सुरक्षापूर्वक चलने-फिरने के लिए दृष्टिहीन व्यक्ति मुख्यतः दो तरीके अपना सकते हैं:

1. मानवीय सहायता लेकर अर्थात् दृष्टिवान साथी का साथ लेकर।
2. छड़ी की सहायता से स्वावलम्बी होकर।

चाहें तो वे इनका प्रयोग अलग-अलग कर सकते हैं और चाहें तो दोनों का सम्मिश्रण भी कर सकते हैं।

(1) दृष्टिवान साथी के साथ:

यद्यपि चलिष्णुता शिक्षण का मूलभूत उद्दिष्ट गतिशीलता में स्वावलम्बन का विकास करना है, तथापि कुछ परिस्थितियों में दृष्टिवान व्यक्ति की सहायता लेना आवश्यक हो जाता है, उदाहरणार्थ-सड़क पार करते समय, भीड़ में चलते हुए अथवा अपरिचित वातावरण में।

दृष्टिवान और दृष्टिहीन-दोनों व्यक्ति आराम से सुरक्षित चल सकें, इसके लिए कुछ बातों पर विशेष ध्यान देना जरूरी है, क्योंकि चलते समय दोनों के बीच एक प्रकार की मौन बातचीत होती रहती है, जिससे दृष्टिहीन व्यक्ति को संकेत/सूचनाएं मिलती रहती हैं।

साधारण प्रभावी विधि:

- दृष्टिवान साथी की बाँह कोहनी से जरा ऊपर इस प्रकार पकड़नी चाहिए कि अंगूठा बाहर की ओर हो। पकड़ निश्चित होते हुए भी साथी को किसी प्रकार का कष्ट न पहुँचाती हो।

- अपने मार्गदर्शक साथी से केवल आधा कदम ही पीछे रहना चाहिए। पीछे रहने से साथी की चाल और हाथ के ऊपर-नीचे होने से दृष्टिहीन व्यक्ति को उतार-चढ़ाव, दाएं-बाएं मोड़ आदि का बिना बताए ही पता लगता रहेगा।

- संकरी जगह आने पर साथी को अपना मार्गदर्शक हाथ थोड़ा पीठ के पीछे कर लेना चाहिए ताकि दृष्टिहीन व्यक्ति उसके पीछे चल सके। संकरी जगह समाप्त हो जाने पर, वापिस आधा कदम आगे होते हुए, साथ-साथ हो जाना चाहिए।

- रास्ते में आने वाली अड़चनों की सूचना देनी आवश्यक है ताकि दृष्टिहीन व्यक्ति अनुकूल प्रतिक्रिया कर सके, उदाहरणार्थ- रास्ते में नाली लांघने के लिए लम्बा कदम लेना, वृक्ष की नीचे लटकती टहनी से बचने के लिए सिर झुकाना इत्यादि।

- सीढ़ी के पास पहुँचने पर यह बताना आवश्यक है कि सीढ़ी पर चढ़ने/उतरने वाले हैं, ताकि दृष्टिहीन व्यक्ति सुविधा से चढ़/उतर सके। सीढ़ी के साथ यदि रेलिंग है तो उसका हाथ रेलिंग पर रखने से उसे सीढ़ियों का मुड़ना, समाप्त होना आदि अपने-आप ही पता लगता रहेगा।

बस/गाड़ी में चढ़ते समय अनुकूलतानुसार उसका बायाँ/दायाँ हाथ दरवाजे की रेलिंग पर रख दीजिए और बताइए कि ऊपर चढ़ जाने पर उसे दाएं जाना है अथवा बाएं।

मोटरगाड़ी अथवा टैक्सी में बैठने के लिए दृष्टिहीन व्यक्ति का एक हाथ खुले दरवाजे के ऊपरी भाग पर और दूसरा हाथ छत पर रखने से वह बिना किसी की सहायता के आसानी से अन्दर बैठ जाएगा।

- कुर्सी पर बैठने के लिए उसका निर्देशित हाथ कुर्सी की पीठ पर रखिए। ऐसा करने से उसे स्वयं ही पता लग जाएगा कि उसे कैसे बैठना है।

- किसी मकान, कमरे अथवा शौचालय जाते समय बताइए कि दरवाजा अन्दर की ओर खुलता है या बाहर की ओर। दरवाजा खुला रखने के लिए उसका हाथ दरवाजे के हैण्डल पर रखिये ताकि साथी मार्गदर्शक पहले अन्दर जा सके।

- दृष्टिहीन व्यक्ति को कभी भी पीछे से धक्का देते हुए आगे मत करिए और न ही उसकी बाँह खींचिए।

- रास्ते में यदि कोई गड्ढा पार करना जरूरी हो तो उसकी चौड़ाई और गहराई से अवगत कराइए, ताकि उसे कितना लांघना होगा पता लग जाएगा।

- अपरिचित दृष्टिवान व्यक्ति से सहायता लेते हुए दृष्टिहीन व्यक्ति को स्वयं उससे ठीक तरह मार्गदर्शन करवाना चाहिए। इससे पहले कि दृष्टिवान व्यक्ति उसका हाथ खींचने लगे, उसे स्वयं मार्गदर्शक की कोहनी के ऊपर हाथ रख लेना चाहिए।

(2) स्वतन्त्र चलने के लिए छड़ी का प्रयोग :

चलिष्णुता में स्वावलम्बन लाने के लिए छड़ी का प्रयोग अत्यावश्यक है। प्राय: छड़ी का प्रयोग घर के बाहर किया जाता है। यदि घर अपरिचित हो तो घर के अन्दर भी छड़ी का प्रयोग किया जा सकता है। छड़ी एक प्रकार से दृष्टिहीन व्यक्ति के हाथ को विस्तारित करती है, जिसकी सहायता से उसे:-

- दैनिक जीवन की क्रियाएँ करने में सहायता मिलती है।
- रास्ते में आने वाली अड़चनों/बाधाओं का पता लगता है।
- सीमा चिह्न, महत्त्वपूर्ण स्थान, दरवाजे, रास्ते की सतह आदि का ज्ञान होता है।
- स्पर्श सूचनाएं मिलती रहती हैं।
- नीचे गिरी वस्तु ढूँढी जा सकती है।

छड़ी के प्रकार:

(1) लम्बी सफेद छड़ी- यह लोकप्रिय छड़ी है। यह एल्यूमीनियम ट्यूब की बनी होती है। इस अखण्ड छड़ी में हस्तपकड़ (Grip) होती है और नीचे नायलॉन की टोक (Tip) होती है। (देखें चित्र-1)

(2) फोल्डिंग छड़ी- यह छड़ी एल्यूमीनियम ट्यूब की एक अखण्ड छड़ी न होकर प्रायः चार खण्डों में बनी होती है (देखें चित्र-2)। ये चार खण्ड एक-दूसरे के भीतर चले जाते हैं। चारों खण्डों के भीतर में से जाती हुई इलास्टिक डोर (Elastic cord) की सहायता से इस छड़ी को आवश्यकतानुसार लम्बी छड़ी का रूप दिया जा सकता है। जब छड़ी की कोई जरूरत न हो तो इसे केवल एक खण्ड की लम्बाई का छोटा रूप देकर थैले आदि में या फिर हाथ में रखा जा सकता है, ताकि इससे किसी को कोई दुविधा न हो।

छड़ी की लम्बाई:

- व्यक्ति की ऊँचाई के अनुसार छाती तक आनी चाहिए।
- प्रायः 90 सेंटीमीटर।
- व्यक्ति के सामने लगभग एक मीटर की दूरी पर धरती को छूनी चाहिए।

अच्छी छड़ी के गुण:

गाँवों में प्रायः लोग बांस अथवा पेड़ की मोटी टहनी से छड़ी बना लेते हैं। छड़ी चाहे कैसी भी हो, ध्यान रहे वहः-

- टिकाऊ हो।
- हल्की हो।
- स्पर्श-सूचनाएं दे सकती हो।
- सस्ती हो।
- आसानी से मिल सकती हो।
- छड़ी की लम्बाई व्यक्ति की ऊँचाई के अनुरूप हो।

छड़ी पकड़ने का तरीका:

जैसा कि चित्र-3 में दिखाया गया है:-

- छड़ी को पकड़ते हुए अंगूठा ऊपरी भाग में सामने हो।

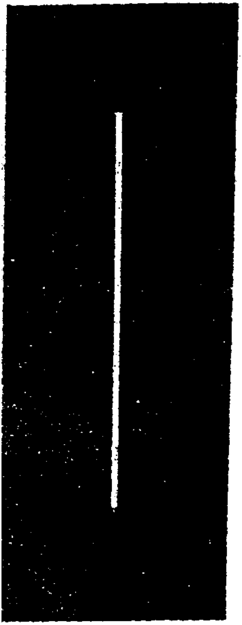

चित्र 1
लाँग केन
(LONG CANE)

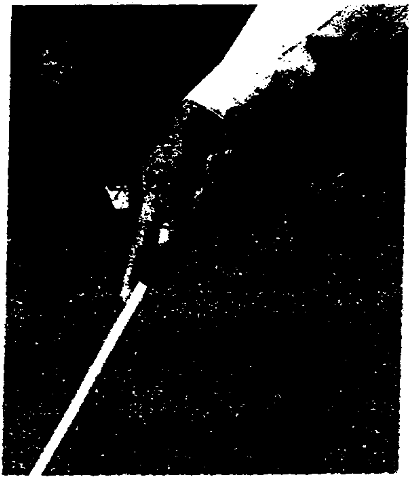

चित्र 3
ग्रिप
(GRIP)

चित्र 2
फोल्डिंग केन (FOLDING CANE)

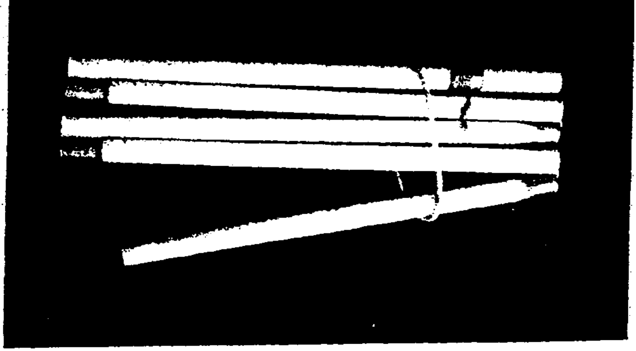

- निर्देशिका उँगली पूरी तरह से सीधी नीचे आती हो।

- शेष उँगलियाँ पीछे से आकर छड़ी को पकड़ती हों।

छड़ी की प्रयोग विधि:

(1) कलाई क्रिया- छड़ी को बाएं से दाएं, दाएं से बाएं कलाई की चलन-क्रिया करते हुए घुमाया जाता है। घुमाते हुए छड़ी की टोक हल्के से धरती को छूनी चाहिए। बाँह को नहीं चलाना चाहिए।

(2) वृत्तांश/कमान- व्यक्ति के शरीर की चौड़ाई से थोड़ा अधिक वृत्तांश/कमान बनाते हुए छड़ी को थोड़ा-थोड़ा वृत्ताशं को छूने दिया जाता हैं।

(3) कदम के अनुरूप (Instep)- अर्थात् जैसे ही दायाँ पैर आगे बढ़े छड़ी को बाईं ओर और जब बायाँ पैर आगे बढ़े, छड़ी को दाईं ओर जाना चाहिए।

(4) आवर्तन गति (Rhythm)- दृष्टिहीन व्यक्ति की चाल के अनुसार छड़ी भी एक नियमित गति से दाएं से बाएं, बाएं से दाएं जानी चाहिए।

परिस्थिति के अनुसार छड़ी की प्रयोग विधि में बदलाव:

1. ग्राम्य वातावरण में जहाँ कोई खास पथिकपथ नहीं होता और रास्ते भी अधिकतर कच्चे होते हैं, छड़ी की प्रभावी लम्बाई और वृत्तांश को बढ़ा देना चाहिए।

2. कीचड़ वाली जगह में प्रभावी लम्बाई और वृत्तांश/कमान कम कर देनी चाहिए।

3. शहरी वातावरण में फुटपाथ के बीच चलना ठीक रहता है, क्योंकि प्राय: किनारों पर कुछ-न-कुछ अड़चन रहती है।

4. भीड़ वाले स्थानों में छड़ी पर अपना हाथ नीचे लेकर प्रभावी लम्बाई कम कर देनी चाहिए। ताकि किसी को लगे नहीं।

साधारण सावधानियाँ:

1. यदि छड़ी द्वारा किसी अड़चन/बाधा अथवा गड्ढे का पता लगे, तो आगे बढ़ने से पहले उस जगह को अच्छी तरह से सावधानी बरतते हुए परख लेना चाहिए।

2. छड़ी को हमेशा नीचे की ठीक स्थिति में पकड़ना चाहिए-धरती से ऊपर सामने नहीं हिलाना चाहिए।

3. यदि वातावरण में अपना स्थान और दिशा ढूँढ़ने में कोई कठिनाई हो रही हो तो किसी दृष्टिवान व्यक्ति की सहायता ले लेनी चाहिए।

4. सड़क पार करते हुए विशेष सावधानी से काम लेना चाहिए। सम्भव हो तो किसी दृष्टिवान व्यक्ति की सहायता ले लें।

5. छड़ी की लम्बाई हमेशा व्यक्ति की ऊँचाई के अनुरूप हो, अर्थात् उसकी छाती तक हो।

महत्त्वपूर्ण स्थान:

स्पर्श, गंध और श्रवण द्वारा निम्न स्थानों को पहचानना और वहाँ तक आ-जा सकना जरूरी है :-

- स्कूल, नौकरी का स्थान, कार्यालय
- डाकघर, बैंक
- परिवार का खेत
- मन्दिर, मस्जिद, चर्च
- पंचायत/नगरपालिका का कार्यालय
- नदी, तालाब, कुआँ, पानी का सार्वजानिक नल
- बस स्टाप, रिक्शा स्टैंड, रेलवे स्टेशन
- बाजार, व्यापार-व्यवहार केन्द्र
- डॉक्टर का दवाखाना, हॉस्पिटल, दवाइयों की दुकान
- मित्रों का घर

चेहरे की दृष्टि (Facial Vision)

समाज में ऐसी एक भ्रान्ति है कि भगवान ने दृष्टिहीन व्यक्ति को छठी ज्ञानेन्द्रिय दी है और इसके बारे में बहुत कुछ कहा जाता है। वास्तव में ऐसा कुछ भी नहीं। कई बार दर्शक स्तब्ध रह जाते हैं, जब वे देखते हैं कि दृष्टिहीन व्यक्ति उनके सामने आने वाली रुकावट-पेड़, दीवार, मोटरकार आदि से किंचित् पहले रुक जाते हैं, ताकि उन्हें टक्कर न लगे। यह कोई आन्तरिक प्रज्ञा-शक्ति नहीं है जो उन्हें सामने आने वाली बाधा से अवगत करा देती है, अपितु उनके वातावरण में हवा के दाब में अन्तर और प्रतिध्वनि में भिन्नता उन्हें सम्मुख खड़ी अड़चन का संकेत देती है। बाधा, अड़चन, रुकावट पहचानने की इस क्षमता को ही बहुत

बार 'चेहरे की दृष्टि' (Facial Vision) कहा जाता है। किन्तु हाल के शोध से यह सिद्ध हुआ है कि पहचान की यह क्षमता वास्तव में 'Echo-location' का परिणाम है। यह चलिष्णुता में बहुत सहायक हो सकती है।

स्पर्शीय मानचित्रों तथा अन्य उपकरणों की उपयोगिता एवं महत्त्व:

अनुस्थितिज्ञान तथा चलिष्णुता शिक्षण में स्पर्शीय मानचित्रों तथा उपकरणों का विशेष स्थान है। दृष्टिहीन व्यक्ति को उसके बाह्य वातावरण से परिचित कराने के लिए ठीक-ठाक अनुस्थितिज्ञान देने के लिए स्पर्शीय मानचित्र बहुत उपयोगी और प्रभावी सिद्ध होते हैं। पूर्व अनुस्थितिज्ञान/वातावरण से पूर्व परिचय, दृष्टिहीन व्यक्ति को गतिशील होने में केवल प्रेरणा ही नहीं देता, आत्मविश्वास का भी निर्माण करता है। यह आवश्यक है क्योंकि अनुस्थितिज्ञान और आत्मविश्वास ही चलिष्णुता में स्वावलम्बन का रहस्य है और प्रभावी मानचित्र आधार।

स्पर्शीय मानचित्रों को प्रभावी बनाने के लिए कुछ बातों पर ध्यान देना आवश्यक है:-

1. स्पर्श मानचित्र ऐसी सामग्री से बनाए जाएं जो छूने से खराब न हों।

2. मानचित्र सादे और स्पष्ट (Simple with Clarity) हों। मानचित्र जितने सादे होंगे उनमें उतनी ही स्पष्टता होगी, अर्थात् स्पर्श द्वारा मानचित्र के माध्यम से वातावरण विशेष की पूरी जानकारी मिलती हो।

3. स्पर्शीय मानचित्र में एक साथ बहुत ज्यादा जानकारी न दी जाए।

4. विभिन्न वातावरण का परिचय देने के लिए अलग-अलग मानचित्र बनाए जाएं।

5. जमीन की विविध प्रकार की सतह जैसे कि पक्की सड़क, फुटपाथ, पगडंडी, कच्चा रास्ता आदि दर्शित करने के लिए अलग-अलग प्रकार की स्पर्श सामग्री का प्रयोग किया जाए, उदाहरणार्थ-बारीक रेती, फैल्ट कपड़ा, प्लास्टिक पेपर ताकि स्पष्ट पता लग जाए कि अमुक वातावरण में किस प्रकार के रास्ते हैं।

6. चौराहों, सिगनल, जेबरा क्रासिंग (Pedestrian Crossing), विशिष्ट स्थान (Landmarks) आदि का भी स्पष्ट पता लगना चाहिए।

7. मानचित्र में प्रयोग किए चिह्नों की सूची दी जाए।

8. मानचित्र की लिखित मार्गदर्शिका बनाई जाए।

चलिष्णुता में सहायक उपकरण:

उपकरणों में सबसे प्रभावी उपकरण तो साधारण छड़ी ही है, जिसके बारे में विस्तार में बताया जा चुका है। इसके अतिरिक्त वहुत सारे विद्युत उपकरणों का विकास भी हो चुका है, उदाहरणार्थ-विद्युत छड़ी (Electronic cane) विद्युत चश्मे Electronic glasses, Electronic hat, Electronic pendant आदि। इन सब उपकरणों के द्वारा रास्ते में आने वाली अड़चनों का पता विविध प्रकार के Electronic signal (beeps, whistles etc.) द्वारा मिलता है।

यद्यपि इस प्रकार के विद्युत उपकरणों का विकास हो चुका है, तथापि इनका उपयोग नहीं-सा हो रहा है। इनके लोकप्रिय न होने के दो कारण हैं- एक तो ये बहुत महँगे हैं, इसलिए अधिकांश दृष्टिहीन व्यक्तियों की पहुँच के बाहर हैं और दूसरा कारण जो कि मुख्य कारण है, वह यह कि इन उपकरणों द्वारा मिलने वाले संकेतों और सूचनाओं को ग्रहण करने और चलिष्णुता में उनका फायदा उठाने के लिए दृष्टिहीन व्यक्ति को अपना पूरा ध्यान आने वाले Signals पर रखना पड़ता है। ऐसा करते हुए वातावरण से अपनी अन्य ज्ञानेन्द्रियों तथा छड़ी द्वारा जो संकेत और सूचनाएं मिल रही होती हैं, उनकी ओर दुर्लक्ष्य हो जाना है। यही कारण है कि विद्युत उपकरणों की अपेक्षा दृष्टिहीन व्यक्ति साधारण छड़ी को ही अधिक पसन्द करते हैं। उनके मत में छड़ी तथा श्रवण, स्पर्श, गंध आदि द्वारा मिल रही सूचनाएं उनका वातावरण के साथ प्रत्यक्ष सम्पर्क बनाए रखती हैं, इसलिए यह अधिक विश्वसनीय है।

चलिष्णुता प्रशिक्षण की आयोजना करते हुए दृष्टिहीन व्यक्ति के वातावरण तथा उसकी निजी आवश्यकताओं को विशेष रूप से ध्यान में रखना चाहिए। प्रशिक्षण परिवार का सक्रिय सहयोग लेते हुए दिया जाए तो बहुत ही अच्छा होगा। प्रशिक्षण किस स्वरूप का हो, किस प्रकार से दिया जाए, यह तय करते हुए दृष्टिहीन व्यक्ति की आयु और शारीरिक क्षमता को ध्यान में रखना जरूरी है।

दृष्टिहीन व्यक्ति सहजता से स्वतन्त्र चल-फिर सकते हैं और उन्हें ऐसा करना भी चाहिए। जब वे आत्मविश्वास के साथ बाहर निकलेंगे तो समाज के दृष्टिकोणों में भी परिवर्तन आने लगेगा।

ध्यान रहे, चलिष्णुता स्वावलम्बन पुनर्वसन की आधारशिला है।

अध्याय- 12

ज्ञानेन्द्रिय प्रशिक्षण

-डॉ. एस.आर. मित्तल

अर्थ एवं महत्त्व:

मानव शिशु जन्म की पहली सांस के साथ ही अपने आपको अपने आस-पास के वातावरण से जोड़ने की क्षमता रखता है। मानव का मस्तिष्क इस प्रकार का बना है कि वह सदैव ज्ञानेन्द्रियों की मदद से अपने आस-पास के विश्व को अधिक, और अधिक जानने की कोशिश में व्यस्त रहता है। मानव में सीखने व ज्ञान अर्जन की प्रक्रिया मुख्यत: दो भागों में विभक्त है- संवेदन और प्रत्यक्षीकरण। यह दोनों क्रियाएं एक-दूसरे की पूरक क्रियाएं हैं। सर्वप्रथम ज्ञानेन्द्रियाँ सूचना एकत्रित कर मानव के मस्तिष्क तक पहुँचाती हैं, अत: ज्ञानेन्द्रियाँ ही सर्वप्रथम वह महत्त्वपूर्ण कार्य करती हैं जिससे मानव शरीर में सीखने की प्रक्रिया का प्रारम्भ होता है, इसलिए ज्ञानेन्द्रियों को मनुष्य में 'ज्ञान का द्वार' कहा गया है।

कोरसा (Corsa) ने 1967 में कहा था, "The sensory processes are the links that connect all behaving organs to their external environment as well as about the organs' own internal environment".

परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्राप्त संवेग कोई ज्ञान प्रकाश दे सकेगा अथवा नहीं। यह उस संवेग को मस्तिष्क तक पहुँचाने वाली तंत्रिकाओं तथा मस्तिष्क की विश्लेषण क्षमता व प्रतिभा पर निर्भर करता है कि हम ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त संवेग अथवा सूचना का क्या अर्थ निकालते हैं। इस प्रक्रिया को "प्रत्यक्षीकरण" कहते हैं।

जेम्स (James) के अनुसार, "प्रत्यक्षीकरण विशेष रूप से उन भौतिक पदार्थों की चेतना है जो ज्ञानेन्द्रियों के समक्ष रहते हैं।"

"Perception is the consciousness of particular material, things present to sense.

स्ट्रैंगर (Stranger) के अनुसार, "ज्ञानेन्द्रियों द्वारा बाहरी पदार्थों अथवा घटनाओं का ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया को 'प्रत्यक्षीकरण' कहते हैं।"

"Perception is the process of obtaining information about objects and events by means of the senses."

हमारे शरीर में आँख, कान, हाथ, पैर, त्वचा, नाक, मुँह व जिह्वा वह अंग हैं, जिनकी मदद से हम पाँचों ज्ञानेन्द्रियों-दृष्टि, स्पर्श, श्रवण, घ्राण व स्वाद-का प्रयोग कर अपने आसपास के वातावरण व सम्पूर्ण विश्व का ज्ञानार्जन करते हैं। यदि इन पाँच ज्ञानेन्द्रियों में से कोई एक भी पूर्णतः या आंशिक रूप से क्षतिग्रस्त हो जाए तो वह व्यक्ति उस ज्ञानेन्द्रिय विशेष से प्राप्त होने वाली सूचनाओं से वंचित रह जाएगा, जिसका प्रतिकूल प्रभाव उसके सीखने की क्षमता पर पड़ेगा। इस प्रकार केवल एक ज्ञानेन्द्रिय की क्षति से ही उसके विकास का पथ अवरुद्ध हो जाएगा।

प्रत्येक ज्ञानेन्द्रिय का एक विशेष कार्य है, जो कि अन्य ज्ञानेन्द्रिय नहीं कर सकती। उदाहरणार्थ आँख के रेटिना में मौजूदा कोशिका ही केवल प्रकाश के प्रति उद्दीपक है इसलिए मानव शरीर में प्रत्येक ज्ञानेन्द्रिय का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है तथा कोई अन्य ज्ञानेन्द्रिय किसी एक ज्ञानेन्द्रिय विशेष का स्थान नहीं ले सकती, परन्तु जब भी कोई ज्ञानेन्द्रिय क्षतिग्रस्त हो जाती है, तब हम अन्य ज्ञानेन्द्रियों के अधिकतम प्रयोग से उस ज्ञानेन्द्रिय विशेष की कमी को दूर करने का प्रयास कर सकते हैं। अन्य ज्ञानेन्द्रियों के अधिकतम प्रयोग के लिए मानव को एक विशेष प्रकार के प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। इसी प्रशिक्षण को 'ज्ञानेन्द्रिय प्रशिक्षण' कहते हैं।

ज्ञानेन्द्रिय प्रशिक्षण:

ज्ञानेन्द्रियों का सही एवं अधिकाधिक प्रयोग का प्रशिक्षण ज्ञानेन्द्रिय प्रशिक्षण है। किसी भी बालक का पाठशाला पूर्व अर्थात् प्रारम्भिक शिक्षा में उसकी सभी ज्ञानेन्द्रियों का सम्पूर्ण विकास अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि भविष्य में बालक अपनी इन्हीं ज्ञानेन्द्रियों के बल से अपने आसपास के वातावरण का सर्वोत्तम ज्ञान प्राप्त कर सकेगा, इसलिए सभी बालकों को, चाहे सामान्य हो या विकलांग, ज्ञानेन्द्रिय प्रशिक्षण देना नितान्त आवश्यक है। विकलांग बालकों में तो यह और भी आवश्यक है क्योंकि एक या अधिक ज्ञानेन्द्रिय के अभाव में बालक किसी भी वस्तु की पूरी जानकारी प्राप्त करने में सक्षम नहीं होता, इसलिए इस अभाव को दूर करने के लिए उसे बाकी ज्ञानेन्द्रियों का प्रयोग सिखाना अत्यन्त आवश्यक है।

दृष्टिहीन बालक के लिए तो ज्ञानेन्द्रिय प्रशिक्षण का महत्त्व और भी बढ़ जाता है, क्योंकि दृष्टि एक महत्त्वपूर्ण ज्ञानेन्द्रिय है तथा इसके अभाव में कभी-कभी बालक अन्य ज्ञानेन्द्रिय के प्रति अपना विश्वास भी खो देता है, इसलिए उसे बची हुई बाकी ज्ञानेन्द्रियों का समुचित प्रयोग सिखाना और भी आवश्यक है। दृष्टिहीन बालकों को ज्ञानेन्द्रिय प्रशिक्षण द्वारा उसकी बाकी ज्ञानेन्द्रियों का सर्वाधिक व सर्वोत्तम

प्रयोग करना सिखाया जाता है, जिससे कि वह दृष्टि के अभाव में अपने आसपास के वातावरण से सही ज्ञान अर्जित कर सके। दृष्टिहीन बालक को ज्ञानेन्द्रिय प्रशिक्षण में निम्न ज्ञानेन्द्रियों का अधिकतम व सही-सही उपयोग सिखाया जाता है:

1. श्रवण
2. स्पर्श
3. घ्राण
4. स्वाद
5. बची हुई दृष्टि

इन ज्ञानेन्द्रियों के प्रयोग के प्रशिक्षण की विधि को विस्तार से जानने से पूर्व हमें सभी ज्ञानेन्द्रियों की शक्तियों व सीमाओं को जानना भी अत्यन्त आवश्यक है, इसलिए इन ज्ञानेन्द्रियों की चर्चा निम्न रूप में है:

1. दृष्टि- सर्वप्रथम मानव को बाहरी दुनिया से जोड़ने वाली प्रमुख ज्ञानेन्द्रिय दृष्टि है। आँख में रेटिना पर उभरी तस्वीर मस्तिष्क को संदेश भेजती है कि अमुक वस्तु दिखने में कैसी है, कैसा रंग है, कैसा आकार है, वस्तु की दूरी कितनी है, वह स्थिर है या गतिमान आदि। इस प्रकार एक वस्तु के विषय में सभी सूचनाएं एक ही बार में कोई अन्य अंग ग्रहण नहीं कर सकते। दृष्टि की मदद से ही हम किसी वस्तु का पीछा स्थिर रहकर भी कर सकते हैं, इसलिए दृष्टि को मानव की प्राथमिक ज्ञानेन्द्रिय माना जाता है, परन्तु दृष्टि की अपनी कुछ सीमाएं भी हैं। दृष्टि केवल तभी कार्य कर सकती है जब उसके लिए पर्याप्त रोशनी उपलब्ध हो तथा वह एक निश्चित दूरी तक ही अपना कार्य कर सकती है तथा किसी भी वस्तु की सूचना प्राप्त करने के लिए वह दृष्टि के सम्मुख होनी भी आवश्यक है।

2. स्पर्श- स्पर्श ज्ञान बालक के किसी भी वस्तु के विषय में संकल्पना निर्माण में बहुत मदद करता है। इस ज्ञानेन्द्रिय का स्रोत हमारी त्वचा है। शरीर के अंगों का अपने वातावरण के साथ सामंजस्य स्थापित कर हम त्वचा के सम्पर्क से अनेक जानकारियाँ प्राप्त कर सकते हैं। इस ज्ञानेन्द्रिय को हम अधिक महत्त्व नहीं देते हैं जबकि श्रवण या दृष्टि के सापेक्ष में स्पर्श द्वारा प्राप्त संकेतों पर हमारा मस्तिष्क जल्दी क्रियाशील होता है। स्पर्श ज्ञानेन्द्रिय रासायनिक, भौतिक, यांत्रिक, थर्मल आदि के प्रति अत्यधिक संवेदनशील होती है। स्पर्श द्वारा ही हमें ताप आदि का अहसास होता है। शरीर की सम्पूर्ण त्वचा स्पर्श के प्रति संवेदनशील होती है, परन्तु शरीर के कुछ अंग जैसे मुँह, जीभ, होंठ, तलवे, अंगुलियों का अग्र भाग

शरीर के अन्य भागों की अपेक्षा अधिक संवेदनशील होते हैं। इन्हीं अंगों का प्रयोग स्पर्श शक्ति विकास के प्रशिक्षण में किया जाता है।

स्पर्श शक्ति की भी अपनी सीमाएं हैं। सर्वप्रथम तो इससे जानकारी खण्डों में प्राप्त होती है। इससे अत्यधिक बड़े आकार या अत्यन्त छोटे आकार की वस्तु को पहचानना कठिन है तथा यह ज्ञानेन्द्रिय क्षणभंगुर पदार्थों की सूचना देने में भी अक्षम है। इसके द्वारा सूचना तभी प्राप्त की जा सकती है, जब वह वस्तु त्वचा के सम्पर्क में हो तथा क्रियावान (Active) हो।

3. श्रवण– भीतरी कान में स्थित तंत्रिकाएं आवाज के प्रति संवेदनशील होती हैं। इन तंत्रिकाओं द्वारा प्राप्त संदेशों के विश्लेषण से मानव मस्तिष्क को आवाज की दिशा, आवाज के उद्‌गम स्थल आदि की जानकारी मिलती है। जन्मोपरान्त बालक मनुष्य की आवाज सुनाता है जो उसे मधुरता व खुशी प्रदान करती है,परन्तु समय के साथ-साथ वह वातावरण में उपस्थित अनेक आवाजों के सम्पर्क में आता है। इन आवाजों में विभेद वह अपनी श्रवण क्षमता के आधार पर ही करता है। भविष्य में बालक के भाषा विकास का भी प्रथम स्रोत उसकी श्रवण शक्ति ही है। श्रवण द्वारा प्राप्त सूचनाओं के आधार पर ही हमारा भाषा विकास होता है तथा इसी भाषा की मदद से मानव बाहरी दुनिया से संचार-सम्पर्क स्थापित करता है। मानव की श्रवण ज्ञानेन्द्रिय की एक निश्चित सीमा है। वह केवल 20-50,000 डेसीबल (decibles) तक की आवाजें सुन सकता है। आवाज से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर आवाज के स्रोत की लगभग सही स्थिति तो ज्ञात हो सकती है, परन्तु उसके आकार, रंग आदि का ज्ञान प्राप्त नहीं किया जा सकता तथा प्रत्येक वस्तु से आवाज की उत्पत्ति होना भी सम्भव नहीं है।

4. घ्राण– घ्राण शक्ति के प्रयोग से भी हम वातावरण से अनेक जानकारियाँ प्राप्त कर सकते हैं। हमारी नाक गंध के प्रति संवेदनशील होती है। गंध से हम जान सकते हैं कि गंध किस वस्तु की है, किस दिशा से आ रही है, गंध छोड़ने वाली वस्तु हमसे कितनी दूर है इत्यादि। परन्तु इन सब बातों का ज्ञान हम घ्राण शक्ति के सर्वोत्तम प्रयोग से ही प्राप्त कर सकते हैं, जिसके लिए घ्राण शक्ति विकासक प्रशिक्षण अत्यन्त आवश्यक है। नासिका द्वारा प्राप्त कुछ गंध हमें अच्छी लगती हैं (सुगंध) और कुछ खराब (दुर्गंध)। गंध के इस विभेद से भी हमें अनेक जानकारियाँ मिलती हैं, विशेपकर खाद्य पदार्थों के सम्बन्ध में। इस ज्ञानेन्द्रिय द्वारा उन पदार्थों की जानकारी नहीं मिल सकती जो गंधहीन हैं, जैसे-लोहा, पीतल आदि।

5. स्वाद– हमारी जिह्वा में लगभग 2000 स्वादों को पहचानने की क्षमता होती है। जिह्वा का अग्रभाग अत्यन्त संवेदनशील होता है तथा स्वाद के विभेदीकरण

में अधिक सक्षम होता है, यहाँ तक कि यह संकेतों की भी पहचान कर सकता है। कुछ व्यक्तियों के विषय में ज्ञात होता है कि वे अपनी जिह्वा के अग्रभाग से ब्रेल भी पढ़ सकते हैं। इस ज्ञानेन्द्रिय की सबसे बड़ी सीमा यह है कि प्रत्येक वस्तु/पदार्थ को हम जिह्वा से नहीं छू सकते।

ज्ञानेन्द्रिय प्रशिक्षण के लिए विभिन्न क्रियाओं के उदाहरण:

यह सम्पूर्ण वातावरण ही स्वयं में ज्ञानेन्द्रिय प्रशिक्षण देने में सक्षम है। हम जो कुछ भी देखते हैं, महसूस करते हैं, सुनते हैं, चलते-फिरते हैं, वे सभी क्रियाएं वातावरण में विद्यमान अनेकों सूचनाएं हमें देती हैं। इन क्रियाओं को हम ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से ही पूर्ण रूप में करने में समक्ष होते हैं। ज्ञानेन्द्रिय प्रशिक्षण की कोई निश्चित प्रमापीकृत विधियाँ नहीं हैं। वातावरण से ही अनेकों प्रकार की आवाजों, क्रियाओं आदि के माध्यम से बहुत ही कम खर्च में आसानी से उपलब्ध सामग्री द्वारा उच्चकोटि के ज्ञानेन्द्रिय प्रशिक्षण को विकसित किया जा सकता है। निम्न क्रियाओं से यह तथ्य और भी अधिक स्पष्ट होता है :-

1. श्रवण ज्ञानेन्द्रिय :-

बालक की श्रवण ज्ञानेन्द्रिय के विकास के लिए उसे अधिक से अधिक व विभिन्न प्रकार की ध्वनियों/आवाजों का अनुभव प्रदान किया जाना चाहिए तथा आवाज की दिशा का भी ज्ञान कराया जाना चाहिए।

क्रियाएं:

(1) **परिवार के सदस्यों की आवाज द्वारा पहचान-**

- परिवार के जितने भी सदस्य हैं बच्चे से बात करें।

- घर में विभिन्न वस्तुओं के गिरने की आवाज जैसे कटोरी, गिलास, थाली, चम्मच, कांच के गिरने की आवाज आदि।

- ट्रांजिस्टर, टी.वी. की आवाज, धीरे व कम आवाज।

(2) **पास-पड़ोसियों की आवाजों की पहचान-**

- बच्चे को माता-पिता अपने पड़ोसियों से मिलवाएं।

- सभी के साथ बात करने के लिए उत्साहित करें।

- पड़ोसियों को भी बालक के साथ बात करने को कहें।

- बच्चे के साथ खेलने के लिए अन्य बच्चों को प्रोत्साहित करें।

(3) **विभिन्न जानवरों की आवाजों की पहचान-**

- घर में पाये जाने वाले जानवर जैसे कुत्ता, बिल्ली, चूहा, तोता आदि की आवाजों से बच्चे को परिचित कराएं।

- स्वयं भी वैसी ही आवाज निकालकर बच्चे से भी आवाज को निकलवाएं, जैसे बिल्ली-म्याऊँ-म्याऊँ।

- गाय, भैंस, बकरी, भेड़ आदि की आवाज सुनवाएं।

- विभिन्न प्रकार के पक्षियों की आवाज जैसे चिड़िया, कौवा, कबूतर, तोता, चील, कोयल, मैना आदि की आवाज से परिचित करवाएं।

- आवाज के माध्यम से विभिन्न दिशाओं से आवाज उत्पन्न कर बच्चे को आवाज की दिशा का ज्ञान कराएं। बच्चे को प्रेरित करें कि वह आवाज करने वाली वस्तु तक पहुँचने का प्रयास करे।

- बच्चे को गतिशील वस्तुओं की आवाज की दिशा का ज्ञान अवश्य कराएं।

- विभिन्न प्रकार की कविताएं बच्चे को सुनवाएं।

(4) **विभिन्न वाहनों की आवाजों की पहचान-**

- बच्चे को अनेकों प्रकार के वाहनों जैसे बस चलने, स्कूटर, मोटर साइकिल, साइकिल आदि की आवाज से परिचित करवाएं।

- साइकिल की घण्टी, स्कूटर का हॉर्न, गाड़ी का हॉर्न, बस, ट्रक आदि के हॉर्न से बच्चे को परिचित होने का मौका दीजिए।

- आवाजों की पहचान के साथ-साथ बच्चे को आवाज की दिशा का ज्ञान होना आवश्यक है। इसके लिए प्रशिक्षक/माता-पिता एक ओर खड़े होकर ताली बजाएं व बच्चे को आवाज की दिशा में आने को कहें। इस क्रिया को दोहराएं।

- पुनः अन्य आवाजें सुनाकर बच्चे को आवाज की दिशा का ज्ञान कराएं।

2. स्पर्श ज्ञानेन्द्रियं :-

स्पर्श द्वारा दृष्टिहीन बालक अपने वातावरण की जानकारी छूकर प्राप्त करता है। दृष्टिबाधित के सम्बन्ध में कहा गया है कि दृष्टिबाधित की अंगुलियाँ ही उसकी आँखें हैं। ब्रेल लिपि का विकास इसी सिद्धान्त पर हुआ है। दृष्टिबाधित बालक दुनिया को स्पर्श द्वारा ही पहचानता है, अतः उसकी स्पर्श ज्ञानेन्द्रिय के विकास के लिए उसे अधिक से अधिक स्पर्श के द्वारा ज्ञान प्राप्त करने के अवसर देने चाहिएं।

क्रियाएं:

(1) घर का ज्ञान-

- बच्चे को घर की वस्तुओं की पहचान कराएं। उसे प्रत्येक वस्तु भली-भांति छूकर जानने व पहचानने में सहयोग करना चाहिए।

- उसे जो भी वस्तु छूने के लिए दें उसे एक सिरे से तरतीब से घुमाकर/छुआकर पूरी आकृति और आकार की पहचान कराएं।

- घर में समान रखने की निश्चित जगह बनाएं व बच्चे को उस जगह से परिचित करवाएं।

- विभिन्न प्रकार के अनाजों की पहचान भी बच्चे को स्पर्श माध्यम से करवायें।

- घर में बनने वाली प्रत्येक दाल, सब्जी, चावल, अन्य खाद्य पदार्थ/पकवान आदि भी स्पर्श करवाएं।

(2) घर के बाहर का ज्ञान-

- पार्क/आंगन/बरामदा आदि में बालक को ले जाएं व खेलने के लिए प्रेरित करें। उसके भाई-बहन को भी खेलने के लिए प्रेरित करें।

- आंगन/पार्क के आस-पास की सभी वस्तुओं व खेलने के स्थान का परिचय कराएं।

- गमलों, फूल-पत्तियों का ज्ञान कराएं।

- छूकर बड़ी, छोटी, मोटी पत्तियों का, फूलों का एवं पौधों का ज्ञान कराएं। इसी क्रम में घास का भी स्पर्श द्वारा ज्ञान दिया जा सकता है। घास उखड़वाएं, पत्तियों के छोटे-छोटे टुकड़े करवाएं, बगीचे का ज्ञान करवाएं। इसके अन्तर्गत पेड़ों का स्पर्श करवाएं।

- विभिन्न प्रकार के कंकड़, मिट्टी के प्रकार, पत्थर आदि की भी जानकारी स्पर्श से दीजिए।

- बगीचे में लगे फल व सब्जियों की पहचान कराएं।

(3) मुलायम व खुरदरा कपड़ा स्पर्श कराएं-

- दोनों सतहों में भेद मालूम हो जाने पर उसे तरह-तरह के कपड़े स्पर्श करके पहचान कराएं, जैसे साड़ी, कमीज, कम्बल, दरी, बोरी, चादर आदि।

- बच्चे से उसके पहने हुए कपड़े भी स्पर्श कराएं तथा उसे उनके बारे में बताएं।

- अधिक से अधिक किस्म के कपड़ों की पहचान करवाएं। इसके लिए सूती, रेशमी, टेरीकॉट, साटन, जार्जट, सिल्क आदि की दो-दो कतरनों को काट लीजिए। एक-एक प्रत्येक कतरन को एक छोटी-सी थैली में रख दें व दूसरी कतरन को अपने पास। अब अपने पास वाली एक कतरन बच्चे को देकर उसी के जैसी दूसरी कतरन को थैलों में से निकालने को कहें।

- विभिन्न प्रकार के कागज, प्लास्टिक, लोहे की जाली, सनमाइका आदि के प्रकारों से भी बालक को परिचत करवाएं।

- बालक को तिकोन, गोल, चौरस आदि आकृति की वस्तुएं दें जैसे समोसा-तिकोन, बर्फी-चौकोर, लड्डू-गोल आदि। इससे बालक आकृतियों को भी पहचान सकेगा।

- बालक जिन वस्तुओं से परिचित हो जाये उन्हें एक-एक करके उसको दें व स्पर्श द्वारा पहचान कर उसका नाम बताने के लिए प्रेरित करें। इस प्रक्रिया को पुनः दोहराएं।

- धागों के द्वारा कागज पर सीधी, आधी, पूरी, टेढ़ी-मेढ़ी लाइन आदि बनाकर स्पर्श करवाएं। उस पर उंगली बार-बार फेरने को कहें।

- दीवार, लोहे का बक्सा, लकड़ी का दरवाजा, शीशे का दरवाजा आदि की भी बालक को पहचान करवाएं।

3. घ्राण ज्ञानेन्द्रिय :-

घ्राण ज्ञानेन्द्रिय वस्तुओं से निकलने वाली गंध द्वारा दृष्टिहीन बालक को पहचान में मदद करती है।

क्रियाएं

(1) घर की वस्तुओं की पहचान-

- घर में उपलब्ध विभिन्न प्रकार की खुशबू जैसे तेल, क्रीम, पाउडर आदि को सुंघाकर पहचान करवाएं।

- रसोईघर में खाना बनने की खुशबू, प्रयोग होने वाले तेल, मसाले, चाय की पत्ती आदि को सुंघाइये।

- घर में लाये गये विभिन्न प्रकार के फलों की खुशबू जैसे संतरा, नींबू, सेब केला, नाशपाती आदि की पहचान करवाएं।

(2) घर के बाहर की वस्तुएं-

- बालक को बगीचे में ले जाएं, विभिन्न प्रकार के फूलों को सुंघाकर जैसे गेंदा, गुलाब, चमेली, हार-सिंगार आदि की पहचान करवाएं।

- विभिन्न पत्तियों जैसे आम, नींबू, नीम, अमरूद, कढ़ी पत्ता, मोर पंख, रबड़ आदि की पहचान करवाएं।

(3) स्नानगृह, शौचालय व कूड़ा-करकट की दुर्गंध की पहचान-

- बालक को कूड़ा डालने वाले स्थान पर ले जाएं व दुर्गंध की पहचान करवाएं।

- गोबर की दुर्गंध भी बताएं।

(4) मसालों आदि की पहचान-

- काली मिर्च, जीरा, लौंग, अजवायन, हींग, सौंफ, लाल मिर्च, हरी मिर्च आदि को छोटे-छोटे डिब्बों में रखकर बालक को एक-एक करके दें व भली प्रकार से पहचानने दें।

- इसी क्रम में छोटी-छोटी शीशियों में तेल, जैसे सरसों, आँवला, अरण्डी, जैतून, नारियल रखकर बालक को सुँघायें व पहचान करवाएं।

(5) दैनिक जीवन की क्रियाओं में आने वाली वस्तुओं की पहचान-

प्याज, टमाटर, धनिया, मछली, मीट, अदरक, लहसुन, चॉकलेट, कॉफी, साबुन आदि वस्तुएं, जो सामान्य रूप से घरों में रोजमर्रा प्रयोग की जाती हैं, उन सभी को सुंघाकर पहचान करवानी चाहिए ताकि बालक अपनी दैनिक जीवन की क्रियाओं में आत्मनिर्भर बन सके।

4. स्वाद ज्ञानेन्द्रिय :-

घ्राण व स्वाद को आपस में सम्बन्धित करके हम बालक की इन दोनों ही ज्ञानेन्द्रिय का प्रयोग कर अच्छे परिणाम प्राप्त कर सकते हैं क्योंकि प्रत्येक वस्तु को मुँह में नहीं डाला जा सकता, परन्तु हम खाद्य पदार्थों के सम्बन्ध में जानकारी/सूचना के लिए इसी ज्ञानेन्द्रिय पर निर्भर रहते हैं।

क्रियाएं :

- रसोईघर में जब भी बालक कोई चीज खाये तो उससे उसके स्वाद के विषय में पूछिये।

- बालक को खट्टा, मीठा, तीखा, नमकीन, फीका, कड़वा आदि स्वादों की जानकारी दें।

- बालक को ताजा व बासी खाने के स्वाद में अन्तर करना सिखाएं।

- फलों के सड़ने की गन्ध व कुछ हद तक स्वाद से भी परिचय कराएं।

- साफ व गंदे पानी के विषय में बताएं।

5. बची हुई दृष्टि :-

यह वह दृष्टि है जो बालक में पूर्ण रूप से खत्म नहीं हुई है। इस बची हुई दृष्टि से बालक अपने दैनिक जीवन के कार्य- चलना-फिरना आदि आसानी से कर सकता है। कई माता-पिता यह सोचते हैं कि बची हुई दृष्टि के प्रयोग से उनके दृष्टिबाधित बालक की आँख की स्थिति और भी खराब हो जाएगी, यह एक गलत व भ्रामक तथ्य है। ऐसे बालकों को हम आंशिक दृष्टि वाले भी कहते हैं।

क्रियाएं:

(1) ध्यान व जागरूकता-

- प्रकाश के प्रति बालक को ध्यान देने व जागरूक करने की आवश्यकता होती है। इसके लिए बालक को आकर्षित करने के लिए उसके सामने उसकी कोई प्रिय वस्तु को हिलाएं अथवा आवाज उत्पन्न करें और उसी दिशा में देखने को कहें।

- बच्चे से कहें कि वह अपने दोनों अंगूठों को 30 से 40 सें.मी. की दूरी पर रखे। आँखों से भी अंगूठे की दूरी लगभग उतनी ही होनी चाहिए। अब बच्चे से उस समय तक एक अंगूठे को ध्यान से देखने के लिए कहें, जब तक आप ताली बजाकर दूसरे अंगूठे को देखने के लिए न कहें।

- किसी भी स्थान पर चार वस्तुएं क्रम से रखें और क्रमवार बोलने पर बालक को कहें कि बोली गयी वस्तु पर ही अपनी दृष्टि को स्थिर करें।

(2) दृष्टि द्वारा पीछा करना (Visual Tracking)-

- बालक की इस दक्षता को विकसित करने के लिए जो भी क्रियाएं करवाई जाएंगी वह बच्चे की दृष्टि क्षेत्र में आनी आवश्यक हैं।

- किसी खिलौने या वस्तु को धागे से बांधकर धीरे-धीरे अलग-अलग दिशाओं में घुमाइये और बालक को बिना हिले-डुले आँखों से इस वस्तु का पीछा करने को कहें।

- बुलबुले तैयार कर बालक को उन्हें देखकर छूने को कहें।

- ऐसे खेल बनाएं जिसमें बच्चे को रेखाओं या आकृतियों के ऊपर हाथ फेरना पड़े।

(3) **स्कैनिंग (Scanning) -**

- बच्चे को मिलान करने, अलग करने, समूह बनाने आदि क्रियाओं को सिखाएं। सबसे पहले वास्तविक वस्तु दीजिए और बाद में विभिन्न आकृतियाँ, चित्र, कार्ड, वर्णमाला, संख्या, शब्द आदि।

- फर्श के ऊपर रंग से सीधी रेखा खींचिए तथा एक टेढ़ी-मेढ़ी रेखा खींचिए। बालक को इन रेखाओं पर चलाइए।

(4) **विभेदीकरण-**

- बालक को रंगों में, आकृति, आकार, स्थिति, दाएं-बाएं, ऊपर-नीचे आदि में अंतर करना सिखाएं।

- पृष्ठभूमि के साथ रंगविभेद सिखाना आवश्यक है।

- वस्तु की विस्तार से जानकारी देनी चाहिए।

(5) **प्रारूपों को पहचानना-**

- मोटे अक्षरों को पहचानना, उनको उल्टा करके दिखाना व सीधा बताना आदि।

उक्त पाँचों ज्ञानेन्द्रियों की क्रियाएं उदाहरण मात्र हैं। अध्यापक अपनी सोच व आवश्यकता के अनुसार अन्य क्रियाएं बना सकता है, जिनके द्वारा दृष्टिबाधित बालकों में ज्ञानेन्द्रिय प्रशिक्षण के उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सके और ये बालक दृष्टि की कमी को अधिकतम सीमा तक पूरा कर सकें। प्रयास करना चाहिए कि ये अनुभव बालक को खेल के रूप में ही दिये जाएं। इस प्रकार बालक आनन्द भी उठाएगा व खेल ही खेल में सीख भी जाएगा।

ज्ञानेन्द्रिय प्रशिक्षण के लिए सहायक सामग्री के निर्माण एवं अनुकूलन के लिए दिशा-निर्देश:

जैसा कि पूर्व में यह तथ्य उजागर होता है कि ज्ञानेन्द्रिय प्रशिक्षण के लिए कोई भी प्रमापीकृत विधियाँ, उपकरण आदि उपलब्ध नहीं हैं, अतः हम वातावरण को ही प्रशिक्षक मानकर विभिन्न क्रियाओं द्वारा ज्ञानेन्द्रिय प्रशिक्षण दे सकते हैं और

इसके लिए सहायक सामग्री भी वातावरण में ही विद्यमान है। परन्तु कुछ सावधानियाँ अवश्य बरती जानी चाहिएं ताकि बालक को या उसकी किसी भी ज्ञानेन्द्रिय को नुकसान/क्षति न हो जाए, जो कि एक दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति हो जाएगी:

1. श्रवण ज्ञानेन्द्रिय –

- अधिक तेज आवाज बच्चे को न सुनवाएं। इससे कभी-कभी कान का पर्दा तक फटने की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

2. स्पर्श ज्ञानेन्द्रिय-

- बच्चे को अधिक नुकीली, खुरदरी, तेज तापमान, अत्यधिक ठंडी वस्तुओं का स्पर्श न कराएं, इससे उसकी स्पर्शीय क्षमता को नुकसान पहुँच सकता है।

- बालक को बार-बार यह न कहें कि इसे मत छुओ, टूट जाएगा आदि।

3. घ्राण ज्ञानेन्द्रिय-

- अत्यधिक खतरनाक व तीव्र गंध से बालक की नाक को न छुआएं।

- मिट्टी का तेल, पेट्रोल, विभिन्न प्रकार के तेलों से बालक को परिचित कराते समय यह अवश्य बताएं कि इनके हानिकारक प्रभाव क्या हैं? और इन्हें हमेशा सावधानी से ही प्रयोग करना चाहिए।

4. स्वाद ज्ञानेन्द्रिय-

- प्रत्येक वस्तु को मुँह में नहीं डालना चाहिए।

- मुँह में डालने से पूर्व उसको सूंघना व स्पर्श करके समझ लेना आवश्यक है।

- किसी वस्तु/पदार्थ को कितनी मात्रा में खाना है, यह अवश्य बताएं।

- किस खाद्य पदार्थ से कौन-सा विटामिन प्राप्त होता है, यह अवश्य बताएं।

- अत्यधिक मात्रा में किसी चीज को खाने से क्या नुकसान हो सकता है, इसकी जानकारी अवश्य दें।

5. बची हुई दृष्टि-

- जब भी इससे सम्बन्धित क्रियाएं कराएं तो बालक को केन्द्र में रखकर कराएं। उसी पर ध्यान केन्द्रित रखें।

- बालक यदि थकान की शिकायत करे तो क्रियाओं को कराते समय उसे आराम दें।

- आँखों में, सिर में दर्द कहे तो उसे आराम देना चाहिए।

- क्रियाओं को कराते समय क्रम का ध्यान रखें।

- रंगों का चयन उचित व वैज्ञानिक तरीके से करें।

- चमकरहित वस्तुओं का ही प्रयोग करें।

- रोशनी की उचित व्यवस्था होनी चाहिए।

- अलग-अलग आकृति व अलग-अलग सतह, बनावट वाली वस्तुओं का प्रयोग करना चाहिए।

- अलग-अलग रंगों को अलग-अलग बनावट के साथ जोड़कर भी क्रिया को कराया जा सकता है।

- बार-बार अभ्यास कराएं, जिससे बालक को प्रत्येक क्रिया का उद्देश्य भली प्रकार समझ में आ जाए।

-डॉ. एस.आर. मित्तल

मानव पृथ्वी पर अवतरण के पश्चात् सदैव क्रियाशील रहता है। प्रात: उठने से रात्रि सोने तक सैकड़ों क्रियाओं को करता है। इन्हीं क्रियाओं व गतिविधियों का अध्ययन हम "दैनिक क्रियाएं एवं गतिविधियों" के अन्तर्गत करते हैं।

सामान्यतया दृष्टिवान मनुष्य अधिकांश दैनिक क्रियाएं अन्य मनुष्यों को करते हुए देखकर सीख जाता है, जिसे 'अनुकरण द्वारा सीखना' कहते हैं। दृष्टि का अनुकरण द्वारा सीखने में महत्वपूर्ण योगदान है, अत: दृष्टिहीन बालक इस प्रक्रिया को नहीं सीख पाता। वह अन्य ज्ञानेन्द्रियों की सहायता से यह तो जान जाता है कि कोई क्रिया हो रही है, परन्तु क्रिया को करने की प्रक्रिया क्या है, यह नहीं सीख पाता।

सही प्रक्रिया के अभाव में वह इन क्रियाओं का निष्पादन गलत करता है, जिससे उसका आत्मविश्वास भी डगमगा जाता है। इसके अतिरिक्त अवसर का अभाव, विश्वास की कमी, पर्यावरण की निरपेक्षता आदि भी दृष्टिहीन बालक द्वारा निष्पादित इन क्रियाओं को प्रतिबंधित करते हैं।

दैनिक क्रियाएं ही मनुष्य को समाज में बेहतर व स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करने में सहायक हैं। मूल दैनिक क्रियाओं के अन्तर्गत आने वाली कुछ प्रमुख क्रियाएं हैं- नहाना, धोना, मल-विसर्जन, खाना पकाना व खाना, बाजार, घर व पैसे का रख-रखाव इत्यादि। इन्हीं क्रियाओं की शिक्षण विधियों पर हम आगे विशेष रूप से प्रकाश डालेंगे।

(क) विभिन्न दैनिक क्रियाओं की आवश्यकता एवं महत्व:

इस विषय पर प्रकाश डालने से पूर्व एक साधारण, सामान्य व्यक्ति की मन: स्थिति पर गौर करें। प्राय: जब कोई कार्य बिगड़ जाए या प्रयास करने पर भी कोई कार्य न हो सके, तब वह व्यक्ति धीरे-धीरे अवसाद से ग्रस्त हो जाता है। यही स्थिति दृष्टिबाधित बालक की भी हो जाती है, जब वह किसी कार्य को स्वतन्त्र रूप से नहीं कर पाता या उसे किसी कार्य को करने में किसी अन्य व्यक्ति की सहायता पर निर्भर रहना पड़ता है। दृष्टि की क्षति के कारण जो सबसे प्रथम

व महत्वपूर्ण दुष्प्रभाव बालक पर पड़ता है, वह है किसी भी कार्य को स्वतन्त्रतापूर्वक करने में अक्षमता, जो कार्य उसे प्रातः उठते ही करने हैं। यदि इन कार्यों को करने का सही प्रशिक्षण उसे दिया जाए तो उसके अन्दर सकारात्मक सोच का विकास होगा, साथ ही समाज उनको भली प्रकार स्वीकार करेगा, जो कि सम्मानजनक जीवनयापन के लिए एक आवश्यक तत्त्व है।

(ख) विभिन्न दैनिक क्रियाओं के प्रशिक्षण की आवश्यकता:

दृष्टिगत तथा विभेदीकरण की योग्यता की कमी के कारण दृष्टिहीन बालक के लिए दैनिक जीवन की क्रियाओं को स्वयं सीखना कठिन हो जाता है, क्योंकि अधिकांश कार्य नियमित प्रकृति के होते हैं, अतः दृष्टिहीन बालक को इन कार्यों के निष्पादन के लिए किसी विशेष तकनीक को सीखने की आवश्यकता नहीं है। कार्य को निष्पादित करने में निहित किसी विशेष प्रक्रिया के लिए उनको प्रशिक्षित करना आवश्यक है, परन्तु तकनीक की अपनी अहमियत है। विशेष तकनीक या उपकरण तथा अनुकूलन द्वारा दृष्टिहीन बालक को कुछ कार्यों को अपेक्षाकृत अधिक आसानी से निष्पादित करने में सहायता मिल सकती है। उदाहरणस्वरूप, एक बोलने वाली घड़ी, कैलकुलेटर आदि के प्रयोग से दृष्टिहीन व्यक्ति दृष्टिवान व्यक्ति की भांति इच्छित परिणाम प्राप्त कर सकता है।

दैनिक जीवन के कार्यों के प्रशिक्षण की विधियाँ:

1. बालक की आयु- प्रशिक्षक को सर्वप्रथम यह पता लगा लेना आवश्यक है कि किस आयु में बालक को कौन-सी क्रिया सिखानी है। इसका एक उत्तम उपाय यह है कि एक दृष्टिवान बालक का निरीक्षण किया जाए कि कौन-सी आयु में वह कौन-सी क्रिया को करना आरम्भ करता है।

2. विशेष कौशल का विकास- आयु निर्धारण पश्चात् किसी विशेष क्रिया का निर्धारण जो बालक को सिखानी है।

3. उन कठिनाइयों को ज्ञात करना, जो दृष्टिहीनता के कारण क्रिया को करते समय आती हैं।

4. वैयक्तिक विभिन्नता विशेष रूप से ध्यान देने योग्य तथ्य है, क्योंकि प्रत्येक बालक स्वयं में एक अलग शख्सियत रखता है, अतः प्रत्येक बालक को उसकी ग्रहण करने, समझने की योग्यता के अनुसार उपयुक्त परिवर्तनों के साथ ही विशिष्ट प्रक्रिया का विकास करना चाहिए।

5. प्रशिक्षण के दौरान बालक की शारीरिक क्षमता, माता-पिता की आर्थिक स्थिति, पर्यावरण तथा व्यक्ति द्वारा महसूस की जाने वाली आवश्यकताओं आदि को विशेष रूप से ध्यान में रखना चाहिए।

6. निरन्तर निर्देशन तथा प्रशिक्षण के पश्चात् सतत मूल्यांकन अवश्य होना चाहिए।

7. वारम्वार अभ्यास का क्रम जारी रखें।

(ग) विभिन्न दैनिक क्रियाओं के प्रशिक्षण के लिए सहायक सामग्री के निर्माण हेतु दिशा-निर्देश:

दैनिक क्रियाएं चूँकि हमारी रोजमर्रा की जिन्दगी की क्रियाएं हैं, जैसे नहाना, खाना बनाना, कंघी करना, खाना खाना, ब्रश करना, कपड़े पहनना, व्यक्तिगत कार्य, पैसे की सम्भाल आदि, इसलिए इन क्रियाओं के प्रशिक्षण हेतु प्रशिक्षक को मूल वस्तुओं को ही सहायक सामग्री के रूप में प्रयोग करना चाहिए।

1. प्रशिक्षण देने से पूर्व सभी प्रकार की सामग्री, उपकरण, विशेष सहायक सामग्री तथा उपकरण, स्पर्शी अनुकूलन को एकत्रित कर लीजिए।

2. कार्य की प्रक्रिया को छोटे-छोटे टुकड़ों में विभक्त करके सिखाएं।

3. कार्य को सरल-से-सरल बनाने की कोशिश करें।

4. वस्तुओं के स्थान के सम्बन्ध में और उनको लेने तथा उन्हें पुनः रखने के विषय में अवश्य बताएं।

5. क्रियाओं को कराते समय सुरक्षा का ध्यान अवश्य रखें, ताकि क्षति न होने पाए व कम-से-कम हानि हो।

6. प्रक्रिया के दौरान निरन्तर निरीक्षण करते रहना चाहिए व जब भी आवश्यक हो निर्देश देने चाहिएं।

7. बालक द्वारा सही कार्य करने पर सराहना अवश्य करनी चाहिए।

(घ) दैनिक क्रियाओं के प्रशिक्षण के उदाहरण:

दैनिक क्रियाओं का प्रशिक्षण देने का उद्देश्य यह है कि दृष्टिहीन बालक कम-से-कम सहायता से अपनी दैनिक क्रियाओं को स्वयं करने तथा सभी कार्यात्मक क्रिया-कलापों में आत्मनिर्भर होने के योग्य हो जाए। इसी क्रम में यदि बालक

को कुछ पूर्व अनुभव है तो उसकी सहायता से इन प्रक्रियाओं को सिखाया जाता है, उदाहरणस्वरूप-

चाय बनाना- चाय बनाना दृष्टिवान बालक/बालिका के लिए बहुत ही आसानी से सीखने वाली प्रक्रिया है, परन्तु यह प्रक्रिया दृष्टिहीन बालक/बालिका के लिए जटिल हो जाती है, अतः इस पूरी प्रक्रिया को निम्न चरणों में सिखाया जा सकता है:-

1. सामग्री :

(1) दूध

(2) चीनी

(3) पानी

(4) चाय की पत्ती

2. उपकरण :

(1) गैस/स्टोव

(2) केतली/कप, छलनी, चम्मच, पकड़ (केतली उठाने के लिए)

(3) पानी नापने का बर्तन, जिस पर निशान बने होते हैं।

3. विधि :

(1) केतली को उठाना।

(2) कप से या नापने वाले बर्तन से पानी नापकर केतली में डालना।

(3) गैस/स्टोव की स्थिति का पता लगाना।

(4) दाएं हाथ में लाइटर/माचिस को पकड़ना।

(5) बाएं हाथ से गैस का नाब खोलना और दाएं हाथ से लाइटर को बर्नर के पास ले जाना और जलाना (माचिस की तीली को जोर से नीचे की तरफ रगड़ना)

(6) केतली को गैस के ऊपर रखना व ढकना।

(7) पानी उबलने की आवाज होने पर ढक्कन हटाना।

(8) चम्मच से चाय की पत्ती नापकर केतली में डालना।

(9) चम्मच से चीनी नापकर केतली में डालना।

(10) केतली का ढक्कन फिर से लगाना।

(11) पत्ती उबलने की आवाज के साथ ही ढक्कन हटाकर कप या नापनी से दूध नापकर केतली में डालना।

(12) केतली का ढक्कन लगाकर कुछ ही क्षणों बाद गैस बन्द कर देनी चाहिए।

4. चाय को कप में परोसना :

(1) सर्वप्रथम केतली को गैस/स्टोव से उतारिए।

(2) चाय छानने के लिए छलनी को चाय के कप आदि में फिट कीजिए।

(3) कप/गिलास को क्रम से रखिए। कप के बाहर की तरफ बाएं हाथ की तर्जनी उंगली को सटाकर रखिए।

(4) दाएं हाथ से केतली उठाकर छलनी में धीरे-धीरे चाय डालिए।

(5) चाय को तब तक कप में डालिए, जब तक उंगली पर गर्म महसूस न हो।

(6) चाय से भरा कप दाएं हाथ से उठाकर चाय पी लीजिए।

ब्रश करना :

(1) ब्रश को बाएं हाथ से अंगूठे और उंगली के बीच में ऐसे पकड़ें कि ब्रशल्स ऊपर की ओर हों।

(2) दाएं हाथ के अंगूठे से और पहली उंगली (तर्जनी) की सहायता से पेस्ट की ट्यूब का ढक्कन खोलें।

(3) दाएं हाथ से ट्यूब को पकड़ते हुए ब्रशल्स के ऊपर ट्यूब के खुले भाग को रखें और हल्का-सा दबाएं ताकि पेस्ट बाहर निकल सके। इस बात का ध्यान रखें कि पेस्ट कपड़ों पर या नीचे न गिरे।

(4) दाएं हाथ में ट्यूब को पकड़ते हुए बाएं हाथ से उसका ढक्कन लगाएं और ट्यूब को वास्तविक स्थिति में रखें।

(5) दाएं हाथ से ब्रश को पकड़ते हुए ब्रशल्स को पानी से गीला करें।

(6) अब ब्रश को मुँह में ले जाएं और ऊपर-नीचे की स्थिति में चलाएं।

(7) ब्रश को दाएं हाथ में पकड़ते हुए पानी से धोएं और यथास्थिति में रखें।

(8) बाएं हाथ की अंजली में पानी भरकर तीन-चार बार कुल्ला करें।

इस प्रकार से हम दृष्टिहीन बालक को और भी कार्य सिखा सकते हैं, जैसे-नहाना, शौच क्रियाएं, हाथ-पैरों की देखभाल, कानों की सफाई, नाखून काटना व्यक्तिगत स्वच्छता, बालों की देखभाल, तेल लगाना व कंघी करना, कपड़े पहनना, कपड़े उतारना, शेविंग करना, त्वचा की देखभाल व सौंदर्य प्रसाधनों का उपयोग। सामाजिक तौर-तरीके, टेबल मैनर्स, भोजन करने के सही तरीके, बैठते-उठते, बात करते समय ठीक हाव-भाव, शारीरिक भाव-भंगिमा, सामाजिक होना व बातचीत करने की कला इत्यादि।

भोजन बनाने के कौशल :

उपकरण एवं सामग्री - बर्तन, चाकू, नापने के वर्तन इत्यादि। अनाज, दालें, सब्जी, आटा, मसाले आदि के विषय में जानकारी। स्टोव, ईंधन आदि की जानकारी। गैस, लाइटर, माचिस का प्रयोग।

खाना बनाने से पूर्व की क्रियाएं- सब्जी इत्यादि साफ करना, धोना, काटना, छीलना, पीसना, मिलाना, गूंधना, कद्दूकस करना, रगड़ना, छानना आदि।

खाना बनाने सम्बन्धी क्रियाएं- आटे का रोल (roll) करना, आग जलाना/ स्टोव जलाना, रोस्ट करना, उबालना, तलना, बेक करना, दही जमाना, प्रेशर कुकर का प्रयोग आदि।

भोजन परोसना- पकाने के बर्तनों से भोजन निकालकार परोसने के बर्तनों में रखना, डायनिंग टेबल को सैट करना, डायनिंग टेबल पर भोजन रखना, प्लेटों, थाली में भोजन को क्लाकवाइज (Clockwise) रखना, पानी रखना, भोजन पश्चात् जूठे बर्तनों को उठाना व डायनिंग टेबल साफ करना।

इसी प्रकार से हम दृष्टिहीन बालक को घर की सफाई, पैसे का रख-रखाव, बाजार से सामान खरीदना, उपकरणों (बिजली के) का प्रयोग आदि कार्य सिखाकर उसे आत्मनिर्भर बना सकते हैं।

खण्ड - तीन

अध्याय-14

विकलांगता

-श्रीमती स्वर्ण अहूजा

क्यों होती है विकलांगता? इसका शाब्दिक अर्थ है-अंग से पूर्णतः वंचित होना। परन्तु हम देखते हैं कि बहुत-से व्यक्ति हाथ, पाँव, आँख, कान के होते हुए भी विकलांगता के घेरे में आते हैं। ऐसा क्यों? क्योंकि हाथ, पाँव, आँख, कान के होते हुए भी हाथ से काम नहीं कर सकते, पाँव से चल नहीं सकते, आँख से देख नहीं सकते और कान से सुन नहीं सकते........इत्यादि। अर्थात् उनके ये अंग शक्तिहीन हो गये हैं-अपनी योग्यता से वंचित हो गये हैं- असमर्थ हो गये हैं।

विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) ने विकलांगता की गहन विवेचना करते हुए कहा है कि इस शब्द के तीन पहलू हैं-क्षति, (impairment), अक्षमता/अशक्तता/असमर्थता/अयोग्यता (disability) बाधा/हानि/असुविधा (handicap) और इनमें परस्पर बहुत अन्तर है। इन तीन संकल्पनाओं के स्पष्टीकरण में निम्नोक्त व्याख्या दी है:-

क्षति (Impairment) :

"Impairment is any loss or abnormality of psychological, physiological, or anatomical structure of function." Impairments are disturbances at the level of the organ which include defects in or loss of a limb, organ or other body structure as well as defects in or loss of mental function. Examples of impairments include blindness, deafness, loss of sight in one eye, paralysis of a limb, amputation of a limb, mental retardation, partial sight, loss of speech, mutism."

"क्षति अर्थात् मानसिक, शारीरिक अथवा शारीरिक संरचना और उसके कार्य में हानि अथवा असामान्यता।" शारीरिक संरचना में अंग हानि, अंग दोष तथा मानसिक विकृतता अथवा मन/बुद्धि का काम न करना-ये सब क्षतियाँ हैं। उदा.-दृष्टिहीनता, बधिरता, एक आँख में दृष्टि अभाव, अंगघात/एक अंग का पक्षाघात, एक अंग का कट जाना, मंदबुद्धिता, आंशिक/अपूर्ण दृष्टि, मूकता, वाणीहीनता।

अक्षमता/अशक्तता/असमर्थता/अयोग्यता (Disability) :

"Disability is a restriction or lack (resulting from an impairment) of ability to perform an activity in the manner or within the range considered normal for a human being. It describes a functional limitation or activity restriction caused by an impairment. Examples of disabilities include difficulty in seeing, speaking or hearing, difficulty in moving or climbing stairs, and difficulty in grasping, reaching, bathing, eating and toileting."

अर्थात्,

"किसी क्षति के परिणामस्वरूप उस अंग का सामान्य मानव क्षमता के अनुसार कार्य न कर सकना" अक्षमता अथवा अयोग्यता (disability) मानी जाती है। अर्थात् क्षति विशेष उस व्यक्ति की सामान्य कार्यक्षमता को सीमित करती है। उदा.- देखने, सुनने अथवा बोलने में कठिनाई, चलिष्णुता, सीढ़ियाँ चढ़ने-उतरने में कठिनाई, दैनिक-जीवन की क्रियाएँ (नहाना-धोना, खाना-पीना आदि) करने में कठिनाई तथा बात समझने में कठिनाई इत्यादि।

बाधा/हानि/असुविधा (Handicap):

"A handicap is a disadvantage for a given individual, resulting from an impairment or disability, that limits or prevents the fulfilment of a role that is normal (depending on age, sex and social and cultural factors) for that individual. The term is also a classification of circumstances in which disabled people are likely to find themselves. Handicap describes the social & economic roles of impaired or disabled persons that place them at a disadvantage compared to other persons. These disadvantages are brought about through the interaction of the person with specific environments and cultures. Examples of handicap include being bedridden or confined to home, being unable to use public transport and being socially isolated."

अर्थात्, "जब किसी क्षति (impairment) अथवा अक्षमता (disability) के परिणामस्वरूप एक व्यक्ति को (वय, लिंग, सामाजिक व सांस्कृतिक स्थिति के अनुरूप) अपने जीवन के सामान्य कार्य करने में-जीवन में अपनी भूमिका निभाने में बाधा आती है-कठिनाई आती है, तब उसे हानि/बाधा/असुविधा (handicap) कहा जाता है। सामाजिक व सांस्कृतिक वातावरण में अंतःक्रिया (interaction) करते हुए इन असुविधाओं/बाधाओं का अनुभव होता है और व्यक्ति विशेष को

इनका सामना करना पड़ता है। उदा.- घर की चार-दीवारी में ही रह पाना, पलंग से न उठ सकना, सामाजिक विलगता का आ जाना।

एक सुसमायोजित विकलांग व्यक्ति के मतानुसार--

" Handicaps are concerned with the disadvantages experienced by the individual as a result of impairments and disabilities thus handicaps reflect interaction with and adaptation to the individuals' surroundings".

अर्थात्

"जब किसी व्यक्ति को अपनी क्षति (impairment) और अक्षमता (disability) के कारण जीवन में असुविधाओं का सामना करना पड़ता है, तब विकलांगता बाधा /हानि का रूप ले लेती है। इसका अर्थ यह भी हुआ कि बाधाओं/हानियों के परिणाम उसके वातावरण के साथ अंत:क्रिया और समायोजन पर भी होते हैं।"

विकलांग क्षेत्र में दृष्टिहीन व्यक्तियों के साथ काम करने वाले कार्यकर्ताओं के लिए 'दृष्टिहीनता' का ठीक-ठीक अर्थ समझना आवश्यक है।

दृष्टिहीनता तथा दृष्टिदोष:

'दृष्टिहीनता' अर्थात् क्या? किन्हें दृष्टिहीन माना जाए? ये प्रश्न इस क्षेत्र के कार्यकर्ताओं तथा दृष्टिबाधित व्यक्तियों के सामने विशेष रूप से उपस्थित होते हैं।

एक सामान्य व्यक्ति के लिए 'दृष्टिहीनता' शब्द पूर्ण अंधकार की प्रतिमा का निर्माण करता है। जो व्यक्ति पूर्ण अंधकारमय वातावरण में रहता है, उसे दृष्टिहीन माना जाता है। अतः हम कह सकते हैं कि दृष्टिहीनता का अर्थ है-दोनों आँखों में दृष्टि का पूर्ण अभाव।

वास्तव में हम देखते हैं कि बहुत से व्यक्ति जिनमें दृष्टि का पूर्ण अभाव नहीं है, फिर भी व्यवहार की दृष्टि से दृष्टिहीन ही हैं। अर्थात् शेष रही थोड़ी-सी दृष्टि का उन्हें अपने शिक्षण अथवा व्यवसाय में कोई फायदा नहीं होता। बहुत-से बच्चे हमें ऐसे मिलते हैं जिन्हें चश्मा लगाने के बाद भी कक्षा में बोर्ड पर लिखा हुआ दिखाई नहीं देता और पाठ्य-पुस्तकें नहीं पढ़ सकते। तरुण व्यक्तियों में भी ऐसे व्यक्ति मिल जाएँगे जो ऐसी नौकरियाँ नहीं कर सकते जिनके लिए दोषरहित दृष्टि आवश्यक होती है। कुछ ऐसे भी व्यक्ति हैं जिनका अंधत्व इतना पूर्ण है कि उन्हें अंधकार और प्रकाश में अन्तर तक पता नहीं लगता। बहुत-से व्यक्तियों को

केवल प्रकाश का आभास होता है। कुछ लोगों को आकार और गतिशील वस्तुएँ दिखाई देती हैं और चलने-फिरने के लायक काफी दृष्टि होती है, परन्तु पढ़-लिख नहीं सकते। कुछ व्यक्ति मोटे चश्मे के साथ थोड़ा-वहुत पढ़ सकते हैं, परन्तु बहुत कम समय के लिए। कुछ लोग ऐसे भी पाये जाते हैं जो थोड़ा-बहुत पढ़-लिख लेते हैं पर अकेले चल-फिर नहीं सकते।

दृष्टिदोष और दृष्टि की मात्रा में भी अन्तर हो सकता है। एक स्थिति ऐसी हो सकती है कि दृष्टि कम हो गयी है, बस इतना ही। और, दूसरी स्थिति में दृष्टि-क्षेत्र सीमित हो सकता है। हो सकता है कि मध्य-दृष्टि बिल्कुल ठीक है, परन्तु परिध-दृष्टि (peripheral vision) काफी सीमित है अथवा परिध-दृष्टि ठीक है और मध्य-दृष्टि है ही नहीं। फिर, ऐसा भी सम्भव है कि उचित प्रकाशित स्थिति में व्यक्ति देख सकता है, परन्तु धूप अथवा सूर्य की चमक में उसे कुछ भी दिखाई नहीं देता। एक और उदाहरण रंजकहीन जीव (Albinos) का है, जिनकी दृष्टि में कोई विशेष दोष नहीं होता, परन्तु-रंजकहीनता के कारण लगभग दृष्टिहीन ही हो जाते है।

ये विविध दृष्टि-दोष विचारशक्ति को इतना उलझा देते हैं कि समझ में नहीं आता कि 'दृष्टिहीनता' अर्थात् क्या? इसलिए, दृष्टिहीनता का अर्थ समझने के लिए आवश्यक है कि दृष्टिहीनता की व्याख्या की जाए। एक ऐसी परिभाषा हो जो केवल पूर्ण अंधत्व पर ही आधारित नहीं, अपितु शेष दृष्टि और उसके व्यावहारिक मूल्य पर भी आधारित हो।

पार्श्वभूमिका:

भारत में कुछ समय पूर्व तक अंधत्व की कोई परिभाषा नहीं थी। भारत सरकार की Report on Blindness-- 1944 में इस प्रकार की परिभाषा का सुझाव दिया गया था।

"जो व्यक्ति एक गज़ की दूरी पर हाथ की उंगलियाँ न गिन सकता हो, उसे दृष्टिहीन माना जाए।" सरकार द्वारा मान्य इस परिभाषा के आधार पर स्कूल और संस्थाओं में प्रवेश दिये जाते थे।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर डब्ल्यू.सी.डब्ल्यू.बी. (WCWB) ने 1954 में दृष्टिहीनता की परिभाषा निश्चित की। इस परिभाषा के तीन पहलू थे-

(1) जिस व्यक्ति में दृष्टि का पूर्ण अभाव हो, उसे दृष्टिहीन माना जाए।

(2) चश्मा लगाने के बाद भी जिस व्यक्ति की दृष्टि की मात्रा स्नैलन चार्ट (Snellen Chart) के अनुसार 6/60 तक ही सीमित हो, उसे दृष्टिहीन माना जाए।

(3) जिस व्यक्ति का दृष्टिक्षेत्र केवल 20 डिग्री तक सीमित हो, उसे दृष्टिहीन माना जाए।

भारत ने भी इस परिभाषा को मान्यता दी और 1968-69 से इस परिभाषा के आधार पर विद्यालय प्रवेश और छात्रवृत्तियाँ दी जानी लगीं, परन्तु इसे कानूनबद्ध करने में बहुत समय लग गया।

भारत सरकार ने 'The Persons with Disabilities equal opportunities, protection of rights and full participation Act, 1995' पारित करके दृष्टिहीनता की इस पूर्व-मान्य परिभाषा को कानूनबद्ध कर दिया है।

दृष्टिहीनता की वैधानिक परिभाषा:-

"(1) दृष्टि का पूर्ण अभाव: अथवा

(2) दृष्टि की मात्रा 6/60 अथवा 20/200 स्नैलन चार्ट (Snellen Chart) के अनुसार से अधिक नहीं,

(3) दृष्टि-क्षेत्र केवल 20 डिग्री तक सीमित अथवा उससे बदतर।"

अल्प-दृष्टि का अर्थ एवं परिभाषा-

उत्तम सुधारणा तथा चश्मा लगाने के बाद जिस व्यक्ति की दृष्टि की मात्रा 6/18 से 6/60 से कम है; अथवा जिसके दृष्टि-क्षेत्र में निम्नोक्त प्रकार से क्षति हुई है; उसे अल्प-दृष्टि व्यक्ति माना जाएगा--

"(1) दृष्टि-क्षेत्र 50 डिग्री से कम है (Reduction of field to less than 50 degrees)

(2) अर्धवृत्त में दृष्टिक्षेत्र की कमी और नेत्र बिंदु (macula) पर उसका प्रभाव पड़ा है (Heminaopia with macular involvement).

(3) निचले दृष्टि-क्षेत्र में उन्नतांशिष (Attitudinal) त्रुटि है (Attitudinal defect involving lower fields).

पी.डब्ल्यू.डी.एक्ट, 1995 P.W.D. Act, 1995 के अन्तर्गत दृष्टिबाधिता का वर्गीकरण इस प्रकार किया गया है:-

वर्ग	अच्छी आँख	बदतर आँख	%क्षति
0	6/9-6/18	6/24-6/36	20%
1.	6/18-6/36	6/60-0	40%
2.	6/40-4/60 अथवा दृष्टि क्षेत्र 10 डिग्री से 20 डिग्री	6/60-0	75%
3.	3/60-1/60 अथवा दृष्टि क्षेत्र 10 डिग्री	1 फुट से शून्य तक उंगली गिन सकना	100%
4.	उंगली गिन सकना 1 फुट से शून्य तक अथवा दृष्टि क्षेत्र 10 डिग्री	1 फुट से शून्य तक उंगली गिन सकना	100%
एक आँख वाला व्यक्ति	6/6	1 फुट से शून्य तक उंगली गिन सकना अथवा दृष्टि क्षेत्र 10 डिग्री	30%

भारत जैसे देशों में जहाँ चिकित्सा तथा अन्य सुविधाओं की कमी है, दृष्टिबाधिता का उपरोक्त वर्गीकरण एक सामान्य व्यक्ति को, विशेषत: ग्रामीण विभागों में दृष्टिबाधिता पहचानने में सहायक होगा-ऐसी आशा की जा सकती है।

कठोर/प्रचण्ड विकलांगता की परिभाषा:-

जिस व्यक्ति में एक अथवा एक से अधिक विकलांगता की मात्रा 80% से ऊपर है, उसे 'कठोर विकलांगता सह व्यक्ति' (Person with severe disability) माना जाएगा।

सहूलियतें/रियायतें :-

इस कानून के अन्तर्गत विकलांग व्यक्तियों को दी जाने वाली रियायतें पाने के लिए कम-से-कम 40% विकलांगता का होना आवश्यक है और विकलांगता प्रमाण पत्र की भी आवश्यकता होगी।

विकलांगता प्रमाण पत्रः-

केन्द्रीय/राज्य सरकार द्वारा नियुक्त कम-से-कम तीन सदस्यीय चिकित्सक मंडल (जिसमें कम-से-कम एक नेत्र-विशेषज्ञ हो) विकलांगता प्रमाण पत्र दे सकते हैं।

दृष्टिहीनों के शिक्षण, पुनर्वसन व व्यवसाय सम्बन्धी सुविधाओं की योजना बनाने के लिए आवश्यक था कि दृष्टिहीनता की एक प्रमाणित परिभाषा हो जो अब बन गयी है और पूरे देश में सभी स्तरों पर मान्य की गयी है। इसके अन्तर्गत उन सब व्यक्तियों का समावेश हो सकता है जो सीमित दृष्टि के कारण शिक्षण और व्यवसाय सम्बन्धित सामान्य उपलब्ध सुविधाओं का लाभ नहीं ले सकते। केवल दृष्टिहीनता की ही नहीं, विकलांगता के अन्तर्गत आने वाली सभी क्षतियों (बधिरता आदि) की परिभाषा बना दी गयी है। भारत सरकार द्वारा उठाया गया यह कदम निश्चिय ही ठीक दिशा में उठा है। आशा की जा सकती है कि यह आवश्यक कदम विकलांग व्यक्तियों के जीवन को प्रगति-पथ की ओर ले जाएगा।

अभिवृद्धि एवं विकास तथा दृष्टिहीनता

-डॉ. सुषमा शर्मा

जन्म के समय मानव शिशु पाश्विक प्रवृत्तियों से युक्त होता है। यद्यपि उसमें वे सभी अवयव उपस्थित होते हैं जो उसे क्रियाशील रखने के लिए आवश्यक होते हैं, तब भी वह अन्य प्राणियों के बच्चों की तुलना में बहुत अविकसित होता है। मानव शिशु को परिपक्वता तक पहुँचने के लिए अधिक देखभाल की आवश्यकता होती है व समय भी अधिक लगता है। मानव विकास का अध्ययन शिक्षा मनोविज्ञान का महत्त्वपूर्ण अंग है। जिस प्रकार से एक माली, जो पौधों के बढ़ने की जानकारी नहीं रखता, को हम अपना बगीचा नहीं दे सकते, उसी प्रकार वह अध्यापक जो बाल विकास से परिचित न हो, उसे बच्चों की शिक्षा का उत्तरदायित्व कैसे दिया जा सकता है? अध्यापक के लिए यह जानना आवश्यक है कि बच्चों की अभिवृद्धि व विकास किस प्रकार होता है व विभिन्न आयु स्तरों पर बच्चों से क्या अपेक्षा करनी चाहिए, जिससे उनका सुविकास हो सके।

अभिवृद्धि तथा विकास का अर्थ एवं अन्तर :

प्राय: अभिवृद्धि व विकास को एक ही समझ लिया जाता है, परन्तु ये दो विभिन्न क्रियाएं हैं। व्यक्ति के अभिवृद्धि तथा विकास में शिक्षा महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। अभिवृद्धि का अर्थ है- व्यक्ति का क्रमबद्ध, शारीरिक रूप से बढ़ना। वातावरण के प्रभाव के साथ-साथ ही व्यक्ति का शरीर व उसके अंग क्रमबद्ध रूप से बड़े होते रहते हैं। यह शारीरिक वृद्धि दृष्टिगोचर होती रहती है। व्यक्ति की लम्बाई, मोटाई के साथ उसका भार भी बढ़ता रहता है। यह वृद्धि लड़की व लड़कों में निरन्तर होती है। इसकी उम्र लड़कियों में लड़कों की अपेक्षा कम है। अभिवृद्धि शारीरिक व मानसिक दो प्रकार की होती है। शारीरिक वृद्धि में शारीरिक रूप से व्यक्ति में परिवर्तन होता है, उसका आकार बड़ा होता जाता है। मानसिक वृद्धि का सम्बन्ध व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन से है, जहाँ व्यक्ति उद्देश्यपूर्ण व्यवहार करने लगता है। सामान्य अंगों के भार का मापन सरलतापूर्वक किया जा सकता है, परन्तु मानसिक मापन कठिन है।

व्यक्ति का प्रगतिशील परिवर्तन विकास है, जो जन्म से पहले प्रारम्भ होकर मृत्यु तक निरन्तर चलता रहता है। विकास का सम्बन्ध शरीर के गुणात्मक परिवर्तन

से है जो कि वातावरण के साथ अनुक्रिया (Interactior करने के परिणामस्वरूप होता है। दूसरे शब्दों में. शरीर की लम्बाई में वृद्धि विकास नहीं है बल्कि विकास कई संरचनाओं व कार्यों का एकीकरण है।

अभिवृद्धि तथा विकास की विशेषताएं :

अभिवृद्धि- अभिवृद्धि वातावरण की अपेक्षा व्यक्ति पर निर्भर करती है। प्राय: अभिवृद्धि, परिपक्वता व विकास को एक ही समझ लिया जाता है, जबकि इन तीनों में बहुत अन्तर है। अभिवृद्धि व्यक्ति की संरचना व शरीर धर्म विज्ञान (Physiology) में परिवर्तन है। व्यक्ति जन्म से कुछ प्रवृत्तियों व शक्तियों को लेकर पैदा होता है। इन शक्तियों का प्रस्फुटन ही परिपक्वता है। अभिवृद्धि के साथ-साथ ही बच्चे का मस्तिष्क व शरीर परिपक्व होता जाता है। परिणामस्वरूप व्यक्ति उच्च स्तर के कार्य करने में सक्षम हो जाता है। विकास परिपक्वता व अधिगम का परिणाम है। अभिवृद्धि परिपक्वता के साथ ही रुक जाती है, वहीं विकास निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है।

वृद्धि तथा विकास की विशेषताओं को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है:

1. अभिवृद्धि का शारीरिक रूप से बढ़ने का नाम- यह मात्रात्मक प्राप्ति है, वहीं विकासपूर्ण परिवर्तन-गुणात्मक परिवर्तन है।

2. अभिवृद्धि विकास का एक भाग है। दूसरे शब्दों में, विकास का मात्रात्मक अथवा परिमाणात्मक पक्ष अभिवृद्धि है।

3. अभिवृद्धि निरन्तर न होकर परिपक्वता तक ही होती है, वहीं विकास निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है।

4. अभिवृद्धि का मापन किया जा सकता है, जबकि विकास का मापन कर पाना कठिन है।

5. अभिवृद्धि के परिणामस्वरूप विकास हो, यह आवश्यक नहीं। अर्थात् व्यक्ति का भार बढ़ने के उपरान्त भी विकास हो, यह आवश्यक नहीं। इसी प्रकार सम्भव है व्यक्ति की अभिवृद्धि न हो, अर्थात् भार व लम्बाई में उसकी वृद्धि न हो, परन्तु उसकी कार्यात्मक (Functional) प्रगति हो व वह सामाजिक, भावनात्मक व ज्ञानात्मक (Intellectual) रूप से विकसित हो।

विकास- विकास की अनेक विशेषताएं बतायी गयी हैं जो निम्न हैं:

1. बाल्यकाल विकास का वह चरण है, जिसमें व्यक्ति के जीवन की नींव रखी जाती है।

2. विकास परिपक्वता व अधिगम का परिणाम है।

3. विकास निश्चित व भावी नमूने के अनुसार तय होता है।

4. सभी व्यक्तियों के विकास का क्रम भिन्न होता है।

5. विकास के अनेक चरण होते हैं।

6. विकास के प्रत्येक चरण की कुछ निश्चित विशेषताएं हैं।

7. विकास सामान्य से विशिष्ट की ओर अग्रसर होता है।

8. शारीरिक संरचना व उसके भागों का विकास मस्तिष्क से नीचे की ओर अग्रसर होता है।

9. विकास एक क्रम में होता है। घुटनों के बल चलने से पहले बच्चा पेट के बल चलता है।

10. विकास के विभिन्न पक्षों में अन्तःक्रिया अथवा परस्पर क्रिया होती है।

11. विकास वातावरण व आनुवंशिक दोनों पर निर्भर करता है।

अभिवृद्धि तथा विकास के चरण:

शिक्षाविद् व मनोवैज्ञानिकों ने विभिन्न प्रकार से विकास की अवस्थाओं अथवा चरणों का वर्णन किया है, जिसमें रूसो (Rousseau) ने मुख्य रूप से चार चरण बताये हैं:

(क) शैशवावस्था (Infancy)

(ख) बाल्यावस्था (Childhood)

(ग) पूर्व किशोरावस्था (Pre-Adolescence)

(घ) किशोरावस्था (Adolescence)

(क) शैशवावस्था (Infancy) (एक से तीन वर्ष तक) : व्यक्ति की सभी अवस्थाओं में शैशवावस्था सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण होती है। यह ही वह अवस्था है जो आधार रूप में रुचि करती है, जिस पर व्यक्ति के भावी जीवन का निर्माण होता है। इस अवस्था की मुख्य विशेषताएं इस प्रकार हैं:

1. **शारीरिक विकास में तीव्रता**– बच्चे के शरीर का भार जन्म के बाद छः महीने के अन्दर ही दुगुना हो जाता है। इसी प्रकार मस्तिष्क का भार, जो कि

जन्म के समय वयस्क के समय के भार का 1/4 होता है, तीन वर्ष की अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते 3/4 हो जाता है। उसके शरीर की लम्बाई 3 फुट हो जाती है। जन्म के समय बच्चा अपनी गर्दन तक संभाल पाने में असमर्थ होता है, वहीं तीन वर्ष की अवस्था में चलने, दौड़ने व सीढ़ियाँ ऊपर चढ़ने-उतरने में समर्थ हो जाता है। प्रथम वर्ष में तो कुछ हद तक असहाय होता है, लेकिन दूसरे व तीसरे वर्ष में तो उसमें तीव्र वृद्धि होती है।

2. **मानसिक विकास में तीव्रता**- इस अवस्था में मानसिक विकास में तीव्रता होती है। उसकी सभी मानसिक क्रियाएं, जैसे ध्यान, स्मृति, कल्पना, संवेदना व प्रत्यक्षीकरण विकसित होकर कार्य करने लग जाती हैं।

3. **सीखने की क्रिया में तीव्रता**- शैशवावस्था में शिशु अति तीव्र गति से सीखता है। यहाँ तक कहा गया है कि प्रथम छः वर्षों में शिशु बाद के 12 वर्षों से दुगुना सीख लेता है।

4. **मूल प्रवृत्तियाँ व्यवहार का आधार**- इस अवस्था में शिशु के व्यवहार का आधार उसकी मूल प्रवृत्तियाँ ही होती हैं, जिन्हें वह व्यवहार में प्राकृतिक रूप से लाता है। सामाजिक नियमों अथवा समाज से उसका ज्यादा लेना-देना नहीं होता है। जिस कार्य में उसे आनन्द आता है, उसे वह करता है। उसे नैतिक नियमों की कोई जानकारी नहीं होती।

5. **संवेगों का प्रदर्शन**- जन्म के समय शिशु में उत्तेजना के अलावा कोई संवेग नहीं होता। दो वर्ष की अवस्था तक बच्चों में मुख्य रूप से भय, क्रोध, पीड़ा व प्रेम आदि संवेगों का विकास हो चुका होता है।

6. **जिज्ञासा की अधिकता**- शिशु में जिज्ञासा की प्रवृत्ति का बाहुल्य होता है। जिज्ञासा की अधिकता के कारण वह हर वस्तु को तोड़कर- मुँह में डालकर- उसके भागों को अलग-अलग कर अपनी जिज्ञासा शान्त करने की चेष्टा करता है। वह अपने माता-पिता, अभिभावक अथवा सम्पर्क में आने वाले व्यक्ति से क्यों, कहाँ आदि प्रश्नों को अधिक पूछता है।

7. **अनुकरण द्वारा सीखने की प्रवृत्ति**- शिशु को बन्दर की संज्ञा दी गयी है। वह अपने बड़ों का अनुकरण कर सीखता है। दृष्टिहीन बच्चों में अनुकरण का अभाव होने के कारण ही उनका अधिगम पिछड़ जाता है। यह अनुकरण द्वारा सीखना उसके विकास में बहुत अधिक सहायक होता है।

8. **आत्मप्रेम की अधिकता**- शिशु में आत्मप्रेम की भावना अति प्रबल होती है। वह बहुत ही स्वार्थी होता है। माता-पिता, भाई-बहन सब उसी को प्रेम

करें व ध्यान दें, यही उसका प्रयास रहता है। यह प्यार वह किसी और से बाँटना भी नहीं चाहता।

(ख) बाल्यावस्था (Childhood) : बाल्यावस्था व्यक्ति के जीवन का वह काल है, जिसमें उसका सर्वांगीण विकास होता है। यह अवस्था शैशवावस्था के बाद आती है। इस अवस्था में ही व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास होता है। इस अवस्था को 'अनोखा काल' कहा गया है, जिसको समझ पाना माता-पिता के लिए अत्यन्त कठिन है। कहा जाता है कि 6 वर्ष की आयु में बच्चों का स्वभाव उग्र हो जाता है और वह सब बातों का उत्तर हाँ या नहीं में ही देता है। 7 वर्ष की आयु में वह अकेला रहना पसन्द करता है, वहीं 8 वर्ष में वह अपनी आयु के अन्य बच्चों के साथ सम्बन्ध स्थापित करने में आतुर होता है। 9 से 12 वर्ष में वह रोमांचकारी कार्य करने का इच्छुक होता है।

बाल्यावस्था की विशेषताएं :

1. **मानसिक व शारीरिक स्थिरता-** 6 से 7 वर्ष के बाद बच्चे के शारीरिक व मानसिक विकास में स्थिरता आ जाती है, जो उसकी शारीरिक व मानसिक शक्तियों को दृढ़ता प्रदान करती है। परिणामस्वरूप वह वयस्क सा जान पड़ता है, जिसे 'मिथ्या परिपक्वता' कहा गया है।

2. **नैतिकता का विकास-** इस अवस्था में ही नैतिकता का विकास होने लगता है। 6 से 7 वर्ष की अवस्था में बच्चा अच्छे-बुरे में अन्तर करना जान जाता है व सामाजिक भावना का भी उसमें विकास होने लगता है।

3. **जिज्ञासा की प्रबलता-** शैशवावस्था की भांति इस अवस्था में भी जिज्ञासा की प्रबलता रहती है। इसमें अन्तर मात्र इतना होता है कि अब प्रश्न क्या, क्यों न होकर कैसे होते हैं।

4. **सामाजिक गुणों व सामूहिक प्रवृत्ति का विकास-** इस अवस्था में बच्चे को सहयोग करना आ जाता है और वह सहनशील हो जाता है। इस अवस्था में अकेले खेलने की अपेक्षा वह अपनी उम्र के बच्चों के साथ खेलने में अधिक रुचि लेता है।

5. **संवेगों पर नियंत्रण-** बाल्यावस्था में बच्चे अपने संवेगों पर नियंत्रण करना सीख जाते हैं। बाल्यावस्था को संवेगात्मक विकास का अनोखा काल कहा गया है। इसमें बालक अपने संवेगों का दमन न कर, उन पर नियंत्रण करना जान जाता है। दमन से बच्चों में भावना ग्रन्थियों का निर्माण हो जाता है जो अनुचित है।

6. **बाह्य जगत में रुचि व बहिर्मुखी व्यक्तित्व का विकास**- इस अवस्था में बच्चों में बाह्य जगत में घूमने की प्रबल प्रवृत्ति होती है। वे निरुद्देश्य भ्रमण में आनन्द लेते हैं। विद्यालय से भागकर आवारागर्दी करना इस अवस्था में आम है। बाह्य जगत में रुचि के कारण वह बहिर्मुखी हो जाते हैं। परिणामस्वरूप वे अन्य व्यक्तियों, वस्तुओं व कार्यों का अधिक से अधिक परिचय ले लेना चाहते हैं।

7. **संग्रह करने की प्रवृत्ति**- बाल्यावस्था में बालकों व बालिकाओं में हर वस्तु को संग्रह करने की प्रवृत्ति होती है। बालक प्राय: टिकट, पत्थर के टुकड़े, मशीनों के पुर्जे, बस की टिकटें, कोकाकोला के ढक्कन, सिगरेट के डिब्बे, चॉक के टुकड़े इत्यादि संग्रह करने में रुचि लेते हैं, वहीं बलिकायें कपड़ों के टुकड़े, चित्र, गुड़ियों के कपड़े व कपड़े के टुकड़े का संग्रह करने में रुचि लेती हैं।

8. **रुचियों में अन्तर व परिवर्तन**- इस अवस्था में रुचियाँ स्थायी न होकर परिवर्तनशील होती हैं। बालक व बालिकाओं की रुचियों में भी अन्तर होने लगता है। ये रुचियाँ समय व स्थान के अनुसार परिवर्तित होती रहती हैं।

9. **रचनात्मक कार्यों में रुचि**- इस अवस्था में बच्चे रचनात्मक कार्यों में आनंद लेते हैं। बालक व बालिकाओं के रचनात्मक कार्यों में अन्तर हो जाता है। बालिकायें घर अथवा रसोई के कार्य में आनन्द लेने लगती हैं, वहीं बालक बाहर के कार्य अथवा औजारों से सम्बन्धित कार्यों में रुचि लेता है।

(घ) किशोरावस्था: इस अवस्था को 'बाल्यावस्था व प्रौढ़ावस्था की संधि' कहा गया है। मानव जीवन में इस अवस्था का अत्यन्त महत्त्व है। बाल्यावस्था समाप्त होते ही यह अवस्था प्रारम्भ हो जाती है। यह सतत् क्रिया है। किशोरावस्था के प्रारम्भ के संदर्भ में विद्वानों में मतभेद है। माना जाता है कि यह अवस्था बाल्यावस्था के अन्त में प्रारम्भ होती है, जिसकी समाप्ति प्रौढ़ावस्था के प्रारम्भ में होती है। भारत में यह पश्चिमी देशों की तुलना में कुछ समय पहले आरम्भ हो जाती है व बालिकाओं की किशोरावस्था बालकों से लगभग एक वर्ष पूर्व हो जाती है। इस अवस्था की एक विशेषता यह भी है कि बालक स्वयं को बड़ा समझता है जबकि बड़े उसे छोटा समझते हैं।

किशोरावस्था की मुख्य विशेषताएं :

1. शारीरिक विकास- इस अवस्था में बालक तथा बालिकाओं में अनेक शारीरिक परिवर्तन आ जाते हैं। यह काल शारीरिक विकास का सर्वश्रेष्ट काल माना

जाता है, जैसे भार और लम्बाई में तीव्र वृद्धि, मांसपेशियों व शारीरिक ढाँचे व परिवर्तन, बालकों के कन्धे चौड़े होना और दाढ़ी व मूँछ की रोमावलियाँ व बालिकाओं में प्रथम मासिक स्राव के दर्शन। इस काल में लड़कियों की वाणी मधुर व किशोरों की भारी व कर्कश हो जाती है।

2. **मानसिक विकास**– किशोर के मस्तिष्क का चहुँमुखी विकास भी इस काल की विशेषता है। उसमें कल्पना व दिवास्वप्नों की अधिकता, बुद्धि का अधिकतम विकास, सोचने-समझने व तर्क करने की शक्ति में वृद्धि व विरोधी मानसिक दशाएं मुख्य रूप से देखने को मिलती हैं। मानसिक जिज्ञासा में वृद्धि के फलस्वरूप वह सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक व अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं में रुचि लेना प्रारम्भ कर देता है।

3. **समायोजन का अभाव**– किशोरावस्था को शैशवावस्था का पुनरावर्तन कहा गया है, क्योंकि किशोर बहुत कुछ शिशु के समान हो जाता है। बाल्यावस्था की स्थिरता समाप्त हो जाती है। वह इतना उद्विग्न हो जाता है कि वातावरण के साथ सामंजस्यता में स्वयं को असहाय महसूस करता है। उसमें समायोजन का अभाव हो जाता है।

4. **घनिष्ठ व व्यक्तिगत मित्रता**– इस अवस्था में किशोर के एक-दो घनिष्ठ मित्र होते हैं, जिनसे वह अपनी प्रत्येक बात, घटना व समस्या के बारे में स्पष्ट बात करता है। यह इस अवस्था की विशेषता कही गयी है।

5. **स्वतन्त्रता व विद्रोह की भावना की प्रबलता**– इस अवस्था में किशोर स्वतन्त्र होना चाहता है, उसमें विद्रोह की भावना प्रबलतम होती है। वह बड़ों के आदेशों, विभिन्न परम्पराओं व रीति-रिवाजों में न बंधकर स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करना चाहता है। कोई भी प्रतिबन्ध उसे विद्रोह की ओर अग्रसर करता है।

6. **रुचियों में परिवर्तन व स्थिरता**– इस अवस्था में रुचियों में परिवर्तन के साथ-साथ स्थिरता आने लगती है। बालक-बालिकाओं की कुछ रुचियाँ समान होकर भी कुछ विभिन्न हो जाती है, जैसे लड़कियाँ कढ़ाई, बुनाई, संगीत में रुचि अधिक लेती हैं तो लड़के खेलकूद व व्यायाम आदि में।

7. **आत्मनिर्भर बनने की चिन्ता, स्थिति व महत्त्व की अभिलाषा**– किशोर में आत्मनिर्भर बनने की जबरदस्त इच्छा होती है। वह आत्मनिर्भर होना चाहता है। बालकों में जल्दी से जल्दी अधिक धन कमाने की प्रबल इच्छा होती है तो लड़कियों में अपने विवाह व भावी घर की चिन्ता।

8. जीवनदर्शन का निर्माण व धर्म में विश्वास- समायोजन के अभाव में किशोर धार्मिक कार्यों में रुचि लेने लग जाते हैं। उनकी ईश्वर के प्रति श्रद्धा बढ़ जाती है। किशोरावस्था में व्यक्ति सत्य-असत्य, नैतिक-अनैतिक आदि के विषय में प्रश्न पूछने की अपेक्षा उन पर विचार करने लगता है। इस प्रकार अपने जीवनदर्शन का निर्माण करता है।

9. काम शक्ति की परिपक्वता- इस अवस्था में बालक-बालिकाओं में काम शक्ति अपनी चरम सीमा पर होती है। बालक-बालिकाएं एक-दूसरे से मिलने को आतुर होते हैं।

10. समाज सेवा की भावना- इस अवस्था में किशोर का हृदय उदार होता है व वह समाज की समस्याओं से प्रभावित होता है। उसमें समाज सेवा की प्रबल इच्छा होती है। वह समाज को आदर्श समाज बनाने की कोशिश करता है।

11. अपराध प्रवृत्ति का विकास- इस अवस्था में किशोर अपराध की तरफ उन्मुख हो सकता है, यदि उसे घर में उचित वातावरण न मिले। प्रेम के अभाव अथवा निराशा के कारण वह अपराध जगत् की ओर उन्मुख हो जाता है।

शारीरिक, सामाजिक, ज्ञानात्मक, संवेगात्मक एवं बौद्धिक विकास पर दृष्टिहीनता के प्रभाव :

वृद्धि व विकास के चरण क्रमबद्ध होते हैं। ये एक-दूसरे से स्वतन्त्र नहीं होते हैं। विकास के प्रत्येक चरण अभिवृद्धि पर निर्भर करते हैं। यह विकास कई क्षेत्रों में होता है, जैसे शारीरिक, सामाजिक, बौद्धिक व संवेगात्मक। इन्हें प्रत्येक अवस्था के आधार पर निम्न प्रकार से समझा जा सकता है:

1. शैशवावस्था- यह अवस्था जन्म से 3 वर्ष तक मानी जाती है। इस अवस्था में सबसे अधिक अभिवृद्धि होती है। प्रथम छः महीने में ही शिशु का भार जन्म के समय के भार का दुगुना व वर्ष के अन्त तक तीन गुना हो जाता है। सिर का भार, जो वयस्क का 1/4 होता है, तीन साल की अवस्था में वयस्क का 3/4 हो जाता है। उसके शरीर की लम्बाई लगभग 3 फुट तक हो जाती है। शिशु जो तीन माह की अवस्था में मुश्किल से अपनी गर्दन संभाल पाता था, तेजी से विकसित होता है। सीधा बैठना सीखता है, खड़ा होना सीखता है व तीन साल की अवस्था में पहुँचते-पहुँचते सीढ़ियाँ चढ़ना-उतरना भी सीख जाता है।

वह अपने बाह्य जगत् को संवेदनाओं द्वारा सीखता है। प्रत्येक चीज को पकड़कर मुँह में डालकर, तोड़कर वह उसे जानने की कोशिश करता है।

शिशु का इस प्रकार मानसिक विकास होता है। वह प्रत्येक चमकीली वस्तु की ओर आकर्षित होता है व उसे पकड़ने का प्रयास करता है। शिशु प्रेम व क्रोध में अन्तर जान जाता है। वह अपनी पसन्द का खिलौना छाँटना जान जाता है। वह वाक्य प्रयोग जान जाता है। अपना नाम बता सकता है। वह दैनिक क्रिया-कौशल, विशेष रूप से शौच क्रिया आदि में आत्मनिर्भर हो जाता है। उसका व्यवहार धीरे-धीरे सामाजिक नियमों की परिधि में आने लगता है। पढ़ते व खेलते समय वह सामाजिक नियमों को जानने लगता है। अपनी चीजों को छाँटकर रखने की प्रवृत्ति की ओर उन्मुख होने लगता है।

प्रारम्भ के वर्ष उसके जीवन के सम्पूर्ण वर्ष माने गये हैं, जब वह एक निरीह प्राणी से सबल व्यक्ति बनने की ओर उन्मुख होता है। प्रारम्भिक शैशवावस्था से ही उसके भावों को समझ पाना सरल होता है। शिशु अपने रोने से अपनी आवश्कता का आभास कराने में समर्थ होता है। छः माह की अवस्था से ही उसके भावों से पता लग जाता है कि वह भयभीत है अथवा नाराज है।

दृष्टिहीनता का प्रभाव- दृष्टिहीनता शैशवावस्था में शिशु के पूरे विकास को प्रभावित करती है, विशेष रूप से तब जब उसके माता-पिता गरीब व अशिक्षित हों। प्रारम्भिक वर्षों में जीवन की नींव पड़ती है, वहीं दृष्टिहीनता के कारण माता-पिता चिन्तित अथवा अविश्वास की स्थिति में होते हैं। दृष्टिहीनता का कई बार पता उन्हें तब चलता है, जब बच्चा 2-3 साल का हो जाता है। प्राय: प्रारम्भ में वे विभिन्न चिकित्सकों, ओझाओं के पास इस आशा से जाते हैं कि उनके बच्चे की दृष्टि वापस आ जायेगी, परिणामस्वरूप इस संघर्षमय-स्थिति में बच्चा स्वयं को असहाय महसूस करता है। वातावरण से उसका सम्बन्ध न के बराबर होता है। यद्यपि उसे दृष्टिहीनता के प्रभावों की कोई जानकारी नहीं होती, चूँकि वह स्वयं नहीं जान पाता कि वह किस प्रकार अन्य से भिन्न है। वहीं परिवार, पड़ोस व समाज के सदस्यों की चिन्ताजनक चर्चा से वह यह अवश्य जान जाता है कि वह देख नहीं सकता व उसका जीवन कठिन है। इसलिए उसके माता-पिता व भाई-बहन परेशान हैं। ये सब कारक उसकी अभिवृद्धि व विकास को काफी हद तक प्रभावित करते हैं।

वे परिवार अथवा माता-पिता, जो अपने बच्चों की दृष्टिहीनता को स्वीकार कर उसकी दृष्टिहीनता की चर्चा उसके सामने नहीं करते, उनके दृष्टिहीन बच्चे का विकास उचित रूप से हो पाता है। अनुकरण द्वारा सीखने के अभाव में उसका अधिगम कुछ हद तक प्रभावित तो होता ही है, परन्तु ऐसे माता-पिता उसकी विशेष आवश्यकताओं हेतु उचित कदम उठाकर इसकी क्षतिपूर्ति करने का प्रयास करते हैं।

2. बाल्यावस्था– तीन से छः वर्ष की अवस्था प्रारम्भिक बाल्यावस्था की मानी जाती है। इस अवस्था में मानसिक विकास सर्वाधिक होता है। भाषा व शब्दावली इसी अवस्था में शीघ्रातिशीघ्र विकसित होती चली जाती है। शब्दावली 50 से बढ़कर 2500 हो जाती है। बच्चे की रुचियाँ इसी अवस्था में विकसित होती हैं।

इस अवस्था में बच्चा विभिन्न प्रकार के प्रश्न पूछकर अपनी जिज्ञासा शान्त करता है। वह प्रश्नों के उत्तर देने में सक्षम होता है। वह शब्दों के अर्थ पूछकर बड़े-बड़े वाक्य बनाने प्रारम्भ कर देता है। 6 वर्ष की अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते वह वाक्य प्रयोग में सक्षम हो जाता है।

वह विभिन्न चीजों के प्रत्यय विकास कर अनुभवों को आत्मसात् कर गलत व सही में अन्तर करना सीखता है। नैतिक विकास की नींव इस अवस्था में ही पड़ती है।

इस अवस्था में बच्चा व्यक्तिगत की ओर उन्मुख होता है। वह दूसरों के सुझावों को पसन्द नहीं करता व जिद्दी होता है। शैशवावस्था में जहाँ वह स्वयं व भौतिक संसार में अन्तर महसूस नहीं कर पाता, वहीं इस अवस्था में वह स्वयं व अन्य में अन्तर महसूस कर मैं, मेरा, तेरा आदि सर्वनाम का सफलतापूर्वक प्रयोग करता है। इस प्रकार उसके व्यक्तिगत विकास की नींव इस अवस्था में पड़ती है। इस अवस्था में अपने शरीर पर नियंत्रण कर वह अपने वातावरण पर नियंत्रण करना सीखता है। वह मित्रों के साथ खेल द्वारा भाषा विकसित करता है। इस अवस्था में बच्चा कपड़े पहनना, उतारना, नहाना आदि सीख जाता है व काफी शान्त व संतुलित नजर आता है।

शारीरिक व मांसपेशियों के विकास में तीन वर्ष की अवस्था में बच्चा दोनों पैरों से कूदने में सफल हो जाता है। एक पैर पर खड़े होना, तिपहिया साइकिल चलाना, सीढ़ियों से कूदना, एक पैर से कूदना आदि कुछ ऐसी क्रियाएं हैं, जिसे करने में वह अत्यन्त रुचि अनुभव करता है। इस अवस्था में बच्चा लड़के व लड़की में अन्तर करना जान जाता है। यह लिंग पहचान ही उसके भावनात्मक विकास की आधारशिला है।

सामाजिक विकास भाषा ज्ञान के साथ निरन्तर क्रमबद्ध तरीके से होता रहता है। खेल-खेल में बच्चा नए मित्र बनाता है व सामाजिक चुनौतियों का सामना कर अपने व्यवहार में परिवर्तन लाता है। प्रतिस्पर्धात्मक व सहकारी (परस्पर सहयोग) की भावना का उसमें विकास होता है। वह अपने खिलौनों को बाँटकर खेलने में व अपनी बारी का इन्तजार करने में सक्षम हो जाता है। बालक विद्यालय

में शिक्षकों से अपने माता-पिता की तरह के व्यवहार की अपेक्षा करता है। बालक अपने व्यवहार की सामाजिक स्वीकृति चाहता है। किसी प्रकार का नियन्त्रण अथवा प्रभुत्व उसे मंजूर नहीं।

उत्तर बाल्यावस्था (9-12 वर्ष) में शारीरिक विकास में लड़कों व लड़कियों में अन्तर दृष्टिगत होता है। 12 वर्ष की अवस्था तक लड़कियाँ लड़कों से लम्बी व भारी हो जाती हैं। इस अवस्था में लम्बाई की अपेक्षा दिमाग का विकास अधिक होता है। इस अवस्था में मांसपेशियों के साथ-साथ बालक व बालिकाओं के गुप्तांगों का विकास आरम्भ हो जाता है। लड़कियाँ लड़कों की अपेक्षा जल्दी परिपक्व होती हैं। अत: देखने में आता है कि इस अवस्था में शारीरिक परिवर्तन के कारण लड़कियों में शर्म की भावना विकसित होती है, वहीं लड़के स्वयं को अटपटा अथवा हीन समझने लगते हैं। यद्यपि शारीरिक क्रियाओं में दोनों-लड़कों व लड़कियों में अच्छी शक्ति, स्फूर्ति व गति देखने को मिलती है।

इस अवस्था में मानसिक विकास के कारण बच्चे की रुचियाँ विकसित होती हैं। वह तर्क के आधार पर बातों को स्वीकार करता है। उसकी रुचियाँ स्वार्थी होती हैं। वह स्वयं ज्ञान प्राप्त कर सुरक्षा की भावना को विकसित करता है व अपने निर्णय स्वयं लेने की इच्छा रखता है।

बच्चे का भावनात्मक विकास उसके शारीरिक, बौद्धिक व सामाजिक विकास के साथ-साथ ही होता है। वह चुपचाप सहन करने में विश्वास करने लगता है। अपनी इच्छाओं का दमन कर समयानुसार अपनी इच्छा की पूर्ति का इन्तजार करता है।

3. किशोरावस्था- इस अवस्था में बालक तथा बालिकाओं का भार निरन्तर बढ़ता रहता है। किशोरावस्था के अन्त तक बालकों का भार बालिकाओं से अधिक होता है। इस अवस्था में बालकों व बालिकाओं की लम्बाई निरन्तर बढ़ती रहती है। 16 वर्ष के पश्चात् बालिकाओं की लम्बाई बढ़नी रुक जाती है, जबकि बालकों की 18 वर्ष के बाद भी बढ़ती रहती है। इस अवस्था तक मस्तिष्क का विकास लगभग पूर्ण हो जाता है तथा इसका भार लगभग 1200 ग्राम होता है। मांसपेशियों का विकास भी काफी तेजी से होता है उनका भार सम्पूर्ण शरीर के भार का लगभग 44% हो जाता है।

मानसिक विकास में बुद्धि का विकास किशोरावस्था में अधिकतम होता है। 14 से 16 वर्ष के मध्य में बुद्धि का विकास अधिकतम होता है। तथ्यों का सामान्यीकरण करने की योग्यता में वृद्धि होती है। अमूर्त चिन्तन करना व निर्णय

लेना आदि में किशोर प्रवीण होता है। 19 वर्ष तक बुद्धिलब्धि (IQ) में वृद्धि होती है, जबकि थार्नडाइक के अध्ययन के अनुसार 22 वर्ष तक अधिगम में लगातार वृद्धि होती है।

इस अवस्था में किशोर मानसिक स्वतन्त्रता की ओर अग्रसर होता है। वह रूढ़ियों, रीति-रिवाजों, अंधविश्वासों और पुरानी परम्पराओं को अस्वीकार कर स्वतन्त्र जीवन जीने में विश्वास करता है।

सामाजिक विकास में किशोरावस्था में बालकों और बालिकाओं में एक-दूसरे के प्रति बहुत आकर्षण उत्पन्न हो जाता है। अत: वे अपनी सर्वोत्तम वेशभूषा, बनाव-शृंगार व सज-धज कर एक-दूसरे के समक्ष प्रस्तुत होते हैं।

किशोर प्राय: किसी न किसी चिन्ता या समस्या में उलझा रहता है, जैसे धन, प्रेम, विवाह, शिक्षा व पारिवारिक जीवन इत्यादि। बालक-बालिकाएं अपने समूह के प्रति बहुत वफादार होते हैं।

दृष्टिहीनता का प्रभाव : शारीरिक व मांसपेशियों का विकास दृष्टिहीनता से सीधे तो अधिक प्रभावित नहीं होता, परन्तु अप्रत्यक्ष रूप से माता-पिता की अभिवृत्तियाँ व उनके अतिसंरक्षण के कारण बहुत अधिक प्रभावित होता है। दृष्टि के अभाव में बच्चे का बाह्य वातावरण से कोई सम्बन्ध नहीं होता, अत: कोई भी वस्तु उन्हें आकर्षित नहीं करती। परिणामस्वरूप अनेक कौशलों का विकास दृष्टिहीन बच्चे में नहीं हो पाता।

दृष्टिहीनता की सीमाओं के कारण बालक का विकास प्रभावित होता ही है। लौवनफेल्ड के अनुसार इसकी निम्नलिखित तीन मुख्य सीमाएं हैं:

1. अनुभवों के क्षेत्र एवं विविधता का सीमित होना (Restriction in the range and variety of experiences).

2. चलिष्णुता का सीमित होना (Restriction in the ability to get about).

3. वातावरण पर नियंत्रण व वातावरण में स्वयं की स्थिति का सीमित होना (Restriction in the Control of Environment and self in relation to it).

प्राय: शिशु 6 माह तक न तो चलता-फिरता है, न ही उसकी कल्पना का कोई विकास होता है। भोजन, पानी तथा सामान्य देखभाल के अतिरिक्त उसकी अन्य कोई विशेष आवश्यकता भी नहीं होती। तीन माह की अवस्था के बाद प्राय: शिशु गर्दन पर नियंत्रण कर आस-पास के वातावरण में रुचि लेने लग जाता है।

प्रारम्भ में दृष्टिवान व दृष्टिहीन के विकास में कोई अन्तर नहीं होता। दृष्टिहीन बच्चे को तो यह भी पता नहीं होता कि वह दृष्टिहीन है व अन्य शिशुओं से भिन्न है। माता-पिता, रिश्तेदारों व पास-पड़ोस के व्यक्तियों के द्वारा उसे यह अहसास होता है कि वह अन्य शिशुओं से भिन्न है व उसे दिखाई नहीं देता। यदि माता-पिता की अभिवृत्तियाँ नकारात्मक हों तो शिशु अत्यधिक प्रभावित होता है, क्योंकि उनके माता-पिता बहुत निराश होते हैं। वे नहीं चाहते कि उनका अंधा बच्चा समाज पर बोझ हो व अधूरी जिन्दगी व्यतीत करे। इस उपेक्षापूर्ण व्यवहार से शिशु स्वयं को बड़ा असहाय महसूस करता है। उसे तो यह भी नहीं पता होता कि उसका अपराध क्या है।

धीरे-धीरे वह आवाजों के माध्यम से वातावरण को जानने का प्रयास करता है। सामान्य शिशु दृष्टि के माध्यम से अनेक वस्तुओं को पहचानने लगता है। दृष्टिहीन शिशु भी दृष्टिगत वस्तुओं की अवधारणा करने लगता है। वह अपने माता-पिता व भाई-बहनों को स्पर्श व आवाज से पहचानने लगता है। सामान्य शिशु माता-पिता को देखकर उनके भावों का अनुकरण कर सीखने लगता है, वहीं दृष्टिहीन इन अनुभवों से वंचित होने के कारण अनुकरण द्वारा सीखने से वंचित हो जाता है।

बाल्यावस्था में ही दृष्टिहीन बच्चा सामान्य बालक की भांति बैठना, रेंगना व चलना सीख जाता है। विकास के इस स्तर पर दृष्टि का महत्त्व व अभाव परिलक्षित होना प्रारम्भ हो जाता है। माता-पिता व भाई-बहन उस पर अनेक बंधन लगाते हैं, क्योंकि वह दृष्टि के अभाव में स्वयं को खतरनाक स्थिति में डाल सकता है। परिणामस्वरूप वह अनेकों भयों से ग्रसित होता है। इस समय दृष्टिवान व्यक्ति द्वारा आस-पास के वातावरण की जानकारी स्पर्श द्वारा उसे दी जानी चाहिए। घर के अन्दर-बाहर जाने के लिए उसे अनुस्थितिज्ञान व चलिष्णुता की सुरक्षात्मक तकनीकों का ज्ञान दिया जाना चाहिए। सीढ़ियाँ उतरना व चढ़ना सिखाना आदि उसे दृष्टिवान व्यक्ति द्वारा ही सम्भव होता है। यदि दृष्टिहीन के माता-पिता शिक्षित नहीं हैं तो वे प्राय: प्रारम्भ में विभिन्न चिकित्सकों व ओझाओं के चक्कर लगाते रहते हैं कि किसी प्रकार उनके बच्चे की दृष्टि वापिस आ जाये, जिससे काफी समय निरर्थक प्रयासों में व्यर्थ हो जाता है।

सामान्य बालकों की खिलौनों में रुचि स्वाभाविक है, वहीं दृष्टिहीन बच्चों के लिए उसमें कोई अधिक रुचि नहीं है। वह खिलौनों से घिरे रहने के बाद भी इनकी जानकारी नहीं ले सकता। इनका प्रयोग छूकर बताने के बाद ही वह उससे खेलना प्रारम्भ करता है। वह अपने आस-पास घटित वातावरण से प्राय: अनभिज्ञ

रहता है। इस प्रकार उसका सीखना अत्यधिक प्रभावित होता है और वह सामान्य बच्चे से पिछड़ जाता है।

बालक का सामाजिक व मानसिक विकास शारीरिक विकास से सम्बन्धित होता है, अतः ये भी अत्यधिक प्रभावित होते हैं। बाल मस्तिष्क व हृदय अत्यन्त असमंजसताओं से घिरा होता है कि वह अन्य बालकों से क्यों व कैसे भिन्न है? उसका अपराध क्या है? उसके परिवार के लोग उसके विषय में क्यों चिन्तित हैं? वह परिवार के लिए बोझ क्यों है? उसके माता-पिता के पिछले जन्म के कर्म क्या हैं? यह देखना क्या होता है? उसका जीवन कठिन क्यों होगा?

इन अनेक प्रश्नों के उत्तर तलाशने में लगा बाल मन आस-पास के वातावरण से लगभग कट जाता है। परिणामस्वरूप उसका मानसिक, सामाजिक व भावनात्मक विकास नकारात्मक रूप से प्रभावित होता है। उसका विकासात्मक स्तर पिछड़ जाता है, चूँकि विकास की दर धीमी हो जाती है।

माता-पिता के शिक्षित होने व दृष्टिहीनता को स्वीकार करने पर स्थिति इसके विपरीत हो सकती है, क्योंकि इस स्थिति में दृष्टिहीन बच्चे की आवश्यकताओं के अनुरूप उसे अनुभव उपलब्ध कराए जाते हैं व माता-पिता बच्चे की आवश्यकतानुसार विशेष सामग्री उपलब्ध कराते हैं। परिणामस्वरूप उसका विकास सामान्य बच्चे की भांति होता है। दृष्टि के अभाव में अनुभव स्पर्श व श्रवणेंद्रिय के माध्यम से दिए जाते हैं। दृष्टि के अभाव में बच्चे का विकास थोड़ा प्रभावित तो होता ही है, क्योंकि बच्चा अनुकरण द्वारा सीखने से वंचित रह जाता है, परन्तु अपनी दृष्टिहीनता की जानकारी के बाद बच्चा अन्य ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से वातावरण को जानकर सामंजस्य स्थापित कर सीखता है। उसका भावनात्मक, सामाजिक व बौद्धिक विकास उचित दर से ही होता है, क्योंकि परिवार का हर सदस्य उसको वातावरण को जानने में सहायता करता है।

समयानुसार उसे विद्यालय में प्रवेश दिलाया जाता है। यदि वह एकीकृत शिक्षा योजना का लाभ उठा रहा होता है तो परिवार में रहकर वह प्रतिदिन पड़ोस के बच्चों के साथ पास के विद्यालय में शिक्षा ग्रहण करता है। यह एक आदर्श स्थिति है। भारत में दृष्टिहीन बच्चे माता-पिता से दूर विशेष विद्यालयों में जाकर शिक्षा ग्रहण करते हैं। ये विद्यालय आवासीय होते हैं। माता-पिता व भाई-बहिनों के साथ उनका दैनिक सम्पर्क नहीं होता जो उनके विकास की गति को कुछ धीमा अवश्य करता है, परन्तु आदर्श माता-पिता दूर रहकर भी बच्चे की शिक्षा को निर्देशित करते रहते हैं।

दृष्टिहीनता के प्रभावों को दूर करने में अध्यापक की भूमिका एवं उत्तरदायित्व:

प्राय: देखने में आता है कि दृष्टिहीनता बच्चे की अभिवृद्धि व विकास को प्रभावित करती है। दृष्टि के अभाव में प्राय: उसकी विकास की अवस्थाएं विलम्ब से चलती हैं। सैन्डलर के अनुसार, प्रारम्भिक चार माह तक दृष्टिहीन व दृष्टिवान बच्चे में कोई अन्तर नहीं होता है, परन्तु इस अवस्था के बाद दोनों के विकास व अभिवृद्धि में अन्तर होना प्रारम्भ हो जाता है। दृष्टिवान वातावरण की प्रत्येक चीज से आकर्षित होकर उसे जानने के लिए उत्सुक होता है, वहीं दृष्टिहीन बच्चे को वातावरण की कोई भी चीज आकर्षित नहीं करती, जब तक उसमें आवाज न हो अथवा उसे उसके विषय में बोलकर बताया न जाये। बाह्य हर वस्तु से अपरिचित वह स्वयं को ही टटोलता रहता है, अथवा स्वयं से ही उत्तेजना/प्रेरक खोजते हुए मैनेरिज्म का शिकार हो जाता है। प्राय: दृष्टिहीन बच्चे वातावरण के साथ सम्पर्क न होने के कारण अनावश्यक रूप से सिर, पैर अथवा गर्दन घुमाते हुए देखे जा सकते हैं, जो उनके विकास व अभिवृद्धि की गति को घटाकर उन्हें पिछड़ा बना देती है। यह पिछड़ापन विकास की अवस्थाओं को दो से चार वर्ष तक पीछे धकेल देता है। इन दृष्टिहीन बच्चों के प्रारम्भिक वर्ष प्राय: दृष्टि के उपचार के प्रयासों में संघर्ष करने में गुजर जाते हैं। ये प्राय: माता-पिता के प्यार से वंचित रह जाते हैं, जिसका प्रमुख कारण माता-पिता की दृष्टिहीनता के प्रति नकारात्मक अभिवृत्तियाँ हैं। यद्यपि दृष्टिहीन बच्चे के प्रति स्वाभाविक प्यार तो इन्हें होता है, परन्तु उसके संघर्षमय जीवन के कारण चिंतित ये उसके उपचार के लिए दर-दर की ठोकरें खाते रहते हैं। जब सब ओर से निराशा मिल जाती है, तब वे उसकी शिक्षा के लिए एकीकृत अथवा विशेष विद्यालय की ओर उन्मुख होते हैं।

बाल्यावस्था में होने वाला शारीरिक, बौद्धिक, सामाजिक व संवेगात्मक विकास अत्याधिक प्रभावित होता है। अध्यापक को इन दृष्टिहीन बच्चों के साथ प्रारम्भ में काफी संघर्ष करना पड़ता है, विशेष रूप से यदि वे आवासीय विशेप विद्यालय में शिक्षा प्राप्त कर रहे हों। घर के वातावरण से दूर विद्यालय के नए वातावरण में इन बच्चों को भी काफी संघर्ष करना पड़ता है।

आवासीय विद्यालय में अध्यापक को इन दृष्टिहीन बच्चों के माता-पिता/अभिभावकों की भी भूमिका निभानी होती है। परिणामस्वरूप दृष्टिहीन बच्चों का विद्यालयी वातावरण के साथ उचित सामंजस्य स्थापित हो जाता है। यह विद्यालय में सीखने/पढ़ने से पूर्व की तैयारी है।

दृष्टिहीनता के प्रभावों को कम करने के लिए अध्यापक ज्ञानेन्द्रिय विकास द्वारा उनका वातावरण के साथ सामंजस्य स्थापित करता है। स्पर्शेन्द्रिय व श्रवणेन्द्रिय को विकसित कर दृष्टि के क्षतिपूरक के रूप में प्रयोग में लाया जाता है। यह ज्ञानेन्द्रिय विकास उसके अनुस्थितिज्ञान व चलिष्णुता में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है जो उसके सामाजिक विकास में सहायक होता है।

स्पर्श व श्रवण ज्ञानेन्द्रियां दृष्टिहीन बच्चे का सम्बन्ध बाह्य वातावरण से स्थापित करती हैं। अध्यापक का उत्तरदायित्व है कि संवेदी (ज्ञानेन्द्रिय) प्रशिक्षण के लिए उचित सामग्री उपलब्ध कराकर दृष्टिहीन बच्चों को दैनिक क्रिया-कौशल में प्रशिक्षित करे। दृष्टिहीन बच्चा इन ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से बाह्य वातावरण में होने वाली घटनाओं से परिचित होकर न केवल अपने वातावरण को जानता है, बल्कि वातावरण पर नियन्त्रण करना भी सीख लेता है। वह क्रियाशील हो विभिन्न प्रत्ययों को विकसित करता हुआ अपने हमउम्र सहपाठियों के समकक्ष आने का प्रयास करता है।

अध्यापक द्विआयामी, त्रिआयामी पाठ्य-सामग्री व वातावरण में उपलब्ध वास्तविक वस्तुओं के माध्यम से उसे विभिन्न प्रत्ययों का ज्ञान प्रदान करता है। परिणामस्वरूप वह बौद्धिक रूप से अपने समान आयु वाले दृष्टिवान विद्यार्थियों के समकक्ष आने का प्रयास करता है।

दृष्टिहीन बच्चों के शारीरिक विकास के लिए खेल व शारीरिक शिक्षा बहुत महत्त्वपूर्ण है। श्रवण आधारित खेल द्वारा दृष्टिहीन बच्चे के मांसपेशीय विकास के लिए उचित प्रयास करना अध्यापक का उत्तरदायित्व है। उसके प्रयासों द्वारा ही विकास व वृद्धि के पिछड़ेपन को कम किया जा सकता है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि दृष्टिहीनता अभिवृद्धि व विकास को पिछड़ा कर देती है। अध्यापक को बच्चे की अभिवृद्धि व विकास की अवस्थाओं से परिचित होना चाहिए। दृष्टिहीनता के अभिवृद्धि व विकास पर पड़ने वाले प्रभावों को कम करने की दिशा में अध्यापक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है। इसके लिए आवश्यक है कि उसे दृष्टिहीनता के अभिवृद्धि व विकास पर होने वाले प्रभावों की जानकारी हो। दृष्टिहीन बच्चों की अभिवृद्धि व विकास के पिछड़ेपन को कम करने का उत्तरदायित्व अध्यापक पर ही है। अध्यापक/समयानुसार हस्तक्षेप कर दृष्टिहीन बच्चे के शारीरिक, बौद्धिक, सामाजिक व संवेगात्मक विकास को उचित गति प्रदान कर उनके पूर्ण व्यक्तित्व विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है, परिणामस्वरूप वे बिना किसी हीन भावना के समाज के नागरिक बन राष्ट्र निर्माण में सक्रिय भूमिका अदा करने योग्य होते हैं।

अध्याय–16

अधिगम एवं दृष्टिहीनता

–डॉ. सुषमा शर्मा

मनुष्य को जीवन में सक्षम बनाने में शिक्षा एवं सीखने का प्रमुख स्थान है। सीखने की प्रक्रिया के द्वारा ही मानव ज्ञान अर्जन करता है। प्रस्तुत अध्याय में अधिगम/सीखने का अर्थ, परिभाषा, सिद्धान्त तथा अधिगम को प्रभावित करने वाले कारकों का उल्लेख किया गया है। इसके अतिरिक्त दृष्टिहीनता के अधिगम पर पड़ने वाले प्रभावों तथा इन्हें दूर करने में अध्यापक की भूमिका की चर्चा भी इस अध्याय में की गई है।

अधिगम अथवा सीखना जीवनपर्यन्त निरन्तर चलने वाली वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा व्यक्ति अपने व्यवहार में परिवर्तन लाता है। सीखने से अज्ञेय, ज्ञेय हो जाता है व ज्ञान के भण्डार में वृद्धि होती है, जो व्यक्ति को विकास के पथ पर अग्रसर करती है। शिक्षक अपना अधिक समय और प्रयास विद्यालय में बच्चों को सिखाने में लगाता है। कक्षा के अन्दर व बाहर के क्रियाकलाप बच्चों को सिखाने के उद्देश्य से ही निर्धारित किए जाते हैं। विद्यालय इसी उद्देश्य की प्राप्ति हेतु स्थापित किए गये हैं, जहाँ अधिगम द्वारा हम अपने भावी नागरिकों को भविष्य के लिए तैयार करते हैं। ज्ञान का विस्फोटन जिस गति से हो रहा है वह चौंकाने वाला है, अतः अब हम उन्हें केवल विषय ज्ञान देने पर ही नहीं, बल्कि उनमें उन कौशलों व अभिवृत्तियों का विकास करने पर भी जोर देते हैं, जो उन्हें भविष्य की चुनौतियों का सामना करने योग्य बनाएं। आज के समय में यह अति आवश्यक है कि शिक्षण अधिगम प्रगुणता अथवा प्रभावशाली ढंग से हो, अतः अध्यापक के लिए अधिगम की प्रक्रिया व इसके सिद्धान्तों का जानना अति आवश्यक है। दृष्टिबाधित बच्चा पहले बच्चा है बाद में दृष्टिबाधित। अतः एक सामान्य बच्चे के आधार पर अधिगम जानकर अध्यापक के लिए दृष्टिबाधित के अधिगम पर प्रभाव जानना आवश्यक है, जिसकी विवेचना विस्तार से की जा रही है।

अधिगम का अर्थ एवं परिभाषा :

अधिगम व्यवहार में परिवर्तन है। व्यक्ति पाशविक प्रवृत्तियों को लेकर जन्म लेता है। सीखने के द्वारा वह अपनी प्रवृत्तियों में परिमार्जन करता है। शैशवकाल में, जहाँ हर चीज को निःसंकोच झपट कर लेता है, वहीं धीरे-धीरे वातावरण में

रहकर वह मांगकर लेना सीख जाता है। झपटकर चीज लेना एक स्वाभाविक क्रिया है, वहीं सीखने के पश्चात् वह चीज को मांगकर लेता है। इस प्रकार सीखना वातावरण में अनुभव द्वारा व्यवहार में परिवर्तन ही है।

सीखने को एक प्रक्रिया कहा गया है, जिसकी दो प्रमुख विशेषताएं हैं- सार्वभौमिकता एवं निरन्तरता। यह प्रक्रिया जीवन की भांति ही निरन्तर प्रत्येक स्थान पर चलती रहती है। मनुष्य जन्म से लेकर मृत्यु तक निरन्तर सीखता ही रहता है। सीखने के द्वारा व्यक्ति अनुभव प्राप्त कर अपने व्यवहार में परिवर्तन लाता रहता है।

अधिगम की अनेक परिभाषाएं शिक्षाविदों व मनोवैज्ञानिकों ने दी हैं। इनमें से कुछ प्रमुख परिभाषाएं अधिगम के अर्थ को और अधिक स्पष्ट करने हेतु दी जा रही हैं, जो कि निम्न प्रकार हैं:

(1) क्रो व क्रो के अनुसार-

"सीखना-आदतों, ज्ञान और अभिवृत्तियों का सृजन है।"

"Learning is the acquisition of habits, knowledge and attitudes."

(2) व्यवहारवादियों के अनुसार-

"अधिगम अनुभव के परिणामस्वरूप तुलनात्मक रूप से स्थायी व्यवहार में परिवर्तन है।"

"Learning is relatively permanent change in behaviour due to experience."

(3) गेट्स के अनुसार-

"अनुभव और प्रशिक्षण के द्वारा व्यवहार में परिवर्तन ही अधिगम है।"

"Learning is the modification of behaviour through experience and training."

(4) थार्नडाइक के अनुसार-

"उपयुक्त प्रतिक्रिया को चयन कर उत्तेजक से जोड़ना ही अधिगम है।"

"Learning is selecting the appropriate response and connecting it with the stimulus".

(5) ज्ञानात्मक (Cognitive) मनोवैज्ञानिकों के अनुसार-

"अनुभव द्वारा मानसिक एसोसिएशन में तुलनात्मक स्थायी परिवर्तन ही अधिगम है।"

"Learning is a relatively permanent change in mental association due to experience."

अधिगम की विशेषताएं :

अधिगम की अनेक विशेषताएं बतायी गयी हैं, जो कि निम्नलिखित है:

1. अधिगम सार्वभौमिक है।
2. अधिगम विकास है।
3. अधिगम अनुकूलन (adaptation) है।
4. अधिगम अनुभवों का संगठन है।
5. अधिगम उद्देश्यपूर्ण (purposive) है।
6. अधिगम विवेकपूर्ण (intelligent) है।
7. अधिगम में निरन्तरता है।
8. अधिगम व्यवहार में परिवर्तन (change) है।
9. अधिगम स्थायी परिवर्तन है।

अधिगम के सिद्धान्त :

सीखना जीवनपर्यन्त चलने वाली वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन आता है। सीखने के अनेक सिद्धान्त शिक्षाविदों व मनोवैज्ञानिकों ने दिये हैं। इनमें से प्रमुख सिद्धान्तों की विवेचना नीचे की जा रही है:-

(1) प्रयास एवं त्रुटि का सिद्धान्त (Trial and Error Theory)

(2) सम्बद्ध प्रतिक्रिया का सिद्धान्त (Conditioned Response Theory)

(3) क्रियाशीलता अनुबन्धन का सिद्धान्त (Operant Conditioning Theory)

(4) अन्तर्दृष्टि सूझ का सिद्धान्त (Insight Theory)

(5) पुनर्बलन का सिद्धान्त (Reinforcement Theory)

(1) प्रयास एवं त्रुटि का सिद्धान्त (Trial and Error Theory) : इस सिद्धान्त के प्रतिपादक ई.एल. थार्नडाइक (E.L. Thorndike) ने 1913 में इस सिद्धान्त का वर्णन अपनी पुस्तक 'शिक्षा मनोविज्ञान' में सर्वप्रथम किया। इस सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य प्रयास व त्रुटि के आधार पर सीखता है। पहले त्रुटियों की संख्या अधिक होती है, परन्तु धीरे-धीरे हम त्रुटियों से सीखकर उन्हें कम करना प्रारम्भ कर देते हैं। अन्ततः हम बिना किसी त्रुटि के कार्य को कर पाने में सक्षम हो जाते हैं, इसे ही प्रयास एवं त्रुटि द्वारा सीखना कहते हैं।

थार्नडाइक ने इस सिद्धान्त के प्रतिपादन के लिए बिल्ली पर प्रयोग किये। भूखी बिल्ली को पिंजरे में बंद कर दिया। पिंजरे में लगे एक हैंडल को दबाकर खोला जा सकता था। पिंजरे के बाहर भोजन रख दिया। भोजन बिल्ली के लिए उद्दीपक था, जिसे देखकर उसमें प्रतिक्रिया हुई और वह बाहर आने का प्रयास करने लगी। अनेक बार त्रुटियाँ करने के पश्चात् अचानक उसका पैर हैंडल पर लगा व पिंजरे का दरवाजा खुल गया। इस प्रकार उसका प्रयास सफल हो गया। ये प्रयोग उन्होंने बिल्ली के साथ निरन्तर किये व देखा कि धीरे-धीरे त्रुटियों की संख्या कम होती चली गयी और अन्ततः बिल्ली पिंजरे के दरवाजे को हैंडल दबाकर खोलने में सक्षम हो गयी।

मनुष्य भी इसी आधार पर सीखते हैं। विद्यालय में बच्चा इसी आधार पर पढ़ना, लिखना व गणित आदि सीखता है। प्रतिदिन के कौशल-जूते पहनना, कपड़े पहनना, ब्रुश करना आदि सभी प्रयास त्रुटि के आधार पर ही सीखे जाते हैं। प्रारम्भ में बच्चा गलतियाँ करता है, जो धीरे-धीरे कम होती चली जाती हैं व अन्त में वह इन सभी क्रियाओं को करने में कुशल हो जाता है।

थार्नडाइक के इस सिद्धान्त को सम्बद्धवाद का सिद्धान्त (Connectionist Theory), उद्दीपक-प्रतिक्रिया सिद्धान्त (Stimulus-Response Theory) अथवा सीखने का सम्बद्ध सिद्धान्त (Bond Theory of Learning) भी कहते हैं।

शिक्षा में इस सिद्धान्त का अत्यन्त महत्त्व है। मानसिक विकलांग, जैसे मन्द बुद्धि आदि के लिए यह सिद्धान्त अत्यन्त उपयोगी है। इस सिद्धान्त के आधार पर विद्यार्थियों में धैर्य, परिश्रम आदि गुणों का विकास होता है। प्रयास के आधार पर अनेक प्रत्यय (Concept) समझ में आ जाते हैं। उद्दीपक व प्रतिक्रियाओं में जितना अच्छा व मजबूत सम्बन्ध होगा उतना ही विद्यार्थी बुद्धिमान हो जाता है। इसी आधार पर थार्नडाइक ने तत्परता, अभ्यास व परिणाम के प्रभाव के नियम दिये। कुछ वैज्ञानिकों का मानना है कि यह सिद्धान्त व्यर्थ के प्रयत्नों पर बल देता

है, जिससे बहुत समय नष्ट होता है, यही नहीं यह सिद्धान्त मानव के विवेक, चिन्तन आदि गुणों की अवहेलना करता है। परन्तु आज के समय में इस अधिगम सिद्धान्त को अन्य विकसित अधिगम सिद्धान्तों की रोशनी में सुधारा जा सकता है, जिसके आधार पर विद्यालय में इन नियमों का सीखने में प्रयोग किया जाना चाहिए।

प्रयास एवं त्रुटि सिद्धान्त का शिक्षा में महत्त्वः

1. यह सिद्धान्त बच्चों को स्वयं प्रयास करने पर बल देता है।
2. इससे बच्चों में धैर्य व परिश्रम जैसे गुणों का विकास होता है।
3. स्वयं करके सीखने से विद्यार्थियों के प्रत्यय स्पष्ट हो जाते हैं।
4. यह सिद्धान्त समस्या समाधान पर बल देता है।
5. उद्दीपक व प्रतिक्रिया का सम्बन्ध सीखने के लिए आधारभूत है।
6. जितने उद्दीपक व प्रतिक्रिया के सम्बन्ध होंगे, उतना ही विद्यार्थी बुद्धिमान होगा।

- **(2) सम्बद्ध प्रतिक्रिया का सिद्धान्त (Conditioned Response Theory):** सम्बद्ध प्रतिक्रिया सिद्धान्त का प्रतिपादन रूसी मनोवैज्ञानिक आई.पी. पॉवलोव (I.P. Pavlov) ने किया था। इस सिद्धान्त के अनुसार अधिगम एक अनुकूलित अनुक्रिया है।

पॉवलोव ने कुत्तों के साथ प्रयोग किये, जहाँ भोजन को देखकर कुत्ते के मुँह में लार टपकने लगती है। यहाँ भोजन एक स्वाभाविक उत्तेजक या उद्दीपक (stimulus) है। कुत्ते की भोजन को देखकर स्वाभाविक प्रतिक्रिया है- मुँह से लार टपकना। कुत्ते को घंटी बजाकर भोजन दिया जाता है। घंटी अस्वाभाविक उत्तेजक है। कुछ समय के पश्चात् घंटी बजते ही कुत्ते के मुँह से लार टपकना सम्बद्ध सहज क्रिया अथवा Conditioned Reflex or Response है। इस प्रकार अस्वाभाविक उत्तेजक में स्वाभाविक उत्तेजक के गुण आ जाते हैं, जिसकी अस्वाभाविक प्रतिक्रिया को ही सहज क्रिया कहा जाता है। दूसरे शब्दों में, अस्वाभाविक उत्तेजना के प्रति स्वाभाविक प्रतिक्रिया का उत्पन्न होना ही सम्बद्ध प्रतिक्रिया है।

सम्बद्ध प्रतिक्रिया सिद्धान्त का शिक्षा में महत्त्व :

1. विद्यार्थियों के असामान्य व्यवहार की व्याख्या यह सिद्धान्त करता है।

2. इस सिद्धान्त के द्वारा विद्यार्थियों में अच्छी आदतों व अनुशासन का विकास किया जा सकता है।

3. सम्बद्ध सहज क्रिया आधारभूत सिद्धान्त है, जिस पर विद्यार्थियों का सीखना निर्भर करता है।

(3) क्रियाशीलता अनुबन्धन का सिद्धान्त (Operant Conditioning Theory) इस सिद्धान्त के प्रतिपादक बी.एफ. स्किनर हैं। इन्होंने अधिगम को क्रियाशीलता (Operant) व उत्तेजक (Stimulus) के आधार पर स्पष्ट किया है। स्किनर के अनुसार अभिप्रेरणा से उत्पन्न क्रियाशीलता ही अधिगम के लिए उत्तरदायी है।

स्किनर ने अधिगम के सिद्धान्त को प्रतिपादित करने के लिए चूहों पर प्रयोग किये। स्किनर ने एक विशेष प्रकार का बक्सा बनवाया जिसे, 'स्किनर बक्से' के नाम से जाना जाता है। इस बक्से में चूहे को बंद रखा, जिसमें लीवर दबाने पर प्यालों में खाना आ जाता था। चूहे को प्याले में रखा भोजन मिलता है। भूखे होने पर चूहा लीवर दबाकर प्याले से भोजन लेने में अभ्यस्त हो जाता है। इन प्रयोगों से उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि यदि किसी क्रिया के बाद कोई बल प्रदान करने वाला उद्दीपक मिलता है तो उस क्रिया की शक्ति में वृद्धि हो जाती है। उपरोक्त प्रयोग में लीवर दबाने की क्रिया के बाद चूहे को प्याले का भोजन मिलता है, जो प्रबलन का कार्य करता है व उसकी क्रिया की शक्ति में वृद्धि करता है। स्किनर के अनुसार, "व्यवहार में गति (परिवर्तन) ही अधिगम है। यह परिवर्तन स्वयं ही होता रहता है अथवा बाहरी उद्देश्य या शक्ति द्वारा आता है।"

स्किनर ने कबूतरों पर भी क्रियाशीलता अनुबन्धता के प्रयोग किये, जो विभिन्न छः प्रकार की प्रकाश व्यवस्था में आयोजित किये गये। प्रयोगों के आधार पर पाया कि प्रकाश व्यवस्था परिवर्तन होने पर अनुक्रिया में आनुपातिक परिवर्तन हुआ।

क्रियाशीलता अनुबन्धन सिद्धान्त का शिक्षण में प्रयोग:

1. यह सिद्धान्त विद्यार्थियों के शिक्षण में प्रेरणा के महत्त्व पर अत्यधिक बल देता है, अर्थात् बालकों को प्रेरित करके ही सिखाया जा सकता है।

2. यह सिद्धान्त अभिक्रमित अधिगम (Programmed Learning) में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है, जहाँ क्रियाशीलता अनुबन्धन (Operant Conditioning) द्वारा सीखने की गति को बढ़ाया जा सकता है।

3. इस सिद्धान्त के अनुसार सीखने में पुनर्बलन का अधिक महत्त्व है। अधिक अभ्यास द्वारा दक्षता प्राप्त की जा सकती है। पुनर्बलन द्वारा उन्हें दक्षता प्राप्त करने में अध्यापन सहायक हो सकता है।

4. परिणाम की जानकारी होने पर भी सीखने की गति में उचित वृद्धि होती है।

5. संतोष से क्रिया को गति मिलती है। स्किनर के अनुसार क्रिया करने पर संतोष प्राप्त होता है, जो क्रिया को बल प्रदान करना है।

(4) अन्तर्दृष्टि सूझ का सिद्धान्त (Insight Theory) : हम दिन-प्रतिदिन के कुछ कार्यों को करके सीखते हैं, कुछ को दूसरों को करते देखकर सीखते हैं व कुछ कार्य ऐसे भी होते हैं, जिन्हें हम बिना बताए अपने आप सीख लेते हैं। इस प्रकार के अधिगम को अन्तर्दृष्टि अथवा सूझ द्वारा सीखना कहते हैं।

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन जर्मन मनोवैज्ञानिक वर्दामियर, कोफका तथा कोहलर ने किया था। इस सिद्धान्त को 'गेस्टाल्ट का सिद्धान्त' भी कहते हैं।

कोहलर ने इस सिद्धान्त के लिए बन्दरों पर प्रयोग किये। सुलतान नाम के एक बन्दर को एक कमरे में बंद कर दिया। कमरे की छत पर केले को लटका दिया। कमरे में एक कोने पर एक सन्दूक रख दिया। सुलतान ने काफी उछल-कूद कर केले को लेने का प्रयास किया। अन्त में थककर वह एक कोने में बैठ गया। कुछ समय के पश्चात् वह सन्दूक को केले के नीचे खींच कर लाया व सन्दूक पर चढ़कर केले को ले लिया। सुलतान के इस कार्य से स्पष्ट होता है कि सुलतान के पास सूझ थी, जिसका प्रयोग कर उसने अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लिया।

इसी आधार पर विद्यार्थी भी विद्यालय में सीखते हैं। सूझ का आधार कल्पना है। जिस व्यक्ति की कल्पनाशक्ति जितनी विकसित होगी, उतनी ही उसकी सूझ अच्छी होगी, अत: उसे उतनी ही सफलता प्राप्त होगी।

अन्तर्दृष्टि सिद्धान्त का शिक्षा में महत्त्व:

1. यह सिद्धान्त विद्यार्थियों की बुद्धि, कल्पना व तर्क-शक्ति को विकसित करता है।

2. यह सिद्धान्त व्यावहारिक अथवा रचनात्मक कार्यों के लिए उपयोगी है।

3. यह सिद्धान्त संगीत व साहित्य के लिए उपयोगी है।

4. यह सिद्धान्त विद्यार्थियों के स्वयं खोज करके सीखने पर बल देता है।

5. विद्यालय में विद्यार्थियों द्वारा समस्या-समाधान सीखने की इस सिद्धान्त के द्वारा व्याख्या की जा सकती है।

(5) पुनर्बलन का सिद्धान्त (Reinforcement Theory) : पुनर्बलन सिद्धान्त का प्रतिपादन अमरीकी मनोवैज्ञानिक सी.एल. हल (C.L. Hull) ने सन् 1915 में किया था। यह सिद्धान्त थार्नडाइक व पावलोव के सिद्धान्तों पर आधारित है।

इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति अपनी आवश्यकता के आधार पर सीखता है। यदि कोई कार्य व्यक्ति की आवश्यकता की पूर्ति करता है, तब ही वह व्यक्ति उस कार्य को सीखता है। कहा भी गया है कि आवश्यकता आविष्कार की जननी होती है। 'आवश्यकता की पूर्ति' (need satisfaction) का हल ने 'आवश्कता की कमी' (need reduction) के रूप में उल्लेख किया है। इसी प्रकार आवश्यकता की पूर्ति ही सीखने का आधार है।

इसे भूखे पशु के प्रयोग से स्पष्ट किया गया है। पशु पिंजरे में बंद है जो कि भूखा है। पिंजरे का दरवाजा बंद है व बाहर भोजन रखा है। पिंजरे का दरवाजा लीवर दबाने से खुलता है। भोजन एक पुनर्बलन है, जिससे पशु की क्रियाशीलता बढ़ती है, जो उसकी भूख को सन्तुष्ट कर सकता है। पशु अनेक प्रयासों के बाद लीवर को दबाकर दरवाजा खोलकर बाहर जाने में सफल हो जाता है। इस प्रकार अपनी भूख की तृप्ति के लिए पशु पिंजरे का दरवाजा खोलना सीख जाता है। हल के अनुसार आवश्कता की पूर्ति हेतु प्रक्रिया सीखना होता है। Learning takes place through a process of need reduction.

पुनर्बलन सकारात्मक अथवा नकारात्मक किसी भी प्रकार का हो सकता है। सकारात्मक पुनर्बलन सीखने वाले व्यक्ति के लिए पुरस्कार के समान है, जिससे उसे प्रशंसा मिलती है, जैसें भोजन भूखे पशु के लिए सकारात्मक पुनर्बलन है अथवा अध्यापक की मुस्कुराहट अथवा शाबाश कहना छोटी कक्षा के विद्यार्थी के लिए सकारात्मक पुनर्बलन है। नकारात्मक पुनर्बलन कोई अप्रिय चीज अथवा घटना है, जिससे व्यक्ति उस क्रिया को करने से बचता है।

स्किनर ने इस सिद्धान्त को सर्वश्रेष्ठ माना है। यही नहीं उनके अनुसार हल का सीखने का सिद्धान्त "Hull's theory of learning is a drive reduction theory" चालक न्यूनता का सिद्धान्त ही है। भूख अथवा भोजन उद्दीपक का कार्य

करता है, परिणामस्वरूप व्यक्ति विभिन्न क्रियाएं करता है। आवश्यकता पूर्ति न होने पर व्यक्ति की दशा में असंतुलन हो जाता है व आवश्यकता पूर्ति हेतु वह क्रियाशील हो जाता है, अर्थात् drive व्यक्ति को उस आवश्यकता की पूर्ति हेतु प्रयत्न करने को विवश करती है। आवश्यकता की पूर्ति होते ही drive की शक्ति कम हो जाती है।

विद्यालय में विद्यार्थियों की क्रियाओं व आवश्कताओं में सम्बन्ध होता है, अत: उनकी आवश्यकताओं के आधार पर ही पाठ्यक्रम निर्धारित किया जाना चाहिए।

पुनर्बलन सिद्धान्त का शिक्षा में महत्त्व:

1. यह सिद्धान्त विद्यार्थियों के लिए शिक्षण में प्रेरणा पर अत्यधिक बल देता है, क्योंकि प्रेरित होने पर विद्यार्थी ज्ञान सहज ही प्राप्त कर लेता है।

2. यह सिद्धान्त चालक न्यूनता का सिद्धान्त है। यह विद्यार्थी के असन्तुलन को कम कर उसे सन्तुष्ट बनाता है। आवश्यकता पूर्ण न होने पर व्यक्ति तनाव में रहता है व क्रियाशील रहता है। आवश्यकता पूर्ति होने पर चालक (drive) की शक्ति कम हो जाती है।

3. इस सिद्धान्त के अनुसार विद्यार्थी की आवश्यकतानुसार ही पाठ्यक्रम होना चाहिए, चूँकि आवश्यकताओं व क्रियाओं में सम्बन्ध है। विद्यार्थियों की आवश्यकताओं व वास्तविक जीवन में सम्बन्ध होना चाहिए, तभी विद्यार्थी उनको पढ़ने के लिए प्रेरित होगा।

दृष्टिहीनता के अधिगम पर प्रभाव :

लौवनफेल्ड (Lowenfeld) ने दृष्टिहीनता की मुख्य तीन सीमाएं बतायीं हैं। ये हैं- 1. अनुभव के प्रकार व प्रसार की सीमा, 2. चलिष्णुता की सीमा तथा 3. वातावरण के साथ पारस्परिक क्रिया की सीमा। ये सीमाएं व्यक्ति के अधिगम को प्रभावित करती हैं। यही नहीं दृष्टिहीन व्यक्ति का सीखना भी प्राय: सामान्य व्यक्ति से भिन्न होता है। इसका प्रमुख कारण ज्ञानेन्द्रियों के प्रयोग में अन्तर है। सामान्य व्यक्ति प्रत्येक चीज को दृष्टि ज्ञानेन्द्रिय का प्रयोग कर सीखता है। प्रत्येक अनुभव से सीखना उसके लिए एक स्वाभाविक क्रिया है। वह प्रत्येक चीज को पूर्ण के आधार पर सीखता है। वैज्ञानिकों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि 80 से 90 प्रतिशत सूचनाएं मस्तिष्क तक दृष्टि के माध्यम से पहुँचती हैं। दृष्टि एक ऐसी

ज्ञानेन्द्रिय है, जिसके द्वारा वातावरण में दूर-दूर तक की वस्तुओं को देखा जा सकता है। वातावरण की सर्वाधिक सही सूचनाएं यही ज्ञानेन्द्रिय प्रदान करती है। दूर रखी वस्तुओं के आकार एवं रंग की जानकारी भी काफी सीमा तक हो जाती है। दृष्टि को 'दूर संवेदना' (distance sense) कहा गया है, क्योंकि यह ज्ञानेन्द्रिय दूर-दूर तक की वस्तुओं की जानकारी मस्तिष्क को प्रेषित करती है। रंग की जानकारी केवल इसी दृष्टि ज्ञानेन्द्रिय के द्वारा होती है। इस ज्ञानेन्द्रिय का क्षेत्र अन्य ज्ञानेन्द्रियों जैसे श्रवण, स्पर्श एवं गतिबोधक (Kinesthetic), घ्राण तथा स्वाद सभी से अधिक विस्तृत होता है।

दृष्टिवान व्यक्ति दृष्टि के माध्यम से अपने वातावरण को समझता है, इसकी विवेचना करता है व उस पर नियन्त्रण करता है। दृष्टिहीन व्यक्ति को दृष्टि के अभाव में मुख्य रूप से स्पर्श, श्रवण व घ्राण पर निर्भर रहना पड़ता है। दृष्टिवान व्यक्ति का अधिगम पूर्ण से अंश के आधार पर होता है, जबकि दृष्टिहीन का अधिगम अंश से पूर्ण की ओर होता है। सामान्य व्यक्ति किसी भी चीज को पूर्ण के आधार पर जानता है, उसके विभिन्न अंग-भाग पर अलग से उसका ध्यान नहीं जाता, जबकि दृष्टिहीन को अंश के आधार पर जानना होता है, चूँकि स्पर्श की सीमाएं होती हैं, उसका अपना एक सीमित क्षेत्र होता है। इन छोटे-छोटे टुकड़ों (अंशों) को स्पर्श द्वारा जानकर वह इन टुकड़ों (अंशों) को जोड़कर समग्र का प्रत्यय बनाता है।

वातावरण की सभी वस्तुएं दृष्टिवान व्यक्ति बिना प्रत्यय के जान जाता है, वहीं दृष्टिहीन को विशेष रूप से बताना होता है। उसके वातावरण में उपस्थित न बोलने वाली हर वस्तु तब तक नहीं है, जब तक उसके बारे में बताया न जाये अथवा उसे स्पर्श द्वारा दिखाया न जाए। श्रवणेन्द्रिय व घ्राणेन्द्रिय द्वारा उपलब्ध सूचनाएं भी उसके प्रत्यय विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान करती हैं।

प्रारम्भिक कक्षाओं के विद्यालयी पाठ्यक्रम में ज्यादातर सामग्री दृश्य (Visual) होती है। इनको दृष्टिहीन विद्यार्थियों के लिए स्पर्शीय (Tactile) में परिवर्तित करना होता है, तभी वे उन प्रत्ययों को जान पायेंगे। ये स्पर्शीय सामग्री द्विआयामी, त्रिआयामी, मॉडल अथवा वास्तविक वस्तुएं भी हो सकती हैं। बहुसंवदेनीय सामग्री दृष्टिहीन विद्यार्थियों के प्रत्यय विकास में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

अध्यापक की भूमिका व उत्तरदायित्व :

दृष्टिबाधित बच्चों के सीखने में अध्यापक की भूमिका सर्वोपरि है। वह दृष्टिहीन विद्यार्थी व दृश्य समाज एवं वातावरण के बीच की एक कड़ी है। यहाँ

यह बात ध्यान देने की है कि दृष्टिबाधित बच्चा पहले बच्चा है बाद में दृष्टिबाधित। सामान्य विद्यार्थी की भांति अध्यापक उसका आदर्श (Role Model) होता है। उसका कथन अन्तिम सत्य होता है। अध्यापक दृश्य सामग्री को स्पर्शीय सामग्री में परिवर्तित कर वातावरण की प्रत्येक वस्तु की जानकारी उस तक पहुँचाता है। अध्यापक ही उसे सीखने के लिए प्रेरित करता है। दृष्टिहीन विद्यार्थियों का सीखना स्वाभाविक सीखने (Natural Learning) द्वारा न होकर मध्यस्थ द्वारा अधिगम (Mediated Learning) होता है। अध्यापक बीच की कड़ी अथवा मध्यस्थ (Mediator) की भूमिका निभाता है। प्रत्येक स्पर्शीय सामग्री तब तक अर्थहीन है, जब तक अध्यापक उसकी पूरी जानकारी दृष्टिहीन व्यक्ति को नहीं देता है।

दृष्टिहीन विद्यार्थी निम्न मूलभूत सिद्धान्तों के आधार पर सीखते हैं:

1. वास्तविक अनुभव द्वारा अधिगम।
2. क्रिया द्वारा अधिगम।
3. स्पर्श सामग्री द्वारा अधिगम।
4. बहु-ज्ञानेन्द्रिय पद्धति (Multi sensory approach) द्वारा अधिगम।

सीखने के सामान्य नियम दृष्टिहीन विद्यार्थियों के संदर्भ में भी उपयोग में लाये जाते हैं जो उनके अधिगम को सुगम व स्थायी बनाते हैं, जैसे तत्परता का नियम (बिना तत्परता के ब्रेल पठन शिक्षण आरम्भ नहीं करना चाहिए), अभ्यास का नियम (अभ्यास द्वारा ही दृष्टिहीन विद्यार्थी गणित, गिनती, पहाड़े व भाषा-कवितायें इत्यादि सीखते हैं) तथा परिणाम का नियम (जिस कार्य का परिणाम सुखद होता है, उसे दृष्टिहीन विद्यार्थी जल्दी सीखते हैं)। दृष्टिहीन विद्यार्थियों के लिए पुनर्बलन की बहुत आवश्यकता होती है, अतः प्रत्येक विद्यार्थी की रुचि के आधार पर पुनर्बलन का चयन कर अध्यापक को उचित समय पर उसका प्रयोग करना चाहिए।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है अधिगम एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है, जिससे व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन आता है। दृष्टिहीन विद्यार्थी का अधिगम दृष्टि के अभाव में अन्य ज्ञानेन्द्रियों द्वारा होता है। वह स्वाभाविक रूप से घटना के आधार पर नहीं सीखता, बल्कि मध्यस्थता के आधार पर सीखता है। क्रिया के द्वारा सीखना ज्यादा स्थायी होता है। वास्तविक वस्तुओं व अनुभवों द्वारा सिखाने पर उसके प्रत्यय सत्य के अधिक निकट होते हैं। दृष्टिहीन वर्णन करने में बहुत अच्छे होते हैं। प्रायः देखा गया है, वर्णन वास्तविकता के निकट होकर भी दृष्टिहीन

विद्यार्थी को उस वस्तु का वास्तविक ज्ञान नहीं होता । इसे 'मौखिकीकरण' (Verbalization/Verbalism) कहते हैं। अध्यापक को वास्तविक अनुभवों अथवा स्पर्शीय अनुभवों के द्वारा दृष्टिहीन विद्यार्थियों के इस मौखिकीकरण को कम करने का प्रयास करना चाहिए अन्यथा खोखली ईंटों पर बनी इमारत के समान उनका ज्ञान वास्तविकता से दूर होगा, जो कभी भी गिरकर उनके व्यक्तित्व विकास को नकारात्मक रूप से प्रभावित करेगा, परिणामस्वरूप उनका आत्मविश्वास समाप्त हो जाएगा। आत्मविश्वास खोने पर दृष्टिबाधित व्यक्ति की परिवार व समाज पर बोझ बन जाने की सम्भावना बढ़ जायेगी। इन्हें रोकना अध्यापक का परम कर्तव्य है।

अध्याय-17

बुद्धि

-डॉ. सुषमा शर्मा

शिक्षा प्राप्त कर समाज में व्यक्ति के उचित समायोजन में उसकी बौद्धिक क्षमताओं का महत्वपूर्ण स्थान है। बुद्धि के स्तर पर ही उद्देश्यपूर्ण अधिगम निर्भर करता है। इस अध्याय में बुद्धि का अर्थ एवं परिभाषा, बौद्धिक विकास के सिद्धान्त, बुद्धि मापन के यंत्र (परीक्षाएं) तथा दृष्टिहीनता का बौद्धिक विकास से सम्बन्ध आदि विषयों की विवेचना की गई है।

विद्यालय में प्रवेश के समय, विद्यालय में प्रतियोगिता में भाग लेते समय अथवा व्यावसायिक प्रशिक्षण में प्रवेश के लिए हमने कभी न कभी बुद्धि परीक्षण में भाग लिया ही होगा, जिसके द्वारा सीखने की क्षमता और समस्याओं को हल करने की क्षमता का पता चला होगा। बुद्धि सफलता की एकमात्र कुंजी नहीं है, तब भी असफल लोग बुद्धिहीन कहे गये हैं। बुद्धि का पढ़ने से कोई सम्बन्ध नहीं, तब भी शिक्षित लोग बुद्धिमान कहे जाते हैं। बुद्धि शब्द का प्रयोग प्राचीन काल से व्यक्ति की तत्परता, समस्या-समाधान की क्षमता व तात्कालिकता के संदर्भ में होता रहा है। 19 वीं शताब्दी तक बुद्धि व बौद्धिक (Intellectual) को एक-दूसरे के लिए समान रूप से प्रयुक्त किया जाता था। धीरे-धीरे इन दोनों का अन्तर स्पष्ट हुआ कि बुद्धि एक प्रकार का व्यवहार है जो बौद्धिक के समानान्तर नहीं है। सभी व्यक्ति एक-दूसरे से भिन्न होते हैं और मानसिक योग्यता ही उसके असमान होने का प्रमुख कारण है।

बुद्धि क्या है? इस सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिकों में सदैव मतभेद रहा है। मुख्य रूप से बुद्धि एक रचनाकृत (Construct) है। बुद्धि के सम्बन्ध में जितने मत हैं, उतनी ही बुद्धि की परिभाषाएं हैं। बुद्धि के सम्बन्ध में बोरिंग ने कहा है, "बुद्धि परीक्षण जो मापे वही बुद्धि है।"

बुद्धि का अर्थ एवं परिभाषा :

बुद्धि की अनेक परिभाषाएं दी गयी हैं। कोई भी परिभाषा ऐसी नहीं है, जिसे सर्वसम्मति से स्वीकार किया गया हो। इन विभिन्न परिभाषाओं व मतों के बाद भी अध्यापकों तथा मनोवैज्ञानिकों के लिए बुद्धि वह महत्त्वपूर्ण कारक है, जिसके आधार पर बच्चे विद्यालय में सफलता प्राप्त करते हैं व अन्ततः जीवन में सफलता

प्राप्त करते हैं। सामान्य अर्थों में बुद्धि वह संरचना है, जिसके आधार पर व्यक्ति अपने जीवन के विभिन्न तथ्यों तथा परिस्थितियों का सामना करता है। यह वह जन्मजात क्षमता है, जिसके आधार पर व्यक्ति उद्देश्यपूर्ण क्रिया करता है।

क्षमताओं व योग्यताओं का सफलतापूर्वक एकीकरण कर व्यक्ति द्वारा अपने वातावरण के साथ सफलतापूर्वक सामंजस्य ही बुद्धि है। एक व्यक्ति जीवन के एक पक्ष के सम्बन्ध में बहुत बुद्धिमान हो सकता है व अन्य पक्ष के सम्बन्ध में सामान्य बुद्धि का अथवा उससे कम। एक व्यक्ति अकादमिक विषयों में बुद्धिमान हो सकता है, वहीं अन्य व्यक्तियों के साथ सामंजस्य के विषय में भावनात्मक रूप से कमजोर। विभिन्न मनोवैज्ञानिकों व शिक्षाविदों ने बुद्धि की अलग-अलग परिभाषाएं दी हैं, ये निम्नलिखित हैं :-

बंकिंघम के अनुसार-

"बुद्धि (अधिगम) सीखने की योग्यता है।"

"Intelligence is the ability to learn."

फ्रीमैन के अनुसार-

"व्यक्ति का अपने पूर्ण वातावरण के साथ समायोजन व अनुकूलन ही बुद्धि है।"

"Adjustment and adaptation of the individual to his total environment."

हर्मन के अनुसार-

"बुद्धि अमूर्त विचारों के बारे में सोचने की प्रक्रिया है।"

"Intelligence is the ability to think in terms of abstract ideas."

रायबर्न के अनुसार-

"बुद्धि वह शक्ति है, जो हमको समस्याओं का समाधान करने और उद्देश्यों को प्राप्त करने की क्षमता प्रदान करती है।"

"Intelligence is the power which enables us to solve problems and to achieve our purposes"

बिने के अनुसार-

"बुद्धि व्यक्ति की वह योग्यता है, जो उसके व्यवहार को उद्देश्य प्राप्ति के प्रति दिशा-निर्देश करती है।"

"Intelligence is the ability of an individual to direct his behaviour towards a goal."

गालटन के अनुसार-

"बुद्धि पहचानने तथा सीखने की शक्ति है।"

"Intelligence is the power to recognise and learn."

दास (1973) के अनुसार-

"परिणाम को ध्यान में रखते हुए अपने व्यवहार को योजनाबद्ध संरचित करने की योग्यता ही बुद्धि है।"

"Intelligence is the ability to plan and structure one's behaviour with an end in view."

स्टैण्डबर्ग (1986) के अनुसार-

"उद्देश्यपूर्ण अनुकूलन, आकृति देना व वास्तविक जीवन के वातारण से स्वयं के जीवन के लिए चयनित वातावरण हेतु मानसिक क्रिया ही बुद्धि है।"

"Intelligence is the mental activity in purposive adaptation to shaping of, and selection of real-world environments relevant to one's life."

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है-

यह सीखने की योग्यता है।

यह समस्या के समाधान करने की योग्यता है।

यह अमूर्त चिन्तन की योग्यता है।

यह अपने वातावरण से सामंजस्य करने की योग्यता है।

यह उच्च विचार प्रक्रिया की क्षमता है।

बुद्धि का वास्तविक अर्थ :-

जैसा कि बुद्धि की परिभाषाओं के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि इन परिभाषाओं में विभिन्नता के साथ-साथ समानता भी है। यदि व्यक्ति कोई एक कार्य कर पाता है तो संभावना है कि वह अन्य कार्यों को करने की भी क्षमता रखता है। शिक्षाविदों व मनोवैज्ञानिकों का मत है कि बुद्धि जन्मजात है व उसकी सभी मानसिक योग्यताओं का योग है, अर्थात् बुद्धि कोई एक शक्ति व क्षमता नहीं बल्कि

विभिन्न योग्यताओं का योग है। यह वह तत्त्व है जो सभी मानसिक योग्यताओं में सम्मिलित रहता है। बुद्धि के वास्तविक अर्थ के सम्बन्ध में वेश्लर (Wechsler, 1958) ने कहा है, "उद्देश्यपूर्ण कार्य करने की, तर्कपूर्ण सोचने की, वातावरण का प्रभावशाली ढंग से सामना करने की पूर्ण क्षमता ही बुद्धि है।"

"Intelligence is the global capacity of the individual to act purposefully, to think rationally and to deal effectively with the environment."

बुद्धि की विशेषताएं :-

बुद्धि वह योग्यता है, जिसके द्वारा व्यक्ति स्वयं को समझ दूसरों को समझता है। बुद्धि व्यक्ति को अपने वातावरण से सामंजस्य स्थापित करने में सहायक होती है। बुद्धि की अनेक विशेषताएं हैं, जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं-

1. बुद्धि एक जन्मजात क्षमता है।
2. बुद्धि सीखने की क्षमता है।
3. बुद्धि भौतिक व सामाजिक वातावरण से सामंजस्य की क्षमता है।
4. बुद्धि अमूर्त चिन्तन की क्षमता है।
5. बुद्धि समस्या को हल करने की क्षमता है।
6. बुद्धि उद्देश्य प्राप्ति हेतु उचित व्यवहार उन्मुख करने की योग्यता है।

बुद्धि के सिद्धान्त :-

मनोवैज्ञानिकों ने बुद्धि को समझने के लिए अनेकों प्रयास किये हैं। बुद्धि क्या है? बुद्धि किन तत्त्वों से निर्मित है? यह किस प्रकार कार्य करती है? ये प्रश्न हमेशा से मनोवैज्ञानिकों को परेशान करते रहे हैं व अभी भी कर रहे हैं। बुद्धि को समझने के प्रयासों से ही मनोवैज्ञानिकों ने अनेकों सिद्धान्त दिये, जो उसके स्वरूप पर प्रकाश डालने का प्रयास करते हैं। ये सिद्धान्त इस प्रकार से हैं-

(1) एक खण्ड का सिद्धान्त (Uni factor Theory)

(2) द्विखण्ड का सिद्धान्त (Two factor Theory) अथवा स्पीयरमैन सिद्धान्त

(3) बहुखण्ड का सिद्धान्त (Multi factor Theory)

(4) गिलफर्ड बुद्धि की संरचना (Guilford's Structure of Intellect)

(1) एक खण्ड का सिद्धान्त (Uni factor Theory) : इस सिद्धान्त के प्रतिपादक बिने (Binet), टर्मन (Terman) व स्टर्न (Stern) माने गये हैं। इनके अनुसार बुद्धि एक अखण्ड और अविभाज्य इकाई है। ये सभी मानसिक योग्यताएं एक इकाई अथवा खण्ड के रूप में कार्य करती हैं। मानसिक, सामाजिक, शारीरिक व भावनात्मक-प्रत्येक व्यवहार के लिए बुद्धि एक इकाई के रूप में कार्य करती है। यह बहुत प्राचीन सिद्धान्त है, जो पूर्ण रूप से असत्य सिद्ध हो गया है। यह सिद्धान्त बुद्धि को पूरी तरह से समझा पाने में असमर्थ है, क्योंकि इस सिद्धान्त को सत्य मानने का तात्पर्य है कि एक क्षेत्र में सफल होने वाला व्यक्ति अन्य क्षेत्र में भी उतना ही सफल होगा, जबकि ऐसा नहीं होता।

(2) द्विखण्ड का सिद्धान्त (Two factor Theory) अथवा स्पीयरमैन सिद्धान्त : चार्ल्स स्पीयरमैन (1863-1945) ने 1904 में बुद्धि के द्विकारक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया, जो कि बिने के सिद्धान्त के विरुद्ध था। इनका कहना था कि प्रत्येक मानसिक क्रिया के लिए दो प्रकार की योग्यताओं की आवश्यकता होती है- 1. सामान्य योग्यता (G) 2. विशिष्ट योग्यता (S)। इस प्रकार सामान्य योग्यता तो एक है, परन्तु विशिष्ट योग्यता उतनी ही है, जितने प्रकार के कार्य हैं। उदाहरण के लिए, वाचन योग्यता व गणित योग्यता से सम्बंधित विशिष्ट योग्यताएं अलग-अलग होंगी, दोनों विशिष्ट योग्यताएं एक-दूसरे से स्वतन्त्र होती हैं। इस प्रकार वाचन योग्यता परीक्षण विशिष्ट वाचन योग्यता (S_1) पर निर्भर होगा, वहीं गणित परीक्षण विशिष्ट गणित योग्यता (S_2) पर निर्भर होगा। इस प्रकार दोनों परीक्षण एक सामान्य योग्यता G पर निर्भर करेंगे, जो कि दोनों परीक्षणों के लिए समान होगा तथा दो अलग-अलग विशिष्ट योग्यता पर निर्भर करेंगे। इसी कारण दोनों परीक्षणों में धनात्मक सह-सम्बन्ध पाया जाता है।

सामान्य योग्यता अथवा सामान्य बुद्धि एक व्यक्ति के सम्बन्ध में तो समान होती है, वहीं अन्य व्यक्तियों में विभिन्न होती है। यह प्रत्येक क्रिया में प्रयुक्त होती है, जैसे बौद्धिक, शारीरिक, सामाजिक व अमूर्त इत्यादि, वहीं विशिष्ट योग्यता विभिन्न क्रियाओं के आधार पर भिन्न होती है। उदाहरण के लिए, संगीत के लिए संगीत सम्बन्धी योग्यता आवश्यक है, वहीं गणित के लिए गणित सम्बन्धी विशिष्ट योग्यता आवश्यक होती है। प्रत्येक व्यक्ति में विशिष्ट योग्यताओं में अन्तर होता है, अर्थात् एक व्यक्ति में संगीत से सम्बन्धित 'S' अधिक हो सकता है, वहीं दूसरे व्यक्ति में गणित से सम्बन्धित 'S' अधिक हो सकता है।

इस प्रकार सामान्य योग्यता सभी व्यक्तियों में कम अथवा अधिक मात्रा में हो सकती है, जो कि जन्मजात होती है व सब कार्यों को करने में प्रयुक्त होती

है। यह जितनी अधिक होती है, उतना ही व्यक्ति अपने जीवन में सफल होता है। विशिष्ट योग्यताएं (S) विभिन्न व्यक्तियों में विभिन्न और अलग-अलग मात्रा में होती हैं। ये अनेक होती हैं व एक-दूसरे से स्वतन्त्र होती हैं। व्यक्ति जिस कार्य से सम्बन्धित विशिष्ट योग्यता रखता है, उतना ही वह उस कार्य में कुशल होता है। स्पीयरमैन ने इस सिद्धान्त को स्वीकार नहीं किया व अपने इस सिद्धान्त में बाद में स्वयं ही परिवर्तन किया।

(3) बहुखण्ड का सिद्धान्त (Multi factor Theory) : थर्स्टन (1887-1955) ने बुद्धि को फैक्टर विश्लेषण के आधार पर प्राथमिक मानसिक योग्यताओं के समूह के आधार पर स्पष्ट किया। थर्स्टन ने बुद्धि के सामान्य 'G' व विशिष्ट कारक 'S' को पूरी तरह से अस्वीकार किया। किसी भी बौद्धिक क्रिया के लिए न तो मात्र सामान्य कारक 'G' उत्तरदायी है और न ही विशिष्ट कारक 'S', बल्कि इसके लिए अनेकों मानसिक योग्यताएं उत्तरदायी होती हैं, जो कि एक समूह (Group) के आधार पर समझी जा सकती हैं, यह विभिन्न विषयों के लिए विभिन्न समूह (Group) हो सकते हैं। प्रत्येक समूह का अपना एक प्राथमिक कारक होता है। थर्स्टन ने सात प्राथमिक मानसिक योग्यताओं का वर्णन किया है। जो ये हैं-

1. शाब्दिक (Verbal) - विचारों को प्रभावशाली ढंग से शाब्दिक आधार पर समझने की योग्यता।
2. सांख्यकी (Number)
3. स्थान सम्बन्धी (Spatial)
4. प्रत्ययीकरण (Perceptual)
5. स्मृति योग्यता (Memory)
6. तार्किक योग्यता (Reasoning)
7. शव्द प्रवाह योग्यता (Word Fluency)

Kelly ने भी बहुखण्डीय सिद्धान्त दिया है। इन्होंने बुद्धि का अपनी पुस्तक Cross Words in the Mind of Man में बुद्धि को 9 खण्डों से मिलकर बना बताया है। ये खण्ड इस प्रकार हैं-

1. स्मृति
2. प्रत्यक्षीकरण की योग्यता
3. सांख्यकी योग्यता

4. शाब्दिक योग्यता

5. तार्किक योग्यता

6. निगमनात्मक योग्यता

7. आगमनात्मक योग्यता

8. स्थान सम्बन्धी योग्यता

9. समस्या समाधान सम्बन्धी योग्यता

बुद्धि की बहुखण्डीय सिद्धान्त की बहुत अधिक आलोचना हुई है। मनोवैज्ञानिकों का तर्क है कि बुद्धि का विभिन्न प्रकार की योग्यताओं में विभाजन अनुचित है।

(4) गिलफर्ड बुद्धि की संरचना (Guilford's Structure of Intellect) : 1966 में गिलफर्ड ने अपने साथियों के साथ बुद्धि का त्रिआयामी सिद्धान्त प्रतिपदित किया। गिलफर्ड ने अनुसार बौद्धिक क्रियाओं के 3 आयाम होते हैं- प्रक्रिया (Operations), विषय सामग्री (Content) व उत्पादक (Products) । इसी आधार पर उन्होंने 1956 से इस दिशा में प्रयोग प्रारम्भ कर दिये व 1966 में यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया। Operations वह प्रक्रिया है जिसके मुख्य तत्त्व होते हैं- बौद्धिक व्यवहार, ज्ञानात्मक अभिवृत्ति, Convergent स्मृति, चिन्तन, सृजनात्मक चिन्तन। विषय सामग्री हो सकती है- स्वर, व्यंजन, संख्या, शब्द अथवा व्यवहार, अन्य व्यक्तियों के प्रति व्यवहार, अभिवृत्ति व आवश्यकता आदि। इसी प्रकार उत्पादक भी कई प्रकार के हो सकते हैं- इकाई, कक्षा, सम्बन्ध, सिस्टम, ट्रांसफॉरमेशन, इम्प्लीकेशन्स। इस प्रकार मॉडल में 120 cell होते हैं, जो इस प्रकार हैं- (5 operations) x 4 विषय सामग्री (Content) x 6 उत्पादक (Products)। ये प्रत्येक स्वतन्त्र कारक हैं, जो कि अलग परीक्षण से मापे जाते हैं।

बुद्धि परीक्षण - अर्थ एवं इतिहास :-

व्यक्ति के सभी व्यवहार-भौतिक, मानसिक व अमूर्त आदि-बुद्धि के आधार पर ही होते हैं। यही कारण है कि कोई भी एक परीक्षण बुद्धि का मापन नहीं कर सकता। कितनी कठिनाई का परीक्षण व्यक्ति कितनी आसानी से कर सकता है, इसके आधार पर व्यक्ति की बुद्धि का परीक्षण होता है। जिस प्रकार से बुद्धि को लेकर विद्वानों में मतभेद हैं, उसी आधार पर यह मतभेद मापन में भी है। आधुनिक शिक्षा मनोविज्ञान की सबसे महत्वपूर्ण देन यदि बुद्धि का मापन के लिए दी गयी बुद्धि परीक्षाएं हैं, तो आज के समय में परीक्षण ही सबसे अधिक आलोचना

का केन्द्र बने हैं। बुद्धि मापन का अर्थ है कि व्यक्ति की मानसिक योग्यता का माप करना या यह ज्ञात करना कि व्यक्ति में कौन-कौन-सी मानसिक योग्यताएं होती हैं।

बिने (Binet) ने सबसे पहला बुद्धि परीक्षण 1905 में बनाया, जो कि 'बिने साइमन स्केल' के नाम से जाना जाता है। यह एक व्यक्तिगत परीक्षण था, जिसका उद्देश्य बच्चों के बुद्धि-स्तर का पता लगाना, विशेष रूप से कम बुद्धि वाले बच्चों का पता लगाना था, जो कि पेरिस में सामान्य विद्यालय से लाभान्वित नहीं हो पा रहे थे। इस परीक्षण में 30 प्रश्न थे, जोकि कठिनाई के स्तर के आधार पर सरल से कठिन के क्रम में थे। इस परीक्षण के आधार पर बच्चों को सारणीबद्ध किया गया- बहुत बुद्धिमान, औसत तथा कम बुद्धिमान इत्यादि। 1908 में साइमन बिने ने अपना दूसरा परिमार्जित परीक्षण दिया, जिसमें प्रथम परीक्षण की कमियों को दूर कर पर्याप्त सुधार किये गये थे। बुद्धि के शक्ति व गति दो महत्वपूर्ण कारक हैं, उसी के आधार पर बुद्धि परीक्षण शक्ति अथवा गति मापन दो प्रकार के हो सकते हैं। किस कठिन स्तर का प्रश्न व्यक्ति हल कर पाता है, जो शक्ति से सम्बन्धित है, वहीं कितनी शीघ्रता से व्यक्ति प्रश्नों का उत्तर देता है, 'गति परीक्षण' कहलाता है।

बुद्धि परीक्षण की आवश्यकता :

विद्यालय में शिक्षा प्राप्त करने आये विद्यार्थियों की योग्यताओं व क्षमताओं में स्वाभाविक अन्तर होता है। इस अन्तर के कारण ही सभी बच्चे समान रूप से प्रगति नहीं कर पाते। परिणामस्वरूप शिक्षक के समक्ष एक जटिल समस्या उपस्थित हो जाती है, विशेष रूप से यदि बच्चा सामान्य शिक्षण से लाभ नहीं उठा पा रहा है। इस प्रकार बुद्धि परीक्षण के आधार पर विद्यार्थियों में पाये जाने वाले अन्तर को जानकर शिक्षक उनके बौद्धिक स्तर को ध्यान में रखकर शिक्षण कर सकता है। बुद्धि परीक्षण द्वारा भी मानसिक विकलांगता व उसके स्तर का ज्ञान प्राप्त हो सकता है, जिसके आधार पर विद्यार्थी की विशेष आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु शिक्षण किया जाता है।

बुद्धि परीक्षण के प्रकार :

बुद्धि परीक्षण मुख्य रूप से दो प्रकार के होते हैं-

1. व्यक्तिगत
2. सामूहिक

व्यक्तिगत परीक्षण में एक समय में एक व्यक्ति का परीक्षण किया जाता है। इसका आरम्भ बिने ने किया। सामूहिक परीक्षण में अनेक व्यक्ति एक समय में परीक्षण दे सकते हैं। इसका आरम्भ प्रथम विश्व युद्ध (1914 -18) के समय अमेरिका में हुआ, जब सरकार बुद्धि के अनुसार सैनिकों, अफसरों व अन्य कर्मचारियों की भर्ती करना चाहती थी।

ये परीक्षण दो प्रकार के हो सकते हैं:

1. शाब्दिक अथवा भाषात्मक परीक्षण (Verbal or Language Test)- इस परीक्षण में भाषा का प्रयोग किया जाता है, जिसके द्वारा अमूर्त बुद्धि की परीक्षा की जाती है। इस परीक्षण में अनेक पक्ष होते हैं, जिसके सामने अनेक सम्भावित उत्तर दिये गये होते हैं। विद्यार्थी को सही अथवा गलत के निशान लगा कर उत्तर देना होता है अथवा खाली स्थान पर सम्भावित उत्तर लिखना होता है। यह परीक्षण विद्यार्थी के लिखने-पढ़ने के ज्ञान की जांच भी करता है।

2. अशाब्दिक अथवा क्रियात्मक परीक्षण (Non-Verbal or Performance Test)- भाषा का ज्ञान न रखने वाले व्यक्तियों के लिए क्रियात्मक परीक्षण का प्रयोग किया जाता है। इसके द्वारा मूर्त बुद्धि का भी परीक्षण किया जाता है। इस परीक्षण में वास्तविक वस्तुओं का प्रयोग किया जाता है व परीक्षार्थियों को कोई समस्यापूर्ण कार्य करने के लिए कहा जाता है, जैसे चित्र के विभिन्न टुकड़ों को क्रम में जोड़कर चित्र को पूरा करना, चित्र की असम्भव बातों को बताना, विभिन्न आकृतियों के टुकड़ों को आकृति में लगाकर पूरा करना, भूलभूलैया से बाहर निकलने का मार्ग बताना इत्यादि।

दृष्टिहीनों के लिए उपलब्ध बुद्धि परीक्षण :

दृष्टिहीनों के लिए बुद्धि परीक्षण तभी से उपलब्ध हैं, जब से बुद्धि परीक्षण सामान्य व्यक्तियों हेतु बने व प्रयोग में लाए गये। बिने के 1911 के परीक्षण को दृष्टिहीनों के प्रयोग हेतु इरविन व गोडार्ड ने रूपांतरित किया। 1919 में भी हैंस ने दृष्टिहीनों हेतु अंक मापने का निर्माण किया। एस.पी. हेज ने स्टैण्डफोर्ड मापने के शाब्दिक परीक्षण पदों को लेकर बुद्धि परीक्षण बनाया, जिसका प्रयोग दृष्टिहीनों की बुद्धिलब्धि परीक्षण के लिए किया गया। इसमें 1943 तक लगातार सुधार किये जाते रहे।

डेविड वैश्लर द्वारा निर्मित परीक्षण का भी दृष्टिहीनों हेतु बुद्धि परीक्षण के लिए प्रयोग किया गया। परकिन्स बिने परीक्षण व हैप्टिक बुद्धि परीक्षण का दृष्टिहीनों हेतु बुद्धि परीक्षण के लिए व्यापक रूप से प्रयोग किया गया। डेविड वैश्लर का WAIS-R (1981) मौखिक शाब्दिक (Verbal) व क्रियात्मक (Performance) मापनी से मिलकर बना है, जहाँ क्रियात्मक मापनी के लिए दृष्टि का होना आवश्यक है। अत: दृष्टिहीन व्यक्तियों के बुद्धि परीक्षण के लिए केवल मौखिक परीक्षण का ही प्रयोग किया जाता है। इसके 6 भाग हैं:

1. सूचना (Information)
2. अंक फैलाव (Digit Span)
3. शब्द ज्ञान (Vocabulary)
4. अंक गणित (Arithmetic)
5. बोध (Comprehension)
6. समानताएं (Similarities)

Wais के अनुसार अधिपरीक्षण (Sub Test) में 29, अंक फैलाव व अंक गणित में 14, शब्द ज्ञान में 35, बोध व समानताओं में 16-16 प्रश्न या पद हैं। यह परीक्षण 300 दृष्टिहीनों (उम्र 25-34 वर्ष) पर प्रयोग कर बनाया गया है। इसकी विश्वसनीयता .79 से .93 तक मापी गयी। इस परीक्षण की वैधता भी काफी सन्तोषजनक मानी जाती है।

डेविड वेश्लर ने साढ़े छ: वर्ष से साढ़े सोलह वर्ष के बच्चों के लिए भी बुद्धि परीक्षण बनाया, जिसे विस्क (WISC- Wechsler Intelligence Scale for Children) कहते हैं। इस परीक्षण के 10 अधिपरीक्षण हैं। 5 अधिपरीक्षण मौखिक व 5 क्रियात्मक हैं। केवल मौखिक अधिपरीक्षण ही दृष्टिहीन विद्यार्थियों के साथ प्रयोग में लाये जाते हैं। इस परीक्षण को पूरा करने में 50 से 75 मिनट तक लगते हैं। इस अधिपरीक्षण का विवरण इस प्रकार है:

1. सूचना (Information) – 30 प्रश्न
2. समानताएं (Similarities) – 17 प्रश्न
3. अंक गणित (Arithmetic) – 32 प्रश्न

4. शब्द ज्ञान (Vocabulary) - 32 प्रश्न

5. बोध (Comprehension) - 17 प्रश्न

6. अंक फैलाव (Digit Span) - 14 प्रश्न

इस परीक्षण को प्रत्येक आयु स्तर पर 200 दृष्टिहीन (100 बालक व 100 बालिकाएं) व कुल 2200 दृष्टिहीन विद्यार्थियों पर मानकीकरण किया गया। 303 दृष्टिहीन विद्यार्थियों पर विश्वसनीयता स्थापित की गयी, जो .67 से .92 तक पाई गयी।

भारत में विथोबा-पकनीकर क्रियात्मक परीक्षण का प्रयोग दृष्टिहीनों के बुद्धि परीक्षण हेतु किया जाता है। यद्यपि इस परीक्षण के मनोवैज्ञानिक गुण सन्तोषजनक नहीं हैं।

राष्ट्रीय दृष्टिबाधितार्थ संस्थान (NIVH) द्वारा इस दिशा में सराहनीय कार्य किया गया। 1986 में वेस (WAIS-Wechsler Adult Intelligence Scale) का हिन्दी अनुकूलन व रूपांतरण किया गया। इस परीक्षण में 5 अधिपरीक्षण हैं, जिनका विवरण इस प्रकार है:

1. सूचना (Information) - 33 प्रश्न

2. अंक फैलाव (Digit Span) - 28 प्रश्न

3. समानताएं (Similarities) - 12 प्रश्न

4. अंक गणित (Arithmetic) - 15 प्रश्न

5. बोध (Comprehension) - 18 प्रश्न

1986 में 364 दृष्टिहीन बच्चों पर इस परीक्षण का प्रयोग किया गया। इस परीक्षण की विश्वसनीयता .81 से .94 मापी गयी। इस संस्थान द्वारा WISC (Wechsler Intelligence Scale for Children) का हिन्दी रूपांतरण व अनुकूलन दृष्टिहीन विद्यार्थियों के बुद्धि परीक्षण हेतु किया जा रहा है। भारत में इस क्षेत्र में अभी भी प्रयास जारी हैं।

इस प्रकार संक्षेप में कहा जा सकता है कि बुद्धि को समझ पाना कठिन है। यह एक मनोवैज्ञानिक रचनाकृत (Construct) है। इसकी जितनी आलोचना हुई है, जितने मतभेद हैं, उतने शायद ही किसी मनोवैज्ञानिक प्रत्यय के संदर्भ में

हों, तथापि इसको जानने के लिए मनोवैज्ञानिक व शिक्षाविद् निरन्तर प्रयासरत हैं। दृष्टिबाधितों के लिए बुद्धि परीक्षण विशेष रूप से नहीं बनाये गये हैं। उपलब्ध बुद्धि परीक्षणों के मौखिक शाब्दिक भाग को ही दृष्टिबाधितों के साथ प्रयोग कर उनकी बुद्धिलब्धि आंकी जाती है, जो कि पूर्णत: अनुचित है। क्रियात्मक परीक्षण (Performance Test) भी दृष्टिहीन विद्यार्थियों के लिए प्रयोग में लाये जाने चाहिएं, तभी उनकी **बुद्धिलब्धि** का सही मापन हो सकेगा।

अध्याय-18

व्यक्तित्व एवं दृष्टिहीनता

-डॉ. एस.आर. मित्तल

मानव का सामाजिक एवं संवेगात्मक समायोजन उसके व्यक्तित्व पर निर्भर करता है। व्यक्तित्व की विशेषताएं ही मानव का वातावरण के साथ उद्देश्यपूर्ण समायोजन निर्धारित करती हैं। इस अध्याय में व्यक्तित्व का अर्थ एवं परिभाषा, व्यक्तित्व विकास के विभिन्न सिद्धान्त, व्यक्तित्व की विशेषताएं तथा व्यक्तित्व पर दृष्टिहीनता के प्रभावों से सम्बद्ध अनुसंधानों की संक्षिप्त विवेचना प्रस्तुत की गई है।

अर्थ एवं परिभाषा:

व्यक्तित्व का अभिप्राय सामान्यत: व्यक्ति की शारीरिक संरचना तथा व्यवहार से लगाया जाता है। साधारणत: व्यक्ति में केवल इन दो ही गुणों का समावेश माना जाता है, परन्तु वास्तव में आज तक व्यक्ति को किसी निश्चित अर्थ से सम्बद्ध नहीं किया जा सका है और न ही किसी निश्चित सीमा में बांधा जा सका है।

व्यक्तित्व में एक मनुष्य के शारीरिक और मानसिक गुणों के साथ-साथ सामाजिक गुणों का भी समावेश होता है, किन्तु अब भी व्यक्तित्व का अर्थ पूर्ण नहीं होता, क्योंकि इन तीन गुणों में व्यक्तित्व को बांधना तभी सम्भव है, जब एक समाज के सभी मनुष्यों की संरचना, विचार, संवेग, सामाजिक क्रियाएं आदि सब समान हों, परन्तु यह सम्भव नहीं है। स्कीनर (1974) ने कहा है, "Personality is complex its differences among individuals are wide." इसलिए यह स्वीकार किया जाता है कि व्यक्तित्व जटिल, विचित्र तथा ऐसा शब्द है, जिसकी निश्चित व्याख्या नहीं की जा सकती। इन सीमाओं के होते हुए भी व्यक्तित्व की अनेक परिभाषाएं उपलब्ध हैं। साधारण मनुष्य तो व्यक्ति तथा व्यक्तित्व शब्द में भेद ही नहीं जानता तथा अधिकांशत: वह व्यक्तित्व का प्रयोग किसी व्यक्ति की शारीरिक संरचना, सौंदर्य व व्यवहार के लिए ही करता है, अर्थात् वह व्यक्तित्व में केवल दो-तीन गुणों का समावेश मानते हैं, परन्तु कुछ विद्वान इसे अनेक गुणों, लक्षणों व विशेषताओं का संग्रह मानते हैं। कुछ विचारक इसे जन्म से प्राप्त होने वाली वस्तु मानते हैं तो कुछ इसे व्यक्ति पर उसके वातावरण के प्रभाव तथा अनुभवों की देन मानते हैं।

व्यक्तित्व शब्द की उत्पत्ति- व्यक्तित्व का अंग्रेजी शब्द पर्सनैलिटी (Personality) है और जैसा कि अंग्रेजी भाषा के अधिकांश शब्दों का जन्म यूनानी (Greek) भाषा से हुआ है, यह भी यूनानी भाषा के शब्द पर्सोना (Persona) का आधुनिक रूपांतरण है। पर्सोना शब्द का यूनानी भाषा में शाब्दिक अर्थ है "नकाब", परन्तु समय के साथ-साथ इस शब्द का अर्थ बदलता चला गया तथा चौदहवीं शताब्दी में व्यक्ति की विशेषताओं को एक शब्द में परिभाषित करने के लिए वह पर्सनैलिटी (Personality) में रूपांतरित हो गया। हिन्दी में यह 'व्यक्ति' शब्द का विस्तार है।

व्यक्तित्व की परिभाषा- व्यक्तित्व किसी व्यक्ति विशेष के सभी गुण, व्यवहार, लक्षण, विशेषताओं आदि का दर्पण है। इस एक शब्द से ही व्यक्ति की समस्त इकाइयों का परिचय हो जाता है। हालांकि आधुनिक मनोवैज्ञानिक व्यक्तित्व को संभावित इकाई न मानकर गतिशील संगठन और एकीकरण की प्रक्रिया मानते हैं, जिसकी पुष्टि निम्न कथन से होती है:

"The concept of personality as a complex but unified process is a contribution of modern empirical psychology." - Thorpe and Schmuller: 'Personality', P. 531.

"Personality is a term used for the integrated and dynamic organisation of the physical, mental, moral and social qualities of the individuals, as the manifests itself of other people, in the give and take of social life."- Drever : 'Dictionary', P. 208; (1948).

इसी की पुष्टि ट्रेवर ने इन शब्दों में की है, "व्यक्तित्व शब्द का प्रयोग व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, नैतिक और सामाजिक गुणों के सुसंगठित और ज्ञानात्मक संगठन के लिए किया जाता है, जिसे वह अन्य व्यक्तियों के साथ अपने सामाजिक जीवन के आदान-प्रदान में व्यक्त करता है।"

आलपोर्ट (Allport) ने व्यक्तित्व को वातावरण से जोड़ते हुए कहा है: "व्यक्तित्व व्यक्ति में उन मनोदैहिक, मनोशारीरिक व्यवस्थाओं का गतिशील संगठन है, जो वातावरण में उसका अपूर्व (अनोखा या अद्वितीय) समायोजन निर्धारित करते हैं।"

"Personality is the dynamic organisation within the individual, of those psychophysical systems that determine his unique adjustments to his environment."- 'Personality'- A Psychological Interpretation (1948).

व्यक्तित्व के गठन में वातावरण की भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वातावरण के साथ समायोजन स्थापित करने के क्रम में व्यक्ति का व्यवहार, मनोवृत्ति तथा चिन्तन विधि सभी कुछ प्रभावित होता है। वातावरण में नित्य नई परिस्थितियाँ सामाजिक, आर्थिक तथा नैतिक कारणों के फलस्वरूप उपस्थित होती रहती हैं। प्रत्येक व्यक्ति की अपनी अलग परिस्थितियाँ होती हैं, जिनमें समायोजन के लिए हर व्यक्ति अपनी क्षमताओं के अनुसार प्रयास करता है। कोई सफल हो पाता है, कोई असफल और निरन्तर असफलताओं से व्यक्तित्व का विघटन भी हो जाता है। इस कारण व्यक्तित्व का विकासं और उसका निर्माण वातावरण के साथ जुड़ा होता है। (शिक्षा मनोविज्ञान, राम शकल पाण्डेय) (1998).

सिद्धान्त-प्रकार, विशेषता तथा मनोविश्लेषण:

अनेक मनोवैज्ञानिकों ने अपने ढंग से व्यक्तित्व के प्रकारों की व्याख्या की है। क्रेशमर (Krtchmer) इसे मिलनसार, एकान्तप्रिय, चुस्त, मिश्रित, सहनशील, परिपक्व, कुटिल, लड़ाकू आदि की संज्ञा देते हैं, तो स्प्रेंगर इसकी वैचारिक, आर्थिक, सामाजिक व धार्मिक गुणों में भेद के आधार पर व्याख्या करते हैं। व्यक्तित्व का वर्गीकरण सामान्यत: तीन प्रकार से माना गया है:

1. **शरीर रचना प्रकार**– इस प्रकार के व्यक्तित्व धारक शक्तिहीन, खिलाड़ी व नाटे (छोटे कद-काठी वाले) होते हैं।

2. **समाजशास्त्रीय प्रकार**– स्प्रेंगर (Sprenger) ने सामाजिक आधार पर विशेषत: कार्यों और स्थिति के आधार पर व्यक्तित्व के छ: प्रकार बताए हैं-

(1) सैद्धान्तिक

(2) आर्थिक

(3) सामाजिक

(4) राजनीतिक

(5) धार्मिक

(6) कलात्मक

3. **मनोवैज्ञानिक प्रकार**– व्यक्तित्व के प्रकारों में मनोवैज्ञानिक प्रकार को ही महत्त्वपूर्ण माना जाता है। जुंग (Jung) द्वारा दिया गया व्यक्तित्व का मनोवैज्ञानिक वर्गीकरण प्राय: सर्वमान्य है। इन्होंने वर्गीकरण के लिए मनोवैज्ञानिक लक्षणों को आधार बनाया है। इनके अनुसार व्यक्तित्व तीन प्रकार का होता है-

1. अन्तर्मुखी (Introvert)

2. बहिर्मुखी (Extrovert)

3. उभयमुखी (Ambivert)

1. **अन्तर्मुखी-** अन्तर्मुखी व्यक्तित्व वाले व्यक्ति के लक्षण, स्वभाव, अभिवृत्तियाँ, आदतें व अन्य विशेषताएँ बाह्य रूप में प्रकट नहीं होते। इन व्यक्तियों का सारा ध्यान अपने अन्तर्मन की ओर लगा रहता है, वे स्वयं के विषय में नहीं सोचते हैं तथा दूसरों से बहुत ही कम बोलते हैं। बाह्य जगत् व सामाजिक कार्यों में बहुत कम रुचि दर्शाते हैं। किसी विषय पर चर्चा हो तो स्वयं को उस स्थिति से दूर कर लेते हैं। दूसरों के समक्ष बात करने में हिचकिचाते हैं। पुस्तकों को पढ़ने में रुचि दिखाते हैं। अन्तर्मुखी व्यक्ति में कार्यक्षमता बहिर्मुखी व्यक्ति से अधिक होती है। वह किसी भी कार्य को लगन से करते हैं और अपने पथ पर अग्रसर होते हैं। इस व्यक्तित्व के मनुष्य दार्शनिक और विचारक भी होते हैं, उदाहरणार्थ शैली, बर्टेंड रसैल, जयशंकर प्रसाद, रामचन्द्र शुक्ल आदि।

2. **बहिर्मुखी-**इस प्रकार के व्यक्तित्व वाले व्यक्तियों की यह विशेषता होती है कि वे अपनी भाषण कला में निपुण होते हैं। किसी से भी बात करते हुए नहीं हिचकते व अपनी इसी कला द्वारा दूसरों से जल्दी ही घुल-मिल जाते हैं व दूसरों को अपना बना लेते हैं। सामाजिक रूप से अधिक सक्रियता दर्शाते हैं। खेलकूद में रुचि रखने के साथ ही दूसरों के लिए कुछ भी कर गुजरने से परहेज नहीं करते, यहाँ तक कि अपना धन भी दूसरों के लिए उपयोग कर देते हैं। अनुकूल परिस्थितियों के साथ-साथ विपरीत परिस्थितियों में भी गजब का आत्मविश्वास जगाते हैं। बाह्य क्रियाओं में अत्यधिक समायोजन करते हैं। इस व्यक्तित्व के मनुष्य अधिकांशतः सामाजिक, राजनैतिक या नेता होते हैं। इस प्रकार के व्यक्तियों में सिकन्दर, नेहरू, नेपोलियन, हिटलर व इंदिरा गांधी का उदाहरण लिया जा सकता है।

3. **उभयमुखी-** इस प्रकार के व्यक्तित्व वाले व्यक्तियों में उपरोक्त दोनों ही विशेषताओं का समावेश रहता है। कुछ परिस्थितियों में वे अन्तर्मुखी व कुछ परिस्थितियों में बहिर्मुखी होने का भाव रखते हैं, जैसे एकान्त में कार्य करने वाला व्यक्ति अच्छा बोल व लिख भी सकता है।

जुंग (Jung); (1948) ने अपने सिद्धान्त में अन्तुर्मुखी व बहिर्मुखी को चार-चार खण्डों में विभाजित किया है, जिससे इन दोनों को और अधिक समझने में सहायता मिल सकती है-

(1) विचार प्रधान

(2) भाव प्रधान

(3) तर्कबुद्धि प्रधान

(4) दिव्यदृष्टि प्रधान वाले व्यक्तित्व

व्यक्तित्व के प्रकारों के अनेक वर्गीकरणों को क्रो व क्रो द्वारा इन शब्दों में बांधा गया है, "इस प्रकार के वर्गीकरणों की एक सामान्य आलोचना यह है कि ये विकास के किसी न किसी पहलू पर बल देते हैं और सामान्य मानव स्वभाव की अपेक्षा उसके उग्र रूपों की व्याख्या करते हैं।"

"A general criticism of such classifications is that they tend to place emphasis upon one or another phase of development and to deal with extremes rather than with the mediocrity of human nature."-Crow and Crow; (1948).

विशेषता-(Traits)/लक्षण/गुण: गैरिट ने विशेषता को कुछ इस प्रकार परिभाषित किया है,"व्यक्तित्व के गुण (Traits) व्यवहार के बहुसंख्यक स्वरूप का वर्णन करने की स्पष्ट विधियाँ हैं" या "व्यक्तित्व के गुण व्यवहार करने की निश्चित विधियाँ हैं, जो प्रत्येक व्यक्ति में वहुत-कुछ स्थायी होती हैं। व्यक्तित्व के गुण व्यवहार के बहुसंख्यक स्वरूपों का वर्णन करने की स्पष्ट और संक्षिप्त विधियाँ हैं।"

"Personality traits are distinct ways of behaving, more or less permanent for a given individual. Personality traits are needs and succincts ways of describing the multifold aspects of behaviour-Garrett; (1941); (P.500).

हम अक्सर यह बात करते हैं कि अमुक व्यक्ति दयालु, ईर्ष्यालु, बुद्धिमान, मंदबुद्धि, मुर्ख है। ये ही व्यक्तित्व के गुण या लक्षण कहलाते हैं। इनकी निश्चित संख्या को आंका जाना भी सम्भव नहीं। विद्वानों ने गुणों को निम्न प्रकारों में विभाजित किया है-

(1) नैतिक और अनैतिक

(2) वास्तविक और प्रन्यक्ष

(3) बाह्य और आन्तरिक

(4) शारीरिक, मानसिक, धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, व्यावसायिक, आर्थिक आदि।

आर.बी. कैटल (R.B. Cattell); (1946) ने व्यक्तित्व की गुण/विशेपता बताते हुए उन्हें निम्न बारह खण्डों में वर्गीकृत किया है-

1. **चक्रविक्षिप्त (Cyclothymia)**- इस गुण वाले व्यक्ति अपने विचारों को स्पष्ट रूप से व्यक्त करने की क्षमता वाले, स्पष्ट व भावुक प्रवृत्ति के होते हैं।

2. **सामान्य मानसिक शक्ति**- सामान्य वुद्धि का व्यक्ति होता है।

3. **प्रशासक**- इस प्रकार की विशेषता वाले व्यक्तियों में चिड़चिड़ापन व झगड़ा करने की प्रवृत्ति के साथ आत्मविश्वासी होना भी पाया जाता है।

4. **प्रसन्नमुख**- इस गुण से सुशोभित व्यक्ति सदैव प्रसन्न, आत्मविश्वासी, हर प्रकार के माहौल में स्वयं को प्रसन्न रखने वाले होते हैं।

5. **धनात्मक चरित्र**- ऐसे व्यक्ति दूसरों की बातों पर विशेष रूप से आकर्षित रहते हैं।

6. **संवेगात्मक परिपक्वता**- इन व्यक्तियों में स्थिरता होती है। ये संवेगात्मक रूप से परिपक्व होते हैं।

7. **साहसी चक्रविक्षिप्त**- इस विशेषता से युक्त व्यक्ति साहसी व मेलजोल बढ़ाने वाले होते हैं तथा भिन्न लिंग में अक्सर रूचि दर्शाते हैं।

8. **परिपक्व**- ये व्यक्ति परिपक्व, आजाद विचार व स्वयं में परिपूर्ण होते हैं।

9. **सामाजिक-सांस्कृतिक**- ये व्यक्ति सामाजिक-सांस्कृतिक रूप से परिपक्व होते हैं।

10. **विश्वासी**- ये विश्वासी एवं कृतज्ञ होते हैं।

11. **अपारम्परिक**- ये व्यक्ति समय के साथ विद्रोह करते हैं।

12. **विनीत**- ये व्यक्ति तर्कपूर्ण, शान्त व एकान्त प्रिय होते हैं। वुडवर्थ; (1965) ने भी कैटल की तरह निम्न बारह प्रधान गुणों को मान्यता दी है-

1. प्रसन्नचित, मिलनसार।

2. बुद्धिमान, विश्वसनीय।

3. संवेगात्मक, स्थिर, यथार्थवादी।

4. अधिकारप्रिय, आत्मगौरवशील।

5. शान्त, सामाजिक।

6. भावुक, कोमल हृदय।

7. शिष्ट, सौंदर्य प्रेमी।

8. उत्तरदायी, परिश्रमी।

9. साहसी, चिंतारहित।

10. तेज, शीघ्रता से कार्य करने वाला।

11. अत्यधिक उत्तेजित होने वाला, चिड़चिड़ा।

12. मैत्रीपूर्ण, विश्वास करने वाला।

प्रधान गुणों के विपरीत गुण भी निश्चित किये गये हैं-

1. उदासीन, झेंपू।

2. मूर्ख, ओछा।

3. असंवेगात्मक, अस्थिरता, पलायनवादी।

4. आज्ञाकारी, आत्मगौरवहीन।

5. उद्विग्न, एकान्तप्रिय।

6. भावनाशून्य, कठोर हृदय।

7. अशिष्ट, असत्य।

8. गैरजिम्मेदार, पर-निर्भर।

9. उत्साहहीन, सतर्क।

10. सुस्त, ढुलमुल।

11. आसानी से उत्तेजित न होने वाला, सहनशील।

12. संदेहशील, शत्रुतापूर्ण।

लगभग सभी विचारकों ने गुणों को उक्त प्रकार से भिन्न-भिन्न शब्दावलियों का प्रयोग कर वर्गीकृत किया है। गार्डनर व मर्फी (1947) के शब्दों में, "व्यक्तित्व के गुण हमें दूसरों को और अपने को समझने की एवं यह भविष्यवाणी करने की क्षमता प्रदान करते हैं कि हममें से प्रत्येक क्या कार्य करेगा।"

"Personality traits enable us to understand others and ourselves, and predict what each of us will do"- Gardner and Murphy, (1947) (P. 501).

मनोविश्लेषण :

मनोविज्ञान का आविर्भाव चिकित्सा विज्ञान से हुआ है। मनोविश्लेषण के जनक 'सिगमण्ड फ्रायड' हैं। प्रारम्भ में वे चिकित्सा विज्ञान के छात्र थे। फ्रायड ने अपने गुरू ब्रायर के साथ मिलकर यह निष्कर्ष निकाला कि संवेग के प्राकृतिक मार्ग की अवरुद्धता के कारण संवेग कृत्रिम मार्ग से रोग के लक्षणों के रूप में अपना प्रकाशन करता है। इस प्रक्रिया को फ्रायड ने 'परिवर्तन प्रक्रिया' कहा। परिवर्तन प्रक्रिया के मूल प्रभाव के स्थान पर रोग के लक्षणों के रूप में कृत्रिम प्रभाव का आगमन हो जाता है। इन सभी तथ्यों के आधार पर फ्रायड ने यह निष्कर्ष निकाला कि अचेतन मन निष्क्रिय न होकर गतिशील होता है, फायड ने चेतन के साथ-साथ अचेतन मन को बहुत महत्त्वपूर्ण माना है और अचेतन मन को व्यक्तित्व निर्माण का एक प्रमुख कारक स्वीकार किया है, तब से अचेतन मन का महत्त्व बढ़ गया है और व्यक्तित्व के अध्ययन में अचेतन की समीक्षा की जाने लगी है।

हमारे व्यक्तित्व के बीज शैशवावस्था में ही पड़ जाते हैं। वयस्क होने पर शैशवकालीन अनुभव अचेतन मन में चले जाते हैं। अनेक ग्रंथियों के मूल में यही अचेतन है। शिक्षा की प्रक्रिया में अधिगम, स्मृति एवं विस्मृति में अचेतन मन ही सक्रिय रहता है। छात्र का व्यक्तित्व निर्माण अचेतन से ही प्रभावित है। मनोविश्लेषण इस क्षेत्र में हमारी सहायता करता है। छात्र की शैक्षिक उपलब्धि पर उसके मानसिक जगत् का बहुत प्रभाव पड़ता है और इस मानसिक जगत् का बहुत बड़ा भाग अचेतन के रूप में है।

व्यक्तित्व मापन की विधियाँ:

जब हम यह कहते हैं कि किसी व्यक्ति विशेष का व्यक्तित्व अच्छा है या बुरा अथवा किसी खास गुण से परिपूर्ण है, यह उस व्यक्ति के द्वारा किये गये व्यवहार से या उसके बाह्य गुणों को देखकर अनुमानित किया जाता है, परन्तु वास्तव में व्यक्तित्व इतना सीमित क्षेत्र भी नहीं है कि उसको कयासों के द्वारा कहा जा सके। अनेकों नियुक्तियों, जैसे पायलट, अंतरिक्ष यात्री, फौजियों, बैंकों आदि में उम्मीदवारों का चयन करते समय वैज्ञानिक प्रमापीकृत विधियों द्वारा जांचा जाता है कि व्यक्तित्व कैसा है? इसे ही 'व्यक्तित्व मापन' कहा जाता है। व्यक्तित्व मापन की दृष्टि से परीक्षण प्रयोग करके व्यक्तित्व के संतुलित या असंतुलित होने का पता लगाया जाता है।

व्यक्तित्व मापन उन व्यक्तियों या बालकों के लिए और भी आवश्यक है जो असंतुलित होते हैं। कारणों का पता लगाकर उचित दिशा में उपचार करने

से वे पूर्णत: ठीक हो जाते हैं। व्यक्तित्व मापन द्वारा ही यह तथ्य भी उभरकर सामने आया है कि आयु के साथ व्यक्तित्व भी बदलता रहता है।

इस प्रकार यह तो स्पष्ट है कि व्यक्तित्व का मापन आवश्यक है। इसे मापने के लिए व्यक्तित्व परीक्षणों का सहारा लिया जाता है। इन परीक्षणों को प्राय: तीन श्रेणियों में बाँटा जाता है-

1. आत्मनिष्ठ
2. वस्तुनिष्ठ
3. प्रक्षेपी

1. आत्मनिष्ठ या व्यक्तिगत विधियाँ- आत्मनिष्ठ या व्यक्तिगत का अर्थ है, व्यक्ति की स्वयं की जानकारी। इसे व्यक्ति से प्रत्यक्ष रूप से पूछा जाता है या फिर व्यक्ति विशेष की जानकारी उसके मित्रों , सम्बन्धियों से ली जाती है। इस परीक्षण में मुख्यत: चार विधियों का समावेश होता है-

(1) साक्षात्कार विधि
(2) व्यक्तिगत इतिहास
(3) जीवनकथा
(4) अभिज्ञापक प्रश्नावली

(1) साक्षात्कार विधि- वुडवर्थ ने इस विधि की व्याख्या इन शब्दों में की है, "साक्षात्कार संक्षिप्त वार्तालाप द्वारा व्यक्ति को समझने की विधि है।" गैरिट के अनुसार इस विधि के दो स्वरूप हैं- औपचारिक व अनौपचारिक।

औपचारिक विधि में अनेक प्रकार के प्रश्न पूछे जाते हैं। इस विधि को तब लागू किया जाता है, जब बहुत से उम्मीदवारों में से एक या कुछ को किसी पद के लिए चुना जाता है।

अनौपचारिक विधि में साक्षात्कारकर्ता कम-से-कम बोलता है या कम-से-कम प्रश्न पूछता है और व्यक्ति को अधिक-से-अधिक बोलने का अवसर देता है। इसका प्रयोग मुख्यत: समस्याओं, कठिनाइयों आदि को जानकार उनका निदान करने के लिए किया जाता है।

साक्षात्कार विधि दो व्यक्तियों- मनोवैज्ञानिक व विषयी के बीच सम्भव होती है। इसके लिए बहुत ही विश्वास व सौहार्दपूर्ण वातावरण की आवश्यकता होती है। इस विधि में अनुरूप परिणाम मिलने के लिए निम्न बातें आवश्यक हैं-

(1) मनोवैज्ञानिक व विषयी के बीच विश्वास का होना आवश्यक तत्त्व है, क्योंकि यदि परस्पर विश्वास की भावना नहीं है तो विषयी सवालों के जवाब आधे-अधूरे या गलत भी दे सकता है।

(2) मनोवैज्ञानिक प्रशिक्षित होना चाहिए व विषयी के प्रति किसी पूर्वाग्रह से ग्रसित नहीं होना चाहिए।

(3) मनोवैज्ञानिक पूछे गये सभी प्रश्नों के उत्तरों को लिखित रूप में लिखे।

(4) प्रश्न ऐसे पूछे जाने चाहिएं, जिनसे विषयी के व्यक्तित्व को समझने में सहायता मिले।

(5) प्रमापीकृत प्रश्नपत्र से कौन-से प्रश्न पूछने हैं, यह साक्षात्कार आरम्भ होने से पूर्व ही निश्चित कर लेना चाहिए।

(6) अप्रमापीकृत साक्षात्कार में प्रश्न साक्षात्कार के समय ही निश्चित कर लिये जाने चाहिएं।

यह विधि विषयी से सीधे तौर पर बातचीत द्वारा उत्तर ज्ञात करने का अच्छा व सरल साधन है।

(2) व्यक्तिगत इतिहास- यह विधि साक्षात्कार विधि से काफी हद तक मिलती है। इसके अन्तर्गत जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन किया जाता है। व्यक्तित्व का मापन वंशानुगत तत्त्वों का विश्लेषण करके जन्म से सम्बन्धित, जन्म से पूर्व की दशाएं, माता-पिता का व्यवहार, बीमारी या दुर्घटनाओं का इतिहास आदि की जानकारी पर निर्भर करता है।

(3) जीवनकथा विधि- गार्डनर एवं मरफी ने इस विधि को मौखिक विधि की संज्ञा देते हुए लिखा है, "जीवन इतिहास विधि में व्यक्ति का, जैसा कि वह आज है, क्रमबद्ध अध्ययन किया जाता है।" इस विधि के अनुसार व्यक्ति अपने व्यक्तित्व के विषय में कुछ प्रमुख तथ्यों या घटनाओं के बारे में जानकारी देता है जो उसके जीवन में महत्त्वपूर्ण या प्रभावशाली रही हैं। इस प्रकार यह विधि एक व्यक्तिगत इतिहास को दर्शाती है। यह एक ऐसी जीवन कथा है, जिसमें शृंखलाबद्ध तथा क्रमिक ढंग से व्यक्तित्व के विकास का अध्ययन किया जाता है।

इस विधि में मुख्य दोष यह बताया जाता है कि व्यक्ति और उससे सम्बन्धित लोग अनेक बातों, तथ्यों को छिपा लेते हैं, पर कुशल अध्ययनकर्ता विभिन्न स्रोतों

से सूचनाएं एकत्र करके इस कठिनाई पर विजय प्राप्त कर लेता है। थोर्प एवं शमलर ने इस विधि की प्रशंसा करते हुए लिखा है, "जीवन इतिहास विधि के समान बहुत ही कम विधियाँ हैं। सामाजिक कार्यकर्ताओं ने इस विधि का किसी-न-किसी रूप में अनेक वर्षों से प्रयोग किया है।"

उक्त तीनों विधियों के अतिरिक्त अवलोकन विधि भी आत्मनिष्ठ परीक्षण विधि के अन्तर्गत आती है। इसमें परीक्षक विषयी के व्यवहार का निर्धारित परिमापकों (Parameters) के आधार पर अवलोकन करता है तथा अवलोकित तथ्यों के आधार पर विषयी के व्यक्तित्व की व्याख्या करता है। इस विधि का प्रयोग प्रायः समस्याग्रस्त बालकों के अध्ययन में किया जाता है, इस विधि के प्रयोग के लिए यह आवश्यक है कि परीक्षक प्रशिक्षित होने के साथ-साथ निष्पक्ष हो एवं अवलोकन के उद्देश्य पूर्व निर्धारित हों अन्यथा अवलोकन के परिणाम वांछनीय फल प्रदान नहीं कर सकेंगे।

इन विधियों के अतिरिक्त वस्तुनिष्ठ (Objective) व प्रक्षेपी (Projective) विधियों का समुचित विस्तार नहीं दिया गया है। यह विधियाँ भी अत्यन्त उपयोगी हैं, परन्तु यह भी दोषमुक्त नहीं है, क्योंकि इनमें भी विषयी यदि चाहे तो प्रश्नों के उत्तर गलत दे सकता है, जिससे परिणाम पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

अन्ततः यह माना जाता है कि किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व का अध्ययन करने के लिए कम-से-कम दो परीक्षण विधियों का प्रयोग किया जाना चाहिए, जिससे कि अधिकतम सीमा तक विश्वसनीय परिणाम प्राप्त हो सकें।

व्यक्तित्व मापन में दृष्टिहीनता के प्रभावः

दृष्टिबाधित व्यक्ति के व्यक्तित्व मापन के लिए कोई विशेष परीक्षण उपलब्ध नहीं हैं। जिन विशेषज्ञों ने दृष्टिबाधितों के व्यक्तित्व का अध्ययन किया है, उन्होंने प्रायः उन्हीं व्यक्तित्व परीक्षणों का प्रयोग किया है जो कि दृष्टिवान व्यक्तियों के व्यक्तित्व मापन के लिए प्रयुक्त किये जाते हैं। पश्चिम में विशेषतः अमेरिका में कुछ विशेष परीक्षण जैसे Addexent Emotional Factors Inventory (AEHI) व Bumrouter Personality Inventory (BPI) विशेष रूप से दृष्टिबाधितों के लिए बनाए गये हैं, परन्तु यह एक निश्चित आयु वर्ग के बालकों पर ही प्रयोग में लाये जा सकते हैं। वास्तव में अधिकांश कागज-कलम परीक्षण (Paper-Pencil Test) जैसे 16 Personality factors questionnaire, California test of personality, Eyssenck's personality questionnaire, Minisota Counselling Inventory (MCI), Minisota Multi-phasic Personality Inventory

(MMPI) आदि ऐसे परीक्षण हैं, जिन्हें कुछ संशोधनों के उपरान्त प्रभावशाली ढंग से दृष्टिहीनों के व्यक्तित्व मापन के लिए प्रयोग में लाया जा सकता है, परन्तु संशोधन करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि जिन प्रश्नों अथवा कथनों में संशोधन किया जाए वे केवल वही हों, जिनके उत्तर के लिए दृष्टिगत अनुभव हों तथा संशोधित प्रश्न अथवा कथन मूल प्रश्न अथवा कथन के गुण का प्रतिनिधित्व करते हों।

अन्त में व्यक्तित्व मापन पर दृष्टिहीनता के प्रभाव के संदर्भ में वारेन (Warren, 1984) का एक कथन अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है, जिसके अनुसार दृष्टिबाधितों के व्यक्तित्व के अध्ययन में कठिनाई इसलिए आती है, क्योंकि उनके व्यक्तित्व मापन हेतु कोई वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित (सभी आयु वर्ग वाले व्यक्तियों पर लागू होने वाला) मौलिक परीक्षण उपलब्ध नहीं है। अधिकांश अध्ययन संशोधित परीक्षणों के आधार पर किये गये हैं इसलिए विभिन्न अध्ययनों के निष्कर्ष भी भिन्न-भिन्न हैं।

व्यक्तित्व पर दृष्टिहीनता का प्रभावः

व्यक्तित्व निर्माण का प्रथम चरण व्यक्ति की स्वयं की पहचान है। बालक प्रथम चार महीनों में स्वयं को अपने वातावरण व अन्य व्यक्तियों से अलग कर पहचान नहीं पाता। जन्म से लगभग चार माह उपरान्त उसमें इस तथ्य का आभास होना प्रारम्भ होता है, अतः प्रथम चार माह तक बालक के व्यक्तित्व पर दृष्टि का प्रभाव लगभग नगण्य होता है, चार माह उपरान्त स्वयं की पहचान के लिए उसे कुछ जानकारियाँ अपने आस-पास के वातावरण तथा अन्य व्यक्तियों द्वारा प्राप्त होती हैं। इन सब जानकारियों के एकत्रीकरण के लिए दृष्टि एक मुख्य ज्ञानेन्द्रिय है। दृष्टि के अभाव में बालक को स्वयं की पहचान के लिए अपने वातावरण के अनुसार अन्य ज्ञानेन्द्रियों पर अधिक निर्भर रहना पड़ता है। यह देखा गया है कि एक स्वस्थ दृष्टिबाधित बालक अपने शिक्षित माता/पिता/अभिभावक के संरक्षण में अपनी अन्य ज्ञानेन्द्रियों के अधिकतम प्रयोग से दृष्टिवान बालक की तरह ही स्वयं की पहचान कर लेता है, परन्तु फिर भी अधिकांश दृष्टिबाधित बालक दृष्टिवान बालक की अपेक्षा स्वयं की पहचान में तुलनात्मक रूप से अधिक समय लेते हैं तथा दृष्टि का अभाव प्रारम्भ से ही उनके व्यक्तित्व पर अपने प्रभाव छोड़ने लगता है।

यही प्रभाव बड़े होने पर उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व को प्रभावित करते हैं। सामान्य बालक के व्यक्तित्व निर्धारण में प्रभावी मुख्य कारकों के अतिरिक्त दृष्टिबाधित बालक के व्यक्तित्व निर्धारण में कुछ अन्य विशिष्ट कारक भी अपना

प्रभाव छोड़ते हैं, जैसे उद्दीपन की अज्ञानता, माता-पिता की अनभिज्ञता व अशिक्षा, दृष्टिबाधित होने की आयु व कारण, बची हुई दृष्टि की मात्रा इत्यादि।

'दृष्टि का व्यक्तित्व पर प्रभाव' विषय पर अनेक अनुसंधान हुए हैं तथा उनके आधार पर मनोवैज्ञानिक व अन्य विद्वानों ने अपने-अपने मत प्रकट किये हैं। कुछ विद्वान दृष्टि के अभाव को व्यक्तित्व विकास पर अत्यन्त प्रभावकारी कारक मानते हैं तो कुछ इसके बिल्कुल विपरीत मत रखते हैं, जैसे फुल्के (Foulke; 1972) का मत है, "दृष्टिवान व दृष्टिबाधित के व्यक्तित्व में कोई अन्तर नहीं है, अर्थात् दृष्टिहीनता से व्यक्तित्व पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।" कुछ इसी प्रकार का मत टैनब्रोक (Tenbroke) ने भी व्यक्त किया है, "दृष्टिबाधित बालक सामान्य परिस्थिति में नहीं है, असुविधाजनक परिस्थिति में है, परन्तु यह स्थिति कम सुविधाओं के कारण है, अर्थात् वह भी मानते हैं कि सम्पूर्ण सुविधाओं व स्वस्थ परिवेश में दृष्टिवान व दृष्टिबाधित बालक का व्यक्तित्व एक समान ही विकसित होता है।"

इसके ठीक विपरीत फादर केरोल (Father Carroll) ने कहा है, "दृष्टिहीनता के कारण व्यक्तित्व में सम्पूर्ण परिवर्तन आ जाता है और दृष्टिवान व्यक्ति से यह पूर्णतः भिन्न है।"

बर्लिंघम (Burlingham; 1961) ने कहा है, "माता-पिता की अभिवृत्तियां तथा दृष्टिबाधित बालक के स्वयं के अनुभव उसके व्यक्तित्व विकास को प्रभावित करते हैं। विशेषतः माँ का अत्यधिक संरक्षण प्रदान करना बालक को आश्रित बना देता है।"

इसी प्रकार सैण्डलर (Sandler; 1963) ने अपने अध्ययन में पाया, "दृष्टिबाधित बालक दृष्टिवान बालक की अपेक्षा तुलनात्मक रूप से नर्सरी कक्षाओं में निष्क्रय रहते हैं तथा इसी निष्क्रियता के कारण वे मैनेरिस्टिक (Manneristic) व्यवहार दर्शाते हैं।"

दृष्टिहीनों के व्यक्तित्व के विशिष्ट पहलुओं पर भी अनेक अनुसंधान हुए हैं तथा उनके आधार पर भी मनोवैज्ञानिकों ने अपने मत प्रकट किये हैं:

(1) समप्रवाहिता व आज्ञाकारिता (Assertiveness and Submissiveness)- विल्सन (Wilson)ने गुणों पर अध्ययन कर पाया कि अधिकांश दृष्टिबाधित बालक नम्र व आज्ञाकारी होते हैं तथा घर का माहौल व माता का उनके प्रति अधिक झुकाव उनमें आत्मविश्वास भी उत्पन्न नहीं होने देता।

(2) आत्म-अवधारणा (Self Concept)- इस क्षेत्र पर अध्ययनों को दो पक्षों में विभाजित किया गया है- ज्ञानात्मक तथा आत्ममूल्यांकन (Cognitive and self evaluation) इन दोनों ही क्षेत्रों में दृष्टिबाधित व दृष्टिवान बालक में कोई विशेष अन्तर नहीं पाया गया, परन्तु यह पाया गया है कि दृष्टिबाधित बालक भविष्य के प्रति अधिक चिन्तित रहते हैं तथा वे अपने विषय में या तो अत्यधिक सकारात्मक होते हैं या बिल्कुल नकारात्मक।

(3) अन्तर्मुखी व बहिर्मुखी (Introvert and Extrovert)- इस विषय पर ब्राउन (Brown) तथा पिंटनर व फरलैनो (Pintner and Fourlano; 1943) ने अलग-अलग शोध किये और एक दिलचस्प तथ्य का प्रतिपादन किया कि दृष्टिबाधित बालक दृष्टिबाधित बालिकाओं की अपेक्षा अधिक बहिर्मुखी हैं, परन्तु उन्होंने आगे यह भी कहा कि यह अन्तर बालकों को समायोजन में कोई विशेष मदद नहीं करता तथा समायोजन के स्तर पर बालक-बालिकाएं समान ही हैं।

(4) सांवेगिक समायोजन (Emotional adjustments)- इस विषय पर अध्ययन करने पर पाया गया कि आवासीय विद्यालयों में रहने वाले दृष्टिबाधित बालकों को सामाजिक समायोजन में बाद में कठिनाई आती है तथा यह भी पाया गया कि दृष्टिहीन बालक की अपेक्षा आंशिक दृष्टि वाले बालक को समायोजन में उससे भी अधिक कठिनाई का सामना करना पड़ता है।

इसके अतिरिक्त भी अनेक अनुसंधान हुए हैं और उनमें से अधिकांश अनुसंधानों में यही तथ्य प्रकाशित हुआ है कि दृष्टिबाधित व सामान्य बालकों के व्यक्तित्व में कोई विशेष अन्तर नहीं है।

हेस्टिंग्स (Hestings) ने भी सामाजिक समायोजन तथा स्पृहाधरातल (Level of Ospiration) पर अध्ययन किया और पाया कि दोनों में कोई विशेष अन्तर नहीं हैं, परन्तु उन्होंने यह पाया कि दृष्टिबाधित बालक असफल होने पर दृष्टिवान बालक की तुलना में अधिक परेशान व निराश हो जाता है।

कट्सफोर्थ (Cutsforth) ने 1932 में प्रकाशित अपनी पुस्तक "Blind in School and Society" में दृष्टिहीनों के व्यक्तित्व को दृष्टिवानों के व्यक्तित्व से भिन्न बताया है, परन्तु इसके बाद कुछ अन्य अध्ययनों तथा अपने स्वयं के अध्ययन के आधार पर उन्होंने 1951 में कहा कि दृष्टिहीनों के व्यक्तित्व में वे सभी विशेषताएं व गुण पाये जाते हैं, जो समकक्ष दृष्टिवान व्यक्तियों में मिलते हैं

तथा दृष्टिहीनों के व्यक्तित्व की व्याख्या करने के लिए विशेष मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों व नियमों की आवश्यकता नहीं है।

दृष्टिहीनों के व्यक्तित्व पर भारत में किये गये अनुसंधानों में भी यही तथ्य उजागर हुआ है कि दृष्टिहीनता प्रभावित व्यक्तियों के व्यक्तित्व पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालती और यदि कोई नकारात्मक विशेषता मिलती भी है तो वह दृष्टिहीनता के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण एवं उनके वातावरण के कारण होती है।

उक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि व्यक्तित्व निर्धारण में अधिकांश कारक दृष्टिबाधित व दृष्टिवान बालक को समान रूप से प्रभावित करते हैं, यदि अन्य सभी परिस्थितियाँ समान रहें तो। हालांकि कुछ कारक दृष्टिबाधित बालक के व्यक्तित्व पर नकारात्मक प्रभाव अवश्य डालते हैं, परन्तु इन्हें परिवार के उचित माहौल व शिक्षा से सकारात्मक बनाया जा सकता है।

अध्याय-19

अभिवृत्ति

-डॉ. राम भजन लाल सोनी

अभिवृत्ति का अर्थ एवं परिभाषा:

अभिवृत्तियाँ व्यक्ति के उस दृष्टिकोण की ओर संकेत करती हैं जिनके कारण वह किसी वस्तु, परिस्थिति, संस्था या व्यक्ति के प्रति किसी विशिष्ट प्रकार का व्यवहार करता है। परन्तु अभिवृत्ति शब्द इतना सरल नहीं है। अभिवृत्ति जन्मजात नहीं होती, बल्कि यह अधिगम एवं वातावरण का परिणाम हो सकती है। इसके अतिरिक्त समाज में व्याप्त परिस्थितियाँ भी व्यक्ति की अभिवृत्तियों को प्रभावित करती हैं। आल्पोर्ट (1935) ने अभिवृत्ति के तीन मुख्य तत्त्व बताये हैं, जो निम्नलिखित हैं :

1. पक्ष या विपक्ष में मिलने वाले उत्तरों के लिए तैयारी

2. ऐसी तैयारी जो कि अनुभवों के द्वारा व्यवस्थित होती है और

3. जो वस्तुओं व परिस्थितियों की उपस्थिति में क्रियाशील हो जाती है और जिनसे अभिवृत्ति का सम्बन्ध है।

फिशबिन और आइजन (1975) ने भी अभिवृत्ति की तीन विशेषताएं बतायी हैं। अभिवृत्ति अनुभव-जन्य है, यह क्रिया उत्प्रेरक है और ऐसी क्रियाएं लगातार किसी वस्तु के पक्ष या विपक्ष में होती हैं। एंडर्सन (1989) ने अभिवृत्ति की पाँच विशेषताएं बतायी हैं, जो इस प्रकार हैं :

1. संवेग
2. स्थिरता
3. लक्ष्य
4. दिशा
5. तीव्रता

विशेषक या व्यक्तिगत-वृत्ति एवं अभिवृत्ति में अन्तर करना आवश्यक है। विशेषक या व्यक्तिगत-वृत्ति जहाँ किसी व्यक्ति के व्यवहार की सामान्य विशेषता को बताती है, वहीं अभिवृत्ति किसी वस्तु, तथ्य, व्यक्ति विशेष के सन्दर्भ में उसके

व्यवहार को ही बताती है। यदि एक ही अभिवृत्ति अनेक पदार्थों के सन्दर्भ में देखी जाती है तो वही विशेषक या व्यक्तिगत-वृत्ति जैसे लगने लगती है। अभिवृत्ति व्यवहार की अति विशिष्ट विशेषता भी हो सकती है, और अपेक्षाकृत सामान्य भी, परन्तु विशेषक या व्यक्तिगत वृत्ति सदैव ही व्यवहार की सामान्य विशेषता को बताती है। इनमें एक अन्तर यह भी है कि अभिवृत्ति का सम्बन्ध मूल्याँकन से होता है। किसी वस्तु को स्वीकारने या अस्वीकारने में अभिवृत्ति का प्रभाव होता है, परन्तु विशेषक या व्यक्तिगत वृत्ति व्यवहार की सामान्य प्रकृत्ति की नियामक होती है।

विभिन्न विद्वानों ने अलग अलग शब्दों में इसे परिभाषित किया है। उनमें से कुछ परिभाषाएं नीचे दी गयी हैं :

1. अभिवृत्ति किसी विशिष्ट विषय के प्रति व्यक्ति की प्रवृत्तियों, पूर्व-निर्धारित विचारों एवं आतंकों का योग है। - थर्सटन

2. अभिवृत्ति किसी वस्तु के प्रति एक विशिष्ट भावना है। इसमें उस वस्तु से जुड़ी हुई परिस्थितियों में एक निश्चित प्रकार से व्यवहार करने की प्रवृत्ति निहित होती है। यह आंशिक रूप से तार्किक और आंशिक संवेगात्मक होती है तथा किसी भी व्यक्ति में जन्मजात न होकर उपार्जित होती है। यह अभिवृत्ति सकारात्मक या नकारात्मक हो सकती है। - सोरेंसन

3. अभिवृत्ति तत्परता की एक मानसिक एवं तटस्थ परिस्थिति है जो सभी सम्बन्धित वस्तुओं एवं परिस्थितियों के प्रति व्यक्ति की प्रक्रियाओं पर निर्देशात्मक एवं गत्यात्मक प्रभाव डालती है। - ब्रिट

4. अभिवृत्ति को व्यक्ति के संसार के किसी अंग के प्रति प्रेरणात्मक, संवेगात्मक, प्रत्यक्षात्मक एवं ज्ञानात्मक प्रक्रियाओं के स्थायी संगठन के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। - क्रेंच एवं क्रचफील्ड

5. अभिवृत्तियाँ मत, रुचि या उद्देश्य की थोड़ी-बहुत स्थायी प्रवृत्तियाँ हैं, जिनमें किसी प्रकार के पूर्व-ज्ञान की प्रत्याशा और उचित प्रक्रिया की तत्परता निहित है। - वुडवर्थ

अभिवृत्तियों के लक्षण :

अभिवृत्तियों को समझने के लिए उनके लक्षणों को जानना आवश्यक है। इसलिए अभिवृत्तियों के कुछ लक्षण नीचे दिये गये हैं :

1. अभिवृत्तियों का प्रसार असीमित है। हमारी पसन्द, नापसन्द, आराध्यदेव आदि सभी बातें अभिवृत्ति के अन्तर्गत आती हैं।

2. यह बाह्य वस्तुओं के प्रति हमारी स्थिति है – पक्ष में या विपक्ष में।

3. अभिवृत्तियों में व्यक्तिगत विभेद होते हैं, अर्थात् अलग अलग व्यक्तियों की अभिवृत्तियाँ भिन्न होती हैं।

4. अभिवृत्तियाँ हमारे व्यवहार का आधार हैं, अर्थात् कोई भी व्यक्ति अपनी अभिवृत्तियों के अनुसार ही आचरण करता है।

5. अभिवृत्तियाँ व्यक्त एवं अव्यक्त हो सकती हैं। व्यक्त अभिवृत्तियों का पता हमें व्यक्ति के व्यवहार से लग जाता है, परन्तु अव्यक्त अभिवृत्तियों का पता व्यक्ति के व्यवहार से लगाना कठिन है।

6. अभिवृत्तियाँ हमारे सम्पूर्ण व्यवहार-संगठन में समन्वित होती हैं, अर्थात् हमारा सम्पूर्ण व्यवहार अभिवृत्तियों द्वारा निर्धारित होता है।

7. ये वातावरण-जन्य हैं, न कि जन्मजात। व्यक्ति की अभिवृत्तियाँ उसके सामाजिक वातावरण के अनुसार निर्धारित होती हैं।

8. किसी वस्तु या परिस्थिति के प्रति अभिवृत्ति आवश्यक रूप से उसकी उपयोगिता पर आधारित नहीं है, अर्थात् उपयोगिता के आधार पर ही अभिवृत्तियाँ नहीं बनतीं।

9. विभिन्न संस्कृतियों में भिन्न-भिन्न व्यक्तियों की अभिवृत्तियाँ अलग-अलग होती हैं। उदाहरण के लिए पश्चिमी देशों के लोगों की अभिवृत्तियाँ भारत के लोगों की अभिवृत्तियों से भिन्न हो सकती हैं।

10. यद्यपि अभिवृत्तियाँ स्थायी होती हैं, तथापि इनमें परिस्थितियों के अनुरूप परिवर्तन या संशोधन संभव है।

11. अभिवृत्तियाँ एक व्यक्ति या वस्तु के प्रति हो सकती हैं या अनेक के प्रति। उदाहरणार्थ एक राष्ट्र से लड़ते समय उसके नागरिकों को हम शत्रु समझते हैं।

12. अभिवृत्ति के दो पक्ष हैं - जिसकी अभिवृत्ति है और जिसके प्रति है।

अभिवृत्तियों का वर्गीकरण :

बोगार्ड्स ने अपनी पुस्तक "समाज मनोविज्ञान के आधार" में अभिवृत्तियों को तीन भागों में बाँटा है :

(क) प्राप्ति एवं कार्य-सम्बन्धी,

(ख) खेल-सम्बन्धी, तथा

(ग) जिज्ञासात्मक एवं वैज्ञानिक ।

(क) प्राप्ति एवं कार्य-सम्बन्धी अभिवृत्तियाँ - क्लाइनबर्ग मानता है कि संग्रह एवं प्राप्ति की अभिलाषा जन्म-जात नहीं है, बल्कि इसका निर्धारण संस्कृति-जन्य है। आधुनिक युग की असमानता एवं संघर्ष प्राप्ति-सम्बन्धी अभिवृत्ति के फलस्वरूप है।

(ख) खेल-सम्बन्धी अभिवृत्तियाँ - खेल सम्बन्धी अभिवृत्तियाँ भी जन्म जात नहीं हैं, अपितु ये वातावरण जन्य हैं। खेल सम्बन्धी अभिवृत्तियाँ न केवल शारीरिक विकास एवं स्वास्थ्य के लिए आवश्यक हैं, बल्कि मानसिक विकास व सामाजिक विकास के लिए भी परम आवश्यक हैं।

(ग) जिज्ञासात्मक एवं वैज्ञानिक अभिवृत्तियाँ- विद्वानों एवं वैज्ञानिकों की अभिवृत्तियों को इसके अन्तर्गत रखा जा सकता है।

अभिवृत्तियों के निर्धारक:

निम्नलिखित प्रतिकारक अभिवृत्तियों के निर्धारण या परिवर्तन को प्रभावित करते हैं:

1) सांस्कृतिक निर्धारक- बच्चा जिस संस्कृति में जन्म लेता और पलता है उसी के अनुरूप उसके विचार होते हैं। उदाहरण के लिए हिन्दू संस्कृति में पलने वाले बच्चे के विचार हिन्दू संस्कृति से प्रभावित होंगे जबकि मुस्लिम संस्कृति में पलने वाले बच्चे के विचार मुस्लिम संस्कृति से।

2) मनोवैज्ञानिक निर्धारक- तनाव, आवश्यकताएं, संवेगात्मक अनुभव, प्रत्यक्षीकरण आदि अभिवृत्तियों को प्रभावित करते हैं। उदाहरण के लिए यदि कोई व्यक्ति तनावग्रस्त है तो उसकी अभिवृत्ति जीवन के प्रति सकारात्मक नहीं होगी। इसी तरह यदि किसी व्यक्ति को धोखा मिला है तो उसकी अभिवृत्ति लोगों पर विश्वास न करने की होगी।

3) कार्यात्मक निर्धारक- व्यक्ति का स्वभाव तथा उसका किसी कार्य का पूर्व-अनुभव उसकी अभिवृत्ति को निर्धारित करता है।

अभिवृत्ति-निर्माण के सिद्धान्त :

अभिवृत्ति निर्माण के दो सिद्धान्त अधिक प्रचलित हैं:

1. आसन-प्रतिक्रिया सिद्धान्त

2. मानसिक वृत्ति सिद्धान्त

1. आसन-प्रतिक्रिया सिद्धान्त- यह अभिवृत्ति निर्माण की एक अवयवी व्याख्या प्रस्तुत करती है। प्रत्येक व्यक्ति दूसरों के प्रति प्रतिक्रिया करता हैं एवं दूसरे उसके प्रति। इस अन्तरप्रक्रिया में दूसरों के प्रति उसकी अभिवृत्ति का निर्माण हो जाता है। अभिवृत्तियाँ उद्दीपक-प्रतिक्रिया एवं मांसपेशियों की तत्परता के फलस्वरूप उत्पन्न होती हैं। उदाहरण हेतु यदि किसी व्यक्ति का लगातार अपमान किया जाये तो अपमानित व्यक्ति की अभिवृत्ति अपमान करने वाले के प्रति नकारात्मक होगी। दृष्टिबाधितों के प्रति समाज में व्याप्त नकारात्मक अभिवृत्तियाँ न केवल उनके मन में हीन भावना उत्पन्न करती हैं, बल्कि प्रतिक्रिया स्वरूप दृष्टिबाधितों में समाज के प्रति नकारात्मक अभिवृत्तियों को जन्म देती हैं।

2. मानसिक वृत्ति सिद्धान्त- इस सिद्धान्त के अनुसार कुछ अभिवृत्तियाँ पूर्व निश्चित होती हैं। अतः हमारे स्वभाव का अंश बन जाती हैं। ये चेतन एवं सप्रयास होती हैं। यदि कोई व्यक्ति यह कहे कि पूँजीवाद या साम्यवाद बुरी व्यवस्था है तो इसका यह अर्थ है कि उसकी मानसिक वृत्ति पूँजीवाद या साम्यवाद विरोधी है। यदि दृष्टिबाधितों का उदाहरण लिया जाय तो हम पाते हैं कि अधिकांश लोगों की अभिवृत्तियाँ दृष्टिबाधितों के प्रति नकारात्मक हैं और वे सोचते हैं कि ऐसे व्यक्ति अधिकतर कार्य नहीं कर सकते।

अभिवृत्तियों का मापन :

समर्स (1970) के अनुसार अभिवृत्ति मापन में तीन चरण हैं।

1. उन व्यवहारों की पहचान जिनके आधार पर व्यक्ति की अभिवृत्ति का अनुमान लगाया जा सके

2. अभिवृत्ति को प्रभावित करने वाले विशिष्ट व्यवहारों को सूचीबद्ध करना

3. सूचीबद्ध व्यवहारों को मापन की श्रेणी में रखना।

अभिवृत्तियों के मापन में निम्नलिखित आयाम प्रमुख हैं:

1. दिशा- अर्थात् व्यक्ति की अभिवृत्ति किसी वस्तु, व्यक्ति अथवा परिस्थिति के पक्ष में है या विपक्ष में।

2. सीमा या मात्रा- अर्थात् किसी व्यक्ति की अभिवृत्ति किसी वस्तु, व्यक्ति या परिस्थिति के पक्ष या विपक्ष में किस सीमा या मात्रा में है।

3. शक्ति- अर्थात् किसी व्यक्ति की अभिवृत्ति की तीव्रता किसी वस्तु, व्यक्ति या परिस्थिति के पक्ष या विपक्ष में किस सीमा तक है।

4. उन्मुक्तता- अर्थात् किसी व्यक्ति की अभिवृत्ति की अभिव्यक्ति कितनी मुक्त है।

5. स्थिरता- अर्थात् विभिन्न परिस्थितियों में व्यक्ति अपनी अभिवृत्ति को कितना स्थिर रखता है।

अभिवृत्ति मापन की अनेक विधियाँ हैं। अभिवृत्ति मापन के लिए प्रश्नावली, पारिस्थितिक परीक्षण, साक्षात्कार आदि का भी प्रयोग किया जा सकता है। पर अभिवृत्ति मापन के लिए मुख्यतः 'स्केलिंग विधि' का प्रयोग किया जाता है। थर्स्टन, गटमैन, लाइकर्ट आदि द्वारा निर्मित मापनियाँ (स्केल्स) अभिवृत्ति मापन के लिए प्रंयोग किये जाते हैं। इसके अतिरिक्त सिमांटिक डिफरेंशियल स्केल का प्रयोग भी अभिवृत्ति मापन के लिए किया जाता है। भिन्न-भिन्न लेखकों ने अपने बनाए हुए स्केल (मापनी) में अलग-अलग विकल्प दिये हैं। उदाहरण के लिए थर्स्टन ने 11-विकल्पीय मापनी बनायी, जबकि लाइकर्ट ने 5-विकल्पीय मापनी बनायी। सिमांटिक डिफरेंशियल मापनी में 2-विकल्प होते हैं।

थर्स्टन ने अपनी 11-विकल्पीय मापनी में व्यक्ति की किसी वस्तु या व्यक्ति के प्रति अभिवृत्ति को न्यूनतम (1) से अधिकतम (11) द्वारा मापन करने को कहा है। परन्तु बाद में विभिन्न विद्वानों ने 2-विकल्प, 3-विकल्प, 5-विकल्प एवं 7-विकल्पीय मापनीयों का निर्माण किया। इन अभिवृत्ति मापनीयों में सबसे अधिक प्रचलन लाइकर्ट अभिवृत्ति मापनी तथा सीमांटिक डिफरेंशियल मापनी का है।

लाइकर्ट ने कथनों का निर्माण करके पाँच बिंदुओं वाली मापनी बनाई:

1. पूर्ण रूप से असहमत
2. असहमत
3. अनिश्चित
4. सहमत
5. पूर्ण रूप से सहमत

लाइकर्ट मापनी में 5-विकल्प होते हैं, जिनमें से 1 और 2 विकल्प नकारात्मक अभिवृत्ति की तीव्रता दर्शाते हैं, जबकि विकल्प 4 व 5 सकारात्मक अभिवृत्ति की तीव्रता दर्शाते हैं। विकल्प 3 मध्य बिंदु होता है जिसके एक ओर सकारात्मक तथा दूसरी ओर नकारात्मक अभिवृत्ति के विकल्प होते हैं। लाइकर्ट मापनी में कथनों का प्रयोग किया जाता है और हर कथन अपने आप में पूर्ण भाव व्यक्त करता है।

सीमांटिक डिफरेंशियल मापनी में केवल दो विकल्प होते हैं और ये विकल्प विशेषण होते हैं। उदाहरण के लिए 'सच' 'झूठ', 'अच्छा' 'बुरा', 'सही' 'गलत' आदि। इस मापनी का प्रयोग छोटे बच्चों एवं अनपढ़ लोगों के लिए अधिक उपयोगी माना गया है।

अभिवृत्ति मापन के लिए विद्वानों ने और भी मापनीयाँ बनाई हैं, जैसे गटमैन की स्केलोग्राम विधि, किल्पैट्रिक की आत्म-विभेद विधि, काट्ज तथा आल्पोर्ट का अभिवृत्ति मापन, कुम्ब तथा ट्रेवर्स का अध्यापन के प्रति अभिवृत्ति मापन, बोगार्डस का सामाजिक दूरी मापन।

पारिवारिक सदस्यों की दृष्टिबाधितों के प्रति अभिवृत्तियाँ:

अरस्तु ने परिवार को बच्चे की प्रथम पाठशाला कहा है। यदि इस कथन पर विचार किया जाये तो हम पाते हैं कि बच्चे के विकास, शिक्षा, आत्मनिर्भरता एवं उसकी उन्नति में परिवार के सदस्यों की सकारात्मक अभिवृत्ति का बहुत बड़ा योगदान रहता है। परिवार के सदस्यों का प्यार, प्रेरणा और सहयोग न केवल बच्चे के व्यक्तित्व विकास में सहायक होता है, अपितु इसके दूरगामी प्रभाव उसकी उन्नति एवं सुखद भविष्य पर पड़ता है। परिवार के सदस्यों की सकारात्मक अभिवृत्ति, प्यार, प्रेरणा एवं सहयोग की दृष्टिबाधित बच्चे को दृष्टिवान बच्चे से अधिक आवश्यकता है क्योंकि दृष्टि न होने के कारण उसे कई अतिरिक्त कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। दुर्भाग्य से बहुत कम परिवारों में दृष्टिबाधितों के प्रति पूर्ण सकारात्मक अभिवृत्ति पायी जाती है। जिन परिवारों में इन बातों पर ध्यान दिया जाता है, उन परिवारों के दृष्टिबाधित व्यक्तियों का व्यक्तित्व सामान्य व्यक्तियों की तरह विकसित होता है।

इससे पहले कि हम परिवार के सदस्यों की अभिवृत्तियों का विवेचन करें, यह जानना आवश्यक है कि परिवार से हमारा क्या तात्पर्य है। परिवार से हमारा तात्पर्य उन सब सदस्यों से है जो एक परिवार में रहते हैं। ऐसे परिवार चाहे संयुक्त परिवार हों चाहे छोटे अथवा एकल परिवार। दृष्टिबाधित बच्चे के प्रति किसी भी

परिवार की सकारात्मक अभिवृत्ति में माता-पिता की प्रमुख भूमिका होती है। अर्थात् यदि माता-पिता की अभिवृत्ति दृष्टिबाधित बच्चे के प्रति सकारात्मक है तो बाकी सदस्यों को भी इससे प्रेरणा मिलती है। परन्तु यदि माता-पिता की अभिवृत्ति नकारात्मक हो, तो बाकी सदस्यों से सकारात्मक अभिवृत्ति की आशा करना व्यर्थ है। जब किसी दृष्टिबाधित बच्चे का जन्म होता है या जब कोई बच्चा दृष्टिबाधित हो जाता है, तब माता-पिता इतने निराश हो जाते हैं कि वे इसके लिए अपने पूर्व जन्म के कर्मों को उत्तरदायी मानने लगते हैं। परिणामस्वरूप वे दृष्टिबाधित बच्चे को स्वीकार नहीं कर पाते और इससे उनके अन्दर दृष्टिबाधित बच्चे के प्रति नकारात्मक अभिवृत्ति पनपती है। यह समस्या और भी गम्भीर हो जाती है यदि उस परिवार में उनको ढाँढस बंधाने वाला कोई और सदस्य न हो। यदि माता-पिता समय रहते अपने आप को सम्भाल नहीं पाते तो उनके अन्दर दृष्टिबाधित बच्चे के प्रति नकारात्मक अभिवृत्तियाँ बन जाती हैं और उनका तिरस्कार पूर्ण व्यवहार उस बच्चे के सामान्य विकास में बाधक बनता है। लोवनफैल्ड (1973) के अनुसार जब माता-पिता बच्चे की दृष्टिबाधिता के कारण संवेगात्मक रूप से विचलित हो जाते हैं, तब घर का वातावरण तनाव ग्रस्त हो जाता है। यह स्थिति दृष्टिबाधित बच्चे के सामान्य विकास के लिए बाधक होती है। सोमर्स (1944) ने दृष्टिबाधित बच्चों के माता-पिता की पाँच तरह की प्रतिक्रियाएं बताई हैं:

1. बच्चे को उसकी विकलांगता के साथ स्वीकार करना
2. विकलांगता के प्रभावों को अस्वीकार करना
3. विकलांग बच्चे को अत्यधिक संरक्षण देना
4. विकलांग बच्चे को परोक्ष रूप से अस्वीकार करना और
5. पूर्णतया अस्वीकार करना।

अधिकतर परिवारों में या तो दृष्टिबाधित बच्चे को दूसरे बच्चों से बहुत अधिक प्यार दिया जाता है या उसे अस्वीकार करते हुए दूसरों की तुलना में बहुत कम प्यार दिया जाता है। ये दोनों ही स्थितियाँ दृष्टिबाधित बच्चे के सामान्य विकास के लिए अनुकूल नहीं हैं। यदि दृष्टिबाधित बच्चे को परिवार के दूसरे बच्चों की तुलना में बहुत अधिक प्यार दिया जाता है तो इससे दूसरे बच्चों के अन्दर दृष्टिबाधित बच्चे के प्रति ईर्ष्या उत्पन्न होती है और जो स्वाभाविक प्रेम बच्चों के बीच होना चाहिए, वह नहीं होता। इसके विपरीत यदि दृष्टिबाधित बच्चे को कोई महत्त्व न दिया जाये और दूसरे बच्चों को अधिक प्यार दिया जाये, तो इससे दृष्टिबाधित बच्चे के अन्दर हीन भावना बढ़ती जाती है। परिणामस्वरूप इस बच्चे के व्यक्तित्व का

सामान्य विकास नहीं होता। सोनी (1994) ने अपने शोध अध्ययन में पाया कि यदि दूसरे भाई बहिनों की तुलना में दृष्टिबाधित बच्चे को बहुत अधिक प्यार दिया जाये, तो उनमें हीन भावना पनपती है जो ईर्ष्या में परिवर्तित होकर घातक सिद्ध हो सकती है। इसलिए आवश्यक है कि सभी बच्चों को बराबर प्यार मिले और उनमें पारिवारिक प्रेम का विकास हो। ऐसा तभी सम्भव है जब परिवार के सदस्यों में दृष्टिबाधित बच्चे के प्रति सकारात्मक अभिवृत्तियाँ हों।

शोध साहित्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि माता-पिता की मृत्यु के बाद दृष्टिबाधित बच्चे के सबसे बड़े भाई या सबसे बड़ी बहिन को इस बच्चे की देखभाल की जिम्मेदारी निभानी पड़ती है। पश्चिमी देशों में ऐसे अनेक उदाहरण हैं जिनमें बड़े भाई या बड़ी बहिन ने दृष्टिबाधितों की शिक्षा एवं पुनर्वास को ही अपने जीवन का लक्ष्य बनाकर उस क्षेत्र में कार्य किया। परन्तु भारतवर्ष में इस बच्चे की देखभाल करने का उत्तरदायित्व माता-पिता के बाद बड़े भाई का होता है। प्रश्न इस बात का नहीं है कि इस बच्चे की देखभाल की जिम्मेदारी किसकी होनी चाहिए, बल्कि प्रश्न इस बात का है कि सकारात्मक अभिवृत्तियाँ परिवार के सदस्यों के अन्दर किस तरह विकसित की जायें जिससे कि दृष्टिबाधित व्यक्ति को आत्मनिर्भर बनाया जा सके और उसे भी पारिवारिक दायित्वों को निभाने के लिए तैयार किया जा सके। ऐसा तभी सम्भव है जब परिवार के सभी सदस्यों में सकारात्मक अभिवृत्तियों का विकास किया जाये।

दृष्टिबाधा एवं दृष्टिबाधितों के प्रति सामाजिक अभिवृत्तियाँ:

अतीत काल से ही दृष्टिबाधा के प्रति सामाजिक धारणा नकारात्मक रही है और आज भी यद्यपि इसमें बदलाव आया है, परन्तु अभी भी यह नकारात्मक अभिवृत्तियों से ओत-प्रोत है। दृष्टिबाधा की तुलना अन्धकार के साथ की गयी है और वस्तुतः दोनों को एक ही माना गया है। इस तरह अन्धेपन या दृष्टिबाधिता की नकारात्मक धारणा को ही बढ़ावा दिया गया है। यही कारण है कि समाज में दृष्टिबाधिता के प्रति भ्रान्तियाँ हैं।

सामाजिक अभिवृत्तियों के निर्धारण में साहित्य एवं संचार के साधनों का बहुत बड़ा योगदान होता है। यदि हम भारतीय साहित्य का अवलोकन करें तो पता चलता है कि अधिकतर लेखकों ने दृष्टिबाधितों की स्थिति दयनीय बताकर नकारात्मक अभिवृत्तियों को बल दिया है। उदाहरण के लिए सुप्रसिद्ध उपन्यासकार प्रेमचन्द ने अपने उपन्यास 'रंगभूमि' में एक दृष्टिबाधित भिखारी की चर्चा की है जो बाद में अंग्रेजों के खिलाफ लड़ते हुए मारा जाता है और गाँव वालों के लिए

हीरो हो जाता है क्योंकि गाँव वालों की भलाई के लिए वह कारखाना बनाने का विरोध करता है और गाँव वाले उसका साथ देते हैं। परन्तु उपन्यास के शुरू में दृष्टिबाधितों की छवि तो नकारात्मक ही है। कुछ लोग यह कहेंगे कि सूरदास तथा मिल्टन जैसे दृष्टिबाधितों को साहित्यकारों ने पूर्ण सम्मान दिया है, परन्तु 99 प्रतिशत दृष्टिबाधितों के प्रति तो साहित्य में नकारात्मक अभिवृत्ति को ही बल मिला है। सिनेमा जगत् ने भी दृष्टिबाधितों की दूसरों पर निर्भरता एवं भिखारी के रूप में उनका चित्रण किया है। उदाहरण के लिए दोस्ती फिल्म में एक दृष्टिबाधित और एक शारीरिक विकलांग को भीख मांगकर अपना जीवन यापन करते दर्शाया गया है। इस तरह कुल मिलाकर साहित्य एवं सिनेमा ने दृष्टिबाधितों के प्रति समाज में नकारात्मक अभिवृत्ति को ही बल दिया है।

कुछ लोग उपरोक्त विचार को यह कहते हुए नकारेंगे कि साहित्य और सिनेमा वही दिखाते हैं, जो समाज में होता है, परन्तु, क्या साहित्य और सिनेमा का उद्देश्य समाज सुधार नहीं है? जिस तरह से अन्य सामाजिक कुरीतियों के लिए साहित्यकारों और सिनेमा ने आवाज उठायी, उसी तरह दृष्टिबाधितों की सकारात्मक छवि बनाने के लिए तथा उनके प्रति समाज में सकारात्मक अभिवृत्ति बनाने के लिए साहित्यकारों और सिनेमा को बीड़ा उठाना चाहिए। ये दोनों ही माध्यम दृष्टिबाधितों के प्रति समाज की अभिवृत्ति को सकारात्मक बनाने में योगदान दे सकते हैं तथा उनकी सशक्त भूमिका निश्चित रूप से समाज की दृष्टिबाधितों के प्रति अभिवृत्ति में परिवर्तन लायेगी।

यदि समाज की दृष्टिबाधितों के प्रति अभिवृत्ति में सकारात्मक परिवर्तन लाना है तो सर्वप्रथम परिवार के सदस्यों, पड़ोसियों, अध्यापकों, सहपाठियों तथा समाज के अन्य वर्गों की अभिवृत्तियों में सकारात्मक परिवर्तन लाना होगा। इस परिवर्तन के लिए सभी उपयुक्त साधनों का प्रयोग करके प्रयत्न करने होंगे। दृष्टिबाधितों के प्रति समाज में जो नकारात्मक अभिवृत्तियाँ हैं, उनसे समाज में उनके एकीकरण में बाधा पड़ती है।

समाज सुधार में अध्यापकों की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। इसलिए अध्यापकों की दृष्टिबाधितों के प्रति अभिवृत्ति में सकारात्मक परिवर्तन लाने के लिए न केवल अध्यापक प्रशिक्षण में परिवर्तन की आवश्यकता है, अपितु कार्यरत अध्यापकों के लिए सेवा-कालीन प्रशिक्षण की भी आवश्यकता है। यद्यपि विकलांगों के लिए बनाये गये 1994 के कानून में कई बातों का ध्यान रखा गया है, फिर भी सकारात्मक अभिवृत्ति के विकास के लिए और कदम उठाने की आवश्यकता है।

समेकित अथवा एकीकृत शिक्षा व्यवस्था का उद्देश्य सभी बच्चों को समता का अधिकार दिलाना और एक दूसरे के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति का विकास करना है। इस कार्य में अध्यापक की प्रमुख भूमिका है। वह बच्चों में आपसी सहयोग, प्रेम भाव, समानता, आदि गुणों के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकता है। सोनी (2001) ने अपने शोध अध्ययन में पाया कि दृष्टिबाधित और सामान्य विद्यार्थियों के बीच मित्रता एवं एकीकरण के प्रति अभिवृत्ति सकारात्मक थी। दृष्टिबाधित तथा दृष्टिवान विद्यार्थी न केवल एक साथ पढ़ना चाहते थे, बल्कि उनमें एक दूसरे के साथ मित्रता के प्रति भी सकारात्मक अभिवृत्ति थी। एक दूसरे शोध अध्ययन में सोनी (2003) ने अध्यापकों, प्रधानाध्यापकों एवं विद्यार्थियों की दृष्टिबाधितों की एकीकृत शिक्षा के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति पायी। इन शोध कार्यों के परिणामों से स्पष्ट है कि यदि उपयुक्त कदम उठाये जायें तो समाज में दृष्टिबाधितों के प्रति सकारात्मक अभिवृत्तियाँ विकसित की जा सकती हैं। परन्तु इसके लिए समाज के सभी वर्गों को दृढ़तापूर्वक प्रयत्न करने होंगे जिससे कि दृष्टिबाधितों के प्रति सकारात्मक अभिवृत्तियों का विकास किया जा सके।

दृष्टिबाधा के प्रति दृष्टिबाधितों की व्यक्तिगत अभिवृत्तियाँ:

दृष्टिबाधित व्यक्ति भी समाज का अंग है और उसकी अभिवृत्तियाँ समाज की धारणाओं से प्रभावित होती हैं। दृष्टिबाधित व्यक्ति समाज में दृष्टिबाधा के सम्बन्ध में जो कुछ सुनता है और जो अनुभव करता है, उसी के अनुरूप उसकी अभिवृत्तियाँ बनती हैं। यदि हम बाधा शब्द का विश्लेषण करें तो इसका अर्थ है 'अवरोध'। किसी भी व्यक्ति की बाधा या रुकावट के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति नहीं होगी, क्योंकि बाधाओं से जीवन में कष्ट बढ़ते हैं। यद्यपि बचपन में दृष्टिबाधित बच्चे में अन्य बच्चों की तरह ही जीवन में आने वाली समस्याओं का ज्ञान नहीं होता, फिर भी समय-समय पर आने वाली कठिनाइयाँ जैसे चोट लगना आदि से उसे अपनी कमियों का थोड़ा-थोड़ा एहसास होने लगता है। उसकी दृष्टिबाधा के प्रति नकारात्मक अभिवृत्ति तभी से शुरु हो जाती है जब वह दूसरों को अपनी कमियों के बारे में कहते सुनता है। उसको अपनी कमी तब भी खटकती है जब वह उन कामों को नहीं कर पाता जो उसके भाई बहिन कर लेते हैं। दृष्टिबाधा का एहसास तब भी होता है जब वह दूसरे बच्चों के साथ खेलता है और उन चीजों को नहीं देख पाता जो औरों को दिखती हैं। दृष्टिबाधा की वास्तविक समझ उसे तब शुरू होती है जब वह विद्यालय में पढ़ने जाता है। यदि उसे विशिष्ट विद्यालय में भेजा जाता है तो वह अपने को भाई बहिनों से अलग पाता है और यदि उसे सामान्य विद्यालय में पढ़ाया जाता है तो उसे प्रवेश पाने एवं पढ़ाई करने में कठिनाई होती है। इस

तरह उसे दृष्टिबाधा का एहसास होने लगता है और उसकी परोक्ष रूप से दृष्टिबाधा के प्रति नकारात्मक अभिवृत्ति बननी शुरू हो जाती है।

दृष्टिबाधितों की दृष्टिबाधा के प्रति अभिवृत्ति निर्माण (सकारात्मक या नकारात्मक) में अध्यापक की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है, विशेष रूप से यदि दृष्टिबाधित बच्चा एकीकृत शिक्षा के अन्तर्गत सामान्य विद्यालय में पढ़ रहा हो। अध्यापकों, प्रधानाध्यापक, अन्य पाठशाला कर्मी तथा विद्यार्थियों के व्यवहार उसकी सकारात्मक अथवा नकारात्मक अभिवृत्ति निर्माण को प्रभावित करते हैं। इसके अतिरिक्त पढ़ाई की सुविधाएं एवं अन्य कठिनाइयाँ भी उसकी अभिवृत्ति को प्रभावित करती हैं। इनमें से बहुत से कारकों को नियन्त्रित किया जा सकता है। यदि अध्यापक और प्रधानाध्यापक चाहें तो न केवल कर्मचारी वर्ग में दृष्टिबाधितों के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति विकसित कर सकते हैं बल्कि अपने उदाहरण से विद्यार्थियों में भी उनके प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति को विकसित कर सकते हैं। जब दृष्टिबाधित बच्चे को अनुकूल एवं स्वीकार करने वाला वातावरण मिलेगा तो उसकी अभिवृत्ति भी सकारात्मक होगी और वह दृष्टिबाधा को जीवन में आने वाली अन्य कठिनाइयों की तरह ही स्वीकार करेगा। इसके विपरीत यदि उसे नकारात्मक अभिवृत्तियों का सामना करना पड़ेगा तो उसके अन्दर दृष्टिबाधा के प्रति नकारात्मक अभिवृत्ति पनपेगी। जीवन में दृष्टिबाधा के कारण आने वाली कठिनाइयाँ भी दृष्टिबाधितों का दृष्टिबाधा के प्रति अभिवृत्ति को सुनिश्चित करती हैं। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि दृष्टिबाधा से दृष्टिबाधित की अनेक कार्यों में दूसरों पर निर्भरता बढ़ जाती है। यदि उसे इन निर्भरताओं के कारण असफल होना पड़े तो उसकी अभिवृत्ति दृष्टिबाधा के प्रति नकारात्मक होगी। यह समस्या और भी गम्भीर हो जाती है जब उसके अपने ही आवश्यकता पड़ने पर सहायता करने से आनाकानी करते हैं। हम कहें कुछ भी, लेकिन सच्चाई यह है कि दृष्टिबाधितों को अनेक कार्यों के लिए दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता है और जब आवश्यकता पड़ने पर उन्हें सहयोग नहीं मिलता, उनके अन्दर दृष्टिबाधा के प्रति नकारात्मक अभिवृत्ति बढ़ती है। जीवन में ऐसे अनेक अवसर आते हैं जब दृष्टिबाधा व्यक्ति को उसकी कमी महसूस करा देती है। अतः दृष्टिबाधितों की दृष्टिबाधा के प्रति नकारात्मक अभिवृत्ति होना स्वाभाविक है।

अभिवृत्ति सुधार के उपाय – अध्यापक एवं समाज की भूमिका:

दृष्टिबाधितों के प्रति समाज में व्याप्त नकारात्मक अभिवृत्तियाँ न केवल उनकी उन्नति में बाधक होती हैं, बल्कि इससे समाज की उन्नति भी अधूरी रहती है। दृष्टिबाधित व्यक्ति भी मानव संसाधन है जिसका उपयोग समाज की तथा उसकी

अपनी उन्नति के लिये किया जाना चाहिए। वैसे तो हम मानव अधिकारों की बात करतें हैं और सारी दुनिया को सहिष्णुता एवं वसुधैव कुटुम्बकम् का पाठ पढ़ाते हैं, परन्तु अपने ही समाज के एक अंग को हेय दृष्टि से देखते हैं और उसे मूलभूत अधिकारों से भी वंचित रखना चाहते हैं। यदि हम सुसभ्य समाज के मापदंडों के अनुरूप मानवीय दृष्टिकोण विकसित करना चाहते हैं तो हमें समाज में सुधार लाने होंगे। इन सुधारों को मूर्त रूप देने में समाज एवं अध्यापकों की प्रमुख भूमिका है। अतः समाज को, विशेष रूप से अध्यापक को दृष्टिबाधितों के प्रति नकारात्मक अभिवृत्तियों को बदलने के लिए सशक्त भूमिका निभानी पड़ेगी। इसके लिए निम्नलिखित उपाय किये जा सकते हैं:

1. अध्यापक स्वयं में दृष्टिबाधितों के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति विकसित करें– यदि अध्यापक की स्वयं की दृष्टिबाधितों के प्रति अभिवृत्ति सकारात्मक नहीं होगी तो वह दूसरों की अभिवृत्ति में परिवर्तन नहीं ला सकता। इसलिए अध्यापक को पहले अपने अन्दर सकारात्मक परिवर्तन लाना होगा। इन परिवर्तनों को लाने के लिए अध्यापक को दृष्टिबाधितों की क्षमताओं एवं उनकी कठिनाइयों की जानकारी प्राप्त करनी होगी। जानकारी प्राप्त करने के बाद ही अध्यापक दृष्टिबाधितों के प्रति अपने अन्दर सकारात्मक अभिवृत्तियाँ विकसित करके दूसरों को इसके बारे में बता सकता है।

2. शिक्षक प्रशिक्षण के दौरान दृष्टिबाधितों के विषय में जानकारी देना– चूँकि शिक्षक सामाजिक परिवर्तन लाने में प्रमुख भूमिका निभा सकता है, इसलिए यह आवश्यक है कि प्रशिक्षण के दौरान उन्हें उन क्षेत्रों की जानकारी दी जाये जिनमें परिवर्तन की आवश्यकता है। शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में दृष्टिबाधितों से सम्बन्धित जानकारी एवं उनकी शिक्षा में अध्यापकों की भूमिका आदि को सम्मिलित करना होगा ताकि अध्यापक दृष्टिबाधितों के प्रति अभिवृत्ति परिवर्तन में योगदान दे सकें।

3. सेवा कालीन प्रशिक्षण के दौरान दृष्टिबाधितों के विषय में जानकारी प्रदान करना– देश में बहुत से ऐसे अध्यापक हैं जिन्हें दृष्टिबाधितों के विषय में सही जानकारी नहीं है। इसलिए आवश्यक है कि सेवा कालीन प्रशिक्षण के दौरान अध्यापकों को दृष्टिबाधितों की शिक्षा एवं उनसे सम्बन्धित अन्य जानकारी दी जाये। दृष्टिबाधितों की शिक्षा तथा अन्य जानकारी को सेवा कालीन प्रशिक्षण में सम्मिलित करना चाहिए।

4. विद्यार्थियों में दृष्टिबाधितों के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति विकसित करना– हम जानते हैं कि यदि समाज में परिवर्तन लाना है तो बच्चों की अभिवृत्ति में परिवर्तन लाना आवश्यक है क्योंकि बच्चे समाज का भविष्य हैं। बच्चों पर अध्यापक का बहुत प्रभाव होता है और यदि अध्यापक चाहे तो अपने प्रभाव के द्वारा समाज में परिवर्तन ला सकता है। अध्यापक विद्यार्थियों को दृष्टिबाधित व्यक्तियों की उपलब्धियों को बताते हुए उनके प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति विकसित कर सकता है। मानवीय मूल्यों का प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में बहुत महत्त्व होता है और अध्यापक को विद्यार्थियों के अन्दर इन मूल्यों का विकास करना चाहिए। मानवीय मूल्यों का विकास निश्चित रूप से दृष्टिबाधितों के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति विकसित करने में सहायक होगा।

5. सहकर्मियों में दृष्टिबाधितों के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति विकसित करना– अध्यापक अपने सहकर्मियों के साथ चर्चा के दौरान दृष्टिबाधितों के विषय में बातचीत करके उनके प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति विकसित कर सकता है। आपसी वार्तालाप के दौरान उनके विषयों पर चर्चा होती है और यदि दृष्टिबाधितों पर भी चर्चा की जाये तो इससे न केवल जानकारी बढ़ेगी, बल्कि सकारात्मक अभिवृत्ति विकसित करने में भी सहायता मिलेगी।

6. अध्यापक द्वारा सामाजिक जागृति का अभियान– यह सर्व विदित है कि समाज में अध्यापक का बहुत सम्मान होता है और अध्यापक समाज परिवर्तन में महत्त्वपूर्ण योगदान कर सकता है। विभिन्न आयोजनों, आपसी चर्चा एवं विभिन्न अवसरों पर बातचीत के दौरान अध्यापक दृष्टिबाधितों की समस्याओं पर चर्चा करके समाज में दृष्टिबाधितों के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति विकसित कर सकता है। इस तरह से अध्यापक समाज की दृष्टिबाधितों के प्रति अभिवृत्तियों को सकारात्मक बनाने में योगदान दे सकते हैं।

7. दृष्टिबाधितों के प्रति समाज की अभिवृत्ति सुधार में संचार माध्यमों की भूमिका– अभिवृत्ति परिवर्तन एवं समाज सुधार में संचार माध्यमों की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। आज दूरदर्शन की पहुँच देश के कोने-कोने तक है और इस माध्यम का प्रयोग दृष्टिबाधितों के प्रति सामाजिक अभिवृत्तियों को सकारात्मक बनाकर उसके दृष्टिकोण को बदलने में सहायक हो सकती है। दूरदर्शन पर दिखाए गये कोई भी कार्यक्रम लोगों पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव छोड़ते हैं। अतः दृष्टिबाधितों के प्रति सामाजिक अभिवृत्ति बदलने के लिए ऐसे कार्यक्रम बनाकर दिखाये जाने चाहिएं जिनसे सामाजिक दृष्टिकोण में परिवर्तन लाया जा सके। इसी

प्रकार रेडियो पर वार्ताओं, नाटकों तथा बातचीत के द्वारा समाज के दृष्टिकोण में सुधार लाया जा सकता है। सिनेमा भी बहुत ही प्रभावशाली माध्यम है और इसके द्वारा सकारात्मक एवं यथार्थवादी फिल्में दिखाई जाती हैं तो भी समाज के दृष्टिकोण में सुधार होगा। समाचार पत्र एवं पत्रिकाएं भी अपने लेखों में दृष्टिबाधितों से सम्बन्धित जानकारी समाज को देकर उसके दृष्टिकोण में परिवर्तन ला सकते हैं।

8. साहित्य में दृष्टिबाधितों के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति को सम्मिलित करना- ऐसा साहित्य बहुत कम पाया जाता है जिसमें दृष्टिबाधितों को समुचित स्थान दिया गया है। अतः इस बात की आवश्यकता है कि साहित्यकार अपने साहित्य में ऐसी कहानियों, लेखों तथा कविताओं को सम्मिलित करें जिससे समाज में दृष्टिबाधितों के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति का विकास हो।

अध्याय-20

प्रत्यय निर्माण एवं विकास

–डॉ. एस. सान्याल

मानव द्वारा किसी वस्तु, स्थान तथा घटना के लिए शब्दों के प्रयोग की क्षमता के विकास को ही साधारणतया प्रत्यय-निर्माण कहा जाता है, यह विकास शिक्षा एवं अधिगम का परिणाम होता है, प्रस्तुत अध्याय में प्रत्यय का अर्थ तथा परिभाषा, प्रत्यय-निर्माण के चरण, प्रत्यय-निर्माण की प्रक्रिया, दृष्टिहीनता (पूर्ण अथवा आंशिक) का प्रत्यय-निर्माण पर नकारात्मक प्रभाव, उन्हें दूर करने के उपाय तथा इसमें अध्यापक की भूमिका आदि की चर्चा की गई है।

प्रत्यय का अर्थ एवं परिभाषा:

प्रत्यय एक सामान्य धारणा अथवा ज्ञान की इकाई है, जो अनुभवों का परिणाम है। अनेक बार कुत्ता, बिल्ली, पेड़ आदि देखने के बाद हमारे मन में इनकी विशेषताओं, गुण, धर्म, सम्बन्ध आदि के बारे में सामान्य धारणा बनती है। जब किसी वस्तु अथवा वर्ग के बारे में सामान्यीकृत धारणा निर्मित होती है, तब हम कहते हैं कि उस वस्तु के बारे में 'प्रत्यय निर्माण' हो गया है।

प्रत्यय का आधार अनुभव होता है। जैसे-जैसे बालक के अनुभवों में वृद्धि होती है, वैसे-वैसे उसके प्रत्ययों के संख्या बढ़ती है। एक बालक ने पहली बार पेड़ का प्रत्यय निर्माण करते समय हो सकता है कि सबसे पहले 'पेड़' शब्द सुना हो, साथ ही साथ 'आम का पेड़' देखा हो। बाद में हो सकता है उसने वही शब्द 'अशोक के पेड़' के लिए सुना हो, जिसकी बनावट 'आम के पेड़' से भिन्न है। कुछ समय के बाद 'अमरूद के पेड़' के लिए भी वही शब्द सुनता है। बाद में जब वह 'बरगद का पेड़' देखता है तथा उसे भी पेड़ के रूप में पहचानता है, तो यह स्पष्ट होता है कि उसे इस पेड़ में भी अन्य पेड़ों के समान लक्षण दिखाई देते हैं। स्पष्ट है कि बालक के मस्तिष्क में पेड़ का प्रत्यय बन चुका है। उसके मस्तिष्क में पेड़ से सम्बन्धित एक विचार, प्रतिमा या प्रतिमान (Pattern) का निर्माण हो गया है। इसी विचार, प्रतिमा, प्रतिमान या सामान्य ज्ञान को 'प्रत्यय' कहते हैं। धीरे-धीरे बालक कुत्ता, बिल्ली, मेज, कुर्सी आदि सैकड़ों प्रत्ययों का निर्माण कर लेता है।

प्रत्यय आरम्भ में अस्पष्ट और अनिश्चित होते हैं। ज्ञान, अनुभव और समय की गति के साथ-साथ वे स्पष्ट और निश्चित रूप धारण करते चले जाते हैं। प्रत्यय और प्रत्यय ज्ञान क्या है, इसे अधिक स्पष्ट करने के लिए हम कुछ लेखकों द्वारा दी हुई परिभाषाओं को उद्धृत करते हैं:

बोरिंग, लैंगफील्ड एवं वील्ड (Boring, Langfeld and Weld) के अनुसार, प्रत्यय क्रियाशील ज्ञानात्मक मनोवृत्ति (Active Cognitive-Disposition) है। 'प्रत्यय' देखी हुई वस्तु का मन में नमूना या प्रतिमान (Pattern mind) है।"

वुडवर्थ (Woodworth) के अनुसार, "प्रत्यय वे विचार हैं, जो वस्तुओं, घटनाओं, गुणों आदि का उल्लेख करते हैं।"

प्रत्यय निर्माण की प्रक्रिया:

हमें बाह्य संसार का ज्ञान ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा प्राप्त होता है। ज्ञानेन्द्रिय के माध्यम से प्राप्त साधारण मानसिक अनुभव को संवेदना या ज्ञानेन्द्रिय ज्ञान कहते हैं। यह ज्ञान प्राप्ति की पहली सीढ़ी है। 'संवेदना' का पूर्व ज्ञान या पूर्व अनुभव से कोई सम्बन्ध नहीं होता है। उदाहरणार्थ-- शिशु के कानों में कोई आवाज आती है--उसे सुनता है, पर वह यह नहीं जानता है कि आवाज किसकी है और कहाँ से आ रही है? उसे इस प्रकार का न तो पूर्व ज्ञान होता है और न ही पूर्व अनुभव। आवाज के इसी प्रकार के ज्ञान को 'संवेदना' कहते हैं। संवेदना के अभाव में किसी भी प्रकार के ज्ञान की अनुभूति नहीं की जा सकती है। संवेदना द्वारा प्राप्त ज्ञान में अर्थ नहीं होता है। समय के साथ-साथ बालक का अनुभव बढ़ता जाता है। वह आवाज को दूसरी या तीसरी बार सुनता है। अब वह जानता है कि आवाज किसकी है और कहाँ से आ रही है। आवाज के इस प्रकार के ज्ञान को 'प्रत्यक्षीकरण' कहते हैं। प्रत्यक्षीकरण, संवेदना और अर्थ का योग है। इसका पूर्व ज्ञान या पूर्व अनुभव से स्पष्ट सम्बन्ध होता है, इसलिये इसको ज्ञान प्राप्ति की दूसरी सीढ़ी माना जाता है।

बालकों में 'प्रत्ययों' के आधार उनके पूर्व अनुभव, पूर्व संवेदनायें और पूर्व प्रत्यक्षीकरण होते हैं। इसलिये प्रत्यय ज्ञान, ज्ञान प्राप्ति की तीसरी सीढ़ी है और इसे पिछले अनुभवों से सम्बन्धित माना जाता है। प्रत्यय के निर्माण करने में बालक में कुछ मानसिक प्रक्रियाएं होती हैं, यथा--

1. निरीक्षण (Observation)- बालक प्रथम बार अनेक वस्तुयें देखता है और उनकी मानसिक प्रतिमाओं का निर्माण करता है।

2. तुलना (Comparison)- वह जिन वस्तुओं की मानसिक प्रतिमाओं का निर्माण करता है, उसमें समानता को ढूँढता है।

3. पृथक्करण (Abstraction)- वह वस्तुओं की समानताओं या समान गुणों को भिन्नताओं से अलग करके जोड़ देता है।

4. सामान्यीकरण (Generalisation)- समान गुणों को संग्रह करने के पश्चात् उसे किसी वर्ग, समूह या जाति का ज्ञान हो जाता है।

5. परिभाषा निर्माण (Defining a Concept)- उपर्युक्त चार मानसिक क्रियाएं करने के बाद बालक अब प्रत्यय निर्माण कर लेता है। अब वह किसी वस्तु विशेष के बारे में न सोचकर सामान्य रूप से जातिगत विशेषता के बारे में सोच सकता है।

प्रत्यय निर्माण के स्तर–

प्रत्यय निर्माण निम्नलिखित चार स्तरों में होता है:

1. मूर्त स्तर– जब बालक किसी वस्तु को देखकर पहचान लेता है तथा आंतरिक रूप से उसे समझ लेता है, तो वह मूर्त स्तर का प्रत्यय कहलायेगा। जैसे-- एक छोटा बालक 'कुत्ते' को पहचानना या जानना सीख लेता है।

2. पहचान का स्तर (Identity Level)- अब बालक उसी वस्तु को अलग-अलग समय या जगह पर देखने पर भी उसे पहचान सकता है, यानी कि बालक अब सामान्यीकरण कर सकता है। वह अपने पालतू कुत्ते को किसी भी तरफ से देखकर पहचान लेता है।

3. वर्गीकरण का स्तर (Classificatory Level)- इस स्तर पर बालक कम से कम दो एक जैसी वस्तुओं को समतुल्य के रूप में पहचान सकता है, चाहे उनके गुणधर्मों की समानताओं का वह वर्णन भी न कर पाये, जैसे-- बालक अलग-अलग कुत्तों को देखकर सभी को पहचानता है। 'कुत्ता' शब्द का प्रयोग करता है, लेकिन हो सकता है वह उसके गुणधर्मों की तुलना न भी कर पाये।

4. औपचारिक स्तर (Formal Level)- इस स्तर पर बालक प्रत्यय का नाम बताकर परिभाषित कर सकता है। एक वस्तु से दूसरी वस्तुओं की अलग विशेषताओं को स्पष्ट कर सकता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि अगर प्रत्यय निर्माण के लिए दृष्टिवान बालक को इन स्तरों से गुजरना होता है, तो दृष्टिबाधित बालक को इनसे गुजरने में क्या कोई कठिनाई होती है? इस प्रश्न के उत्तर के लिए आइये अब दृष्टिबाधितों में प्रत्यय निर्माण एवं विकास पर प्रकाश डाला जाये।

दृष्टिबाधितों में प्रत्यय निर्माण एवं विकास की समस्याएं एवं विधियाँ:

मूर्त स्तर से औपचारिक स्तर तक का प्रत्यय निर्माण प्राप्त सूचनाओं के गुण तथा परिणाम पर निर्भर है। जैसे-- हर नयी ईंट मकान को मजबूत बनाती है, ठीक उसी तरह नया अनुभव मानसिक प्रक्रिया को सुदृढ़ बनाता है।

आमतौर पर लगभग 4-6 हफ्तों की आयु सीमा से ही एक दृष्टिवान शिशु को नयी-नयी दृष्टि उद्दीपनाएं मिलती रहती हैं। दृष्टि के माध्यम से वह दूर से ही वस्तुओं के बारे में जानकारी प्राप्त कर लेता है तथा वस्तुओं को 'समग्र' (As a whole) रूप में देख लेता है। वस्तु के 'स्थायित्व' सम्बन्धी प्रत्यय उसे मस्तिष्क में बहुत जल्दी ही बनने लगता है।

दृष्टिहीन बालक सीखने के इस महत्त्वपूर्ण अवसर से वंचित रह जाता है। वह वस्तु को दूर से समग्राकृति में देख नहीं पाता, ऐसे में सुनकर तथा स्पर्श के माध्यम से प्रत्यय निर्माण करता है। स्पर्श के माध्यम से वस्तु के बारे में जानकारी अंश से समग्र की ओर बढ़ती है। एक बार वस्तु शरीर की सीमा से दूर चली जाये तो उसके लिए उस वस्तु के उपस्थित होने का आभास नहीं होता।

ध्वनि की भी कुछ अपनी सीमाएं हैं, जब तक उसमें कोई अर्थ न जोड़ा जाये, तब तक किसी भी वस्तु के प्रत्यय बनाने में वह सहायक नहीं हो सकती है। स्पर्श तथा श्रवण दोनों में इन सीमाओं के कारण दृष्टिबाधितों को वस्तु के स्थायित्व सम्बन्धी प्रत्यय बनाने में अधिक समय लगता है।

दृष्टिवानों की तरह दृष्टिबाधित बालक भी शुरू में मूर्त स्तर से ही गुजरता है। जैसे-जैसे उसका अनुभव बढ़ता है तथा वस्तुओं के बारे में अधिक जानकारी मिलती है, वह औपचारिक स्तर पर पहुँचता है। दृष्टि के अभाव के कारण अमूर्त स्तर के प्रत्यय निर्माण में कठिनाई होती है।

विभिन्न अध्ययनों से यह पता चलता है कि दृष्टिबाधित बालकों में प्रत्यय निर्माण की प्रक्रिया निम्न बातों से सम्बन्धित है--

(अ) सीखने का अवसर।

(ब) जीवन के अनुभवों के प्रकार तथा विस्तार।

(स) अपने वातावरण के बारे में मिलने वाली सभी सूचनाएं तथा उनके उपयुक्त वर्णन।

सभी बालकों के लिए संकल्पना (धारणा) का विकास अधिकतर ठोस अनुभवों पर निर्भर करता है। अन्य बालकों की अपेक्षा दृष्टिबाधित बालकों को प्रत्यय विकास के लिए निश्चित अनुभवों की अधिक आवश्यकता होती है।

विद्यालयपूर्व तथा प्राथमिक कक्षा के दृष्टिबाधित बालकों पर किये गये अध्ययनों से यह पता चलता है कि दृष्टिबाधा के कारण वस्तु संरक्षण (Conservation) प्रत्यय देर से बनता है (Canning 1957, Gottesman 1973, Stephens and Simpkins 1974, Tobin, 1972)। 8-11 वर्ष की आयु तक आते-आते दृष्टिबाधित बालकों के पास वजन तथा द्रव्यमान से सम्बन्धित संरक्षण के प्रत्यय दृष्टिवानों के समान हो जाते हैं।

जन्म से दृष्टिबाधित बच्चे अपने दृष्टिवान साथियों की तुलना में वातावरण को अलग तरह से अनुभव करते हैं। उनमें दृष्टि का अभाव अन्य ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्राप्त सूचनाओं को संकलित तथा व्यवस्थित करने में बाधा डालता है। उनके चलने-फिरने की क्षमताओं को सीमित कर देता है तथा वातावरण की अन्य वस्तु, घटना और व्यक्तियों के साथ अनुक्रिया करने में रुकावट डालता है।

(Davidson (1976), Foulke (1964) Santin and Neskei, Simmons (1977), Scholl (1973), Wills (1965), के अनुसार-- दृष्टिवान बालकों के प्रत्यय, जो कि उनके दृष्टिमूलक अनुभवों से जुड़े होते हैं, दृष्टिबाधित बालकों के प्रत्यय से अलग हो सकते हैं। दृष्टिबाधित बालकों में यह प्रत्यय ज्ञान स्पर्श, श्रवण, घ्राण तथा स्वाद ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्राप्त होता है। ये सूचनायें दृष्टि से प्राप्त सूचना की तुलना में अनियत होती हैं।

यूरोपीय तथा अमरीकी देशों में किये गये विभिन्न अनुसंधानों में दृष्टिवान तथा दृष्टिबाधितों में प्रत्यय निर्माण की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण अन्तर पाये गये हैं, जबकि भारत में दृष्टिवान तथा दृष्टिबाधितों के प्रत्यय विकास पर किये गये तुलनात्मक अध्ययन में यह अन्तर नाममात्र का पाया गया है। (Advani, 1996)

दृष्टिहीनों के प्रत्यय निर्माण एवं विकास में अध्यापकों की भूमिका एवं उत्तरदायित्वः

दृष्टिहीनों के लिए प्रत्यय निर्माण तथा विकास करने में अध्यापक एक प्रमुख भूमिका निभाता है। समय, स्थिति, दिशा, आकार, आकृति, क्रम तथा कार्य-कारण क्षेत्रों से विभिन्न सम्बन्धित प्रत्यय निर्माण करने में अध्यापक अनेक क्रियायें करवा सकते हैं। यथा--

1. वस्तु के प्रति जागरूकता सम्बन्धी प्रत्यय (Concepts related to Awareness of Objects)– हम सभी जानते हैं कि वस्तु प्रत्यय बनाने के लिए वस्तुओं के निरीक्षण तथा उनके सामान्य लक्षणों को पहचानना और विषमताओं के आधार पर पृथक् करना सम्मिलित है। वस्तु प्रत्यय निर्माण के लिए वस्तुओं में समानता तथा विभिन्नता की जानकारी महत्त्वपूर्ण है। दृष्टिबाधित बालकों में प्रत्यय निर्माण के लिए अध्यापक द्वारा बालक को पर्याप्त अनुभव देना होगा।

विभिन्न प्रकार की वस्तुओं को उनके गुणों के आधार पर पहचानने का अवसर देना होगा जैसे-- छोटा/लम्बा, बड़ा/छोटा, खुरदरा/चिकना, कठोर/मुलायम, सूखा/गीला आदि। इन विशेषताओं से सम्बन्धित बहुत-सी वास्तविक वस्तुओं को स्पर्श करने का अवसर देना होगा।

2. समय तथा दूरी सम्बन्धी प्रत्यय– समय तथा दूरी सम्बन्धी प्रत्यय किसी भी बालक के लिए एक कठिन संकल्पना है। दृष्टिबाधित बालकों में यह प्रत्यय निर्माण करने के लिए अध्यापक कुछ समय पहले, क्या घटना घटित हुई है? इस पर बातचीत कर सकते हैं। धीरे-धीरे भविष्य में क्या हो सकता है? इस बारे में चर्चा कर सकते हैं। बातचीत के माध्यम से कल, आज और आने वाले कल की घटना के संदर्भ में इसका प्रत्यय निर्माण किया जा सकता है। बालक की दिन-प्रतिदिन की जीवनचर्या के साथ जोड़कर दिन-रात की अवधारणा को बनाया जा सकता है। क्रमशः महीने के दिन, ऋतु, मौसम, वर्ष आदि के प्रत्यय बनाने होंगे। कुछ शब्दों जैसे-- नया/पुराना, कभी नहीं/अक्सर/हमेशा को अलग-अलग संदर्भ में समझाना चाहिये।

समय के साथ गति का प्रत्यय जुड़ा हुआ है। इस प्रत्यय के विकास के लिए बालक को विभिन्न वाहनों की गति का अनुभव देकर उनके द्वारा तय की गयी दूरी और लिये गये समय की चर्चा करनी चाहिये।

3. संख्या सम्बन्धी प्रत्यय– मूर्त वस्तु जैसे-- टॉफियाँ, खिलौने, पत्थर, पत्तियाँ आदि की सहायता से गिनती सिखायी जानी चाहिये। साथ ही साथ कम/अधिक का प्रत्यय सिखाया जा सकता है।

4. आकृति (Shape) सम्बन्धी प्रत्यय– कुछ ठोस क्रियाओं के माध्यम से अध्यापक दृष्टिबाधित छात्रों में आकृति का प्रत्यय विकसित कर सकता है। छात्रों को विभिन्न ठोस ज्यामितीय आकृति देकर अलग छाँटकर रखने के लिए कहा जा सकता है। छात्रों को गुंथे हुए आटे या मिट्टी से विभिन्न आकृति बनाने को कहा जा सकता है। वातावरण की विभिन्न वस्तुओं को आकृति के आधार पर वर्गीकृत कराया जा सकता है। जैसे-- गोलाकार के लिए गेंद, बेलनाकार के लिए टॉर्च सेल आदि।

5. आकार सम्बन्धी प्रत्यय– पहले छात्रों को समान आकार की वस्तुओं को मिलान करने के लिए दिया जाना चाहिये। धीरे-धीरे विभिन्न आकार वाली वस्तुओं को बढ़ते हुये या घटते हुये क्रम में सजाने के लिए कहा जा सकता है। विभिन्न घरेलू वस्तुओं, फल, सब्जी आदि की सहायता से आकार के प्रत्यय को बनाया जा सकता है। एक बार दृष्टिबाधित बालक द्वारा आकार, आकृति की भिन्नता को समझ लेने के बाद विभिन्न आकृतियों का मिलान या उनके वर्गीकरण करने का प्रत्यय बनाया जा सकता है।

निष्कर्षतः समय, स्थिति, दिशा, आकार, आकृति, क्रम तथा कार्य-कारण से सम्बन्धित मूलभूत प्रत्ययों के विकास के लिए एक अध्यापक को निम्न कारकों पर अवश्य ध्यान देना चाहियेः

- अधिक से अधिक मूर्त अनुभव प्रदान करने चाहियें।
- अनुभवों का एकीकरण करना आवश्यक है।
- बहुसंवेदी (Multi Sensory Approach) रूप से अनुभव प्रदान करना चाहिये।
- दृष्टिबाधित बालकों के प्रत्यय निर्माण में कोई देर या पिछड़ापन न हो, इसलिये व्यवस्थित निर्देशन देना आवश्यक है।
- किसी भी प्रत्यय को केवल मौखिक रूप से नहीं सिखाना चाहिये। क्रियाशीलता पर आधारित विधि होनी चाहिये।

- वर्गीकरण तथा तार्किक चिन्तन से सम्बन्धित क्रियाओं पर विद्यालय में वल देना चाहिये।

- चिन्तन को अधिक व्यवस्थित करने के लिए अर्थपूर्ण शव्द भण्डार का प्रयोग करना आवश्यक है।

- किशोर अवस्था में समस्या-समाधान से सम्बन्धित स्थितियों को किशोर के समक्ष प्रस्तुत करना चाहिये।

खण्ड - चार

अध्याय-21

गणित शिक्षण

-डॉ. सुशील कुमार

विद्यालयी शिक्षा में बालक को विभिन्न विषयों के माध्यम से समाज में उपयोगी नागरिक बनाने का प्रयास क़िया जाता है। विद्यालयी शिक्षा के पाठ्यक्रम में जिन विषयों को सम्मिलित किया जाता है, उन सभी का महत्त्वपूर्ण स्थान है, किन्तु इनमें गणित का विशेष स्थान है, क्योंकि गणित जहाँ एक ओर दैनिक जीवन में काम आने वाली विभिन्न क्रियाओं को करने में सहायक होता है, वहीं दूसरी ओर अन्य विषयों के शिक्षण में भी सहायक होता है। इस अध्याय में गणित के अर्थ एवं परिभाषा के साथ-साथ दृष्टिबाधितों के लिए गणित शिक्षण के इतिहास, गणित शिक्षण की आवश्यकता एवं महत्त्व, गणित शिक्षण में आने वाली समस्याएं, उपयुक्त स्पर्शीय चित्र एवं सहायक सामग्री, गणितीय ज्ञान के मूल्यांकन, गणित शिक्षण के उद्देश्यों के व्यावहारिक स्वरूप, मौखिक गणित का महत्त्व तथा गणितीय पाठ्य-पुस्तकों के अनुकूलन को सम्मिलित किया गया है। इसके अतिरिक्त दृष्टिबाधितों को अंकगणित, बीजगणित व रेखागणित पढ़ाने हेतु आदर्श पाठ योजनाओं को भी इसी अध्याय में सम्मिलित किया गया है।

गणित का अर्थ एवं परिभाषाः-

दृष्टिबाधितों के संदर्भ में गणित शिक्षण के विषय में जानने से पहले आइए देखें गणित किसे कहते हैं? दूसरे शब्दों में, गणित का अर्थ तथा परिभाषा की जानकारी प्रस्तुत अध्याय को समझने में उपयोगी सिद्ध होगी। कुछ शब्दकोषों में इसे अंकों, संख्याओं तथा स्थान आदि से सम्बन्धित विज्ञान बताया गया है, जबकि अन्य में इसे माप-तौल परिमाण और आकार-प्रकार से सम्बन्धित विज्ञान। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि गणित अंक, अक्षर तथा चिह्न आदि अपनी सांकेतिक भाषा से युक्त वह विज्ञान है, जिसकी मदद से हमें अपने भौतिक वातावरण से सम्बन्धित परिमाण, दिशा और स्थान इत्यादि के विषय में जानकारी प्राप्त होती है।

दृष्टिबाधितों के गणित शिक्षण का इतिहासः-

यूरोप के सांस्कृतिक पुनर्जागरण के पश्चात् 18 वीं शताब्दी के अन्त में ही दृष्टिबाधितों की औपचारिक शिक्षा प्रारम्भ हो सकी। इससे पहले अनेक दृष्टिबाधित व्यक्तियों ने अपनी बौद्धिक क्षमता तथा कठिन परिश्रम के बल पर ख्याति अर्जित

की, लेकिन इनमें से अधिकांश का कार्यक्षेत्र दर्शन, साहित्य अथवा संगीत था। निकोलस सॉडरसन (1682-1739) प्रथम ख्याति प्राप्त दृष्टिहीन गणितज्ञ के रूप में जाने जाते हैं। इनकी प्राथमिक शिक्षा घर पर ही इनके पिता की देख-रेख में हुई तथा बाद में इन्हें दृष्टिवान बालकों के विद्यालय में पढ़ने के लिए भेज दिया गया। सॉडरसन की गणितीय प्रतिभा से सभी प्रभावित थे। अधिकांश गणित के प्रश्न तो ये मौखिक रूप से ही हल कर लिया करते थे। कठिन प्रश्नों के हल हेतु इन्होंने एक गणित बोर्ड का विकास किया। आधुनिक टेलर बोर्ड इसी का सुधरा हुआ रूप है। इसे आजकल दृष्टिबाधित छात्र सामान्य रूप से गणितीय गणना हेतु प्रयोग में लाते हैं। प्रवेश पाने की इच्छा से सॉडरसर कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय गए, वहाँ इन्हें प्रवेश तो नहीं मिला लेकिन इन्हें विश्वविद्यालय के पुस्तकालय के प्रयोग की अनुमति मिल गयी। कुछ समय पश्चात् इन्हें सर आइजैक न्यूटन के सिद्धान्तों पर एक व्याख्यान देने के लिए कहा गया। यह माना जाता है कि सर आइजैक न्यूटन के जटिल सिद्धान्तों को समझने वाले कुल बारह व्यक्यिों में से ये एक थे। सर आइजैक न्यूटन सॉडरसन की गणितीय विद्वता से अत्यन्त प्रभावित थे। उनके सुझाव के आधार पर इन्हें कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के गणित शास्त्र विभाग में प्राध्यापक के पद पर नियुक्त कर दिया गया, जहाँ ये जीवनपर्यन्त कार्यरत रहे। सन् 1719 में सॉडरसन को रॉयल सोसायटी का फैलो बनाया गया। सन् 1728 में सम्राट जॉर्ज द्वितीय ने इन्हें डॉक्टर ऑफ लॉज़ की मानद उपाधि से विभूषित किया। सॉडरसन की विशिष्ट उपलब्धियों से न केवल यह सिद्ध हुआ कि दृष्टिबाधितों को गणित पढ़ाया जा सकता है, वरन् इस तथ्य को भी बल मिला कि दृष्टिबाधित गणित में विशेषज्ञता प्राप्त कर सकते हैं।

18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जर्मनी के क्रिस्चियन नाइसेन ने दृष्टिहीनों को गणित तथा भौतिकी पढ़ाने के लिए पेग बोर्ड में कुछ बदलाव किए तथा इनके माध्यम से गणित तथा भौतिकी सम्बन्धी अनेक प्रत्ययों को पढ़ाने में सफलता प्राप्त की। नाइसेन के पेग बोर्ड से प्रभावित होकर वैलेन्टीन औई ने संख्या बोर्ड का निर्माण किया, जिसमें उन्होंने उभरे हुए गणितीय चिह्नों से युक्त पेगों का प्रयोग किया। ज्युने तथा क्लाइन ने 19वीं शताब्दी के शुरू में दृष्टिबाधितों के गणित शिक्षण को गम्भीरता से लिया। दोनों ने गणित पढ़ाने के लिए अबेकस का उपयोग किया। ऑस्ट्रिया के क्लाइन के मतानुसार, "गणित पढ़ाने तथा सीखने में गणितीय सहायक युक्तियों तथा सामग्री का अपना स्थान है, लेकिन दृष्टिबाधितों के संदर्भ में मौखिक गणित सर्वाधिक उपयोगी होता है, इसलिए गणित शिक्षण में मौखिक गणित का विशेष स्थान होना चाहिए।" क्लाइन ने दृष्टिबाधितों के अध्यापकों हेतु सम्भवतः

पहली निर्देश पुस्तिका लिखी, जिसमें गणित सहित अन्य विषयों की शिक्षण विधियों का उल्लेख किया गया।

ब्रेल लिपि के आविष्कार के साथ ही अन्य विषयों सहित गणित सीखने तथा सिखाने की नई सम्भावनाएं जागृत हुईं। 19वीं शताब्दी के अन्तिम दशक में ब्रेलर के आविष्कार से दृष्टिबाधितों द्वारा गणित लेखन तथा पठन सुविधाजनक हो गया, लेकिन गणितीय ब्रेल संहिता के अभाव में तब भी दृष्टिबाधितों को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता था। सन् 1917 में टेलर ने गणितीय ब्रेल संहिता प्रस्तुत की। उस समय इसे मानक अंग्रेजी में स्वीकार कर लिया गया। जापानी गणित ब्रेल संहिता भी इसी के आधार पर तैयार की गयी। सन् 1929 में मार्बर्ग प्रणाली का विकास हुआ। इस प्रणाली के अन्तर्गत विभिन्न यूरोपीय देशों में प्रचलित गणितीय ब्रेल चिह्नों को सम्मिलित किया गया। 'विश्व दृष्टिहीन कल्याण परिषद्' ने सन् 1959 में विभिन्न देशों में प्रचलित गणित संहिताओं में एकरूपता की सम्भावना पर विचार किया, लेकिन इसे विशेष समर्थन नहीं मिल पाया। 1960 के दशक में जापानी गणित ब्रेल संहिता को विश्व संहिता के रूप में विकसित करने पर विचार किया गया, लेकिन इस प्रयास को सफलता नहीं मिल पायी। सन् 1963 में 'सोवियत दृष्टिहीन संघ' ने मार्बर्ग संहिता पर आधारित एकीकृत गणित ब्रेल संहिता विकसित करने का निर्णय लिया। इनकी नई संहिता 1973 में बनकर तैयार हो गई तथा इसके अंग्रेजी अनुवाद को 1975 में प्रकाशित किया गया। लगभग इसी समय स्पेन में एकीकृत गणित संहिता विकसित की गई, जिसे 'U' संकेत चिह्न ('U' notation) के नाम से जाना जाता है।

सन् 1955 में संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रोफेसर नेमथ ने एक संगठित तथा व्यापक गणित ब्रेल संहिता का विकास किया, जो यूरोपीय देशों में प्रचलित संहिताओं से भिन्न थी। इस संहिता को काफी प्रयोगों के पश्चात् 1973 में अन्तिम रूप दिया गया। इस संहिता की विशेषता यह है कि इसमें गणित तथा विज्ञान में प्रयुक्त होने वाले सभी चिह्नों के लिए ब्रेल चिह्न उपलब्ध कराए गये हैं। ब्रेल चिह्नों के प्रयोग के नियम यद्यपि कुछ जटिल हैं, पर इतने स्पष्ट हैं कि इनके प्रयोग में कहीं पर भी किसी प्रकार का भ्रम नहीं होता। यानी इस संहिता को 70 तथा 80 के दशकों में कई अन्य देशों में मान्यता मिली, जिनमें अमरीकी देश मुख्य रूप से शामिल हैं।

भारत में गणित ब्रेल संहिता की वैसी ही स्थिति थी, जैसी भारती ब्रेल की स्वीकृति से पहले साहित्यिक ब्रेल की थी, अर्थात् विभिन्न संस्थाओं में गणित की पुस्तकों को ब्रेलीकृत करने के लिए अलग-अलग चिह्नों का प्रयोग किया जाता

था। इसके कारण दृष्टिबाधित छात्रों व शिक्षकों को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता था। इन समस्याओं को दूर करने के लिए 70 के दशक में दृष्टिहीनार्थ राष्ट्रीय समिति एन.ए.बी. (इण्डिया) ने भारत के लिए सर्वमान्य गणित ब्रेल संहिता बनाई, पर यह संहिता सभी संस्थाओं को स्वीकार्य नहीं हुई, क्योंकि इसमें जहाँ एक ओर सम्मिलित ब्रेल चिह्न भ्रामक थे, वहीं दूसरी ओर गणित व विज्ञान के सभी चिह्नों के लिए ब्रेल चिह्न नहीं बनाए गये। अतः जुलाई, 1979 में दृष्टिबाधितार्थ राष्ट्रीय संस्थान की स्थापना के पश्चात् समान गणित व विज्ञान ब्रेल संहिता बनाने का प्रयास हुआ, जिसके अन्तर्गत विश्व में प्रयुक्त तीन गणित ब्रेल संहिताओं का तुलनात्मक अध्ययन किया गया। ये तीन संहिताएं थीं- आर.एन.आई.बी. गणित ब्रेल संहिता, रशियन ब्रेल संहिता तथा नेमथ ब्रेल विज्ञान एवं गणित संहिता। इन तुलनात्मक अध्ययनों के निष्कर्षों के आधार पर राष्ट्रीय दृष्टिबाधितार्थ संस्थान में 1988 में आयोजित एक कार्यशाला में यह निर्णय लिया गया कि नेमथ कोड को ही भारत में सर्वमान्य गणित ब्रेल संहिता के रूप में स्वीकार किया जाए, चूँकि यह कार्यशाला एक परियोजना के रूप में आयोजित की गई थी, जिसे यूनीसेफ ने प्रायोजित किया था और यूनीसेफ प्रायः 14 वर्ष तक के छात्रों के शिक्षण पर ध्यान केन्द्रित करती है, इसीलिए दसवीं कक्षा तक की गणित पाठ्य-पुस्तकों में प्रयुक्त गणित के चिह्नों पर आधारित एक गणित ब्रेल संहिता बनाई गई। इस संहिता में जो गणित चिह्न दिये हैं, उन सभी को नेमथ ब्रेल गणित एवं विज्ञान संहिता से लिया गया है। भारत के लिए स्वीकृत गणित ब्रेल के प्रयोग में दक्ष बनाने हेतु 1989 के पश्चात् राष्ट्रीय दृष्टिबाधितार्थ संस्थान ने विभिन्न राज्यों में कई प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए, जिनमें शिक्षकों तथा पुस्तकों को ब्रेलीकृत करने से सम्बद्ध विशेषज्ञों को इस संहिता के प्रयोग में प्रशिक्षित किया गया ताकि इस संहिता को प्रचलित किया जा सके। आज विभिन्न ब्रेल प्रेसों में गणित पुस्तकों को ब्रेलीकृत करने के लिए नेमथ ब्रेल संहिता पर आधारित भारतीय गणित ब्रेल संहिता का ही प्रयोग किया जाता है।

गणित शिक्षण की आवश्यकता एवं महत्त्वः-

विद्यालयों में वैसे तो अनेक विषय पढ़ाये जाते हैं; जिनकी अपनी-अपनी उपयोगिता है, परन्तु गणित का स्थान इनमें सर्वोपरि माना गया है। गणित वह साधन है जिसका मनुष्य से, विशेपकर उसके मस्तिष्क से गहरा सम्बन्ध है। प्राचीन यूनानी दार्शनिकों ने भी अपने अन्वेषणों का आधार गणित को ही बनाया, भारतीय पद्धति 'ज्योतिष' तथा अरबी प्रणाली 'रमल' विशुद्धतः गणित पर आधारित हैं। गणित हमारी मानसिक शक्तियों, जैसे कल्पना, तर्क, अन्वेषण, इच्छाशक्ति, एकाग्रता, आत्मविश्वास

आदि का विकास और परिष्कार करता है। गणित शिक्षण के मूल्यों के अध्ययन द्वारा हम इसकी आवश्यकता एवं महत्त्व को अधिक स्पष्ट कर सकते हैं। गणित शिक्षण के विभिन्न मूल्य इस प्रकार हैं:-

(1) प्रयोगात्मक मूल्य- हमारे जीवन का प्रत्येक क्षण तथा कार्यकलाप गणित से अछूता नहीं है, क्योंकि ये सभी माप-तौल तथा गणना पर आधारित हैं। सूर्योदय से ही हमारी दिनचर्या में गणित की आवश्कता पड़ती है। हमारे समस्त कार्यक्रमों की व्यवस्था-आय-व्यय का लेखा-जोखा, मासिक बजट सभी कुछ गणित की सहायता से ही सम्भव है। एक साधारण कुली अथवा मजदूर से लेकर वित्त मंत्री तक सभी को गणित पर निर्भर रहना पड़ता है। डाकघर, बैंक, कार्यालय, व्यापार, उद्योग अर्थात् जीवन के प्रत्येक कार्यक्षेत्र में गणित का ज्ञान आवश्यक है। विज्ञान के विभिन्न आविष्कार, जिनके कारण हमारा जीवन इतना सुखद हो गया है, गणित के कारण ही सम्भव हो पाए हैं।

(2) अनुशासन सम्बन्धी मूल्य- गणित प्रशिक्षण मानसिक शक्तियों का विकास ही नहीं करता, वरन् उन्हें नियन्त्रित भी करता है। गणित में प्रशिक्षित व्यक्ति अनुशासित जीवन जीने में अधिक समर्थ होता है। गणित के अध्ययन से चिन्तनशीलता, विवेकशीलता, तर्कशीलता तथा रचनात्मक अनुशासन जैसे गुणों का विकास होता है, इसलिए गणित का छात्र कोई भी कार्य बिना सोचे-समझे नहीं करता। एकाग्रता, कठिन परिश्रम, समयानुकूल, सुव्यवस्थित, स्वच्छ एवं सही कार्य करने जैसी अच्छी आदतें गणित अध्ययन का सुपरिणाम हैं, जो व्यक्ति को अनुशासित जीवन जीने के लिए प्रेरित करती हैं।

(3) बौद्धिक मूल्य- गणित हमारी मानसिक संचेतनाओं को सक्रिय बनाता है, उन्हें गतिशील बनाता है तथा निर्णय लेने की शक्ति देता है। कल्पना शक्ति, स्मरण शक्ति, निरीक्षण शक्ति, अन्वेषण शक्ति, एकाग्रता, मौलिकता, चिन्तनशीलता तथा तर्क पर आधारित विचार शक्ति आदि मानसिक योग्यताएं गणित प्रशिक्षण द्वारा विकसित होती हैं। मानसिक स्वास्थ्य के लिए गणित एक अच्छा व्यायाम है। किसी भी समस्या के समाधान के लिए उचित योग्यता का विकास गणित के द्वारा ही हो सकता है। इस प्रकार गणित एक ऐसा विषय है, जो मानसिक योग्यताओं को प्रशिक्षित करने का सुअवसर प्रदान करता है।

(4) मनोवैज्ञानिक मूल्य- गणित का शिक्षण एवं अधिगम शिक्षा मनोविज्ञान के मूलभूत सिद्धान्त 'करके सीखना' पर आधारित है, गणित में पहले स्थूल से अमूर्त प्रत्ययों की ओर बढ़ा जा सकता है तथा छात्रों की आवश्यकताओं,

रुचियों तथा योग्यताओं का ध्यान रखा जाता है। गणित द्वारा सृजनशीलता, स्वाग्रह तथा जिज्ञासा जैसी सामान्य वृत्तियाँ सन्तुष्ट होती हैं।

(5) सांस्कृतिक मूल्य- संस्कृति और सभ्यता का गहरा सम्बन्ध है। गणित का इतिहास भी सभ्यता के इतिहास की तरह ही पुराना है। गणित सभ्यता और संस्कृति का दर्पण है। सभी गणित में भारत के दशमलव, शून्य और बीजगणित के ज्ञान सम्बन्धी योगदान से अभिभूत हैं तथा अपनी इस समृद्ध सांस्कृतिक विरासत से गौरवान्वित हैं। गणित हमारी सांस्कृतिक धरोहर को सुरक्षित, समृद्ध तथा आगे आने वाली पीढ़ी तक हस्तान्तरित करने में भी सहायक है। यदि हम मनुष्य के पूर्व इतिहास का अवलोकन करें तो हमें ज्ञात हो सकता है कि सभ्यता और सांस्कृतिक उन्नति में गणित का बहुत योगदान रहा है। आज हमारी उन्नत सभ्यता की इमारत की नींव गणित ही है। हम कह सकते हैं कि गणित की जड़ें संस्कृति में गहरी हैं तथा इसने मानव सभ्यता को युगों तक प्रभावित किया है।

(6) सामाजिक मूल्य- समाज को गणित की कदम-कदम पर आवश्यकता पड़ती है। समाज के विभिन्न क्रियाकलाप, जैसे व्यापार, लेन-देन, बैंक, बीमा आदि गणित पर आधारित हैं। गणित के ज्ञान द्वारा व्यक्ति अपने सामाजिक उत्तरदायित्वों का निर्वाह भली-भांति कर सकता है। इस प्रकार गणित सामाजिक सामंजस्य में भी सहायक है। जैसा कि हम जानते हैं, विज्ञान के सभी आविष्कार गणित के बिना सम्भव नहीं, इसलिए सामाजिक प्रगति तथा विकास में गणित आधारस्तम्भ का कार्य करता है।

(7) नैतिक मूल्य- गणित के माध्यम से हम छात्रों में अनेक चारित्रिक सद्गुणों का विकास कर सकते हैं, जैसे सत्यप्रियता, ईमानदारी, समयपालन, न्यायप्रियता, यथार्थता, कर्त्तव्यनिष्ठा, धैर्यशीलता, आत्मसंयम, आत्मविश्वास, सहनशीलता, दूसरे के विचारों का आदर करना, विचारों की संक्षिप्तता, भले-बुरे में भेद करने की सामर्थ्य, नियमितता, स्वच्छता इत्यादि। गणित सत्य पर आधारित होता है। इसमें अल्प सत्य अथवा झूठ के लिए कोई स्थान नहीं होता। गणित तर्कसम्मत विचार, यथार्थ कथन तथा सत्य बोलने की शक्ति प्रदान करता है।

(8) सौन्दर्यात्मक मूल्य- गणित में जीवन की समस्याओं का समाधान ही नहीं वरन् आनन्द की अनुभूति भी है। गणित की एक साधारण समस्या हल करने के पश्चात् भी छात्र को अत्यधिक आनन्द की प्राप्ति होती है। गणित को कलाओं का सृजनकर्ता, पोषक और पारखी कहना उचित ही होगा। सभी कलाएं, जैसे चित्रकला, मूर्तिकला, स्थापत्यकला, संगीत तथा नृत्यकला इत्यादि गणित पर ही

आधारित हैं। किसी भी इमारत, फूल अथवा चित्र का सौन्दर्य वास्तव में किसी न किसी रूप में गणित के क्रम का ही पालन करते हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि सौन्दर्य का रहस्य क्रम, व्यवस्था, सन्तुलन और समानुपात में ही है, जिसे गणित द्वारा ही समझा जा सकता है।

(9) अन्तर्राष्ट्रीय मूल्य– हम जानते हैं कि आधुनिक गणित का ज्ञान अनेक सभ्यताओं अथवा देशों के अनेक बुद्धिमान लोगों के सतत् प्रयासों का सुफल है। गणित किसी एक देश की सम्पत्ति नहीं है। गणित समय तथा स्थान के बन्धन से मुक्त है, इसलिए एक देश में गणित सम्बन्धी किया गया शोधकार्य अन्तर्राष्ट्रीय विषय बन जाता है। गणित के ज्ञान का विनिमय विश्व के राष्ट्रों में परस्पर सहयोग तथा भाई-चारे की भावना उत्पन्न करता है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि हमें गणित की आवश्यकता जीवन के अनेक क्षेत्रों में पड़ती है, जिसके कारण गणित एक महत्त्वपूर्ण विषय के रूप में पढ़ाया जाता है। अन्य छात्रों की तरह दृष्टिबाधितों के लिए भी गणित एक महत्त्वपूर्ण विषय है, लेकिन यह तथ्य भी अपनी जगह सत्य है कि दृष्टिबाधित छात्रों को गणित पढ़ाते समय शिक्षकों के समक्ष अनेक समस्याएं आती हैं।

दृष्टिबाधितों के गणित शिक्षण में आने वाली समस्याएं:-

हम जानते हैं कि गणित विषय अमूर्त प्रत्ययों से सम्बन्धित विज्ञान है। चूँकि दृष्टिबाधित छात्रों में अमूर्त प्रत्ययों का विकास करना एक चुनौतीपूर्ण कार्य है, इसलिए शिक्षक गणित पढ़ाते समय अनेक समस्याओं का सामना करते हैं। गणित शिक्षण एक कठिन कार्य तो है लेकिन असम्भव नहीं। यदि शिक्षक अधिगम अनुभवों को क्रमबद्ध रूप से नियोजित कर छात्रों को प्रदान करें तो दृष्टिबाधित छात्रों के संदर्भ में निर्दिष्ट शिक्षण/अधिगम उद्देश्यों की प्राप्ति की जा सकती है।

सामान्यतः दृष्टिबाधित छात्र उच्च कक्षाओं में गणित एक विषय के रूप में नहीं पढ़ते, परिणामस्वरूप अधिकांश छात्र तथा शिक्षक गणित सीखने के लिए अभिप्रेरित नहीं होते। इसके अतिरिक्त ब्रेल स्लेट, टेलर गणित बोर्ड, अबेकस तथा अन्य उपकरणों पर गणितीय कार्य करने की गति धीमी होने के कारण भी छात्रों की रुचि गणित में कम हो जाती है। ब्रेल स्लेट पर लिखी गयी सामग्री को पढ़ने के लिए कागज को पलटना पड़ता है, जिसके कारण गणितीय कार्य की निरन्तरता बाधित होती है। ब्रेल स्लेट पर तालिकाएं लिखने में भी कठिनाई होती है। ब्रेलर गणित लिखने के लिए ब्रेल स्लेट की अपेक्षा अधिक उपयोगी है, क्योंकि इस पर लिखी गई सामग्री कागज के उसी ओर उभर जाती है, जिससे छात्र तुरन्त बिना

किसी व्यवधान के सरलता से उसे पढ़ सकता है, लेकिन भारत जैसे विकासशील देश में प्रत्येक दृष्टिबाधित छात्र को ब्रेलर उपलब्ध कराना सम्भव नहीं है।

टेलर गणित बोर्ड पर तेज गति से कार्य के लिए छात्र के पास अच्छे परिचालन कौशल का होना आवश्यक है, ऐसा न होने की स्थिति में शिक्षक द्वारा उचित उपचारात्मक उपाय किए जाने चाहिएं। इस बोर्ड पर गणनाएं तो की जा सकती हैं, परन्तु गणितीय प्रश्नों के सम्पूर्ण हल को नहीं लिखा जा सकता, क्योंकि शब्द अथवा वाक्यों तथा अन्य सभी आवश्यक गणितीय चिह्नों को इस बोर्ड पर लिखना सम्भव नहीं है। अबेकस एक अन्य उपकरण है, जिसके द्वारा गणनाएं टेलर बोर्ड की अपेक्षा अधिक तेजी से की जा सकती हैं, लेकिन इसके उपयोग हेतु बहुत-से नियम सीखने पड़ते हैं। यही कारण है कि औसत से कम मानसिक योग्यता युक्त छात्र इसका उपयोग नहीं कर पाते। अबेकस पर गणना करते समय छात्र द्वारा की गई त्रुटि को शिक्षक इंगित नहीं कर पाते, क्योंकि गणना में प्रयुक्त दो संख्याओं में से एक के स्थान पर उत्तर लिख दिया जाता है।

दृष्टिबाधित छात्रों द्वारा उभरे हुए ज्यामिति चित्र बनाना सरल क्रिया नहीं है। अक्सर ये छात्र रेखाखण्ड तथा कोणों की सही-सही माप नहीं कर पाते, क्योंकि अधिकांश छात्रों को ज्यामिति किट में उपलब्ध उपकरणों के प्रयोग का अभ्यास नहीं होता। शिक्षकों को चाहिए कि वे इन छात्रों को इन उपकरणों के प्रयोग का समुचित अभ्यास कराएं ताकि वे ज्यामिति चित्रों को स्वतन्त्र रूप से बना सकें। गणितीय पाठ्य-पुस्तकों में त्रिआयामी प्रत्ययों को द्विआयामी चित्रों द्वारा समझाया जाता है। दृष्टिबाधित छात्रों को त्रिआयामी प्रत्यय वास्तविक वस्तुओं अथवा मॉडलों के माध्यम से सिखाए जाने चाहिएं, क्योंकि ये छात्र इन प्रत्ययों को द्विआयामी चित्रों द्वारा नहीं समझ सकते।

गणित की ब्रेल पाठ्य-पुस्तकों में अनेकों गणित ब्रेल चिह्न सम्मिलित होते हैं। इन सभी ब्रेल चिह्नों को एक साथ सीखना छात्रों के लिए सम्भव नहीं होता, इसलिए शिक्षक को चाहिए कि वह अध्याय में जैसे-जैसे नये चिह्न आएं, वैसे-वैसे छात्रों को उनसे अवगत करा दें। छात्रों को नये चिह्नों का यथासम्भव अभ्यास भी करा दिया जाना चाहिए, जिससे वे नये चिह्नों को सहज भाव से सीख जाएं। यह भी देखने में आया है कि विद्यालय में गणित की ब्रेल पाठ्य-पुस्तकें प्रायः समय पर पर्याप्त संख्या में उपलब्ध नहीं होतीं तथा गणित शिक्षण/अधिगम सामग्री की भी कमी रहती है। शिक्षक को चाहिए कि वह पाठ्य-पुस्तकों तथा सहायक शिक्षण सामग्री की उपलब्धता को यथासमय सुनिश्चित कर लें।

समेकित विद्यालय में दृष्टिबाधितों के गणित शिक्षण में सामान्य समस्याओं के अतिरिक्त कुछ विशेष समस्याएं भी आती हैं। समेकित विद्यालय में गणित शिक्षण संसाधन अध्यापक तथा गणित अध्यापक के संयुक्त प्रयास द्वारा ही सम्भव हो पाता है। इन दोनों के बीच में किसी भी तालमेल की कमी से गणित शिक्षण की प्रक्रिया पर विपरीत प्रभाव पड़ता है, क्योंकि संसाधन अध्यापक दृष्टिबाधित बालक व गणित अध्यापक के मध्य सेतु का कार्य करता है। संसाधन अध्यापक को चाहिए कि वह गणित अध्यापक को दृष्टिबाधित छात्र की सभी विशेष शैक्षिक आवश्यकताओं तथा समस्याओं से अवगत करा दे। गणित अध्यापक तथा छात्र को आवश्यक शिक्षण/अधिगम सामग्री उपलब्ध कराने का भी संसाधन अध्यापक का उत्तरदायित्व है। कक्षा में किसी भी नए गणितीय प्रत्यय को पढ़ाए जाने से पूर्व उसकी प्रारम्भिक जानकारी छात्र को संसाधन अध्यापक द्वारा दी जानी चाहिए।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि दृष्टिबाधितों को गणित पढ़ाते समय अनेक कठिनाइयाँ आती हैं, लेकिन एक अभिप्रेरित शिक्षक अपने विवेक और व्यावसायिक कुशलता के बल पर सभी कठिनाइयों पर विजय प्राप्त कर सकता है।

दृष्टिबाधितों के लिए उपयुक्त स्पर्शीय चित्र एवं सहायक सामग्री के निर्माण व अनुकूलन के सिद्धान्त एवं निर्देश:

दृष्टिबाधित छात्रों द्वारा विभिन्न गणितीय प्रत्ययों को समझने में स्पर्शीय चित्र अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होते हैं। उदाहरणार्थ, वृत्त के अर्धव्यास, परिधि तथा क्षेत्रफल से सम्बन्धित प्रत्ययों को स्पर्शीय चित्रों द्वारा सरलता से सीखा जा सकता है। स्पर्शीय चित्र का आकार इतना होना चाहिए कि छात्र को उसके स्पर्शीय अवलोकन में कोई असुविधा न हो, साथ ही स्पर्शीय चित्र के निर्माण में इस प्रकार की सामग्री का प्रयोग किया जाना चाहिए, जिससे चित्र के विभिन्न भागों में विभेदन तथा पहचान आसानी से हो सके। स्पर्शीय चित्र देखने तथा छूने में आकर्षक होने चाहिएं। स्पर्शीय चित्र का निर्माण करते समय इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि दृष्टिबाधित छात्र द्वारा उपयोग करने के पश्चात् भी वे खराब न हों।

शिक्षक स्पर्शीय चित्र एवं सहायक सामग्री का निर्माण आसानी से उपलब्ध सामग्री द्वारा कर सकता है। इस प्रयोजन हेतु कागज और गत्ते के टुकड़े, कपड़े की कतरनें, तार, रबर बैंड, बटन, धागे, ऊन, माचिस की तीलियाँ, कील, गोंद, पिन, फेविकोल, रबर फोम, मोती, बिन्दी इत्यादि का उपयोग किया जा सकता है। संसाधनों की कमी तथा विविध शिक्षण सामग्री की आवश्यकता से शिक्षक द्वारा निर्मित सहायक सामग्री का महत्त्व रेखांकित होता है, इस प्रक्रिया में शिक्षक

की सृजनात्मकता को भी प्रोत्साहन मिलता है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है ज्यामिति किट में उपलब्ध उपकरणों द्वारा दृष्टिबाधित छात्र स्वयं स्पर्शीय चित्र बना सकते हैं। शिक्षक सामान्य रूप से उपलब्ध पैमाने (scale) तथा कोणमापनी (protractor) को दृष्टिबाधित हेतु अनुकूलित कर सकते हैं। इसके लिए प्लास्टिक के पैमाने पर 1 सेंटीमीटर तथा 0.5 सेंटीमीटर की दूरी पर अलग-अलग आकार के छेद किए जा सकते हैं। इसी प्रकार कम्पास (compass) में पेन्सिल के स्थान पर मोमी रंग (crayon) का उपयोग कर वृत्त खींचे जा सकते हैं, जिन्हें दृष्टिबाधित छात्र स्पर्श द्वारा अनुभव कर सकते हैं।

सहायक सामग्री दृष्टिबाधित छात्रों को मूर्त अनुभव प्रदान करती है तथा इनसे छात्रों को 'करके सीखने' का अवसर मिलता है, जिससे दृष्टिबाधितों की अधिगम प्रक्रिया अत्यन्त प्रभावी हो जाती है तथा कठिन प्रत्ययों को आसानी से समझ लेते हैं। उदाहरण के लिए, वृत्त की परिधि के प्रत्यय को तार से बने एक छल्ले द्वारा समझाया जा सकता है। इसे खोलकर प्राप्त हुई तार की लम्बाई ही वृत्त की परिधि होगी। घनाकार अथवा घनाव के आयतन के सूत्र को भी एक साधारण सहायक सामग्री द्वारा समझाया जा सकता है। इसके लिए एक छोटा लकड़ी का घनाव अथवा घनाकार डिब्बा लिया जाता है तथा छात्र से 1x1x1 सेंटीमीटर आकार के छोटे घनाकार लकड़ी के टुकडों को इसमें भरकर इन्हें गिनने के लिए कहा जाता है। इन टुकड़ों की संख्या ही डिब्बे का आयतन होगी। इस प्रकार अध्यापक गणित के विभिन्न प्रत्ययों को समझाने के लिए विभिन्न सहायक सामग्री का निर्माण तथा अनुकूलन कर सकते हैं।

दृष्टिबाधितों के गणितीय ज्ञान के मूल्यांकन की समस्या एवं निदान में अध्यापक की भूमिका:

मूल्यांकन शिक्षा का एक अभिन्न एवं महत्त्वपूर्ण घटक है। यह एक व्यापक तथा निरन्तर चलने वाली क्रिया है, जिसके द्वारा छात्र की शैक्षिक तथा कार्यक्रम की प्रगति पर नजर रखी जा सकती है। मूल्यांकन द्वारा छात्र के पूर्वापेक्षित ज्ञान के स्तर के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। मूल्यांकन से यह भी ज्ञात होता है कि किस हद तक शिक्षण/अधिगम उद्देश्यों की प्राप्ति हुई है, पाठ्यक्रम के क्षेत्र विशेष में छात्र की दुर्बलताओं की जानकारी भी हमें मूल्यांकन से प्राप्त होती है तथा उसी के आधार पर हम उपचारात्मक उपायों का प्रारूप तैयार करते हैं। वर्गीकरण तथा कक्षा उन्नति सम्बन्धी निर्णय भी मूल्यांकन पर आधारित होते हैं। दृष्टिबाधित छात्रों को वैयक्तिक अनुदेशन प्रदान करने हेतु वैयक्तिक शिक्षा कार्यक्रम की योजना तैयार की जाती है, जो कि बिना मूल्यांकन के सम्भव नहीं।

गणितीय मूल्यांकन मौखिक तथा लिखित परीक्षणों द्वारा किया जाता है। दृष्टिबाधितों के संदर्भ में मौखिक प्रश्नों के स्वरूप तथा अपेक्षित उत्तरों में कभी-कभी थोड़ा-बहुत बदलाव करना पड़ सकता है, जैसे यदि शिक्षक द्वारा श्यामपट पर बने त्रिभुज के तीसरे कोण का माप पूछा गया है तो दृष्टिबाधित छात्र के लिए अनुकूलित प्रश्न इस प्रकार होगा-- यदि त्रिभुज क, ख, ग में कोण क तथा ख का मान क्रमशः 70 डिग्री तथा 50 डिग्री है, तो कोण ग का मान क्या होगा? इसी प्रकार अपेक्षित उत्तर में भी ,छात्र की आवश्यकतानुसार परिवर्तन किया जा सकता है।

लिखित मूल्यांकन मुख्यतः दो प्रकार के परीक्षणों द्वारा किया जाता है-शिक्षक. द्वारा निर्मित परीक्षण तथा प्रमापीकृत परीक्षण। शिक्षक को परीक्षण तैयार करते समय पाठ्यक्रम में किए गए अनुकूलन तथा छात्रों की अन्य विशेष आवश्कताओं को ध्यान में रखना चाहिए। लिखित मूल्यांकन में छात्रों की आवश्यकतानुसार प्रश्न तथा उत्तर के उचित माध्यम के विषय में निर्णय लिया जाना चाहिए। शिक्षक छात्र की सुविधानुसार प्रश्न-पत्र के ब्रेल लिपि, बड़े छापे अथवा ध्वन्यांकित रूप में उपलब्ध करा सकते हैं। इसी प्रकार छात्र अपने उत्तर ब्रेल अथवा श्रव्य माध्यम द्वारा दे सकते हैं। लिखित परीक्षा में सहायक लिपिक का प्रयोग सर्वाधिक प्रचलित है। इस विधि में दृष्टिबाधित परीक्षार्थी के लिए प्रश्न-पत्र सहायक लिपिक पढ़ता है तथा वही व्यक्ति परीक्षार्थी द्वारा बोले गए उत्तर को उत्तर पुस्तिका में लिख देता है। प्रश्न-पत्र को हल करने के लिए दृष्टिबाधित परीक्षार्थी को अतिरिक्त समय दिया जाना चाहिए।

प्रमाणीकृत परीक्षणों के उपयोग में शिक्षक अनेक समस्याओं का सामना करते हैं। दृष्टिबाधित छात्रों की दृष्टिक्षमता, दृष्टिबाधिता के समय आयु, अनुभव तथा आवश्यकताओं में काफी विभिन्नता पाई जाती है। यही कारण है कि गणित के किसी प्रत्यय विशेष के मूल्यांकन हेतु किसी एक परीक्षण पर सहमति नहीं बन पाती। दृष्टिबाधित छात्र द्वारा अर्जित प्राप्तांकों की व्याख्या कर पाना कठिन होता है, क्योंकि परीक्षण के प्रमाणीकरण की प्रक्रिया में प्रयुक्त प्रतिदर्श समूह में दृष्टिबाधित छात्र सम्मिलित नहीं होते। ऐसी स्थिति में शिक्षक को छात्र के बारे में उपलब्ध जानकारी तथा अपने विवेक के आधार पर प्राप्तांकों की व्याख्या करनी चाहिए। प्रमाणीकृत परीक्षण में आवश्यकतानुसार परिवर्तन किए जा सकते हैं। आधारभूत पूर्व गणितीय प्रत्यय, जैसे क्रमबद्धता (seriation), संगतता (one-to-one correspondence) का मूल्यांकन पिआजे मूल्यांकन बेटरी द्वारा किया जा सकता है। दृष्टिबाधितों के लिए अन्य आधारभूत गणितीय प्रत्ययों एवं कौशलों के मूल्यांकन

में सम्मिलित किया जाना चहिए, जिससे दृष्टिबाधित छात्र गणनाओं को सही तथा तेजी से सम्पादित कर सकें (Hussey S.Legge; 1956)।

गणित को मौखिक रूप से करने के लिए एकाग्रता तथा मूलभूत गणितीय गणनाओं के नियमों के ज्ञान की आवश्यकता होती है, जैसे किसी भी संख्या की इकाई का अंक 5 अथवा शून्य होता है तो वह संख्या 5 से विभाज्य होती है, यदि संख्या के अंकों का योग 3 से विभाज्य होता है तो वह संख्या 3 से विभाज्य होगी और यदि किसी संख्या का इकाई का अंक 2, 4, 6, 8 अथवा शून्य होता है तो वह संख्या 2 से विभाज्य होती है। जैसे 24, 54, 93, में से प्रत्येक संख्या के अंकों का योग चूंकि 3 से विभाज्य है अतः ये तीनों संख्याएं 3 से विभाज्य हैं। चूंकि 605 और 960 में इकाई का अंक 5 तथा शून्य है इसलिए ये दोनों संख्याएं 5 से विभाज्य हैं। इसके अतिरिक्त वैदिक नियमों को भी दृष्टिबाधितों के लिए गणित शिक्षण में सम्मिलित किया जाना चाहिए, क्योंकि इनके द्वारा मौखिक गणना अत्यन्त सरलता के साथ की जा सकती हैं।

मौखिक गणित योग्यता के विकास के लिए क्रमबद्ध अनुदेशन, अभ्यास तथा अनुप्रयोग उपयोगी होता है। दृष्टिबाधित बालकों को मौखिक गणित आरम्भिक कक्षाओं से ही सिखाया जाना चाहिए। दृष्टिबाधित छात्रों में मौखिक गणित की योग्यता का विकास कर उन्हें गणित सीखने के लिए न केवल अभिप्रेरित किया जा सकता है, वरन् गणित शिक्षण/अधिगम प्रक्रिया को अधिक प्रभावी तथा सुगम बनाया जा सकता है। छात्रों को मौखिक गणित के विभिन्न तरीकों से अवगत कराना चाहिए। मौखिक गणित के कुछ अन्य उदाहरण इस प्रकार हैं:-

उदाहरण-1-- 65 में 27 जोड़ने के लिए हम पहले 65 में 20 जोड़ेंगे, तत्पश्चात् प्राप्त संख्या 85 में 7 जोड़ेंगे। इस प्रकार हमें मौखिक रूप से सही उत्तर 92 की प्राप्ति हो जाती है।

उदाहरण-2-- 28x32 को हल करने के लिए हम इसे पहले (30-2) (30+2) के रूप में परिवर्तित कर लेते हैं तथा फिर सूत्र $(A-B)(A+B)= A^2-B^2$ का उपयोग करते हैं। इस प्रकार हमें $30^2-2^2=900-4=896$ की प्राप्ति मौखिक रूप से हो जाती हैं।

उदाहरण-3-- 368x205 को हल करने के लिए हम इसे 300x205+60x 205+8x205 के रूप में परिवर्तित कर मौखिक रूप से हल कर सकते हैं।

संख्याओं को याद रखने का प्रशिक्षण तथा विभिन्न गणितीय खेल मौखिक गणित योग्यता के विकास में सहायक होते हैं। छात्रों को चाहिए कि मौखिक गणित

सीखते समय वे हल किये गये प्रश्न के उत्तर की जाँच अबेकस अथवा टेलर गणित बोर्ड की सहायता से कर लें। मौखिक गणित न केवल गणितीय प्रश्नों को हल करने में उपयोगी होता है, बल्कि छात्र इसका उपयोग दैनिक जीवन में सूचनाओं के विश्लेषण एवं समस्या समाधान में भी कर सकते हैं।

गणितीय पाठ्य-पुस्तकों के अनुकूलन के सिद्धान्त एवं निर्देश:

गणित की पाठ्य-पुस्तकें गणित सीखने तथा सिखाने का एक महत्त्वपूर्ण साधन हैं। दृष्टिबाधित छात्रों को ये पाठ्य-पुस्तकें ब्रेल तथा बड़े छापे वाली पुस्तकों के रूप में उपलब्ध कराई जाती हैं। अन्य विषयों की अपेक्षा गणित पाठ्य-पुस्तकों का ब्रेलीकरण एक जटिल प्रक्रिया है, क्योंकि गणित को ब्रेल लिपि में रूपान्तरित करते समय अनके ब्रेल चिह्नों की आवश्यकता पड़ती है, इसलिए छात्रों को सही समय पर ब्रेल में पाठ्य-पुस्तकें उपलब्ध कराने के लिए विशेष प्रयास करने की आवश्यकता पड़ती है। पुस्तक की पाठ्य-सामग्री को हमेशा ज्यों-का-त्यों ब्रेलीकृत करना उचित नहीं होता, उदाहरण के लिए, यदि पुस्तक में लिखा है, "चित्र में लाल गुब्बारों को गिनकर चौकोर बक्से में संख्या लिखिए।" ऐसी स्थिति में न तो रंगों को ब्रेल में दर्शाना सम्भव है और न ही छात्रों द्वारा गिनकर संख्या को निर्दिष्ट चौकोर बक्से में लिखना सम्भव है। यह भी हो सकता है कि आरम्भिक कक्षा के छात्र शब्द 'गुब्बारे' से परिचित न हों, इसलिए हमें पाठ्य-सामग्री में कुछ वांछनीय परिवर्तन करने पड़ सकते हैं।

उपरोक्त पाठ्य-सामग्री के स्थान पर हम निम्नलिखित सामग्री को पुस्तक में सम्मिलित कर सकते हैं, जैसे चित्र में दिखाई गयी रेखाओं को गिनकर संख्या अपने शिक्षक को बताएं तथा अपनी ब्रेल स्लेट पर नोट करें।

पाठ्य-सामग्री के स्थानिक विन्यास (Spatial Arrangement) में भी आवश्यकतानुसार थोड़ा-बहुत परिवर्तन किया जा सकता है। गणित की ब्रेल पुस्तक में प्रयुक्त विभिन्न विशेष गणितीय ब्रेल संकेतकों से छात्रों को अवगत करा दिया जाना चाहिए, जिससे छात्र इन्हें सामान्य ब्रेल से अलग पहचान कर सही परिप्रेक्ष्य में प्रयोग कर सकें। गणित एक अमूर्त प्रत्ययों से सम्बन्धित विज्ञान है, इसलिए गणित पाठ्य-पुस्तक में अनेक अमूर्त विचारों तथा चित्रों का समावेश होता है। पाठ्य-पुस्तक की सामग्री में अनुकूलन हेतु हम निम्नलिखित सिद्धान्तों का प्रयोग कर सकते हैं।

(1) द्विगुणीकरण (Duplication)- पुस्तकों की पाठ्य-सामग्री में अनुकूलन की यह सर्वाधिक सामान्य विधि है। इस विधि के अन्तर्गत अक्सर हम दृष्टिगत

अनुभवों को बिना किसी परिवर्तन के गैर-दृष्टिगत अनुभवों के रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं।

(2) रूपान्तरण (Modification)- इस विधि के अन्तर्गत हम पाठ्य-सामग्री अथवा उसके स्थानिक विन्यास में थोड़ा-बहुत परिवर्तन करके प्रस्तुत करते हैं, जिससे छात्र उसे सरलता से समझ सकें।

(3) प्रतिस्थापना (Substitution)- अनेक व्यावहारिक तथा अन्य कारणों से कुछ पाठ्य-सामग्री को समझना दृष्टिहीन छात्रों के लिए सम्भव नहीं हो पाता, इसलिए इस प्रकार की पाठ्य-सामग्री के स्थान पर अन्य ऐसी पाठ्य-सामग्री सम्मिलित की जा सकती है, जिसके द्वारा निर्दिष्ट विशिष्ट अधिगम उद्देश्यों की प्राप्ति की जा सके।

(4) विलोपन (Omission)- कुछ अपरिहार्य स्थितियों में दृष्टिहीन छात्र द्वारा पाठ्य-सामग्री को समझना सम्भव नहीं होता, अतः उसे पाठ्यक्रम से हटा दिया जाता है, इसलिए इसे विलोपन कहते हैं। इस विधि का उपयोग कम-से-कम किया जाना चाहिए।

इस प्रकार हमने देखा कि यदि एक अभिप्रेरित व प्रशिक्षित शिक्षक उपयुक्त शिक्षण विधियों तथा संसाधनों का उपयोग करे तो वह दृष्टिबाधित छात्रों को प्रभावी ढग से गणित सिखा सकता है।

दृष्टिहीनों को अंकगणित, बीजगणित व रेखागणित शिक्षण के लिए आदर्श पाठ योजना:

पाठ योजना से हमारा अभिप्राय किसी पाठ को विशिष्ट उद्देश्यों एवं अपेक्षित व्यवहारीय परिवर्तनों की प्राप्ति के संदर्भ में प्रभावी ढंग से नियोजित करने से है। वस्तुतः पाठ योजना अध्यापक के उन कार्यों का समूह है, जिसे उसे कक्षा में क्रियान्वित करना होता है। एक आकर्षक, सफल एवं प्रभावी शिक्षण के लिए पाठ योजना का निर्माण अत्यन्त आवश्यक है। यहाँ अंकगणित, बीजगणित तथा रेखागणित शिक्षण सम्बन्धी पाठ योजनाएं दी गयी हैं:-

पाठ योजना-1

विषय : अंकगणित — कक्षा: VII

प्रकरण : लाभ तथा हानि — कालांश: द्वितीय

दिनाँक: ---------------- — समय: 35 मिनट

अनुदेशात्मक उद्देश्य-

(1) विद्यार्थी लाभ तथा हानि के प्रत्यय को समझ सकेंगे।

(2) विद्यार्थी लाभ तथा हानि की गणना सम्बन्धी सूत्र लिख सकेंगे।

(3) विद्यार्थी दिये गये प्रश्नों में क्रय तथा विक्रय मूल्यों को पहचान सकेंगे।

(4) विद्यार्थी लाभ तथा हानि की गणना कर सकेंगे।

(5) विद्यार्थी लाभ तथा हानि की गणना प्रतिशत में कर सकेंगे।

(6) विद्यार्थी लाभ तथा हानि सम्बंधी समस्याओं को पर्याप्त गति एवं विशुद्धता से हल कर सकेंगे।

(7) विद्यार्थी दैनिक जीवन में लाभ तथा हानि की गणना सम्बन्धी ज्ञान का अनुप्रयोग कर सकेंगे।

सहायक सामग्री-

टेलर गणित बोर्ड, ब्रेल स्लेट तथा आदर्श हल (ब्रेल में)।

अनुमानित पूर्व ज्ञान-

(1) विद्यार्थी इकाई का नियम जानते हैं।

(2) विद्यार्थी प्रतिशतता की गणना करना जानते हैं।

पूर्व ज्ञान परीक्षण :-

शिक्षक क्रियाएं	छात्र क्रियाएं
(1) यदि एक दर्जन संतरों का मूल्य 24 रुपये है तो 8 संतरों का मूल्य क्या होगा?	(1) 16 रुपये
(2) 200 का 15 प्रतिशत क्या होगा?	(2) 30
(3) यदि एक छात्र ने 500 अंकों में से 300 अंक प्राप्त किये, तो बताइये छात्र ने कितने प्रतिशत अंक प्राप्त किये हैं?	(3) 60 प्रतिशत
(4) दुकानदार अपनी आजीविका कैसे कमाते हैं?	(4) दुकानदार अपनी आजीविका सामान बेचकर कमाते हैं।

(5) क्या दुकानदार सामान हमेशा खरीदे गये मूल्य से अधिक मूल्य पर बेचते हैं?	(5) विद्यार्थी संतोषजनक उत्तर नहीं दे पाते हैं।

प्रकरण उद्घोषणा–

छात्रो, आज हम लाभ और हानि के विषय में पढ़ेंगे।

प्रस्तुतीकरण–

शिक्षण बिन्दु	शिक्षक क्रियाएं	छात्र क्रियाएं
लाभ:	(1) छात्रो, यदि एक दुकानदार ने एक रेडियो 400 रुपये में खरीदा तथा 500 रुपये में बेच दिया तो बताइये उसे लाभ हुआ कि हानि?	(1) लाभ
	(2) दुकानदार को लाभ क्यों हुआ?	(2) क्योंकि रेडियो को खरीदे गये मूल्य से अधिक पर बेचा गया।
	(3) छात्रो, वस्तु को जिस मूल्य पर खरीदा जाता है, उसे क्रय मूल्य और जिस मूल्य पर बेचा जाता है, उसे विक्रय मूल्य कहते हैं। जब विक्रय मूल्य क्रय मूल्य से अधिक होता है, तब लाभ होता है।	(3) छात्र ध्यानपूर्वक सुनेंगे।
	(4) मोहन ने एक घड़ी 200 रुपये में खरीदी तथा 240 रुपये में बेच दी, बताइये घड़ी का क्रय तथा विक्रय मूल्य कितना है?	(4) घड़ी का क्रय मूल्य 200 रुपये तथा विक्रय मूल्य 240 रुपये है।
	(5) क्या मोहन को घड़ी बेचने से लाभ हुआ अथवा हानि?	(5) लाभ
	(6) बताइये मोहन को कितना लाभ हुआ?	(6) छात्र टेलर गणित बोर्ड पर गणना करेंगे-- 240-200=40 रुपये

	(7) हम लाभ की गणना किस प्रकार कर सकते हैं?	(7) विक्रय मूल्य में से क्रय मूल्य घटाकर लाभ की गणना की ज सकती है।
	(8) छात्रो, लाभ की गणना करने के लिए हम इस सूत्र का उपयोग करते हैं-- लाभ=विक्रय मूल्य-क्रय मूल्य।	(8) छात्र ध्यानपूर्वक सुनेंगे।
	(9) एक दुकानदार ने 300 रुपये में एक कुर्सी खरीदकर 375 रुपये में बेच दी, कुर्सी का क्रय मूल्य, विक्रय मूल्य तथा दुकानदार द्वारा अर्जित लाभ अथवा हानि बताइये?	(9) कुर्सी का क्रय मूल्य 300 रुपये तथा विक्रय मूल्य 375 रुपये तथा दुकानदार को 75 रुपये का लाभ हुआ।
	(10) दुकानदार ने कुर्सी पर कितने प्रतिशत लाभ अर्जित किया?	(10) छात्र संतोषजनक उत्तर नहीं दे पाते हैं।
	(11) छात्रो लाभ की प्रतिशतता निकालने के लिए इस सूत्र का उपयोग करते हैं:- लाभ (प्रतिशत में) = लाभ / क्रय मूल्य x 100	(11) छात्र ध्यानपूर्वक सुनेंगे।
	(12) छात्रो, अब दुकानदार द्वारा अर्जित लाभ को प्रतिशत में बताइये?	(12) छात्र टेलर गणित बोर्ड पर प्रश्न हल करेंगे-- 75/300x100=25 प्रतिशत
	(13) छात्रो, इसी प्रश्न का आदर्श हल इस ब्रेल पेपर पर दिया गया है, इसे ध्यानपूर्वक पढ़िये, जिससे भविष्य में आप इस प्रकार के प्रश्नों को ब्रेल स्लेट पर भी हल कर सकें?	(13) छात्र आदर्श हल ध्यानपूर्वक पढ़ेंगे।
हानि :	(14) राम ने एक साइकिल 900 रुपये में खरीदी तथा 810 रुपये में बेच दी। साइकिल का क्रय मूल्य तथा विक्रय मूल्य बताइये?	(14) साइकिल का क्रय मूल्य 900 रुपये तथा विक्रय मूल्य 810 रुपये है।

(15) राम को साइकिल बेचने से कितना लाभ अथवा हानि हुई?	(15) राम को साइकिल बेचने से 90 रुपये की हानि हुई।
(16) छात्रो, हानि की गणना का सूत्र क्या है?	(16) हानि = क्रय मूल्य-विक्रय मूल्य।
(17) छात्रो, राम को साइकिल बेचने से हुई हानि प्रतिशत में ज्ञात करो?	(17) छात्र संतोषजनक उत्तर नहीं दे पाते।
(18) हानि प्रतिशत में ज्ञात करने हेतु निम्न सूत्र का उपयोग किया जाता है- - हानि (प्रतिशत) =हानि / क्रय मूल्य x 100	(18) छात्र ध्यानपूर्वक सुनेंगे।
(19) इस सूत्र का उपयोग करते हुए राम द्वारा साइकिल बेचने से हुई हानि प्रतिशत में ज्ञात करो?	(19) छात्र टेलर गणित बोर्ड पर प्रश्न हल करेंगे-- 90/900x100 =10 प्रतिशत
(20) छात्रो, इसी प्रश्न का आदर्श हल इस ब्रेल पेपर पर दिया गया है। इसे ध्यानपूर्वक पढ़िए, जिससे भविष्य में आप इस प्रकार के प्रश्नों को ब्रेल स्लेट पर ही हल कर सकें।	(20) छात्र ध्यानपूर्वक आदर्श हल पढ़ेंगे।

पुनरावृत्ति-

पुनरावृत्ति एवं मूल्यांकन हेतु शिक्षक छात्रों से निम्न प्रश्न पूछेगा:-

(1) लाभ ज्ञात करने के लिए सूत्र बताइये।

(2) लाभ प्रतिशत में ज्ञात करने सम्बन्धी सूत्र बताइये।

(3) हानि ज्ञात करने के लिए सूत्र बताइये।

(4) हानि प्रतिशत में ज्ञात करने सम्बन्धी सूत्र बताइये।

(5) श्याम ने एक छतरी 150 रुपये में खरीदी तथा 195 रुपये में बेच दी। छतरी का क्रय व विक्रय मूल्य बताइये तथा छतरी को बेचने से हुए लाभ अथवा हानि को प्रतिशत में ज्ञात कीजिए।

(6) राधा ने एक बकरी 600 रुपये में खरीदी तथा 500 रुपये में बेच दी। राधा को बकरी बेचने से हुए लाभ अथवा हानि को प्रतिशत में ज्ञात कीजिए।

गृह कार्य-

प्रश्नावली 5.3 के प्रश्न 1 से 10 तक हल कीजिए।

पाठ योजना 2

विषय : बीजगणित
प्रकरण : एक चर वाले रेखिक समीकरण
दिनाँक: ----------------

कक्षा: VI
कालांश: प्रथम
समय: 35 मिनट

अनुदेशात्मक उद्देश्य-

(1) विद्यार्थी एक चर वाले रेखिक समीकरण को परिभाषित कर सकेंगे।

(2) विद्यार्थी एक चर वाले रेखिक समीकरण को पहचान सकेंगे।

(3) विद्यार्थी एक चर वाले रेखिक समीकरण को हल कर सकेंगे।

(4) विद्यार्थी एक चर वाले रेखिक समीकरण को हल कर उत्तर की जाँच कर सकेंगे।

सहायक सामग्री-

टेलर गणित बोर्ड, ब्रेल स्लेट, ब्रेल पेपर पर आदर्श हल तथा ब्रेल कार्डों पर समीकरणों के उदाहरण।

अनुमानित पूर्व ज्ञान-

(1) विद्यार्थी समीकरण की परिभाषा जानते हैं।

(2) विद्यार्थी समीकरण के कुछ उदाहरण जानते हैं।

पूर्व ज्ञान परीक्षण-

शिक्षक क्रियाएं	छात्र क्रियाएं
(1) समीकरण को परिभाषित कीजिए।	(1) समता का ऐसा कथन, जिसमें एक या अधिक अक्षर-संख्याएं आ रही हों, समीकरण कहलाता है।
(2) समीकरण का एक उदाहरण लिखिए।	(2) छात्र टेलर गणित बोर्ड पर समीकरण का एक उदाहरण लिखेंगे, जैसे $x+5=8$

(3) समीकरण को हल कीजिए।	(3) छात्र समीकरण को हल नहीं कर पाते हैं।

प्रकरण उद्घोषणा–

छात्रो, आज हम एक चर वाले रेखिक समीकरणों को हल करना सीखेंगे।

प्रस्तुतीकरण–

शिक्षण बिन्दु	शिक्षक क्रियाएं	छात्र क्रियाएं
एक चर वाले रेखिक समीकरण की परिभाषा	शिक्षक प्रत्येक छात्र को ब्रेल पेपर वितरित करता है, जिस पर कुछ समीकरणों के उदाहरण दिये गये हैं, जैसे – 1. $4+x = 9$ 2. $x-7 = 6$ 3. $9+x = 12$ 4. $x+y = 7$ 5. $x^2 = 36$	
	(1) छात्रो, ब्रेल पेपर पर दिये गये समीकरणों को पढ़िए तथा बताइये समीकरण 1 से 4 में अक्षर-संख्याओं अर्थात् चरों की अधिकतम घात कितनी है?	(1) एक
	(2) ऐसे समीकरण, जिनमें चरों की अधिकतम घात एक हो, रेखिक समीकरण कहलाते हैं।	(2) छात्र ध्यानपूर्वक सुनेंगे।
	(3) दिये गये समीकरणों में से कौन-से समीकरण रेखिक समीकरण हैं?	(3) समीकरण 1 से 4 रेखिक समीकरण हैं।
	(4) समीकरण 1 से 3 में कितने चर हैं?	(4) एक

	(5) ऐसे रेखिक समीकरण, जिनमें केवल एक चर होता है, एक चर वाले रेखिक समीकरण कहलाते हैं।	(5) छात्र ध्यानपूर्वक सुनेंगे।
	(6) दिये गये समीकरणों में से एक चर वाले समीकरण कौन-से हैं?	(6) समीकरण 1 से 3 एक च वाले रेखिक समीकरण हैं।
हल:	(7) किसी समीकरण की तुलना एक तराजू से की जा सकती है। समीकरण के दो पक्षों को तराजू के दो पलड़े माना जा सकता है। समता चिह्न '=' बताता है कि पलड़े संतुलन में हैं। जिस प्रकार संतुलित तराजू के पलड़ों में बराबर भार डालने अथवा निकालने से तराजू संतुलित रहता है, उसी प्रकार समीकरण के दोनों पक्षों में बराबर अंक जोड़ने अथवा घटाने से कोई अन्तर नहीं पड़ता। दोनों पक्षों को एक ही अंक से गुणा अथवा भाग भी किया जा सकता है।	(7) छात्र ध्यानपूर्वक सुनेंगे।
	(8) समीकरण $x-7=6$ के दोनों पक्षों में 7 जोड़ने पर क्या प्राप्त होता है?	(8) $x-7+7 = 6+7$ $x = 13$
	(9) इस प्रकार हमने देखा x का मान 13 प्राप्त हुआ।	(9) छात्र ध्यानपूर्वक सुनेंगे।
	(10) उत्तर की जाँच करने के लिए बाएं पक्ष में x का मान 13 प्रतिस्थापित करें, बताइये क्या प्राप्त होता है?	(10) $13-7=6$
	(11) क्या प्राप्त संख्या दाएं पक्ष के बराबर है?	(11) प्राप्त संख्या 6 दाएं पक्ष के बराबर है।
	(12) क्योंकि दोनों पक्षों का मान बराबर है, इसलिए प्राप्त उत्तर $x=13$ सही है।	(12) छात्र ध्यानपूर्वक सुनेंगे।

(13) समीकरण 4+x=9 के दोनों पक्षों से 4 घटाने पर क्या प्राप्त होता है?	(13) छात्र टेलर गणित बोर्ड पर प्रश्न हल करेंगे-- 4+x-4=9-4 x=5
(14) इस प्रकार हमने देखा x का मान 5 प्राप्त हुआ।	(14) छात्र ध्यानपूर्वक सुनेंगे।
(15) उत्तर की जांच करने के लिए बाएं पक्ष में x का मान प्रतिस्थापित करें तथा बताएं कि क्या प्राप्त होता है?	(15) 4+5=9
(16) क्या प्राप्त संख्या दाएं पक्ष के बराबर है?	(16) प्राप्त संख्या दाएं पक्ष के बराबर है।
(17) क्योंकि दोनों पक्षों का मान x=5 सही है।	(17) छात्र ध्यानपूर्वक सुनेंगे।
(18) इस समीकरण का आदर्श हल इस ब्रेल पेपर पर दिया गया है, इसे ध्यानपूर्वक पढ़ें, जिससे भविष्य में इसी प्रकार के प्रश्नों को आप ब्रेल पेपर पर हल कर सकेंगे।	(18) छात्र ध्यानपूर्वक आदर्श हल पढ़ेंगे।

पुनरावृत्ति-

(1) एक चर वाले रेखिक समीकरण की परिभाषा बताइये?

(2) ब्रेल कार्डों पर लिखे समीकरणों में से एक चर वाले रेखिक समीकरण को छाँटिये?

i. x+y = 5

ii. x+5 = 10

iii. $x^3 = 8$

(3) समीकरण x-7=13 का हल करके उत्तर की जाँच कीजिए?

(4) समीकरण x+9=15 का हल करके उत्तर की जाँच कीजिए?

गृह कार्य-

प्रश्नावली 3.2 के प्रश्न 1 से 5 तक हल कीजिये।

पाठ योजना-3

विषय : रेखागणित — कक्षा: VI
प्रकरण : त्रिभुज के अंत:कोणों का योगफल — कालांश: प्रथम
दिनाँक: ---------------- — समय: 35 मिनट

अनुदेशात्मक उद्देश्य-

(1) विद्यार्थी यह बताने में समर्थ होंगे कि त्रिभुज के अंत:कोणों का योगफल 180 डिग्री के बराबर होता है।

(2) विद्यार्थी त्रिभुज के अंत:कोणों के योगफल सम्बन्धित गुण को समझने में समर्थ होंगे।

(3) विद्यार्थी त्रिभुज के अंत:कोणों के योगफल सम्बन्धित प्रश्नों को हल करने में समर्थ होंगे।

सहायक सामग्री-

ज्यामितीय किट, कैंची, ब्रेल पेपर पर बने कोण का उभरा हुआ चित्र, ब्रेल कार्डों पर बनी कुछ ज्यामितीय आकृतियों के उभरे हुए चित्र, मोटे कागज से कटे हुए त्रिभुज, ब्रेल पेपर पर बने हुए कुछ त्रिभुजों के उभरे हुए चित्र।

अनुमानित पूर्व ज्ञान-

(1) विद्यार्थी त्रिभुजाकार आकृतियों को पहचानते हैं।

(2) विद्यार्थी उभरी हुई सरल रेखा खींचना तथा उसे नामांकित करना जानते हैं।

(3) विद्यार्थी कोणों को मापना जानते हैं।

(4) विद्यार्थी जानते हैं कि ऋजु कोण 180 डिग्री के बराबर होता है।

पूर्व ज्ञान परीक्षण-

शिक्षक क्रियाएं	छात्र क्रियाएं
(1) दिये गये ब्रेल कार्डों पर कुछ ज्यामितीय आकृतियों के उभरे हुए	(1) छात्र त्रिभुजाकार आकृति को पहचान लेते हैं।

चित्र दिये गये हैं। इनमें से त्रिभुजाकार आकृति को छाँटिए?	
(2) ब्रेल कागज पर एक उभरी हुई सरल रेखा AOB खींचिए?	(2) छात्र उभरी हुई सरल रेखा खींचकर उसे नामांकित कर देते हैं।
(3) ब्रेल पेपर पर बने कोण को मापिये तथा कोण का मान बताइये?	(3) छात्र चाँदे (कोणमापक) की मदद से कोण मापते हैं तथा उसका मान बता देते हैं।
(4) ऋजु कोण की माप किसके बराबर होती है?	(4) ऋजु कोण 180 डिग्री के बराबर होता है।
(5) त्रिभुज में कुल कितने अंत:कोण होते हैं?	(5) त्रिभुज में तीन अंत:कोण होते हैं।
(6) त्रिभुज के अंत:कोणों का योगफल किसके बराबर होता है?	(6) छात्र संतोषजनक उत्तर नहीं देते हैं।

प्रकरण उद्घोषणा-

छात्रो, आज हम त्रिभुज के अंत:कोणों के योगफल सम्बन्धी गुण के विषय में सीखेंगे।

प्रस्तुतीकरण-

शिक्षण बिन्दु	शिक्षक क्रियाएं	छात्र क्रियाएं
त्रिभुज के अंत:कोणों का योगफल सम्बन्धी गुण:	शिक्षक प्रत्येक विद्यार्थी को मोटे कागज में कटे हुए त्रिभुज वितरित करता है तथा कहता है--	
	(1) छात्रो, दिये गये त्रिभुज को तीन भागों में इस प्रकार से काटिये कि त्रिभुज का एक-एक कोण काटे गये प्रत्येक भाग में सम्मिलित हो।	(1) छात्र शिक्षक की मदद से त्रिभुज को निर्देशानुसार तीन भागों में काट लेते हैं।
	(2) छात्रो, अब ब्रेल कागज पर एक उभरी हुई रेखा POQ खींचिए।	(2) छात्र ब्रेल कागज पर उभरी हुई रेखा खींचकर नामांकित कर देते हैं।

	(3) अब तीनों कटे हुए भागों को इस प्रकार रखिये कि सभी का शीर्ष O पर हो, कोणों को इस प्रकार रखें कि न तो उनके बीच कोई रिक्त स्थान रहे और न ही वे एक-दूसरे पर आच्छादित हों।	(3) छात्र शिक्षक की मदद से तीनों भागों को सरल रेखा POQ पर व्यवस्थित कर लेते हैं।
	(4) हम देखते हैं कि तीनों कोण एक ऋजु कोण बनाते हैं। जैसा कि आप जानते हैं ऋजु कोण की माप 180 डिग्री के बराबर होती है, अत: त्रिभुज के तीनों कोणों का योगफल भी 180 डिग्री हुआ। शिक्षक प्रत्येक छात्र को ब्रेल पेपर वितरित करता है जिस पर त्रिभुजों के कुछ उभरे हुए चित्र बने हैं।	(4) छात्र ध्यानपूर्वक सुनेंगे।
	(5) छात्रो, ब्रेल पेपर पर बने प्रत्येक त्रिभुज के तीनों कोणों को मापिये तथा उनका योगफल ज्ञात कीजिए?	(5) छात्र चाँदे (कोण मापक) की सहायता से दिये गये त्रिभुजों के कोणों को मापते हैं तथा प्रत्येक त्रिभुज के कोणों का योगफल ज्ञात करते हैं।
	(6) प्रत्येक त्रिभुज के कोणों का योगफल कितना है?	(6) सभी त्रिभुजों के कोणों का योगफल 180 डिग्री है।
	(7) इस प्रकार हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि प्रत्येक त्रिभुज के तीनों अंत:कोणों का योगफल 180 डिग्री के बराबर होता है।	(7) छात्र ध्यानपूर्वक सुनेंगे।
त्रिभुज के कोणों के योगफल	(8) एक त्रिभुज के दो कोणों के माप 65 डिग्री और 45 डिग्री हैं, तीसरे कोण का माप ज्ञात कीजिए?	(8) छात्र टेलर गणित बोर्ड पर प्रश्न हल करेंगे-- $65+45+x = 180$ $110+x = 180$ $x = 70$

से संबंधित प्रश्नों के हल:	(9) दिये गये ब्रेल पेपर पर इस प्रश्न का आदर्श हल दिया गया है। इसे ध्यानपूर्वक पढ़ें, जिससे भविष्य में ब्रेल स्लेट पर भी इस प्रकार के प्रश्नों को हल कर सकें।	(9) छात्र आदर्श हल को ध्यानपूर्वक पढ़ेंगे।

पुनरावृत्ति-

(1) त्रिभुज के तीनों अंत:कोणों का योगफल किसके बराबर होता है?

(2) एक त्रिभुज के दो कोण 50 डिग्री तथा 60 डिग्री के हैं, तीसरे कोण का माप ज्ञात कीजिये?

गृह कार्य-

प्रश्नावली 12.3 के प्रश्न 1 से 5 तक हल कीजिये।

उपरोक्त पाठ योजनाओं से स्पष्ट है कि पाठ योजना बनाते समय विषय वस्तु अथवा अधिगम अनुभवों को दृष्टिबाधित छात्रों की विशेष शैक्षिक आवश्यकताओं के अनुसार अनुकूलित कर लिया जाता है। सहायक सामग्री का चुनाव भी इन छात्रों की विशेष आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए किया जाता है। पाठ पढ़ाने से पहले छात्रों को नये गणितीय ब्रेल चिह्नों से अवगत करा देना चाहिए।

अध्याय-22

विज्ञान शिक्षण

-डॉ. सुशील कुमार

गणित की भाँति विज्ञान भी ऐसा विषय है, जिसका विद्यालयी शिक्षा के पाठ्यक्रम में विशेष महत्त्व है, क्योंकि इस विषय के शिक्षण से बालक को प्राय: सभी योग्यताओं व क्षमताओं को विकसित करने में सहायता मिलती है। विज्ञान शिक्षण की इस भूमिका को ध्यान में रखते हुए इस पुस्तक के अन्दर इस अध्याय को सम्मिलित किया गया है। इस अध्याय में दृष्टिहीनार्थ विज्ञान शिक्षण की आवश्यकता एवं महत्त्व, विज्ञान की पाठ्य-पुस्तकों के अनुकूलन के सिद्धान्त एवं निर्देश, प्रयोगात्मक क्रियाओं के आयोजन में अध्यापक की भूमिका, दृष्टिहीनों के लिए विज्ञान शिक्षण में आवश्यक स्पर्शीय चित्र एवं सहायक सामग्री के निर्माण एवं अनुकूलन के सिद्धान्त एवं निर्देश, विज्ञान शिक्षण में समस्याएं एवं निदान-अध्यापक की भूमिका एवं उत्तरदायित्व, दृष्टिहीनों के विज्ञान सम्बन्धी प्रत्ययों के मूल्यांकन में समस्याएं तथा उनके निदान में अध्यापकों की भूमिका, उपयुक्त प्रयोगशाला का संगठन, विज्ञान शिक्षण में क्लब, म्यूजियम तथा वानस्पतिक उद्यान की उपयोगिता एवं महत्त्व, प्राथमिक स्तर पर दृष्टिबाधितों के लिए विज्ञान की आदर्श पाठ योजना तथा दृष्टिबाधितों के लिए माध्यमिक स्तर पर सामान्य विज्ञान शिक्षण की आदर्श पाठ योजना से सम्बद्ध पक्षों को प्रस्तुत किया गया है।

भारत के अधिकांश विद्यालयों में दृष्टिहीन विज्ञान विषय को मात्र आठवीं कक्षा तक ही अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ते हैं, जबकि दृष्टिवान बालकों के लिए विज्ञान विषय दसवीं कक्षा तक अनिवार्य है। हालांकि कुछ राज्यों में दृष्टिहीनों के लिए भी विज्ञान की पढ़ाई दसवीं कक्षा तक अनिवार्य रूप में कराई जाती है, लेकिन सामान्यत: दृष्टिहीन छात्रों तथा उनके अध्यापकों द्वारा विज्ञान विषय को गम्भीरता से नहीं लिया जाता। इस दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति के निम्नलिखित कई कारक हैं:-

(1) उच्च कक्षाओं में दृष्टिहीनों को विज्ञान एक वैकल्पिक विषय के रूप में न पढ़ाया जाना।

(2) दृष्टिहीनों हेतु समुचित तथा प्रभावी विज्ञान शिक्षण/अधिगम सहायक सामग्री का अभाव।

(3) दृष्टिहीनों के विज्ञान शिक्षण हेतु प्रशिक्षित एवं अभिप्रेरित अध्यापकों का अभाव।

भले ही कुछ परिस्थितियोंवश विज्ञान एक महत्त्वपूर्ण विषय के रूप में दृष्टिहीनों को न पढ़ाया जाता हो, लेकिन विज्ञान शिक्षण की आवश्यकता एवं महत्त्व को कम करके नहीं आंका जा सकता।

दृष्टिहीनार्थ विज्ञान शिक्षण आवश्यकता एवं महत्त्व:

राष्ट्र की प्रगति में विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के महत्त्व को देखते हुए माध्यमिक शिक्षा आयोग (1964-66) ने सभी विद्यालयों में विज्ञान को दसवीं कक्षा तक एक अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ाने की सिफारिश की थी। आधुनिक विज्ञान के इस युग में यदि हमें दृष्टिहीनों के अर्थपूर्ण सामाजिक एकीकरण का लक्ष्य प्राप्त करना है तो उन्हें अन्य बालकों की तरह ही विज्ञान एक महत्त्वपूर्ण विषय के रूप में पढ़ाया जाना चाहिए।

हरबर्ट स्पेन्सर (Herbert Spencer) ने ठीक ही कहा है, "किसी भी स्रोत से प्राप्त ज्ञान की अपेक्षा वैज्ञानिक ज्ञान ने हमारी जीवनशैली को निर्देशित करने में कहीं अधिक उपयोगी भूमिका निभाई है।" बिजली का घरेलू सामान, द्रुत यातायात के साधन, कम्प्यूटर, मनोरंजन तथा संप्रेषण के विभिन्न साधन, जैसे रेडियो, टेलीविज़न, टेलीफोन इत्यादि विज्ञान की ही देन हैं, जिनसे हमारे जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन आए। दैनिक जीवन में उपयोगी विज्ञान के इन महत्त्वपूर्ण आविष्कारों की प्रारम्भिक जानकारी के बिना किसी भी व्यक्ति की शिक्षा अधूरी ही समझी जाएगी।

विज्ञान का अध्ययन हमें अपनी समग्र मानसिक योग्यताओं को पूर्ण विकसित करने का सुअवसर प्रदान करता है। स्मरण क्षमता, मौलिकता, कल्पनाशीलता, सृजनात्मकता, अन्वेषण तथा निरीक्षण क्षमता, एकाग्रता, चिन्तनशीलता, तर्कशीलता एवं नियमित विचार क्षमता आदि सभी मानसिक गुण विज्ञान अध्ययन द्वारा विकसित किए जा सकते हैं। इसके अध्ययन से स्पष्ट, तार्किक तथा क्रमबद्ध रूप से भली-भांति सोचने की क्षमता उत्पन्न होती है।

विज्ञान शिक्षण बौद्धिक विकास के साथ-साथ छात्रों के व्यक्तित्व निर्माण में भी अत्यन्त सहायक है। विज्ञान की शिक्षा व्यक्ति को रचनात्मक एवं अनुशासित जीवन के लिए प्रेरित करती है। विज्ञान के छात्र का प्रत्येक निर्णय उसके विवेक एवं तर्क क्षमता पर आधारित होता है। वह आवेश अथवा भावनाओं के वशीभूत होकर कोई कार्य नहीं करता। विज्ञान एक ऐसा विषय है, जिसमें एकाग्रता, कठिन परिश्रम, यथासमय तथा स्वच्छ कार्य करने जैसी अच्छी आदतों का विकास होता है।

वर्तमान सभ्यता तथा संस्कृति विज्ञान पर एक बहुत बड़ी सीमा तक आधारि है। अब विज्ञान हमारी सांस्कृतिक विरासत का एक अभिन्न अंग बन चुका है विज्ञान की प्रगति की कोई सीमा नहीं है, इसलिए संस्कृति और सभ्यता को कभं समय तथा स्थान के दायरे में बांधकर नहीं रखा जा सकता। विज्ञान शिक्षण हमारं इस सांस्कृतिक धरोहर को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित करने में अत्यन्त सहायक है। बहुत-से व्यावसायिक विषयों के अध्ययन में विज्ञान का पूर्व ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है, इसलिए विज्ञान का अध्ययन छात्रों को कई व्यवसायों के लिए तैयार करने में सहायक होता हैं। विज्ञान की शिक्षा दृष्टिहीनों के लिए कई व्यवसायों में उपयोगी सिद्ध हो सकती है, जैसे कृषि, पशु तथा मुर्गीपालन, बिजली के सामान की मरम्मत, हल्की अभियान्त्रिकी (Light Engineering), कम्प्यूटर शिक्षा तथा अन्य कई कुटीर उद्योग इत्यादि।

विज्ञान का अध्ययन किसी भी समस्या को वैज्ञानिक विधि से हल करने में सहायक हो सकता है। वैज्ञानिक विधि द्वारा किसी भी समस्या का समाधान चरणबद्ध रूप से किया जाता है। पहले समस्या को स्पष्ट रूप से परिसीमित किया जाता है, फिर आवश्यक सूचनाओं का संग्रह कर परिकल्पना का निर्माण किया जाता है, तत्पश्चात् परिकल्पना के परीक्षण हेतु प्रेक्षण अथवा अन्य विधियों द्वारा आंकड़ों का संग्रह किया जाता है। आंकड़ों के विश्लेषण द्वारा उचित निष्कर्षों पर पहुँचा जाता है। वैज्ञानिक विधि से प्रशिक्षण दैनिक जीवन में आने वाली अनेक समस्याओं को तर्कसंगत रूप से सुलझाने में अत्यन्त लाभप्रद सिद्ध हो सकता है।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास शिक्षा का एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है, जिसे विज्ञान शिक्षण द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। नागरिकों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण किसी भी समाज की प्रगति को उत्प्रेरित कर सकता है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विद्यार्थियों में निम्नलिखित गुण विकसित किए जा सकते हैं:-

(1) अन्वेषण मनोवृत्ति।

(2) कारण तथा प्रभाव में सम्बन्ध पर विश्वास।

(3) तथ्यों के सिद्धान्त में विश्वास।

(4) खुला मस्तिष्क।

(5) सत्य के प्रति प्रेम।

(6) समस्याओं को वैज्ञानिक विधि द्वारा सुलझाना।

प्राथमिक स्तर पर विज्ञान के पाठ्यक्रम में पर्यावरण अध्ययन हेतु अनेक रुचिपूर्ण विषय सम्मिलित किए गए हैं, जिनके अध्ययन से दृष्टिहीन बालकों के

पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान के विभिन्न अन्तरालों को भरा जा सकता है। विभिन्न अनुसंधायकों द्वारा किए गए शोध कार्यों से भी दृष्टिहीनों द्वारा विज्ञान अध्ययन के औचित्य का पता लगता है। 1976 में फ्रैंक (Frank) द्वारा 67 दृष्टिहीन छात्रों पर किए गए अध्ययन से पता चलता है कि विज्ञान शिक्षण द्वारा दृष्टिहीन छात्रों की परिचालन योग्यता (Manipulation Ability) को बढ़ाया जा सकता है।

लिन्न एवं थायर (Linn and Thier, 1976) ने दृष्टिहीनार्थ अनुकूलित विज्ञान सामग्री (Adapted Science Material for the Blind--ASMB) का प्रयोग किया तथा पाया कि इस प्रकार दृष्टिहीन विद्यार्थियों की तार्किक शक्ति में सुधार किया जा सकता है।

स्टिफेंस, ग्रुबे तथा सिम्पकिन्स (Stephens, Grube and Simpkins) द्वारा किए गए अनुसंधान से भी निष्कर्ष निकाला गया कि पियाज़े-आधारित विज्ञान प्रशिक्षण द्वारा जन्म से दृष्टिहीन छात्रों की तार्किक क्षमता को बढ़ाया जा सकता है।

विज्ञान की पाठ्य-पुस्तकों के अनुकूलन के सिद्धान्त एवं निर्देश:

संयुक्त राज्य अमेरिका में राष्ट्रीय विज्ञान अध्यापक संघ द्वारा किए गए सर्वेक्षण से ज्ञात हुआ है कि अधिकांश अध्यापकों द्वारा दिये गए विज्ञान अनुदेशन का 90 प्रतिशत से भी अधिक पाठ्य-पुस्तकों पर आधारित होता है। इससे स्पष्ट है कि विज्ञान शिक्षण में पुस्तकों, विशेषतः पाठ्य-पुस्तकों का बहुत महत्त्व है। विज्ञान की पाठ्य-पुस्तकों का निर्माण विज्ञान शिक्षण के उद्देश्यों और सामान्य बालकों की क्षमताओं तथा अभिरुचियों को ध्यान में रखते हुए किया जाता है। सामान्य दृष्टिवान बालक अधिकांश ज्ञान आनुषंगिक (Incidental) अनुभव द्वारा दूसरों के कार्यकलापों को देखकर सीखते हैं, लेकिन दृष्टि के अभाव में दृष्टिहीन बालक इस प्रकार के अनुभवों से वंचित रहते हैं। पुस्तकों की पठन-सामग्री सामान्य बालकों के पूर्व ज्ञान पर आधारित होती है, जबकि यह आवश्यक नहीं कि दृष्टिहीन बालकों ने आवश्यक पूर्व ज्ञान अर्जित कर लिया हो। दृष्टिमूलक विषय होने के कारण विज्ञान पुस्तकों की अधिकांश विषय-वस्तु दृष्टिमूलक अनुभवों पर आधारित होती है। दृष्टिहीन बालकों की विशेष आवश्यकताओं तथा सीमाओं को ध्यान में रखते हुए विज्ञान पुस्तकों में नियोजित अधिगम अनुभवों में कुछ अनुकूलन वांछनीय हैं। ये अनुकूलन इस प्रकार किए जा सकते हैं:-

(1) द्विगुणीकरण (Duplication)- सामान्यत: दृष्टिहीन ब्रेल, बड़े छापे वाली अथवा ध्वन्यांकित पुस्तकों का प्रयोग करते हैं। पुस्तकों में सम्मिलित दृष्टिगत अनुभवों, जैसे रेखाचित्र आदि को उभरे हुए रेखाचित्र के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में द्विगुणन अनुकूलन के अन्तर्गत हम दृष्टिगत अनुभवों को बिना किसी विशेष परिवर्तन के गैर-दृष्टिगत अनुभवों के रूप में प्रस्तुत करते हैं, ताकि दृष्टिहीन बालक अन्य ज्ञानेन्द्रियों द्वारा इन अनुभवों से लाभान्वित हो सकें। पुस्तकों की विषय वस्तु में अनुकूलन की यह सर्वाधिक सामान्य एवं सर्वमान्य विधि है।

(2) रूपान्तरण (Modification)- कुछ परिस्थितियों में पुस्तक की पाठ्य-सामग्री में थोड़ा-बहुत परिवर्तन करना पड़ता है, ताकि दृष्टिहीन विद्यार्थी उक्त पाठ्य-सामग्री को ठीक प्रकार से समझ सकें। उदाहरणार्थ, जटिल रेखाचित्र को सरल उभरे हुए रेखाचित्र में परिवर्तित किया जा सकता है।

(3) प्रतिस्थापना (Substitution)- कई व्यावहारिक तथा अन्य कारणों से कुछ अभ्यास तथा प्रयोगात्मक कार्य दृष्टिहीन विद्यार्थियों द्वारा सम्भव नहीं हो पाते, इसलिए इस प्रकार की पाठ्य-सामग्री के स्थान पर अन्य ऐसी पाठ्य-सामग्री सम्मिलित की जा सकती है, जिसके द्वारा निर्दिष्ट विशिष्ट अधिगम उद्देश्यों की प्राप्ति की जा सकती है।

(4) विलोपन (Omission)- कभी-कभी छोटी कक्षाओं में दृष्टिहीन विद्यार्थियों द्वारा पाठ्य-सामग्री को समझने के लिए आवश्यक पूर्व ज्ञान अथवा कौशल का अभाव होता है। यदि यह ज्ञान अथवा कौशल विद्यार्थी द्वारा अर्जित करना सम्भव न हो तो उक्त पाठ्य-सामग्री को पुस्तक से हटाया जा सकता है, लेकिन ऐसा मात्र अपरिहार्य स्थिति में ही किया जाना चाहिए। पाठकों को पाठ्य-सामग्री में किए गए अनुकूलन की आवश्यक जानकारी अनिवार्य रूप से दी जानी चाहिए।

वैसे तो सभी पाठ्य-पुस्तकों को ब्रेल अथवा बड़े छापे (Large Print) में उपलब्ध कराया जाना चाहिए, लेकिन विज्ञान पर यह बात और भी अधिक लागू होती है। फिर भी यदि विज्ञान पुस्तकों को ध्वन्यांकित करना अपरिहार्य हो तो इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि पुस्तक में दिये गए चित्रों को स्पर्श सामग्री के रूप में ध्वन्यांकित पाठ्य-सामग्री के साथ सम्मिलित कर लिया जाए, ताकि दृष्टिहीन बालक पाठ्य-सामग्री को भली-भांति बिना कठिनाई के समझ सकें। विज्ञान की ब्रेल पुस्तक में प्रयुक्त विभिन्न विशेष ब्रेल संकेतकों से बच्चों को अवगत करा दिया जाना चाहिए, ताकि बच्चे इन्हें सामान्य ब्रेल से अलग पहचान कर सही परिप्रेक्ष्य

में प्रयोग कर सकें, साथ ही विज्ञान की पाठ्य-पुस्तकों में दिये गये चित्रों का शाब्दिक वर्णन सम्बन्धित पाठ अथवा अध्याय के अन्त में दिया जाए, जिससे उन चित्रों को उभारकर पाठ्य-पुस्तक में सम्मिलित करने का उद्देश्य प्राप्त करने में सहायता मिलेगी।

प्रयोगात्मक क्रियाओं के आयोजन में अध्यापक की भूमिका:

'करके सीखना' विज्ञान शिक्षण का एक आधारभूत सिद्धान्त है। प्रायोगिक क्रियाएं बच्चों को करके सीखने का अवसर प्रदान करती हैं तथा विज्ञान प्रत्ययों को समझने में अत्यन्त सहायक होती हैं। इसके अतिरिक्त निम्नलिखित बिन्दु प्रायोगिक क्रियाओं के महत्त्व को रेखांकित करते हैं:-

(1) उद्देश्यपूर्ण क्रियाओं द्वारा अर्जित अधिगम अनुभव अधिक प्रभावी होता है। प्रयोग बच्चों को पुस्तकों में अथवा उनके अध्यापकों द्वारा दिये गए कथनों की जांच का अवसर प्रदान करते हैं।

(2) प्रायोगिक क्रियाओं से बच्चों की जिज्ञासा शान्त होती है तथा उन्हें भावात्मक सन्तुष्टि प्राप्त होती है।

(3) विज्ञान शिक्षण के दो मुख्य उद्देश्य--वैज्ञानिक ज्ञान का अर्जन तथा वैज्ञानिक अभिवृत्ति का विकास--प्रायोगिक कार्यों द्वारा प्राप्त किए जा सकते हैं।

(4) प्रयोग बच्चों को वैज्ञानिक विधि में प्रशिक्षण का अवसर प्रदान करते हैं।

(5) प्रयोगशाला में कार्य करने में बच्चों में कई अच्छी आदतों तथा गुणों का विकास होता है, जैसे सहयोग की भावना, आत्मनिर्भरता, आत्मविश्वास, नेतृत्व क्षमता आदि।

(6) प्रायोगिक कार्य करते समय बच्चे विभिन्न उपकरणों तथा यन्त्रों को ठीक प्रकार से प्रयोग करना भी सीख जाते हैं।

हालांकि प्रायोगिक क्रियाएं विज्ञान की पाठ्य-सामग्री का एक महत्त्वपूर्ण भाग हैं, लेकिन दृष्टिहीन विद्यार्थियों के संदर्भ में कुछ शंकाएं स्वाभाविक हैं। क्या दृष्टिहीन विद्यार्थी प्रयोगशाला में प्रयुक्त खतरनाक उपकरणों तथा रासायनिक पदार्थों को सुरक्षित रूप से इस्तेमाल कर सकने में सक्षम हैं? क्या दृष्टिहीन विद्यार्थी प्रयोगों द्वारा विज्ञान प्रत्ययों को समझने में सक्षम हैं? यदि अध्यापक प्रयोगात्मक क्रियाओं के आयोजन में कुछ सावधानियाँ बरतें तो ये सभी शंकाएं निर्मूल साबित हो सकती

हैं। प्रयोगशाला में सुरक्षित रूप से कार्य करने हेतु सभी सम्बन्धित आवश्यक सामान्य जानकारी से अवगत कराया जाना चाहिए। दृष्टिहीन छात्रों को कुछ अतिरिक्त सावधानियाँ भी बरतनी चाहिएं, जिनकी जानकारी उन्हें दी जानी चाहिए। अध्यापक प्रयोगशाला में दृष्टिहीन छात्रों हेतु प्रायोगिक क्रियाओं के आयोजन के समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रख सकते हैं:-

(1) दृष्टिहीन छात्र समूह में तो प्रयोग सम्बन्धी जानकारी अध्यापक से प्राप्त करता ही है, इसके अतिरिक्त यदि आवश्यक हो तो दृष्टिहीन विद्यार्थी को अतिरिक्त सावधानियों की जानकारी भी अध्यापक द्वारा दी जानी चाहिए।

(2) प्रयोग के प्रदर्शन के समय दृष्टिहीन विद्यार्थी को प्रयोग स्थल के समीप होना चाहिए, जिससे वह उपकरणों का स्पर्शीय अवलोकन कर प्रायोगिक क्रिया को भली-भांति समझ सके।

(3) यदि सम्भव हो तो वह अध्यापक की देख-रेख में प्रयोग कर सकता है।

(4) दृष्टिवान तथा दृष्टिहीन छात्रों को संयुक्त रूप से भी प्रयोग करने के लिए कहा जा सकता है, लेकिन दृष्टिबाधित छात्र की प्रायोगिक कार्य में सक्रिय भागीदारी को अध्यापक द्वारा सुनिश्चित किया जाना चाहिए।

(5) प्रयोगशाला में काम आने वाले सामान्य उपकरणों को प्रयोग करने के लिए दृष्टिबाधित छात्रों को प्रोत्साहित करना चाहिए।

(6) प्रायोगिक कार्य निर्देश-पुस्तिका ब्रेल अथवा बड़े छापे में उपलब्ध होनी चाहिए।

(7) बर्नर,गर्म अथवा सांद्र रसायनों को प्रयोग करते समय विशेष सावधानी बरतनी चाहिए। अल्पदृष्टि बालक द्वारा निकट से परीक्षण करते समय हानिकारक गैसों के शरीर में प्रवेश करने की सम्भावना रहती है। ऐसे बालकों को इस बारे में सतर्क कर दिया जाना चाहिए।

दृष्टिबाधित छात्रों द्वारा विशेष प्रकार के उपकरणों का प्रयोग किया जा सकता है, जैसे कि उभरे हुए चिह्नों वाली मापनी, कमानीदार तुला, स्क्रूगेज इत्यादि। लाइट प्रोब पेननुमा एक विशेष उपकरण है, जिसमें प्रकाश की तीव्रता के अनुसार धीमी या तेज आवाज आती है। दृष्टिहीन छात्र इस उपकरण द्वारा रंगों के परिवर्तन, अवक्षेपन, द्रव्यों के तल आदि सम्बन्धी परीक्षण कर सकता है। दृष्टिहीन छोटे आकार के स्थान पर बड़े आकार की सामग्री प्रयोग कर सकते हैं, जैसे कि सेम, राजमा, मक्का के बीज, बड़े आकार के फूल, बड़े मोती इत्यादि।

दृष्टिहीनों के लिए विज्ञान शिक्षण हेतु आवश्यक स्पर्शीय चित्र एवं सहायक सामग्री के निर्माण एवं अनुकूलन के सिद्धान्त एवं निर्देश:

विज्ञान की पाठ्य-सामग्री को सुरुचिपूर्ण तथा सुग्राही बनाने हेतु बहुधा चित्रों का प्रयोग किया जाता है। विद्युत परिपथ, परमाणु की संरचना, जीवधारियों की बाह्य तथा आन्तरिक संरचना जैसे अनेक प्रकरणों को समझने में चित्र अत्यन्त सहायक सिद्ध होते हैं। अक्सर ब्रेल पुस्तक में इन चित्रों को बिना किसी विशेष परिवर्तन के उभरे हुए चित्र के रूप में सम्मिलित कर लिया जाता है। उभरे हुए चित्र बनाते समय उनके आकार का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए। बहुत छोटे चित्रों के स्पर्शीय अवलोकन में दृष्टिहीन कठिनाई का अनुभव कर सकते हैं, क्योंकि ऐसे चित्रों में भेद कर पाना मुश्किल होता है। अधिक बड़े उभरे हुए चित्र से प्राप्त स्पर्शीय अनुभवों के एकीकरण में भी कठिनाई होती है, इसलिए उभरे हुए चित्र उचित आकार के होने चाहिएं। इन चित्रों को थर्मोफॉर्म (Thermoform) अथवा अन्य मशीनों द्वारा बनाया जा सकता है। अध्यापक अनेक प्रकार की सामग्रियों का प्रयोग कर उभरे हुए चित्रों को स्वयं बना सकता है। स्पर्शीय चित्र बनाते समय निम्नलिखित बिन्दुओं पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए:-

(1) स्पर्शीय चित्र विशिष्ट उद्देश्यों को ध्यान में रखकर बनाए जाने चाहिएं।

(2) स्पर्शीय चित्र इस प्रकार बनाया जाना चाहिए कि दृष्टिहीन विद्यार्थी उसके विभिन्न हिस्सों का सरलता से अवलोकन, विभेदन तथा पहचान कर सके।

(3) स्पर्शीय चित्र को बनाने में इस प्रकार की सामग्री का उपयोग होना चाहिए कि दृष्टिहीन विद्यार्थी द्वारा प्रयोग करने के बावजूद भी वह खराब न हो।

(4) स्पर्शीय चित्र को ब्रेल तथा प्रिंट दोनों में चिह्नित किया जाना चाहिए।

(5) चित्र स्पर्शीय रूप से तथा देखने में आकर्षक होना चाहिए।

अधिक जटिल चित्र को दो या अधिक उभरे हुए चित्रों के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, मानव शरीर के परिसंचरण तन्त्र के चित्र को शिरा तथा धमनी तन्त्रों के दो अलग-अलग उभरे हुए चित्रों के रूप में अनुकूलित कर सकते हैं। चित्र को चिह्नित करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि चित्र पढ़ते समय दृष्टिहीन विद्यार्थी को किसी प्रकार का भ्रम न हो। प्राथमिक और माध्यमिक कक्षाओं के छात्रों हेतु राष्ट्रीय दृष्टिबाधितार्थ संस्थान, देहरादून ने प्लास्टिक प्लेटों पर बहुत-से स्पर्शीय चित्रों का निर्माण किया है। इन स्पर्शीय चित्रों का सहायक

शिक्षण अधिगम सामग्री के रूप में उपयोग किया जा सकता है। ये स्पर्शीय चित्र संस्थान के विक्रय केन्द्र पर उपलब्ध हैं।

उभरे हुए चित्रों के द्विआयामी होने के कारण दृष्टिहीन कई बार इन्हें ठीक प्रकार से समझ नहीं पाते, इसलिए अध्यापक को इन चित्रों के स्थान पर त्रिआयामी मॉडलों का उपयोग करना चाहिए। उदाहरण के लिए, हृदय, वृक्क, कान की आन्तरिक संरचना इत्यादि को मॉडलों के माध्यम से अधिक प्रभावी ढंग से समझाया जा सकता है। विज्ञान सम्बन्धी बहुत-से मॉडल व्यावसायिक रूप से उपलब्ध हैं, जिन्हें बिना किसी परिवर्तन के दृष्टिहीनों के विज्ञान शिक्षण हेतु उपयोग किया जा सकता है।

स्पर्शीय चित्र तथा अन्य सहायक सामग्री, जैसे मॉडल इत्यादि दृष्टिहीन छात्रों को विज्ञान सीखने के लिए अभिप्रेरित करते हैं। इनसे बच्चों को विविध मूर्त अनुभव प्राप्त होते हैं, जिससे विज्ञान प्रत्ययों को सीखना अधिक सरल और प्रभावी हो जाता है। इस प्रकार विज्ञान शिक्षण में आने वाली कुछ समस्याओं का निदान स्पर्शीय चित्रों तथा अन्य सामग्री, जैसे मॉडल इत्यादि के उपयोग से किया जा सकता है।

विज्ञान शिक्षण में समस्याएं एवं निदान--अध्यापक की भूमिका एवं उत्तरदायित्व:-

दृष्टि के माध्यम से ही बालक वातावरण से अधिकांश सूचनाएं ग्रहण करता है, अतः यही कारण है कि वह अपने वातावरण को जानने और समझने में दृष्टि को प्रमुख रूप से उपयोग में लाता है। यह माना जाता है कि लगभग 90 प्रतिशत सूचनाएं मस्तिष्क तक दृष्टि के माध्यम से ही पहुँचती हैं। दृष्टि के द्वारा प्राप्त सूचनाएं विस्तृत होती हैं। दृष्टि सम्पूर्ण वस्तु अथवा वस्तु-समूहों को मस्तिष्क में एक समग्र रूप में चित्रित करने की क्षमता रखती है। विज्ञान एक ऐसा विषय है, जिसके माध्यम से बालक वातावरण के बारे में जानकारी प्राप्त करता है। दृष्टि के अभाव में दृष्टिहीन बालक वातावरण के बारे में सीमित जानकारी ही प्राप्त कर पाता है। यही कारण है कि विज्ञान सम्बन्धी प्रत्ययों को समझने में अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। अध्यापक योजनाबद्ध तरीके से दृष्टिहीन बालकों के अनुभवों को विस्तार, विविधता एवं समग्रता प्रदान कर सकता है। पुस्तकों के अनुकूलन तथा प्रायोगिक क्रियाओं से सम्बन्धित समस्याओं के बारे में पहले ही चर्चा की जा चुकी है। विज्ञान शिक्षण सम्बन्धी अन्य कुछ समस्याएं तथा उनके निदान इस प्रकार हैं:--

हारले (Harley, 1963) तथा अन्य अनुसंधायकों ने दृष्टिहीनों में वाचकता (Verbalism) की समस्या का अध्ययन करते समय पाया कि यह समस्या घर

के वातावरण की अपेक्षा प्रकृति सम्बन्धी प्रत्ययों में अधिक सामान्य है। इससे ज्ञात होता है कि अर्थपूर्ण अनुभव प्रदान करने में स्थूल अनुभव अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होते हैं। प्रकृति तथा आस-पास के वातावरण के बारे में वास्तविक ज्ञान प्रदान करने के लिए अध्यापक को चाहिए कि वह दृष्टिहीन बालक को विविध प्रकार से स्थूल अनुभव प्रदान करे। विद्यार्थियों को स्थूल अनुभव दो प्रकार से दिये जा सकते हैं- वस्तु अथवा स्थिति का स्वयं विद्यार्थी द्वारा अवलोकन करके अथवा उन्हें वस्तु का मॉडल प्रदान करके। विद्यार्थी को वस्तु का पूर्ण अवलोकन करने के लिए पर्याप्त समय दिया जाना चाहिए। यदि सम्भव हो तो वस्तु को कक्षा के बाद छात्र के पास ही छोड़ देना चाहिए, इससे छात्र को अनौपचारिक स्थिति में वस्तु को ठीक प्रकार से देखने का अवसर मिल जाएगा तथा वह अपने अन्य साथियों के साथ मिलकर वस्तु के बारे में अधिक प्रभावी ढंग से सीखेगा। अध्ययन यात्राओं तथा भ्रमण द्वारा हम दृष्टिबाधित विद्यार्थियों को विभिन्न स्थितियों से परिचित करा सकते हैं। इन यात्राओं तथा भ्रमण का महत्त्व इस बात पर निर्भर करता है कि इनका आयोजन किस प्रकार किया गया। यदि दृष्टिबाधित बालक को किसी वस्तु को वास्तविक रूप में दिखाना सम्भव न हो तो वस्तु के मॉडल द्वारा बालक को वस्तु की कुछ विशेषताओं अथवा लक्षणों से अवगत कराया जा सकता है। मॉडल वास्तविक वस्तु का पूर्ण विकल्प नहीं हो सकता, क्योंकि अक्सर मॉडल द्वारा वस्तु की कई विशेषताओं के बारे में बालक अनभिज्ञ रहता है। उदाहरण के लिए, किसी भी जानवर के मॉडल से बालक को उससे सम्बन्धित कई महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ नहीं मिल पातीं, जैसे कि त्वचा का स्वभाव, शरीर की कंपकंपी अथवा गर्मी, जानवर की आवाज तथा उसकी गतिशीलता इत्यादि। बहुधा मॉडल द्वारा बालक के मस्तिष्क में वस्तु का विकृत प्रत्यय बन जाता है। अध्यापक को सावधानी बरतते हुए बालक को वस्तु के बारे में सभी आवश्यक जानकारी देनी चाहिए, ताकि बालक के मस्तिष्क में सही प्रत्यय निर्मित हो। स्पर्शीय चित्रों का उपयोग भी सीमित अनुभव देने के लिए किया जा सकता है। जैसे कि पहले बताया जा चुका है ये चित्र सामान्यतः द्विआयामी प्रत्ययों के लिए ही अधिक उपयोगी सिद्ध होते हैं।

प्रेक्षण के बिना विज्ञान का अध्ययन सम्भव नहीं है। प्रेक्षण एक बहुसंवेदी प्रक्रिया है। दृष्टि के अभाव में दृष्टिबाधित विद्यार्थी प्रेक्षण हेतु अपनी अन्य शेष ज्ञानेन्द्रियों, जैसे श्रवण, स्पर्श, घ्राण, स्वाद, गतिबोधक इत्यादि का उपयोग करता है। अल्प दृष्टि बालक को अपनी अवशिष्ट दृष्टि के उपयोग के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए, क्योंकि बहुधा अवशिष्ट दृष्टि के प्रभावी इस्तेमाल से काफी उपयोगी जानकारी प्राप्त की जा सकती है। बहुसंवेदी उपागम से न केवल दृष्टिबाधित बालकों में विज्ञान के प्रति रुचि उत्पन्न होती है, वरन् वे अपनी क्षमताओं का अधिकतम

उपयोग करने के लिए प्रोत्साहित होते हैं तथा उन्हें आत्म-अभिव्यक्ति तथा सृजनात्मकता के अवसर मिलते हैं।

जैसा कि आप जानते हैं दृष्टिहीन व्यक्ति किसी भी वस्तु अथवा स्थिति की समग्र जानकारी एक साथ प्राप्त नहीं कर पाते। अक्सर एक स्पर्शीय अनुभव द्वारा वस्तु के केवल कुछ हिस्से की जानकारी प्राप्त होती है। वस्तु के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए स्पर्शीय अनुभवों की एक शृंखला की आवश्यकता होती है। दृष्टिबाधित बालक इन अलग-अलग अनुभवों को एकीकृत कर समग्र प्रत्यय के निर्माण का प्रयास करता है, लेकिन यह प्रक्रिया सरल नहीं है, अतः यह देखा गया है कि विज्ञान अध्ययन के दौरान दृष्टिबाधित बालक वस्तुओं, मॉडलों तथा उभरे हुए चित्रों के स्पर्शीय अवलोकन के बावजूद उन्हें ठीक प्रकार से समझ नहीं पाते। अध्यापक के रूप में आप बालक के द्वारा अर्जित अलग-अलग स्पर्शीय अनुभवों को शृंखलाबद्ध कर अर्थपूर्ण समग्रता प्रदान कर सकते हैं।

विज्ञान को रुचिकर बनाने के लिए विशेष सहायक सामग्री का प्रयोग किया जा सकता है। अध्यापक स्थानीय सामग्री का उपयोग कर विज्ञान शिक्षण हेतु अभिनव सहायक सामग्री का निर्माण कर सकते हैं। सहायक सामग्री का निर्माण करते समय अन्तर्राष्ट्रीय मानक इकाइयों का प्रयोग किया जाना चाहिए। अध्यापक को चाहिए कि वह दृष्टिबाधित बालकों को विज्ञान पढ़ाने के लिए सभी आवश्यक सामग्री की उपलब्धता को विद्यालय में सुनिश्चित करे। राष्ट्रीय दृष्टिबाधितार्थ संस्थान दृष्टिबाधित बालकों के लिए प्रभावी विज्ञान शिक्षण सामग्री के विकास एवं उत्पादन में संलग्न है। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् द्वारा निर्मित साइंस किट में उचित अनुकूलन करके आप इसे दृष्टिबाधित बालकों के लिए शिक्षण अधिगम सामग्री के रूप में उपयोग कर सकते हैं।

बालोपयोगी अधिकांश विज्ञान सम्बन्धी पाठ्य-सामग्री ब्रेल लिपि में उपलब्ध नहीं है। अध्यापक ऐसी रोचक सामग्री को ध्वन्यांकित पुस्तकों के रूप में दृष्टिबाधित बालकों को उपलब्ध करा सकते हैं। आकाशवाणी इस दिशा में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती है। राष्ट्रीय शैक्षिक प्रौद्योगिकी संस्थान द्वारा उत्पादित ध्वन्यांकित विज्ञान सम्बन्धी पाठ्य-सामग्री का उपयोग भी दृष्टिबाधित बालकों द्वारा किया जा सकता है। ऐसी सामग्री के विकास और उत्पादन में राष्ट्रीय दृष्टिबाधितार्थ संस्थान कार्यरत है।

सामान्य कक्षा में दृष्टिबाधित बालकों को विज्ञान पढ़ाते समय कुछ सामान्य बातों का ध्यान रखना चाहिए, जैसे कि जो कुछ भी अध्यापक श्यामपट पर लिखे उसे धीरे-धीरे बोलता रहे ताकि बालक उसे ब्रेल में नोट कर ले। यदि अध्यापक

श्यामपट पर कोई रेखाचित्र बना रहा हो तो उसका मौखिक वर्णन दृष्टिबाधित बालक के लिए उसे समझने में सहायक होगा। अच्छा होगा यदि वैसा ही उभरा हुआ चित्र दृष्टिबाधित बालक को पहले से ही उपलब्ध करा दिया जाए। दृष्टिबाधित बालकों को त्रिआयामी प्रत्यय समझाने के लिए स्पर्शीय चित्र की अपेक्षा मॉडल का उपयोग अधिक प्रभावी होता है। अध्यापक बालक की वैयक्तिक आवश्कताओं को ध्यान में रखते हुए अनुदेशन विधि तथा सामग्री का प्रयोग करे।

हमारे विद्यालयों में प्राय: विज्ञान के पढ़ाने में भाषण की एक प्रचलित प्रथा है। हम यह जानते हैं कि वैज्ञानिक तथ्यों एवं ज्ञान की अपेक्षा वैज्ञानिक प्रक्रियाओं को समझना बालकों के लिए अधिक महत्त्वपूर्ण एवं चुनौतीपूर्ण होता है,इसलिए अध्यापक को विज्ञान की पारम्परिक शिक्षण विधियों तक सीमित नहीं रहना चाहिए। इसके स्थान पर बच्चों को स्वयं खोज के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। उन्हें उचित सामग्री के अवलोकन तथा परिचालन के अवसर प्रदान करके अध्यापक बच्चों में प्रेषण प्रयोग करने तथा अन्वेषण जैसे महत्त्वपूर्ण कौशलों का विकास कर सकते हैं। पढ़ने-लिखने तथा परिकलन सम्बन्धी क्रियाओं के समन्वित उपयोग से विज्ञान का अध्ययन करते समय बालकों को इन सभी मूल कौशलों का अभ्यास करने का अवसर भी मिलता है।

दृष्टिहीनों के विज्ञान सम्बन्धी प्रत्ययों के मूल्यांकन में समस्याएं तथा उनके निदान में अध्यापकों की भूमिका:

अध्यापक दृष्टिहीन बालकों को विज्ञान पढ़ाते समय ही नहीं, बल्कि विज्ञान प्रत्ययों के मूल्यांकन में भी अनेक समस्याओं का सामना करते हैं। मूल्यांकन शैक्षिक प्रक्रिया का एक अंग है। कक्षा में शिक्षण अधिगम क्रियाओं का आयोजन कुछ पूर्व निर्धारित उद्देश्यों के अनुसार किया जाता है। मूल्यांकन द्वारा यह ज्ञात हो सकता है कि किस हद तक उद्देश्यों की प्राप्ति हुई है। मूल्यांकन केवल ज्ञानात्मक उद्देश्यों पर ही केन्द्रित नहीं होना चााहिए, वरन् भावात्मक तथा क्रियात्मक उद्देश्यों को भी मूल्यांकन प्रक्रिया में सम्मिलित किया जाना चाहिए। शिक्षक अपने अध्यापन का मूल्यांकन बालकों में होने वाले अपेक्षित व्यवहारगत परिवर्तनों के माध्यम से करता है। मूल्यांकन आधुनिक शिक्षा प्रणाली में क्रमिक प्रक्रिया है, जो शिक्षा के उद्देश्य 'सीखने के अनुभव' तथा 'मूल्यांकन' के साधनों के मध्य निरन्तर चलती रहती है। उद्देश्य, अनुभव एवं मूल्यांकन निरन्तर एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं तथा उच्च स्तर की प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त करते हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि व्यापकता तथा निरन्तरता मूल्यांकन की दो मुख्य विशेषताएं हैं। मूल्यांकन के निम्नलिखित कार्य हैं:-

(1) विद्यार्थी द्वारा किए जाने वाले नवीन अधिगम कार्य हेतु पूर्वापेक्षित ज्ञान एवं कौशल के स्तर का आकलन मूल्यांकन द्वारा किया जा सकता है।

(2) मूल्यांकन से यह ज्ञात हो जाता है कि पूर्व निर्धारित शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति किस सीमा तक हुई।

(3) मूल्यांकन द्वारा विद्यार्थियों के अधिगम स्तर के बारे में जानकारी मिलती है, जो कि शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को अधिक प्रभावी बनाने में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होती है।

(4) मूल्यांकन द्वारा पाठ्यक्रम के क्षेत्र विशेष में विद्यार्थी की अधिगम सम्बन्धी दुर्बलताओं की पहचान की जा सकती है तथा सम्बन्धित कारण ढूँढकर उपयुक्त उपचारात्मक शिक्षण की व्यवस्था की जा सकती है।

(5) मूल्यांकन से हम ज्ञात कर सकते हैं कि शिक्षण विधियाँ बालकों को ज्ञान देने में कहाँ तक सफल हो सकती हैं। शिक्षण विधियों तथा प्रविधियों की उपादेयता और उनकी कमजोरियों को भी ज्ञात किया जा सकता है।

(6) मूल्यांकन में वस्तुनिष्ठ परीक्षाएं सम्पूर्ण कार्यक्रम पर आधारित होती हैं, अत: छात्रों को पूरे पाठ्यक्रम की तैयारी करने हेतु प्रेरणा मिलती है। मूल्यांकन क्रिया शिक्षक तथा छात्र दोनों के लिए पुनर्बलन का कार्य करती है।

(7) मूल्यांकन द्वारा बालकों की वैयक्तिक विभिन्नताओं का पता चलता है व कक्षा का वर्गीकरण योग्यता के आधार पर किया जा सकता है।

(8) मूल्यांकन से हम यह ज्ञात कर सकते हैं कि पाठ्यक्रम के कौन-कौन से भाग उनकी आवश्यकताओं, रुचियों, अभिवृत्तियों और सामर्थ्य के प्रतिकूल हैं। इनके आधार पर पाठ्यक्रम में उचित संशोधन किए जा सकते हैं।

दृष्टिबाधित बालकों के सामान्य विज्ञान सम्बन्धी मूल्यांकन में आने वाली समस्याओं का निदान अक्सर सामान्य अनुकूलन विधियों द्वारा हो जाता है। सामान्य विज्ञान में मूल्यांकन तीन प्रकार से होता है--मौखिक, लिखित तथा प्रायोगिक। दृष्टिबाधित बालक के मौखिक मूल्यांकन में कोई कठिनाई नहीं आती। कुछ विशेष परिस्थितियों में अध्यापक अपेक्षित उत्तर में थोड़ा-बहुत परिवर्तन कर सकते हैं। लिखित मूल्यांकन में बालक की आवश्यकतानुसार प्रश्न तथा उत्तर के उचित माध्यम के विषय में निर्णय लिया जाना चाहिए। शिक्षक बालक की सुविधानुसार प्रश्न-पत्र को ब्रेल लिपि, बड़े छापे अथवा ध्वन्यांकित रूप में उपलब्ध करा सकते हैं। इसी प्रकार बालक अपने उत्तर ब्रेल अथवा श्रव्य माध्यम द्वारा दे सकते हैं। दृष्टिबाधित

बालक द्वारा लिखित परीक्षा में सहायक लिपिक का प्रयोग सर्वाधिक प्रचलित है। इस विधि में दृष्टिबाधित परीक्षार्थी के लिए प्रश्न-पत्र अन्य व्यक्ति पढ़ता है तथा वही व्यक्ति परीक्षार्थी द्वारा बोले गए उत्तर को उत्तर पुस्तिका में लिख देता है।

लिखित मूल्यांकन हेतु मुख्यत: शिक्षक द्वारा निर्मित तथा प्रमाणीकृत परीक्षणों का उपयोग किया जाता है। शिक्षक को मूल्यांकन हेतु परीक्षण तैयार करते समय दृष्टिबाधित बालकों की विशेष आवश्यकताओं का ध्यान रखना चाहिए। ऐसे बालकों के लिए प्रश्नों में कुछ वांछनीय परिवर्तन कर सकते हैं, जैसे यदि किसी प्रश्न विशेष में परीक्षार्थियों से किसी उपकरण अथवा जीव-जन्तु का रेखाचित्र बनाने के लिए कहा गया हो तो उसके स्थान पर दृष्टिबाधित परीक्षार्थियों से उक्त उपकरण अथवा जीव-जन्तु की संरचना के विषय में पूछा जा सकता है। प्रश्न-पत्र को हल करने के लिए दृष्टिबाधित परीक्षार्थी को अतिरिक्त समय दिया जाना चाहिए। दृष्टिबाधित बालकों के अनुभवों तथा आवश्यकताओं में बड़ी विविधता पायी जाती है। यही कारण है कि विज्ञान के किसी प्रत्यय विशेष के मूल्यांकन हेतु किसी एक उपकरण के चुनाव पर सहमति नहीं बन पाती। प्रमाणीकृत परीक्षणों के उपयोग में शिक्षक अनेक समस्याओं का सामना करते हैं। दृष्टिबाधित बालक द्वारा अर्जित प्राप्तांकों की व्याख्या करना एक कठिन कार्य है, क्योंकि परीक्षण के प्रमाणीकरण की प्रक्रिया में प्रयुक्त प्रतिदर्श में दृष्टिबाधित बालक सम्मिलित नहीं होते। ऐसी स्थिति में शिक्षक को अपने विवेक के आधार पर प्राप्तांकों की व्याख्या करनी चाहिए। प्रमाणीकृत परीक्षण में सम्मिलित प्रश्नों तथा निर्देशों में भी आवश्यकतानुसार बदलाव किए जा सकते हैं।

दृष्टिबाधित बालक के प्रयोग सम्बन्धी मूल्यांकन को इस प्रकार आयोजित किया जाना चाहिए कि परीक्षार्थी प्रयोग को स्वयं स्वतन्त्र रूप से सम्पादित कर सकें। इसके लिए विशेष उपकरणों का प्रयोग किया जा सकता है। अपरिहार्य परिस्थितियों में मात्र परीक्षण हेतु दृष्टिवान व्यक्ति की सेवाएं दृष्टिबाधित परीक्षार्थी को दी जा सकती हैं।

उपयुक्त प्रयोगशाला का संगठन – विज्ञान शिक्षण के लिए प्रयोगशालाएं अत्यन्त आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण हैं। यहाँ वैज्ञानिक तथ्यों का परीक्षण किया जाता है। इसके बिना विज्ञान को प्रभावी ढंग से पढ़ाना असम्भव कार्य है।

प्रयोगशाला की आवश्यकता एवं महत्त्व--

(1) प्रयोगशाला में परीक्षण तथा प्रयोग करने हेतु विभिन्न वैज्ञानिक उपकरण, रसायन एवं अन्य सामग्री सुरक्षित रूप से संग्रहित एवं उपलब्ध रहती है।

(2) यहाँ विभिन्न प्रकार के उपकरण तथा सामग्री यथास्थान व्यवस्थित होती है, जिससे अध्यापक और विद्यार्थी का समय उन्हें ढूँढने में व्यर्थ न हो।

(3) प्रयोगशाला में व्यवस्थित वातावरण से विद्यार्थी प्रयोग करने के लिए अभिप्रेरित होते हैं।

(4) प्रयोगशालाएं विद्यार्थियों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करने में भी सहायक होती हैं।

(5) प्रयोगशाला में सामूहिक रूप से कार्य करते समय सहयोग तथा स्वस्थ प्रतिस्पर्धा जैसे अच्छे गुणों का विकास होता है, जो कि भविष्य में सफलता के लिए आवश्यक हैं। कक्षाओं के स्तर तथा विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए प्रयोगशाला का संगठन संभाषण कक्ष, प्रयोगशाला तथा सर्व-उद्देश्य विज्ञान कक्ष योजनाओं में से किसी एक योजना के आधार पर किया जा सकता है। पाठ्यक्रम तथा विद्यार्थियों की संख्यानुसार प्रयोगशाला में विभिन्न उपकरणों, रसायनों तथा अन्य विभिन्न सामग्रियों का प्रबन्ध किया जाना चाहिए। अत्यधिक ज्वलनशील, विस्फोटक, जहरीले अथवा खतरनाक रसायनों को अलमारी में ताला बन्द करके रखना चाहिए। प्रयोगशाला के संगठन में सभी आवश्यक सिद्धान्त दृष्टिबाधित बालक के यहाँ सुरक्षित रूप से कार्य करने में सहायक हैं, फिर भी इन बालकों के संदर्भ में कुछ बातों का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए:-

1. दराजों, अलमारियों, रसायन पदार्थों की बोतलों इत्यादि पर बड़े छापे तथा ब्रेल लिपि में लेबिल (Label) लगे होने चाहिएं।

2. प्रयोगशाला में इन विद्यार्थियों के लिए उपयोगी उपकरण, जैसे ब्रेल मापनी, कमानीदार तुला, स्क्रूगेज, वर्नियर केलिपर्स, लाइट प्रोब, श्रव्य तापमापी बेरोमीटर इत्यादि की व्यवस्था होनी चाहिए।

3. प्रयोगशाला के उपकरण सदैव यथा स्थान पर रखे होने चाहिएं, जिससे इन बालकों को इन उपकरणों को प्राप्त करने में कोई कठिनाई न हो।

4. मेज पर सारा सामान सुव्यवस्थित रूप से होना चाहिए, साथ ही फर्श पर विद्युत उपकरणों की तारें बिखरी नहीं होनी चाहिएं।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि प्रयोगशाला को दृष्टिबाधितों के लिए इस प्रकार संगठित किया जाना चाहिए, जिससे प्रयोगशाला में उपलब्ध उपकरणों तथा अन्य सामग्री तक उनकी स्वतन्त्र एवं सुरक्षित पहुँच सुनिश्चित हो जाए।

विज्ञान शिक्षण में क्लब, म्यूज़ियम तथा वानस्पतिक उद्यान की उपयोगिता एवं महत्त्वः

(1) क्लब – विज्ञान क्लब पाठ्य सहगामी क्रियाओं का आधार माना जाता है, क्योंकि जितनी शैक्षिक उपलब्धियाँ इसके माध्यम से होती हैं, उतनी अन्य क्रियाओं से नहीं। इसके द्वारा प्रत्येक विद्यार्थी कुछ-न-कुछ कार्य करता है और उससे लाभ उठाता है। विज्ञान की शिक्षा को और अधिक सार्थक तथा व्यावहारिक बनाने के लिए विज्ञान क्लब का महत्त्वपूर्ण योगदान है, क्योंकि कक्षा में विद्यार्थी केवल अध्यापक द्वारा वैज्ञानिक तथ्यों तथा सिद्धान्तों और प्रत्ययों को सीखता है लेकिन विज्ञान क्लब में वह इस ज्ञान को सार्थक बनाता है। तरह-तरह की योजनाओं को क्लब में चलाता है, जहाँ उसे तथ्यों को सत्यापित करने का अवसर तथा प्रोत्साहन मिलता है, जिससे बालक का दृष्टिकोण बहुमुखी हो जाता है। दृष्टिबाधित छात्र कक्षा को बाहरी दुनिया से जोड़कर देखता है तथा इस प्रकार अपनी रुचियों का विकास करता है, उसकी सोच व्यापक हो जाती है तथा वह नवीन ज्ञान की खोज के लिए प्रेरित होता है। क्लब में सम्पादित विभिन्न क्रियाओं से हस्त-कौशल का विकास होता है। विज्ञान क्लब में किये जाने वाले विभिन्न तकनीकी कार्य, जैसे बिजली अथवा इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों का निर्माण करना सिखाना या किसी अन्य व्यवसाय का प्रशिक्षण देना शिक्षा की दृष्टि से बड़े महत्त्व के होते हैं। दृष्टिबाधित बालकों के लिए ये क्रियाएं भविष्य में काफी उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं तथा उनकी जीविका का साधन बनकर उन्हें आर्थिक लाभ पहुँचा सकती हैं। स्वतन्त्र रूप से अपनी ही निर्धारित योजना व कार्यक्रम के अनुसार जब बालक कार्य करता है तो उसमें आत्मनिर्भरता तथा आत्मविश्वास पैदा होता है। यहाँ उसे अपनी प्रतिभा को अभिव्यक्त करने का मौका मिलता है।

हालांकि क्लब का संरक्षक सामान्यतया विद्यालय का मुख्य अध्यापक होता है, लेकिन क्लब के सदस्य, अधिकारी तथा कार्यकारी समिति के सदस्य सभी विद्यार्थी होते हैं तथा वे स्वयं ही क्लब की गतिविधियों का संचालन करते हैं। विज्ञान अध्यापक का मार्गदर्शन भी समय-समय पर उन्हें मिलता रहता है।

(2) म्यूज़ियम – वस्तुओं एवं घटनाओं का प्राकृतिक वातावरण में अध्ययन सीखने की आदर्श विधि है, लेकिन व्यावहारिक कारणों से हमेशा ऐसा सम्भव नहीं हो पाता, इसलिए आवश्यक है कि बाहरी दुनिया को विद्यालय में म्यूज़ियम के रूप में लाया जाए। म्यूज़ियम केवल शिक्षण में ही सहायक नहीं होता, अपितु इससे विद्यालय में एक उपयुक्त एवं सक्रिय अधिगम वातावरण निर्मित होता है।

म्यूज़ियम में तरह-तरह के जीव-जन्तु, पौधे, जन्तुओं और पौधों से प्राप्त उपयोगी वस्तुएं एवं पदार्थ, अयस्क, खनिज पदार्थ, विभिन्न प्रकार की मिट्टी, अनेक मॉडल इत्यादि संरक्षित एवं प्रदर्शित होते हैं। किसी भी अच्छे म्यूज़ियम की दो विशेषताएं होती हैं- क्रमबद्ध व्यवस्था तथा प्रदर्शित वस्तुओं की अच्छी तथा साफ लेबलिंग। प्रत्येक प्रदर्शित वस्तु के साथ 5 इंच x 4 इंच के आकार के कार्ड पर वस्तु का वैज्ञानिक तथा सामान्य नाम एवं अन्य आवश्यक जानकारी साफ-साफ लिखी होनी चाहिए। दृष्टिबाधितों को यही जानकारी ब्रेल में भी उपलब्ध होनी चाहिए। दृष्टिबाधित बालकों के संदर्भ में विज्ञान म्यूज़ियम का महत्त्व और भी बढ़ जाता है, क्योंकि उन्हें यहां प्रदर्शित वस्तुओं के स्पर्श तथा अन्य ज्ञानेन्द्रियों द्वारा स्थूल अनुभव प्राप्त करने का अवसर मिलता है, जो कि विज्ञान सम्बन्धी प्रत्ययों के निर्माण हेतु नितान्त आवश्यक है।

(3) वानस्पतिक उद्यान- सामान्यतः इस प्रकार के उद्यान कक्षा तथा प्रयोगशाला में अध्ययन हेतु वानस्पतिक सामग्री उपलब्ध कराने के लिए विद्यालय में लगाए जाते हैं। विद्यार्थी यहाँ अध्यापक के मार्ग दर्शन में पेड़-पौधों के विषय में जानकारी प्राप्त करते हैं। आमतौर पर यहाँ आस-पास पाए जाने वाले पेड़-पौधों के अतिरिक्त अन्य बहुत-सी वनस्पतियाँ भी उपलब्ध होती हैं। प्रत्येक पेड़-पौधे के साथ एक पट्टी पर पौधे का सामान्य तथा वैज्ञानिक नाम और अन्य जानकारी लिखी रहती है। दृष्टिबाधित विद्यार्थी के लिए यह जानकारी ब्रेल लिपि में भी उपलब्ध कराई जा सकती है। इसी उद्यान में कभी-कभी एक छोटा-सा तालाब भी होता है, यहाँ बच्चे जल वनस्पति को उसके प्राकृतिक परिवेश में देख सकते हैं।

दृष्टिबाधित बालकों को स्थूल, समृद्ध तथा व्यापक अनुभव प्रदान करने में क्लब, म्यूज़ियम तथा वानस्पतिक उद्यान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं तथा ये बालक विज्ञान प्रत्ययों को अधिक अर्थपूर्ण ढंग से सीखने में सक्षम होते हैं। दूसरे शब्दों में, विद्यालय में क्लब, म्यूज़ियम तथा वानस्पतिक उद्यान के द्वारा अध्यापक विज्ञान के सामान्य तथा अनुदेशात्मक उद्देश्यों की प्राप्ति अधिक प्रभावी ढंग से कर सकते हैं।

प्राथमिक स्तर पर दृष्टिबाधितों के लिए विज्ञान की आदर्श पाठ योजना:

पाठ योजना का तात्पर्य विशिष्ट उद्देश्यों एवं अपेक्षित व्यवहारीय परिवर्तनों की प्राप्ति के संदर्भ में पाठ को आकर्षक ढंग से नियोजित करने से है। ध्यानपूर्वक बनाई गई पाठ योजना सफल एवं प्रभावी शिक्षण की कुंजी है। पाठ योजना वास्तव

में प्रभावी शिक्षण की एक कार्य योजना है। पाठ योजना प्रस्तुति-अनुसार क्रमबद्ध महत्त्वपूर्ण शिक्षण बिन्दुओं की रूपरेखा है। इसमें सामान्यतः उद्देश्य, सहायक सामग्री, विद्यार्थियों से पूछे जाने वाले प्रश्न, गृह कार्य इत्यादि भी सम्मिलित किए जाते हैं।

पाठ योजना के लाभ-

(1) यह शिक्षण कार्य को नियमित, व्यवस्थित एवं क्रमबद्ध बनाता है।

(2) शिक्षक में आत्मविश्वास तथा आत्मनिर्भरता का भाव उत्पन्न करता है।

(3) शिक्षक विशेष उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए अपना शिक्षण कार्य करता है। इससे शिक्षण अधिगम प्रक्रिया सुचारु एवं प्रभावी हो जाती है।

(4) पाठ योजना से समय की बचत होती है, अर्थात् थोड़े ही समय में अधिगम उद्देश्यों की प्राप्ति कर लेते हैं।

(5) पाठ योजना द्वारा शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में छात्रों की सक्रिय भागीदारी को सुनिश्चित किया जा सकता है।

पाठ योजना के विभिन्न सोपान- जे. एफ. हरबार्ट (J.F. Herbart) तथा अन्य कई शिक्षाविदों ने पाठ योजना के निम्न औपचारिक सोपान सुझाए हैं, जो आज भी प्रचलित हैं:-

(1) तैयारी-- यह कार्य छात्रों के पूर्व ज्ञान सम्बन्धी प्रश्नों का मूल्यांकन करके मौखिक प्रश्न पूछकर अथवा चार्ट्स, मॉडल, तस्वीरों आदि का प्रयोग करके किया जा सकता है। प्रस्तावना आकर्षक ढंग से पूर्व ज्ञान को नवीन ज्ञान से जोड़कर प्रस्तुत की जानी चाहिए, जिससे छात्रों की पाठ में रुचि शीघ्रता से जागृत की जा सके।

(2) प्रस्तुतीकरण-- इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पद में छात्रों को नवीन ज्ञान दिया जाता है। इसमें छात्र तथ्यों का अवलोकन एवं निरीक्षण करता है, साथ ही तथ्यों के बीच सम्बन्ध स्थापित कर सामान्य नियम, सूत्र एवं निष्कर्ष निकालता है। प्रस्तुतीकरण छात्रों के सक्रिय सहयोग से किया जाना चाहिए। प्रश्नों तथा सहायक सामग्री का यथासम्भव प्रभावी उपयोग किया जाना चाहिए।

(3) तुलना-- छात्र नवीन अर्जित ज्ञान की सत्यता की परख समान परिस्थितियों में रखकर करते हैं, परिणामस्वरूप नवीन ज्ञान उनके चरित्र का स्थायी अंग बन जाता है।

(4) सामान्यीकरण-- सामान्यीकरण की इस प्रक्रिया में छात्रों का सक्रिय सहयोग प्राप्त करते हुए सूत्र, नियम अथवा सिद्धान्त की स्थापना की जाती है।

(5) अनुप्रयोग-- सीखने के हस्तान्तरण की दृष्टि से प्रस्तुतीकरण के पश्चात् अनुप्रयोग के लिए अभ्यासार्थ कक्षाकार्य देना चाहिए। जीवन की वास्तविक समस्याओं के हल में भी प्राप्त वैज्ञानिक ज्ञान का प्रयोग करने के लिए छात्रों को प्रेरित करना चाहिए।

(6) पुनरावृत्ति-- पाठ योजना का यह अन्तिम महत्त्वपूर्ण सोपान है। पुनरावृत्ति का मुख्य उद्देश्य शिक्षण की सफलता का पता लगाना है। प्रकरण की मुख्य-मुख्य बातें संक्षेप में प्रश्न पूछकर दोहरायी जा सकती हैं।

इन्हीं पदों पर आधारित पाठ योजना नीचे दी गयी है:-

पाठ योजना

विषय : विज्ञान
प्रकरण : वायु
दिनाँक : --------

कक्षा : V
कालांश : चतुर्थ
अवधि: 35 मिनट

अनुदेशात्मक उद्देश्य:

(1) छात्र वायु के विभिन्न संघटकों के नाम बता सकेंगे।
(2) छात्र वायु में उपस्थित उसके विभिन्न संघटकों की प्रतिशतता बता सकेंगे।
(3) छात्र वायु के सामान्य गुणों को समझ सकेंगे।
(4) दैनिक जीवन में घटने वाली विभिन्न घटनाओं को समझने में छात्र अर्जित ज्ञान का अनुप्रयोग कर सकेंगे।

सहायक सामग्री:

काँच का गिलास, बर्फ के टुकड़े, ब्रेल चार्ट, गुब्बारे।

अनुमानित पूर्व ज्ञान:

छात्रों से अपेक्षित है कि वे--

(1) इस तथ्य से परिचित हैं कि हमारे चारों ओर वायु उपस्थित रहती है।
(2) इस तथ्य से परिचित हैं कि वायु का हमारे दैनिक जीवन में बहुत महत्त्व है।

पूर्व ज्ञान परीक्षण:

शिक्षक क्रियाएं	छात्र क्रियाएं
(1) जब पंखा चलता है तो हमारे शरीर को किस चीज का अनुभव होता है?	(1) वायु का अनुभव होता है।
(2) पुष्प की सुगन्ध एक स्थान से दूसरे स्थान पर किसके माध्यम से पहुँचती है?	(2) वायु के माध्यम से पहुँचती है।
(3) हम श्वसन क्रिया में कौन-सी गैस लेते हैं?	(3) हम श्वसन क्रिया में ऑक्सीजन गैस लेते हैं।
(4) यह ऑक्सीजन गैस हमें कहाँ से प्राप्त होती है?	(4) ऑक्सीजन गैस हमें वायु से मिलती है।
(5) वायु में ऑक्सीजन के अतिरिक्त और कौन-कौन सी गैसें पायी जाती हैं?	(5) छात्रों द्वारा संतोषजनक उत्तर प्राप्त नहीं होता।

प्रकरण उद्घोषणा:

छात्रो, आइए आज हम वायु के संघटन तथा गुणों का विस्तारपूर्वक अध्ययन करें।

प्रस्तुतीकरण:

शिक्षण बिन्दु	शिक्षक क्रियाएं	छात्र क्रियाएं
1. वायु के संघटक	(1) श्वसन क्रिया द्वारा हम कौन-सी गैस वापिस छोड़ते हैं?	(1) कार्बन-डाइऑक्साइड।
	(2) इसका अर्थ है कि वायु में ऑक्सीजन के अतिरिक्त कार्बनडाइऑक्साइड गैस भी पायी जाती है?	(2) छात्र ध्यानपूर्वक सुनेंगे।
	(3) छात्रो, वायु में इन दोनों गैसों के अतिरिक्त और कौन-सी गैस पाई जाती है।	(3) छात्र संतोषजनक उत्तर नहीं दे पाते।

	(4) इन दोनों गैसों के अतिरिक्त वायु में नाइट्रोजन गैस भी पायी जाती है।	(4) छात्र ध्यानपूर्वक सुनेंगे।
	(5) छात्रो, शीशे के इस गिलास की सतह को ध्यान से देखो, यह बिल्कुल सूखी है?	(5) छात्र शीशे के गिलास की सतह का स्पर्शीय अनुभव करते हैं तथा पाते हैं कि सतह बिल्कुल सूखी है।
	(6) अब हम गिलास में बर्फ के कुछ टुकड़े डाल देते हैं। कुछ समय पश्चात् छात्र गिलास की सतह को फिर से स्पर्श करें। आप क्या पाते हैं?	(6) छात्र गिलास की सतह का स्पर्श करने पर उसे गीला पाते हैं।
	(7) छात्रो, गिलास की सतह पर पानी की ये बूंदें कहाँ से आईं?	(7) सम्भवतः वायु से।
	(8) इसका अभिप्राय यह हुआ कि वायु में जलवाष्प पाये जाते हैं, जो कि ठण्डी सतह के सम्पर्क में आने से जल में परिवर्तित हो गए।	(8) छात्र ध्यानपूर्वक सुनेंगे।
	(9) हवा चलने पर धूल के कण भी वायु में मिल जाते हैं, अर्थात् धूल भी वायु का एक संघटक है। वायु में हीलियम, आर्गन, जीनॉन तथा अन्य निष्क्रिय गैसें पायी जाती हैं।	(9) छात्र ध्यानपूर्वक सुनेंगे।
2. वायु के संघटकों की प्रतिशतता	(10) वायु में ऑक्सीजन की कितनी प्रतिशतता है?	(10) छात्र निरुत्तर हो जाते हैं।
	(11) ब्रेल चार्ट में देखकर बताइए कि वायु में कितने प्रतिशत ऑक्सीजन पायी जाती है?	(11) वायु में ऑक्सीजन गैस 21 प्रतिशत पायी जाती है।
	(12) चार्ट में देखकर वायु में उपस्थित नाइट्रोजन तथा कार्बन-डाइऑक्साइड की प्रतिशतता बताइए?	(12) वायु में 78 प्रतिशत नाइट्रोजन तथा .03 प्रतिशत कार्बन-डाईऑक्साइड पायी जाती है।

	(13) चार्ट से ही देखकर बताइए कि वायु में जलवाष्प तथा धूल के कण कितने प्रतिशत हैं?	(13) वायु में जलवाष्प तथा धूल के कण लगभग .03 प्रतिशत होते हैं।
	(14) वायु में हीलियम, आर्गन, जीनॉन तथा अन्य निष्क्रिय गैसों की कितनी प्रतिशतता है?	(14) वायु में 0.94 प्रतिशत निष्क्रिय गैसें पायी जाती हैं।
3. वायु के गुण	(15) वायु को सूंघकर बताइए कि इसकी गंध कैसी होती है?	(15) वायु गंधहीन होती है।
	(16) वायु का स्वाद कैसा होता है?	(16) वायु स्वादहीन होती है।
	(17) छात्रो, वायु का अपना कोई रंग नहीं होता, अर्थात् यह रंगहीन होती है।	(17) छात्र ध्यानपूर्वक सुनेंगे।
प्रयोग-1 (वायु स्थान घेरती है)	शिक्षक द्वारा प्रत्येक छात्र को गुब्बारा देने के पश्चात् प्रश्न पूछा जाता है:-	
	(18) यह क्या है?	(18) यह गुब्बारा है।
	(19) अब इस गुब्बारे में थोड़ी-सी हवा भरो। आप इसके आकार में क्या परिवर्तन पाते हैं?	(19) इसका आकार बढ़ गया है।
	(20) गुब्बारे के आकार में वृद्धि किसके कारण हुई?	(20) गुब्बारे के आकार में वृद्धि वायु के कारण हुई।
	(21) इस प्रयोग से वायु के किस गुण का पता चलता है?	(21) छात्र संतोषजनक उत्तर नहीं दे पाते।
	(22) इस प्रयोग से निष्कर्ष निकलता है कि वायु स्थान घेरती है।	(22) छात्र ध्यानपूर्वक सुनेंगे।
प्रयोग-2 (वायु दबाव	शिक्षक छात्रों को दिये गए गुब्बारे में थोड़ी और हवा भरने के लिए कहता है तथा प्रश्न पूछता है:-	

डालती है)	(23) गुब्बारे में थोड़ी और हवा भरने पर क्या होता है?	(23) गुब्बारे का आकार और अधिक बढ़ जाता है।
	(24) यदि गुब्बारे में लगातार हवा भरते जाएं तो क्या होता है?	(24) गुब्बारा फूट जाता है।
	(25) गुब्बारे में ज्यादा हवा भरने से उसका फूट जाना, वायु के किस गुण को प्रदर्शित करता है?	(25) छात्र संतोषजनक उत्तर नहीं दे पाते।
	(26) गुब्बारे में लगातार हवा भरते रहने से गुब्बारे की दीवार पर वायु का दबाव बढ़ता जाता है, जिसके परिणामस्वरूप गुब्बारा फूट जाता है, अर्थात् इससे सिद्ध होता है कि वायु दबाव डालती है?	(26) छात्र ध्यानपूर्वक सुनेंगे।

पुनरावृत्ति:

पुनरावृत्ति एवं मूल्यांकन हेतु शिक्षक छात्रों से निम्न प्रश्न पूछेगा:-

(1) वायु के विभिन्न संघटकों के नाम बताइए?

(2) वायु में सबसे अधिक कौन-सी गैस पायी जाती है?

(3) वायु में ऑक्सीजन तथा कार्बन-डाईऑक्साइड गैस कितने प्रतिशत पायी जाती है?

(4) गुब्बारे का फूलना वायु के किस गुण को प्रदर्शित करता है?

(5) हवा भरते रहने पर गुब्बारे का फटना, वायु के किस गुण को प्रदर्शित करता है?

गृहकार्य:

(1) दैनिक जीवन में घटने वाली किन्हीं दो घटनाओं के विषय में लिखिए जिससे यह मालूम हो कि वायु दबाव डालती है?

दृष्टिबाधितों के लिए माध्यमिक स्तर पर सामान्य विज्ञान शिक्षण की आदर्श पाठ योजनाः

पाठ योजना

विषय : विज्ञान
प्रकरण : जड़ों के प्रकार तथा उनका रूपांतरण
दिनाँक : --------

कक्षा : IX
कालांश : प्रथम
अवधि: 35 मिनट

अनुदेशात्मक उद्देश्य:

(1) छात्र जड़ के विभिन्न प्रकारों जैसे मूसला तथा अपस्थानिक जड़ों को परिभाषित कर सकेंगे।

(2) छात्र मूसला तथा अपस्थानिक जड़ों के उदाहरण दे सकेंगे।

(3) छात्र मूसला जड़ों के विभिन्न रूपान्तरों को परिभाषित कर सकेंगे।

(4) छात्र मूसला जड़ों के विभिन्न रूपान्तरों के उदाहरण दे सकेंगे।

सहायक सामग्री:

मूली, गाजर, शलजम, सरसों का पौधा, शकरकंद।

अनुमानित पूर्व ज्ञान:

छात्रों से अपेक्षित है कि वे--

(1) पौधे के विभिन्न भागों से परिचित हैं।

(2) पौधे में जड़ की उपस्थिति तथा उनके सामान्य कार्यों से परिचित हैं।

पूर्व ज्ञान परीक्षण:

शिक्षक क्रियाएं	छात्र क्रियाएं
(1) पौधे के मुख्य भाग कौन-कौन से हैं?	(1) जड़, तना, पत्तियाँ तथा फूल पौधे के मुख्य भाग हैं।
(2) भूमि में पौधे को जमाए रखने का कार्य पौधे का कौन-सा भाग करता है?	(2) जड़ पौधे को भूमि में जमाए रखती है।

(3) जड़ का अन्य कार्य क्या है?	(3) भूमि से पानी तथा लवणों का अवशोषण जड़ का अन्य कार्य है।
(4) जड़ें मुख्यतः कितने प्रकार की होती हैं?	(4) छात्र निरुत्तर हो जाते हैं।

प्रकरण उद्घोषणा:

छात्रो, आज हम जड़ के विभिन्न प्रकारों तथा रूपांतरण के विषय में अध्ययन करेंगे।

प्रस्तुतीकरण:

शिक्षण बिन्दु	शिक्षक क्रियाएं	छात्र क्रियाएं
1. मूसला जड़ तंत्र	सरसों का पौधा दिखाते हुए अध्यापक छात्रों से निम्नलिखित प्रश्न पूछता है:-	
	(1) पौधे में तने के आधार भाग से एक मोटी जड़ निकल रही है, इसे ध्यानपूर्वक देखिए?	(1) छात्र उक्त भाग का स्पर्शीय अवलोकन करते हैं।
	(2) इसे क्या कहते हैं?	(2) इसे प्राथमिक जड़ कहते हैं।
	(3) मुख्य जड़ों से कुछ शाखाएं निकल रही हैं, इन्हें क्या कहते हैं?	(3) स्पर्शीय अनुभव के पश्चात् छात्र बताते हैं कि इन्हें द्वितीयक जड़ कहते हैं।
	(4) द्वितीयक जड़ों से पुनः छोटी-छोटी धागे के समान संरचनाएं निकल रही हैं, इन संरचनाओं को क्या कहते हैं?	(4) यह धागे जैसी संरचनाएं तृतीयक जड़ें कहलाती हैं।
	(5) प्राथमिक, द्वितीयक तथा तृतीयक जड़ों से निर्मित जड़ को क्या कहते हैं?	(5) छात्र निरुत्तर हो जाते हैं।
	(6) प्राथमिक, द्वितीयक तथा तृतीयक जड़ों से निर्मित जड़ को मूसला जड़ तंत्र कहते हैं।	(6) छात्र ध्यानपूर्वक सुनेंगे।

	(7) इस प्रकार का जड़ तंत्र अन्य किस पौध्रों में पाया जाता है?	(7) छात्र संतोपजनक उत्तर देने में असमर्थ होंगे।
	(8) आम, अमरूद, नीम, तुलसी जैसे अन्य पेड़-पौधों में भी मूसला जड़ तंत्र पाया जाता है।	(8) छात्र ध्यानपूर्वक सुनेंगे।
2.अपस्थानिक जड़ तंत्र	प्रत्येक छात्र को अध्यापक घास का पौधा देकर निम्नलिखित प्रश्न पूछता है:-	
	(9) यह किसका पौधा है?	(9) यह घास का पौधा है।
	(10) क्या इसमें प्राथमिक, द्वितीयक, तृतीयक जड़ें उपस्थित हैं?	(10) नहीं, इसमें जड़ें केवल धागे, जैसी संरचनाओं से बनी हैं।
	(11) इस प्रकार की जड़ें और किन-किन पौधों में पायी जाती हैं?	(11) गेहूँ, चावल, मक्का, गन्ना आदि पौधों में भी इसी प्रकार की जड़ें पायी जाती हैं।
	(12) इस प्रकार के जड़ तंत्र को क्या कहते हैं?	(12) छात्र निरुत्तर हो जाते हैं।
	(13) इस प्रकार का जड़ तंत्र, जिसमें जड़ें गुच्छों तथा रेशे के रूप में पायी जाती हैं, अपस्थानिक जड़ तंत्र कहलाता है।	(13) छात्र ध्यानपूर्वक सुनेंगे।
3. जड़ों के रूपान्तरण	(14) कुछ जड़ें विशेष कार्य करने के लिए रूपान्तरित हो जाती हैं, इन्हें क्या कहते हैं?	(14) छात्र संतोषजनक उत्तर देने में असमर्थ होंगे।
	(15) विशेष कार्य करने के लिए रूपान्तरित हो जाने वाली जड़ों को रूपान्तरित जड़ कहते हैं।	(15) छात्र ध्यानपूर्वक सुनेंगे।
(अ)	अध्यापक प्रत्येक छात्र को मूली देकर निम्न प्रश्न पूछता है:-	

तर्कु रूप जड़	(16) यह क्या है?	(16) यह मूली है।
	(17) यह पौधे का कौन-सा भाग है?	(17) यह पौधे की जड़ है।
	(18) यह फूलकर मोटी क्यों हो गयी है?	(18) भोजन संग्रहित होने के कारण यह फूलकर मोटी हो गयी है।
	(19) क्या सभी स्थानों पर यह आकार में एक समान है?	(19) नहीं, बीच में मोटी व दोनों सिरों पर पतली है।
	(20) जड़ के इस रूपान्तरण को क्या कहते हैं?	(20) छात्र निरुत्तर हो जाते हैं।
	(21) जड़ के इस रूपान्तरण को तर्कु रूप जड़ कहते हैं।	(21) छात्र ध्यानपूर्वक सुनेंगे।
(ब) शंकु रूप जड़	अध्यापक प्रत्येक छात्र को गाजर देकर निम्न प्रश्न करता है:-	
	(22) यह क्या है?	(22) यह गाजर है।
	(23) यह पौधे का कौन-सा भाग है?	(23) यह पौधे की जड़ है।
	(24) यह फूलकर मोटी क्यों हो गयी है?	(24) भोजन के संग्रहित होने के कारण यह मोटी हो गयी।
	(25) इसकी आकृति कैसी है?	(25) यह शंकु के समान लग रही है।
	(26) जड़ के इस प्रकार के रुपान्तरण को क्या कहते हैं?	(26) छात्र निरुत्तर हो जाते हैं।
	(27) जड़ के इस प्रकार के रूपान्तरण को, जिसमें जड़ ऊपर से मोटी व चौड़ी तथा नीचे की ओर क्रमशः पतली होती जाती है तथा शंकु के समान लगती है, शंकु रूप जड़ कहते हैं।	(27) छात्र ध्यानपूर्वक सुनेंगे।

(स) कुम्भी रूप जड़	प्रत्येक छात्र को शलजम देकर अध्यापक निम्न प्रश्न पूछता है:-	
	(28) यह क्या है?	(28) यह शलजम है।
	(29) यह पौधे का कौन-सा भाग है?	(29) यह जड़ है।
	(30) इसकी आकृति कैसी है?	(30) इसकी आकृति लट्टू जैसी है।
	(31) जड़ के इस प्रकार के रूपान्तरण को क्या कहते हैं?	(31) छात्र निरुत्तर हो जाते हैं।
	(32) जड़ के इस प्रकार के रूपान्तरण को कुम्भी रूप जड़ कहते हैं।	(32) छात्र ध्यानपूर्वक सुनेंगे।

पुनरावृत्ति:

पुनरावृत्ति एवं मूल्यांकन हेतु शिक्षक छात्रों से निम्न प्रश्न पूछेगा:-

(1) मूसला जड़ तंत्र किसे कहते हैं?

(2) ऐसे तीन पेड़-पौधों के नाम बताइए, जिनमें मूसला जड़ तंत्र पाया जाता है?

(3) अपस्थानिक जड़ तंत्र को परिभाषित कीजिए?

(4) अपस्थानिक जड़ तंत्र के कोई तीन उदाहरण दीजिए?

(5) मूसला जड़ के तीन प्रकार के रूपान्तरणों के नाम बताइए?

(6) तर्कु रूप जड़ का एक उदाहरण दीजिए?

(7) शंकु रूप जड़ किसे कहते हैं?

(8) कुम्भी रूप जड़ का एक उदाहरण दीजिए?

गृह कार्य:

(1) मूसला तथा अपस्थानिक जड़ में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

अध्याय-23

दृष्टिबाधितों के लिए सामाजिक अध्ययन शिक्षण

-श्रीमती कनक लाल

औपचारिक शिक्षा की प्रमुख एजेंसी विद्यालय के द्वारा बालक के सर्वांगीण विकास का प्रयास किया जाता है, विद्यालय जहां एक ओर सहगामी पाठ्यक्रम के अन्तर्गत विभिन्न कार्यक्रम छात्रों में सामाजिक गुणों एवं सांस्कृतिक मूल्यों के विकास के लिए आयोजित करता है, वहीं दूसरी ओर विभिन्न विषयों के शिक्षण-प्रशिक्षण के द्वारा छात्रों का शैक्षिक विकास सुनिश्चित करता है, सामाजिक अध्ययन का इन विषयों में मुख्य स्थान है, इस अध्याय में सामाजिक अध्ययन-शिक्षण की आवश्यकता एवं महत्त्व, इसके शिक्षण के उद्देश्य, सामाजिक अध्ययन की पाठ्य पुस्तकों में संशोधन की विधियों, सामाजिक अध्ययन-शिक्षण के लिए सहायक-सामग्री के निर्माण हेतु दिशा-निर्देश (विशेष तौर पर स्पर्शीय सहायक सामग्री निर्माण के लिए निर्देश) तथा दृष्टिबाधितों के शिक्षण के लिए उचित पाठ-योजनाएं सम्मिलित किये गये हैं।

दृष्टिबाधित छात्रों के लिए सामाजिक अध्ययन की आवश्यकता और महत्त्वः

इस अध्याय को पढ़ने से पूर्व यह स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए कि दृष्टिवान बालकों के समान दृष्टिबाधित बालक भी समाज का अभिन्न अंग हैं। ये समाज की उन्नति में वही योगदान दे सकते हैं जो अन्य बालक बड़े होकर देते हैं। इनके लिए भी शिक्षा जीवन में वही महत्त्व रखती है जो अन्य बालकों के लिए। अतः सामाजिक अध्ययन विषय का दृष्टिबाधित छात्रों के जीवन में वही महत्त्व और आवश्यकता है जो अन्य दृष्टिवान छात्रों के जीवन में है। इन बालकों के लिए शिक्षण के तरीके भिन्न हो सकते हैं, किंतु विषय के महत्त्व में अन्तर नहीं होता है।

सामाजिक अध्यथन विषय सामान्य शिक्षा का प्राइमरी स्तर पर अभिन्न अंग है। यह एक अत्यन्त आवश्यक विषय है, क्योंकि यह छात्रों को समाज और संसार को, जिसमें वह रहता है, समझाता है। समय और काल के अनुसार क्या सामाजिक, आर्थिक परिवर्तन आए हैं और उन दोनों का क्या सम्बन्ध है, इस पर विचार के लिए छात्रों को अवसर देता है। इसमें सामाजिक विज्ञान, इतिहास, भूगोल, राजनीति

शास्त्र, अर्थ शास्त्र, समाज शास्त्र आदि विषयों का ऐसा संकलन हैं, जो मनुष्य को समाज की जटिलताओं में समायोजन करने में सहायक होता है। इसके अन्तर्गत मानव सभ्यता के विकास की कहानी, सामाजिक विकास, संस्कृति का ज्ञान, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोणों का परिचय छात्रों को दिया जाता हैं, जिसके द्वारा छात्र अपने वृहद् जीवन में विश्वसनीयता के साथ मानव सम्बन्धों को जानें और आधुनिक स्वस्थ दृष्टिकोणों का विकास करते हुए प्रेम, सहयोग, सहिष्णुता, सम्मान तथा श्रद्धा के साथ एक अच्छे नागरिक का जीवन व्यतीत कर सकें।

21वीं सदी की शिक्षा ने एक नया मोड़ लिया है। अब तक पारम्परिक रूप से विज्ञान और सामाजिक विज्ञान में जो विषय अलग-अलग करके छात्रों को पढ़ाये जा रहे थे, उनका रूप अब एकीकृत कर दिया गया है, विशेषतौर से प्राइमरी स्तर पर। "राष्ट्रीय विद्यालय शिक्षा पाठ्यक्रम-एक रूपरेखा 2000" में कहा गया है, कि इन विषयों की विभिन्न सामग्री मानव सम्बन्धों के संदर्भ में एकीकृत करके पढ़ाई जाए। इसके लिए राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (NCERT) ने नयी पुस्तकें तैयार करके विद्यालयों को दी हैं। यह नया पाठ्यक्रम छात्रों में लोकतांत्रिक समाज निर्माण का दृष्टिकोण विकसित करते हुए राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय भावनाओं को बढ़ाता है। अब इस विषय के अध्ययन से छात्रों में नये मूल्यों, वांछित आदतों, महत्त्वपूर्ण कुशलताओं का निर्माण होते हुए प्रभावशाली वैशिष्ट्य का विकास हो पाएगा।

सामाजिक अध्ययन शिक्षण के उद्देश्य:-

1. वर्तमान को स्पष्ट करना।
2. विभिन्न कौशलों का विकास कराना।
3. परस्परावलम्बन की भावना का विकास कराना।
4. छात्रों को अतीत और वर्तमान के महापुरुषों का ज्ञान कराना।
5. छात्रों में सामाजिकता के गुणों का विकास कराना।
6. उचित दृष्टिकोण और ज्ञान की समझ का विकास कराना।
7. छात्रों में मूल्यों और उचित आदतों का विकास कराना।
8. छात्रों में खाली समय का सदुपयोग करने की योग्यता का विकास कराना।
9. छात्रों को स्वाध्याय की ओर प्रेरित कराना।
10. छात्रों में अभिव्यक्ति की क्षमताओं का विकास कराना।
11. छात्रों में राष्ट्रीय भावना का विकास कराना।

12. अपने सांस्कृतिक और सामाजिक वातावरण को खोजने और समझने की क्षमता का विकास कराना।

13. छात्रों में कार्य के संसार को समझने और कार्य के प्रति सम्मान की भावना का विकास कराना।

14. छात्रों में भारतीय संस्कृति के प्रति सम्मान विकसित कराना।

15. भारत अपने ही नहीं विश्व के साथ सम्मान की भावना रखता है, अत: इसका ज्ञान कराते हुए भारत पर गर्व अनुभव कराना।

सामाजिक अध्ययन की पाठ्य-पुस्तकों के अनुकूलन के सिद्धान्त तथा निर्देश:

पाठ्य-पुस्तकें सबसे महत्त्वपूर्ण शैक्षिक साधन हैं। यह अध्यापकों के लिए एक आधारशिला है, जो स्पष्ट करती है कि किस कक्षा स्तर पर छात्रों को क्या पढ़ाना है। इसके बिना आधुनिक शिक्षण पद्धति की कल्पना करना आधुनिक समय में कठिन है। पाठ्य-पुस्तकें, विषय-विशेषज्ञों द्वारा काफी अनुसंधान और विचार विमर्श के पश्चात् समझदारी और परिश्रम के साथ तैयार की जाती हैं। वे अध्यापकों के लिए एक प्रमुख शिक्षण साधन तो हैं ही, साथ ही छात्रों के लिए भी ज्ञान ग्रहण करके सीखने का सशक्त माध्यम हैं। सामाजिक अध्ययन की पाठ्य-पुस्तकें प्रजातन्त्र, समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता और राष्ट्रीय एकता जैसे राष्ट्रीय शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति में अपना योगदान देती हैं, साथ ही नैतिक मूल्यों को प्रोत्साहित भी करती हैं। मानव जीवन की संतुलित छवि उभारती हैं और बताती हैं कि उसने किस प्रकार वातावरण के साथ समायोजन किया है।

सामाजिक अध्ययन की पुस्तकों में लिखी सामग्री दृष्टि-प्रधान होती है, जो कहीं-कहीं प्राइमरी स्तर के दृष्टिबाधित छात्रों को समझ में नहीं आती है। अत: इन छात्रों के लिए इस दृष्टि-प्रधान सामग्री का परिवर्तन करना पड़ता है। यह परिवर्तन पुस्तक की सामग्री को इस योग्य बना देता है कि दृष्टिबाधित छात्र उसको समझकर उससे सम्बन्धित ज्ञान प्राप्त कर लें। यह परिवर्तन, जो पुस्तकों में किया जाता है, वह पुस्तक का सम्पादन कहलाता है। उदाहरण के लिए, प्राइमरी स्तर की सामाजिक अध्ययन की पुस्तकों में चित्रों की भरमार होती है- कई मानचित्र भी बने होते हैं, कई अन्य आकृतियाँ भी बनी होती हैं, कई शब्द या वाक्य भी होते हैं, जिन्हें समझने में दृष्टिबाधित छात्र असमर्थ होते हैं। अत: इस ज्ञान से ये छात्र वंचित न रह जाएं, इसके लिए पुस्तकों में परिवर्तन किया जाता है।

पुस्तक का सम्पादन करने के सिद्धान्त– सामाजिक अध्ययन की पुस्तक का सम्पादन करने के लिए निम्नलिखित सिद्धान्त हैं:-

1. सामग्री का रूपान्तरण करना।
2. सामग्री का द्विगुणन करना।
3. सामग्री का विकल्प देना।
4. सामग्री को छोड़ देना।

सामाजिक अध्ययन की पुस्तकों में जिन सामग्रियों का रूपान्तरण किया जाता है, उनका रूप अधिकतर स्पर्शीय बनाकर दिया जाता है, जैसे मानचित्रों का रूपान्तरण स्पर्शीय मानचित्र बनाकर किया जाता है।

इस प्रकार की सामग्री का द्विगुणन अध्यापक कर सकता है। कई उपकरणों, के सहयोग से भी सामग्री का द्विगुणन किया जा सकता है, जैसे थर्मोफार्म मशीन, स्वीरल मशीन आदि।

सामाजिक अध्ययन की पुस्तकों में कुछ ऐसी सामग्री होती है, जिसका प्रत्यय दृष्टिबाधित छात्र नहीं बना पाते हैं, उसका विकल्प दिया जा सकता है, जैसे दृष्टिवान छात्रों के लिए पहाड़ी वातावरण का वर्णन इस प्रकार होता है, "हरियाली दूर-दूर तक फैली है, पहाड़ों की चोटियाँ बर्फ से ढकी हैं, चोटियाँ आसमान छू रही हैं।" दृष्टिबाधित छात्रों को पहाड़ी वातावरण का वर्णन वहाँ की ऊँचाई के कारण ठंडी हवा, पहाड़ों पर चढ़ाई, सम्भव हो तो बर्फ का अनुभव आदि देकर किया जा सकता है। यह दृष्टिमूलक सामग्री छात्र अध्यापक से सुनेंगे, पढ़ेंगे और अनुभवों से इसका ज्ञान ग्रहण करेंगे। इस प्रकार विकल्प के सिद्धान्तों का प्रयोग किया जा सकता है। कभी-कभी पुस्तक में दी गई सामग्री का मॉडल भी विकल्प के सिद्धान्त को पूरा करता है, जैसे बांध का मॉडल चित्र के स्थान पर दिया जाए। सामाजिक अध्ययन की पुस्तकों में दृष्टिवान छात्रों को वहुत-सी क्रियाएं पुस्तकों में ही करनी पड़ती हैं, जैसे चित्र में रंग भरना। दृष्टिबाधित छात्र को वही आकृति अध्यापक Spur-wheel से उभारकर दे सकता है और ये छात्र छूकर, समझकर मोम के रंगों से रंग भर सकते हैं। ये छात्र भी इस क्रिया में अवश्य रुचि लेते हैं। उनको भी क्रिया करने में आनन्द आता है। कभी-कभी दृष्टिबाधित छात्र पुस्तक में दी गयी आकृति को चिकनी मिट्टी से बनाकर दिखा भी सकते हैं। छात्रों को अध्यापकों का सहयोग और अध्यापकों को अपनी सूझ-बूझ का प्रयोग करना चाहिए।

कभी-कभी जब सामग्री का रूपान्तरण या विकल्प नहीं दिया जा सकता है, तव छोटी कक्षाओं में उसको छोड़ देते हैं।

सम्पादन करने से दृष्टिबाधित छात्रों को अनेक लाभ प्राप्त होते हैं, जो कि निम्नलिखित हैं:-

1. प्रत्यय स्पष्ट हो जाते हैं।

2. अनुभव बढ़ जाते हैं।

3. छात्र स्वयं क्रिया करके ज्ञान ग्रहण करते हैं।

4. पाठ्य-पुस्तक रोचक हो जाती है।

5. स्पर्शीय क्षमता का विकास होता है।

6. रचनात्मक प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिलता है।

सामाजिक अध्ययन की पुस्तक के सम्पादन सम्बन्धी निर्देश:

1. अध्यापक पुस्तक को पहले पढ़कर सम्पादन की आवश्यकता को समझे और उसकी आवश्यकता के अनुरूप क्रिया करे।

2. उचित सामग्री का आवश्यकतानुसार निर्माण करे।

3. यदि सामग्री से सम्बन्धित अनुभव कक्षा के बाहर देना है तो उसको पूर्व निर्धारित कर ले, तब छात्रों को ले जाकर दे।

4. जब कक्षा में वह सामग्री पढ़ाई जाए तभी सम्पादित सामग्री छात्रों को दे।

5. सामग्री को ग्रहण करने के लिए छात्रों से बहुइन्द्रियों का प्रयोग कराएं।

सामाजिक अध्ययन शिक्षण की आधुनिक विधियाँ:

शिक्षा दर्शन और शिक्षा मनोविज्ञान के प्रभाव के कारण आधुनिक समय में सामाजिक अध्ययन के शिक्षण की नयी-नयी विधियाँ आती जा रही हैं। पुरानी विधियाँ भी नये रूपों में अध्यापकों को शिक्षण के लिए बताई जा रही हैं। ये विधियाँ दृष्टिबाधित छात्रों के शिक्षण के लिए भी प्रयोग की जा रही हैं। आधुनिक समय में शिक्षा की प्रगतिशील विचारधारा द्वारा सामाजिक अध्ययन शिक्षण की एकीकृत उपागम (Integrated Approach) द्वारा शिक्षण की चर्चा हो रही है। आधुनिक समय में एक विधि द्वारा ही शिक्षण कराया जाए, यह पर्याप्त नहीं है। कई विधियों को मिला-जुला कर प्रयोग करने की परम्परा बढ़ रही है। इससे छात्रों को पढ़ने में आनन्द आता है और उनमें विचार करने की क्षमता, क्रियाशील रहने की आदत भी पड़ती है। इससे शिक्षण में विविधता भी बनी रहती है।

प्राइमरी स्तर के छात्रों के शिक्षण के लिए निम्नलिखित विधियों का प्रयोग किया जाना चाहिए:-

1. कहानी विधि
2. प्रश्नोत्तर विधि
3. क्रिया करके सीखने की विधि
4. योजना विधि
5. वर्णनात्मक विधि
6. निरीक्षण विधि
7. खेल विधि
8. डालटन प्लान विधि
9. चर्चा विधि
10. इकाई विधि

वैसे तो बहुत-सी शिक्षण विधियों को शिक्षा-शास्त्रियों और शिक्षा-मनोवैज्ञानिकों ने जन्म दिया है, किन्तु प्रश्न उठता है कि कौन-सी विधि अच्छी विधि है। एक अच्छी विधि में निम्नलिखित विशेषताएं होनी चाहिएं:-

1. छात्रों में स्पष्ट चिन्तन की प्रक्रिया को प्रोत्साहित करे।
2. निर्णय लेने की क्षमता का विकास कराए।
3. कार्य के प्रति प्रेम उत्पन्न कराए।
4. विषय के प्रति रुचि उत्पन्न कराते हुए स्वाध्याय करने की छात्रों में प्रेरणा उत्पन्न करे।
5. छात्रों में सहयोगपूर्ण क्रियाओं को प्रेरित करे।
6. छात्रों के संवेगों को नियन्त्रित कराए। उचित दृष्टिकोण का विकास कराए।
7. जीवन में ठीक दिशा-निर्देश दे।
8. शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति में सहयोग दे।
9. प्रजातांत्रिक मूल्यों का विकास कराए।
10. जागरूक, समाज उपयोगी नागरिकता की ओर प्रेरित करे।

प्राइमरी स्तर पर सामाजिक अध्ययन पढ़ाने का सबसे उत्तम और छात्रों के लिए रुचिकर साधन कहानी विधि है। इस विधि में कई विधियों का समावेश

भी कर सकते हैं, जैसे प्रश्नोत्तर विधि, खेल विधि, योजना विधि, निरीक्षण विधि आदि। सुन्दर, ज्ञानपूर्ण कहानियों के आधार पर सामाजिक अध्ययन की विविध जानकारियाँ दे सकते हैं। इस विधि द्वारा छात्र सफलतापूर्वक मानव की प्रकृति, उसका विकास, उसके जीवन पर वातावरण का प्रभाव आदि सहजता से समझने लगता है।

कहानियाँ ऐसे शब्दों तथा भाषा में कही जाएं, जिसे छात्र आसानी से समझ सकें। कहानियाँ रुचिकर हों तथा छात्रों के कौतुहल को जाग्रत करें। कहानियाँ सुनाते समय आवश्यकतानुसार नाटकीय तत्त्वों का भी समावेश करना चाहिए।

कहानी में ही शिक्षक निरीक्षण विधि, क्रिया करके सीखने की विधि आदि का समावेश कर सकता है। इससे कहानी में विषयगत तथ्यों को छात्र सहजता से समझ सकेंगे। कहानी कहने के साथ-साथ मानचित्र, मॉडल, चार्ट, ग्लोब आदि द्वारा विविध शिक्षण सामग्रियों का भी प्रयोग किया जा सकता है। कहानी द्वारा ही छात्र प्रतिदिन होने वाली घटनाएं, ऐतिहासिक घटनाएं एवं चरित्र को जानकर उसका जीवन में लाभ उठा सकेंगे। कहानियाँ ऐसी हों जो छात्र को कल्पना के क्षेत्र से वास्तविक चिन्तन की ओर अग्रसर करें।

छात्रों को भी कहानी सुनाने, वर्णन करने, घटनाओं को बताने का अवसर देना चाहिए। छात्र स्वयं के जीवन में घटित घटनाओं का अपने अनुभवों के अनुसार चित्रण करें। छात्रों से प्रश्नोत्तर द्वारा कहानी दोहराने की क्रिया भी कराई जानी चाहिए। कहानी से सम्बन्धित जानकारी का छात्र मॉडल भी बना सकते हैं। न्यून दृष्टि छात्र चित्र बना सकते हैं, जानकारी और तथ्य इकट्ठा करके लिख सकते हैं।

स्पर्शीय सहायक सामग्री के निर्माण के सिद्धान्त और निर्देश:

सामाजिक अध्ययन के अन्तर्गत समय, स्थान और मनुष्य सभी शामिल हो जाते हैं। अतः इस विषय का अध्ययन प्रभावपूर्ण बनाने के लिए विविध शिक्षण सामग्रियों की आवश्यकता पड़ती है। दृष्टिबाधित छात्रों के लिए भी उन सब शिक्षण सामग्रियों की आवश्यकता है जो दृष्टिवान छात्रों के लिए बनाई गई हैं। हाँ, इनमें दृष्टिबाधित छात्रों की आवश्यकता के अनुसार परिवर्तन करना आवश्यक हो जाता है। ये सब सामग्रियाँ दृष्टिबाधित छात्रों के शिक्षण को भी सरल, सरस और प्रभावपूर्ण बना सकती हैं। उनकी विषय-वस्तु से सम्बन्धित प्रत्ययों को स्पष्ट कर सकती हैं, उनके अवधान को विषय की ओर आकृष्ट करके छात्रों को सक्रिय बनाती हैं। शिक्षण प्रक्रिया को रोचक, स्पष्ट और बोधगम्य बनाती हैं, साथ ही ज्ञान को स्थायी बनाती हैं। ये सामग्रियाँ निम्नलिखित हैं:-

1. किताब
2. चार्ट
3. मॉडल
4. ग्लोब
5. मानचित्र
6. पत्र-पत्रिकाएं
7. टेपरिकॉर्डर
8. चित्र
9. श्यामपट
10. एटलस

इनमें से कुछ सामग्रियों का प्रयोग तो दृष्टिबाधित छात्रों के लिए वैसे ही किया जा सकता है जैसी वे हैं, कुछ का रूपान्तरण करके प्रयोग किया जा सकता है, कुछ के स्थान पर वैकल्पिक सामग्रियों का प्रयोग किया जा सकता है, कुछ सामग्रियों का द्विगुणन किया जा सकता है और कुछ सामग्रियों को छोड़ा भी जा सकता है। इन सामग्रियों का किस प्रकार परिवर्तन किया जाए, जिससे ये दृष्टिबाधित छात्रों के लिए भी उपयोगी बन जाएं, इसकी चर्चा आगे की जाएगी।

मॉडल– मॉडल मूल वस्तु के प्रतिरूप होते हैं। इनका प्रयोग उस समय किया जाता है, जब वास्तविक पदार्थ या तो उपलब्ध नहीं होते या इतने बड़े हों कि उनको कक्षा में दिखाना सम्भव न हो। कभी-कभी बहुत छोटे पदार्थ को भी दिखाना, विशेषकर छूकर सम्भव नहीं होता, उनको भी बढ़ा करके मॉडल के रूप में दृष्टिबाधित छात्रों को दिया जाना चाहिए।

दृष्टिबाधित छात्रों के लिए मॉडल इस प्रकार बनाए जाएं कि वे उनकी आकृति, आकार व ढाँचे को सही प्रकार से समझ सकें। इस बात का भी ध्यान रखा जाए कि ये छात्र उस वस्तु की सही लम्बाई-चौड़ाई जान सकें। ये मॉडल सामाजिक अध्ययन के लिए तरह-तरह के हो सकते हैं, जैसे कुतुब मीनार का मॉडल, इण्डिया गेट का मॉडल, पर्वतमाला का मॉडल, झील का मॉडल, सीढ़ीनुमा खेतों का मॉडल, बांध का मॉडल आदि-आदि।

दृष्टिबाधित छात्रों के लिए मॉडल अध्यापक स्वयं बना सकते हैं और दूसरों से बनवा भी सकते हैं। कभी-कभी दृष्टिबाधित छात्रों के लिए बाजार में भी ऐसी

सामग्री उपलब्ध हो जाती है, जिसे रूपान्तरित करके अध्यापक दृष्टिबाधित छात्रों के समझने योग्य बना सकते हैं या बनवा सकते हैं।

दृष्टिबाधित छात्रों के लिए ऐसे मॉडल बनाने चाहिएं, जिनके भागों को जोड़कर छात्र स्वयं निर्मित कर सकें, ये छात्रों को अधिक रोचक लगेंगे और स्पष्टता भी प्रदान करेंगे। उदाहरण के लिए, ताजमहल की आकृति और ढाँचा दिखाने के लिए मॉडल इस प्रकार बनाए जा सकते हैं:

इस मॉडल के लिए लकड़ी की सामग्री :-

1. एक लकड़ी का पटरा, जिसके चारों कोनों पर छेद हों और पटरे के बीच में ऐसा कटाव, जिस पर चौकोर आकृति फिट की जा सके।

2. चार लकड़ी की मीनारें जो पटरे के चारों कोनों में फिट हो सकें।

3. एक वर्गाकार आकृति का लकड़ी का ढाँचा जो पटरे के बीच में फिट हो सके।

4. एक गुम्बदनुमा आकृति जो वर्गाकार ढाँचे पर फिट हो सके। इसी गुम्बद के ऊपर लोहे की बनी आकृति लगी हो।

अध्यापक के लिए निर्देश– यह सामग्री छात्रों को देकर अध्यापक इन सबको जोड़ने के लिए छात्रों को कह सकता है और उनकी सहायता करके ताजमहल की आकृति फिट करा सकता है। इस प्रकार छात्रों को इस इमारत के वास्तविक ढाँचे की जानकारी प्राप्त होगी।

अब अध्यापक छात्रों को इसकी वास्तविक लम्बाई-चौड़ाई बता सकता है। यह भी बताए कि यह यमुना नदी के किनारे आगरे में बना है, इसको शाहजहाँ ने सफेद संगमरमर से बनवाया था, इसके सामने सुन्दर बगीचा बना है-जैसी तथ्यात्मक जानकारी छात्रों को दे। इस प्रकार दृष्टिबाधित छात्रों के मस्तिष्क में इस इमारत की आकृति स्पष्ट हो जाएगी, साथ ही स्थायी भी होगी। छात्र इसकी तथ्यात्मक जानकारी जीवन में कभी भी प्रयोग कर सकेंगे।

चित्र– प्राइमरी स्तर की सामाजिक अध्ययन की पुस्तकों में दृष्टिवान छात्रों के लिए बहुत-से चित्र दिये जाते हैं, इससे छात्रों को उस वस्तु की जानकारी प्राप्त होती है। ऐसे चित्रों को दृष्टिबाधित छात्रों के लिए कैसे प्रस्तुत किया जाए? उसके लिए निम्नलिखित उपाय किए जा सकते हैं:-

1. कुछ चित्रों की सामग्री मॉडल के रूप में दी जा सकती है, जैसे यातायात के साधन, सीढ़ीनुमा खेत, जानवरों के मॉडल, इमारतों के मॉडल आदि।

2. कुछ सामग्री जो चित्रों में दी गई है, उसको वास्तविक रूप में दिखाया जा सकता है, जैसे विभिन्न वाद्ययंत्र, संचार के यंत्र, झण्डा, विभिन्न राज्यों के पहनावे आदि।

3. विभिन्न चिह्नों को उभारकर दिखा सकते हैं, जैसे सड़क सुरक्षा व यातायात के चिह्न।

4. विभिन्न चीजों व जगहों की सूची बनाकर दी जा सकती है, जैसे बांधों के नाम और वे किस राज्य में हैं, विभिन्न फैक्ट्रियों के नाम और वे किन राज्यों में हैं आदि।

5. शब्द चित्र द्वारा भी चित्रों को प्रस्तुत किया जा सकता है, जैसे भारत के रेगिस्तान का चित्र- बालू के टीले बने हैं, ऊँटों का काफिला, रेगिस्तानी कपड़े पहने उनके साथ वहाँ के खानाबदोश लोग चल रहे हैं, दूर-दूर तक न तो कोई वनस्पति दिखाई दे रही है और न ही सड़कें।

महापुरुषों के चित्र पुस्तकों में दिये जाते हैं, उनकी पहनावे सम्बन्धी विशेषता बताई व दिखाई जा सकती है, जैसे चाचा नेहरू का चित्र है तो उनकी टोपी, अचकन, उस पर लगे गुलाब के फूल का विशेष स्थान, गांधीजी की तस्वीर के स्थान पर उनका चश्मा, खास घड़ी, चरखा, राजा राम मोहन राय, विवेकानन्द, मदन मोहन मालवीय की विभिन्न प्रकार की पगड़ियाँ आदि।

ग्लोब- ग्लोब पृथ्वी की आकृति का प्रतिरूप है, अतः इससे पृथ्वी के आकार का ज्ञान सरलता से दिया जा सकता है। इसकी सहायता से दृष्टिबाधित छात्र विश्व की भौतिक एकता, उसका एक भाग से दूसरे भाग का सम्बन्ध, दिशा की स्थिति को समझ सकता है। इसकी सहायता से अक्षांश, देशान्तर, समय परिवर्तन और ऋतु परिवर्तन को सरलता से स्पष्ट करके समझाया जा सकता है। इसके द्वारा महाद्वीप और महासागरों का पारस्परिक सम्बन्ध, छोटी-बड़ी तथा विश्व के मार्गों की न्यूनतम व न्यूनाधिक दूरी का विवरण सरलता व सहजता के साथ दिया जा सकता है।

दृष्टिबाधित छात्रों के लिए ग्लोब का स्पर्शीय रूप देना आवश्यक है। इसको एक अध्यापक सरलता से स्वयं रूपान्तरित कर सकता है। वह निर्देश देकर बनवा भी सकता है। अध्यापक को एक स्पर्शीय ग्लोब बनाने के लिए निम्नलिखित उपाय करने पड़ेंगे:-

1. ग्लोब, जो बाजार में बने हुए मिलते हैं, उनको ही उभारना चाहिए। बाजार में बिकने वाले बहुत-से ग्लोब कागज के बने होते हैं और निश्चित पैमाने पर बने होते हैं।

2. महाद्वीपों को स्पर्शीय बनाने के लिए चिकनी गीली मिट्टी, गीला आटा लेकर महाद्वीपों पर हलकी परत के रूप में लगा दें और उसे सुखा लें। महाद्वीपों के नाम कागज की पट्टी पर लिखकर चिपका दें। न्यून दृष्टि छात्र के लिए महाद्वीप व अन्य सामग्री बड़े अक्षरों में लिखी जा सकती है।

3. अधिकतर ग्लोबों पर महासागर नीले रंग से दर्शाए जाते हैं, इसके लिए इन पर केवल नाम की पट्टी ब्रेल में लिखकर चिपका दें। दृष्टिबाधित छात्र स्वत: ही महाद्वीप और महासागर में अब अन्तर कर सकेंगे।

4. अक्षांश व देशान्तर दिखाने के लिए आलपिनों को ग्लोब में घुसाकर/ गड़ाकर (प्रमुख अक्षांश व देशान्तर) रेखाएं बनाएं और प्रमुख का नाम ब्रेल में लिखकर रेखा के नीचे लगा दें।

5. एक ही ग्लोब पर कई चीजों को न दिखाएं। इन्हीं उपायों के द्वारा अलग-अलग ग्लोब पर अलग-अलग सामग्री दिखा सकते हैं।

श्यामपट– आजकल बहुत-से दृष्टिबाधित और न्यून दृष्टि छात्र देखने वाले छात्रों के साथ एकीकृत शिक्षा के अन्तर्गत आम विद्यालयों में पढ़ने जाते हैं। इन विद्यालयों में श्यामपट को एक विशेष आवश्यकता के रूप में प्रयोग किया जाता है। दृष्टिबाधित छात्र भी इस शिक्षण सामग्री से भरपूर लाभ उठा सकते हैं। इसके लिए नियमित अध्यापक को दृष्टिबाधित छात्रों की आवश्यकताओं की जानकारी होनी चाहिए। विशेष प्रशिक्षित अध्यापक नियमित अध्यापक को इसकी जानकारियाँ दे सकता है।

श्यामपट का लाभ दृष्टिहीन और न्यून दृष्टि दोनों प्रकार के छात्र ले सकते हैं। इनके लिए विशेष सावधानियाँ निम्नलिखित हैं:-

1. दृष्टिहीन छात्रों के संदर्भ में :- अध्यापक दृष्टिहीन छात्रों को इसका लाभ देने के लिए एक उपाय कर सकता है- वह जो कुछ भी श्यामपट पर लिखे उसको जोर से बोलता जाए। इस प्रकार दृष्टिहीन छात्र जहाँ भी कक्षा में बैठा होगा, बोली गयी सामग्री को सुनकर ब्रेल में अपने आप लिख लेगा।

2. न्यून दृष्टि छात्रों के लिए भी श्यामपट का प्रयोग निम्नलिखित सावधानियों के साथ किया जाना चाहिए:-

-जो कुछ भी श्यामपट पर लिखा जाए वह साफ लिखाई में बड़े अक्षरों में लिखा जाए।

-सीधी पंक्ति में सामग्री लिखी जानी चाहिए। पंक्तियों की दूरी आम पंक्तियों से थोड़ी अधिक होनी चाहिए।

-आवश्यक बातें ही लिखी जाएं।

-यदि न्यून दृष्टि बालक श्यामपट को पास से जाकर पढ़ना या उसे देखकर उस पर से सामग्री उतारना चाहता है तो उसे पास जाने का अध्यापक अवसर दे।

-न्यून दृष्टि छात्र को भी श्यामपट पर लिखने का अवसर देना चाहिए।

-काले, गहरे हरे और सफेद रंग के बोर्डों का भी इन छात्रों के लिए प्रयोग किया जा सकता है। उस पर लिखने की सामग्री वह हो जो रंग का विरोधाभास स्पष्ट उभार सके। बहुत चमक वाला बोर्ड नहीं होना चाहिए।

दृष्टिबाधित छात्रों को मानचित्र शिक्षण के पूर्व की तत्परता:

मानचित्र शिक्षण कराने के पूर्व दृष्टिबाधित छात्रों में स्थिति, स्थान, दूरी एवं दिशा सम्बन्धी प्रत्ययों का विकास कराना अत्यन्त आवश्यक होता है। इन प्रत्ययों से सम्बन्धित दैनिक जीवन में प्रयोग होने वाले शब्दों का उचित अर्थ व प्रयोग छात्रों को आना चाहिए। समझने के लिए इनका अलग-अलग अध्ययन करते हैं-

स्थिति सम्बन्धी शब्द- सीधा, लेटा, पड़ा, तिरछा, घुमावदार, ऊपर, नीचे, आगे, पीछे, अन्दर, बाहर आदि।

दूरी सम्बन्धी शब्द- दूर, पास, बहुत दूर, बहुत पास आदि।

इन दोनों प्रत्ययों का इन छात्रों में निर्माण करने के लिए अध्यापकों हेतु निर्देश:-

1. इन शब्दों के प्रत्ययों के विकास के लिए दृष्टिबाधित छात्रों को स्कूल पूर्व अवस्था से ही ऐसी विभिन्न क्रियाएं कराएं, जिनमें उपरोक्त शब्दों का प्रयोग हो।

2. दैनिक जीवन की क्रियाओं के साथ इन शब्दों को सम्बन्धित करके प्रयोग कराना चाहिए।

3. मोबिलिटी (चलने-फिरने) की क्रियाओं के साथ इन शब्दों का प्रयोग कराना चाहिए।

4. इन शब्दों का क्रियाओं के साथ उस वातावरण में प्रयोग कराना चाहिए, जिस वातावरण से ये छात्र परिचित हों।

5. विद्यालय में विभिन्न गतिविधियाँ कराते हुए इन शब्दों का प्रयोग कराना चाहिए।

दिशाओं का ज्ञान देने सम्बन्धी निर्देश– दिशाओं का ज्ञान कराने के लिए दृष्टिबाधित छात्र को पूर्व दिशा की ओर मुँह करके खड़ा करके बताएं कि पूर्व सामने की ओर है, पश्चिम तुम्हारे पीछे की दिशा में है-पीठ की तरफ। दक्षिण दाहिने हाथ की ओर की दिशा है और बाएं हाथ की ओर की दिशा उत्तर है। इस क्रिया का विभिन्न दिशाओं के संदर्भ में अभ्यास कराएं। जब छात्र इस क्रिया द्वारा दिशाओं को पहचानने लगें तब इन चारों दिशाओं के साथ अन्य चारों दिशाओं–उत्तर–पूर्व, उत्तर-पश्चिम, दक्षिण–पूर्व, दक्षिण–पश्चिम- का भी छात्रों को अभ्यास कराएं।

दिशा सम्बन्धी चित्र छात्रों के लिए सामाजिक अध्ययन की पुस्तकों में बने रहते हैं। इनको Spur-wheel से उभारकर, बनाकर छात्रों को दिखाएं और दिशाएं समझाएं।

मानचित्रों पर दिशा–सूचक बना रहता है, उसके आधार पर छात्रों को मानचित्र का दिशा ज्ञान देना चाहिए।

जैसे-जैसे छात्र बड़ी कक्षा में पहुँचते हैं, उनको मानचित्र किस पैमाने पर बना है, यह भी बताना चाहिए। इससे दूरी के साथ दिशा ज्ञान भी प्राप्त होता है। मानचित्र पर पैमाना भी अवश्य बना होता है।

स्थान सम्बन्धी प्रत्ययों के लिए निर्देश– मानचित्र में स्थान समझाने के लिए दृष्टिहीन छात्रों को कई बार सरल उपरोक्त प्रत्ययों को जोड़ने में कठिनाइयाँ आती हैं, अतः छात्रों को प्रारम्भ में सरल मानचित्र बनाकर देने चाहिएं, विशेषकर उन स्थानों के मानचित्र बनाकर देने चाहिएं, जिन स्थानों से छात्र परिचित हैं, जैसे कक्षा, स्कूल का बगीचा, हॉस्टल का कमरा, घर से स्कूल का रास्ता आदि। इस प्रकार के मानचित्रों का प्रयोग छात्रों में स्थान, दिशा, स्थिति व दूरी समझने में सहायक होते हैं, फिर धीरे-धीरे सरल भौगोलिक मानचित्रों का प्रयोग कराना चाहिए।

स्थानों को समझाने के लिए मानचित्र पर बने हुए स्थल चिह्नों (Land Marks) और सुरंगों का भी प्रयोग किया जाना चाहिए। यह छात्रों को अध्यापक मानचित्र पर ढूँढकर बता सकता है, जैसे कन्याकुमारी भारत के धुर–दक्षिण में स्थित है, कोलकाता मानचित्र पर बना गंगा के डेल्टा पर सबसे बड़े कटाव के ऊपर स्थित है आदि।

मानचित्रों पर स्थान दिखाने के लिए घड़ी के प्रत्यय का भी प्रयोग किया जा सकता है। घड़ी के प्रत्यय का अर्थ है, जिस प्रकार घड़ी में समय के निर्धारित स्थान होते हैं, उन समय के स्थानों के आधार पर मानचित्र पर स्थान दिखाए जाएं, जैसे 12 बजे की स्थिति पर कश्मीर राज्य है, मणिपुर राज्य 3 की स्थिति पर है, गुजरात 9 की स्थिति पर है आदि।

मानचित्र के शिक्षण के निर्देश– एक अध्यापक को दृष्टिबाधित छात्रों को मानचित्र शिक्षण कराने के लिए निम्नलिखित निर्देशों का पालन करना चाहिए:-

1. प्रत्येक छात्र को अलग-अलग मानचित्र देना चाहिए। एक ही मानचित्र पर कई छात्र एक साथ स्पर्श न करें।

2. छात्र को मानचित्र पर हाथ फेरकर सब स्वयं देखने देना चाहिए, साथ ही अध्यापक बता दे कि किस स्थान का मानचित्र है, इसमें क्या दिखाया गया है।

3. छात्रों को मानचित्र पर ब्रेल में लिखी सामग्री के आधार पर सीधा रखना बताइए।

4. मानचित्र पर दिशा ज्ञान दीजिए।

5. उत्तर से प्रारम्भ करते हुए बारी-बारी क्रमानुसार एक-एक जानकारी छात्रों को स्पर्श के माध्यम से दीजिए। किस प्रकार स्पर्शीय सामग्री के आधार पर अन्तर है, बताते हुए मानचित्र पर दी गयी सामग्री स्पष्ट कीजिए।

6. प्रत्येक स्थान की दिशा, स्थिति और एक-दूसरे के साथ दूरी की पहचान मानचित्र पर कराइये।

7. जब सब भाग आप बता दें, तब छात्रों से मानचित्र पर वह सब पूछें जो आपने दिखाया है।

8. हर कदम पर छात्रों की मानचित्र देखने में मदद कीजिए, जिससे उनको देखने में स्पष्टता आए। स्थान, स्थिति, दिशा आदि का स्पष्ट ज्ञान हो जाए।

9. मानचित्र देखने का अभ्यास कराते रहिये, ऐसा न हो कि साल में एक-दो बार ही दिखाया जाए। भूगोल शिक्षण में, विशेषकर हर प्रसंग में जहाँ मानचित्र की बात आए मानचित्र अवश्य दिखाएं।

10. मानचित्र के 'कट-आउट' भी बनवाए जा सकते हैं और छात्र इनको एक-एक टुकड़ा करके जोड़ें, इससे भी नक्शे की जानकारियाँ छात्रों को प्राप्त हो जाती हैं।

स्पर्शीय मानचित्र– सामाजिक अध्ययन में मानचित्रों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। दृष्टिबाधित छात्र जिन मानचित्रों का अधिकतर अध्ययन इस विषय के अन्तर्गत करते हैं, वे स्पर्शीय मानचित्र कहलाते हैं। मानचित्र पढ़ाना एक प्रशिक्षण है, अतः दृष्टिबाधित छात्रों को भी दृष्टिवान छात्रों के साथ प्राइमरी स्तर से ही इसको देखना सिखाना चाहिए। प्राइमरी स्तर पर सामाजिक अध्ययन विषय में निम्नलिखित मानचित्रों का प्रयोग प्रारम्भ हो जाता है:-

1. भौगोलिक मानचित्र
2. राजनैतिक मानचित्र
3. ऐतिहासिक मानचित्र
4. यातायात सम्बन्धी मानचित्र
5. जनसंख्या सम्बन्धी मानचित्र

ये सभी मानचित्र अध्यापक दृष्टिबाधित छात्रों के लिए बना सकता है और बनवा भी सकता है।

स्पर्शीय मानचित्र का निर्माण– दृष्टिबाधित छात्रों हेतु स्पर्शीय मानचित्र बनाने के लिए मानचित्र को उभारना पड़ता है। सामान्यतः एक दृष्टिमूलक मानचित्र को विभिन्न सामग्रियों के प्रयोग द्वारा उभारकर उसे स्पर्शीय रूप देना पड़ता है। ये सामग्रियाँ विभिन्न प्रकार की होती हैं, उदाहरण के लिए, तरह-तरह के बोर्ड, प्लाइबोर्ड, टीन या एल्यूमीनियम की चादर के टुकड़े, ब्रेल कागज, थर्मोफॉर्म शीट, थरमोकोल, मिट्‌टी, तरह-तरह के धागे, तार, मोती, बीज, बटन, पत्थर के टुकड़े आदि। इन सबको चिपकाने के लिए गोंद, लेई, फेविकोल का प्रयोग किया जाता है।

एक मानचित्र बनाते समय ध्यान रखें कि उसमें बहुत अधिक सामग्रियाँ नहीं दिखाई जाएं। एक ही मानचित्र में बहुत-सी चीजें स्पर्श द्वारा देखने में समझ में नहीं आती हैं। इसके लिए बनाते समय ही उचित चुनाव करना चाहिए। नदियाँ, फसलें, खनिज आदि अलग-अलग मानचित्र पर दिखाएं। इस बात का भी ध्यान रखें कि दो चीजें बहुत पास-पास न हों और यदि होती हैं तो स्पष्ट अन्तर द्वारा देखी जा सकें। उदाहरण के लिए, लोहा, कोयला, मैगनीज, टिन, माईका आदि कई खनिज भारत में पास-पास पाए जाते हैं, तब इनकी स्पष्टता के लिए इनको दो मानचित्रों में दिखाएं। इसी प्रकार कई नदियाँ बहुत पास-पास मानचित्र पर दिखती हैं, तब दो मानचित्रों का प्रयोग करें या कुछ को छोड़ दें।

हर छात्र को मानचित्र प्राप्त हो सके, इसके लिए द्विगुणन करने वाली मशीनों का प्रयोग किया जा सकता है। ऐसी मशीनों के लिए उपयुक्त कागज, कागज़ का नाप आदि का ख्याल करके मानचित्र बनाएं।

मानचित्र पर एक दिशा-सूचक अवश्य बनाएं और मानचित्र का पैमाना अवश्य दें। यदि यह दोनों एक मानचित्र पर नहीं दिखा सकें, तब मानचित्र के साथ नोट में लिख कर दे दें।

कई राजनैतिक मानचित्रों के कट-आउट भी बनवाए जा सकते हैं। इसको अध्यापक स्वयं भी बना सकता है और बाजार में भी बनवा सकता है अथवा बना हुआ खरीद भी सकता है। इस पर ब्रेल में लिखकर छात्रों के लिए राज्यों के नाम चिपका सकता है।

सामाजिक अध्ययन शिक्षण में शैक्षिक भ्रमण का महत्त्व और दिशा-निर्देश:

सामाजिक अध्ययन शिक्षण का एक श्रेष्ठ साधन शैक्षिक भ्रमण है कहा भी गया है कि सामाजिक अध्ययन का अधिकांश भाग पैरों द्वारा कई जगह पर घुमा-घुमाकर सिखाया जाता है, अर्थात् विभिन्न स्थानों पर ले जाकर कराया जाता है।

दृष्टिबाधित छात्रों को समय-समय पर साधनानुसार देश के ऐसे स्थानों की यात्रा करानी चाहिए, जिनका सामाजिक अध्ययन में बहुत महत्त्व है। ऐतिहासिक स्थल, भौगोलिक स्थल, उद्योगों के स्थान आदि छात्रों को अपने आप अनुभवों को ग्रहण करने में योगदान देते हैं। पुस्तकीय ज्ञान को शैक्षिक भ्रमण व्यावहारिक ज्ञान में बदल देता है। इस भ्रमण को छात्र अपने जीवन में हमेशा याद रखते हैं, उससे प्राप्त ज्ञान और अनुभव का जीवन में प्रयोग करते हैं। इससे छात्रों को राष्ट्रीय विकास का पता चलता है, सांस्कृतिक धरोहर का आनन्द मिलता है और उनमें नये मूल्यों का विकास होता है।

प्राइमरी स्तर के दृष्टिबाधित छात्रों के लिए इसका बहुत महत्त्व है, जिसका वर्णन निम्न प्रकार से है:-

1. वातावरण सम्बन्धी जानकारी देता है--

-दृष्टिमूलक सामग्री जो पुस्तकों में पढ़ते हैं, उसका वास्तविक अनुभव, जो अदृष्टिमूलक होता है, उसे प्राप्त करते हैं।

-जहाँ कहीं भी छात्र शैक्षिक भ्रमण के लिए ले जाए जाते हैं, वहाँ की विशेषताओं को जान पाते हैं, वहाँ की जानकारियों को खुद खोजते हैं तथा अन्य जानकारियों से तुलना करते हैं।

-वातावरण के प्राकृतिक या मानव निर्मित स्वरूप को समझते हैं।

2. शैक्षिक भ्रमण छात्रों में भाषा का विकास करता है--

-अनेक विचारों को छात्र मौखिक व लिखित रूप से अभिव्यक्त करते हैं।

-शब्द ज्ञान बढ़ता है, वर्णन करने की क्षमता का विकास होता है।

3. सुनने की क्षमता का विकास होता है--

-वहाँ की जानकारियाँ दूसरों से सुनते हैं।

-वहाँ की विभिन्न आवाजों का अनुभव लेते हैं।

-शैक्षिक भ्रमण कैसे योजनाबद्ध किया गया, सुनते हैं और जान पाते हैं।

4. स्पर्शीय व हस्तकौशल की क्रियाओं का विकास--

-छूकर सामग्रियों का परीक्षण करते हैं।

-सामग्रियों में अन्तर स्थापित करते हैं।

-सामग्रियों का आकार, प्रकार, बनावट छूकर पहचानने का प्रयत्न करते हैं, उनको एकत्रित करते हैं।

5. मोबिलिटी सम्बन्धी प्रत्ययों का विकास होता है:-

-दिशाओं का ज्ञान होता है।

-वाहनों का प्रयोग कर सकते हैं।

-ऊपर-नीचे, चढ़ना-उतरना, दूरी और स्थितियों का ज्ञान प्राप्त करते हैं।

-विभिन्न प्रकार के रास्तों पर कैसे चलना है, उसका प्रत्यय बनाते हैं।

6. तर्कपूर्ण ढंग से सोचने की क्षमता का विकास होता है:-

-शैक्षिक भ्रमण के अनुकूल दिनाँक, समय, मौसम आदि का चयन करने की क्षमता का विकास होता है।

-क्या-क्या क्रियाएं इस शैक्षिक भ्रमण में करनी हैं, उनको सोचने की क्षमता का विकास होता है।

-एक शैक्षिक भ्रमण का दूसरे शैक्षिक भ्रमण से क्या अन्तर रहा, क्या समानताएं रहीं, क्या सफलताएं मिलीं आदि का ज्ञान प्राप्त करते हैं।

7. विभिन्न विषयों का सामंजस्य करते हैं-

-सामाजिक अध्ययन विषय के साथ-साथ गणित, विज्ञान, भाषा आदि बहुत-से विषयों की जानकारियाँ सामंजस्य रूप में प्राप्त करते हैं।

दिशा-निर्देश- दृष्टिबाधित छात्रों के साथ शैक्षिक भ्रमण को सफलतापूर्वक आयोजित करने के लिए निम्नलिखित दिशा-निर्देशों का पालन करना चाहिए:-

1. जहाँ का भ्रमण कराना है, उसका दर्शन, संस्कृति, भौगोलिक स्थिति व अन्य जानकारियाँ प्राप्त करानी चाहिएं।

2. उस स्थान पर, जहाँ छात्रों को ले जाना है, उसका छात्रों के लिए क्या महत्त्व है, स्पष्ट पता होना चााहिए।

3. जिस स्थान पर छात्रों को ले जाना है, उस वातावरण का स्वयं अध्यापक पहले से निरीक्षण करें।

4. कितने छात्रों को ले जाना है, उनकी गिनती स्पष्ट पता होनी चाहिए। कितने दृष्टिहीन हैं, कितने न्यून दृष्टि हैं, यह भी पता होना चाहिए। इससे उनका समूह बनाने में अध्यापक को आसानी होगी। कितने अध्यापक के साथ सहायक जा रहे हैं, यह भी निश्चित होना चाहिए। छात्रों के समूह के अनुकूल सहायक लिए जा सकते हैं।

5. कितना समय भ्रमण में लगेगा, कितना समय आने-जाने में लगेगा, कितना समयं स्थल को देखने में लगेगा आदि निश्चित कर लेना चाहिए।

6. क्या-क्या छात्रों को दिखाना है, क्या छात्र स्वयं समझ सकेंगे, किस स्थान को दिखाने में छात्रों की अध्यापक को मदद करनी पड़ेगी-यह सब अध्यापक स्वयं निर्णय कर सकता है।

7. किस वाहन का आने-जाने में प्रयोग किया जाना है, उसकी व्यवस्था कराना।

8. कितना धन खर्च होगा, धन कहाँ से प्राप्त करना है।

9. लौटकर आने पर इस शैक्षिक भ्रमण की कक्षा में चर्चा करनी चाहिए, सम्भव हो तो छोटी रिपोर्ट लिखवानी चाहिए। छात्रों को सुझाव देने के लिए कहना चाहिए।

दृष्टिबाधित बालकों के सामाजिक अध्ययन शिक्षण में सामुदायिक संसाधन एवं उनका महत्त्व:

समुदाय दृष्टिबाधित छात्रों के लिए अत्यन्त रुचिकर, अर्थपूर्ण, आश्चर्यों से भरी हुई शिक्षण कराने की जीवन्त प्रयोगशाला है। दृष्टिबाधित छात्रों को केवल समाज में व्याप्त विभिन्न ज्ञान के भण्डार पुस्तकों के माध्यम से पढ़ाना पर्याप्त नहीं है, उनको समुदाय में इस ज्ञान का व्यावहारिक अनुभव देना भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। हर समुदाय में विभिन्न प्रकार के साधन होते हैं, जिनके द्वारा ये छात्र ज्ञान का मूर्त और व्यावहारिक अनुभव प्राप्त कर सकते हैं। सामुदायिक साधन छात्रों को यह बताता है कि किस प्रकार एक समुदाय की संस्कृति, उद्योग, राजनीति और भौगोलिक परिस्थितियों ने मानव सम्बन्धों के विकास में योगदान दिया है, इसलिए सामाजिक अध्ययन कराने में सामुदायिक साधनों का प्रयोग करना चाहिए। शिक्षा की प्रक्रिया को बढ़ाने में विद्यालय और समुदाय मिलकर छात्रों के विकास में योगदान दें तभी दृष्टिबाधित छात्रों के प्रभावशाली व्यक्तित्वों को तैयार किया जा सकता है। ये व्यक्तित्व किताबी ज्ञान से ही नहीं भरे होंगे, बल्कि व्यावहारिक गुणों से भी भरपूर होंगे।

सामुदायिक साधनों का सामाजिक अध्ययन के शिक्षण में महत्त्व :-

1. छात्रों में सामुदायिक गुणों का विकास कराता है।

2. सामुदायिक जीवन की क्रियाओं द्वारा छात्रों में अन्तर्दृष्टि विकसित कराता है, जो उनको भावी जीवन के लिए तैयार कराती है।

3. छात्रों को सामुदायिक समस्याओं से परिचित कराता है।

4. छात्रों में समुदाय के प्रति अपनापन विकसित कराता है।

5. सामाजिक अध्ययन शिक्षण को अधिक स्पष्ट, सहज, बोधगम्य बनाता है।

6. उचित दृष्टिकोणों के निर्माण में योगदान देता है।

7. विभिन्न प्रकार के व्यवसायों से परिचित कराता है।

8. अवकाश के समय का सदुपयोग कराना सिखाता है।

9. अच्छे नागरिक के गुणों का विकास कराता है।

10. समाजोपयोगी उचित दृष्टिकोणों के निर्माण में योगदान देता है।

सामुदायिक साधनों के प्रकार-

1. भौगोलिक साधन- पहाड़ियाँ, नदियाँ, बांध, खानें, झीलें आदि।

2. ऐतिहासिक साधन- ऐतिहासिक इमारतें, खण्डहर, प्राचीन पूजा स्थल आदि।

3. आर्थिक साधन- बाजार, बैंक, उद्योग, डेरी, यातायात केन्द्र, कृषि, छापेखाने आदि।

4. सांस्कृतिक साधन- सांस्कृतिक केन्द्र, संग्रहालय, बाल भवन, चिड़ियाघर, मेले, त्योहार, उत्सव आदि।

5. सरकारी इमारतें- पुस्तकालय, संसद भवन, पुलिस स्टेशन, डाकघर, आकाशवाणी केन्द्र, दूरदर्शन केन्द्र आदि।

सामुदायिक साधनों का प्रयोग-

1. भ्रमण आयोजित करके।
2. त्योहार, उत्सवों को आयोजित करके।
3. विद्यालय में सामाजिक क्रियाओं का आयोजन करके।
4. प्रतिष्ठित व्यक्तियों को विद्यालय में आमन्त्रित करके।
5. सामुदायिक सेवा सर्वेक्षण की क्रियाएं कराकर।

सामाजिक अध्ययन शिक्षण में संग्रहालय का महत्त्वः

आजकल देश के सभी शहरों में किसी न किसी रूप में संग्रहालय देखने को मिलते हैं। ये सरकार द्वारा या सामुदायिक संस्थाओं द्वारा समय-समय पर निर्मित किए जाते रहे हैं। ये संग्रहालय अध्ययन के विशेष स्थल बनते जा रहे हैं। छोटी से लेकर बड़ी कक्षाओं के लिए ये उपयोगी ज्ञान देने में सक्षम हैं। यहाँ वास्तविक वस्तुओं के रूप में विविध प्रकार की सामग्रियाँ संग्रहीत होती हैं। समय, काल, परिस्थितियों के अनुसार यहाँ पर सामग्रियाँ सुसज्जित रूप में रखी रहती हैं। विशेष शिक्षण करने के लिए सामग्री भी कई संग्रहालयों में मिलती है। संग्रहीत सामग्रियों की जानकारी देने वाले प्रशिक्षित व्यक्ति भी मिल जाते हैं, जो इन संग्रहीत सामग्रियों

की जानकारी रोचक ढंग से देते हैं। देश के कई प्रमुख संग्रहालयों में ध्वनि और प्रकाश के माध्यमों से अतीत की घटनाओं के बारे में भी बताया जाता है। यह छात्रों के लिए रोचक सामग्री होती है। दृष्टिबाधित छात्र भी इनका बहुत रुचि से आनन्द लेते हैं।

संग्रहालयों में दृष्टिबाधित छात्रों को सामग्रियाँ दिखाने के लिए ले जाना चाहिए। इसके लिए निम्नलिखित निर्देश हैं:-

1. छात्रों को संग्रहालय दिखाने ले जाने से पूर्व योजना बनानी चाहिए। किस कक्षा के छात्रों को क्या दिखाने ले जाना है, कितने समय के लिए ले जाना है, कौन उनको लेकर जाएगा।

2. दृष्टिबाधित छात्र सामग्री को छूकर देख सकें, इसके लिए वहाँ के अधिकारी से लिखित स्वीकृति ले लेनी चाहिए।

3. किसी गाइड का सहयोग भी माँगना चाहिए।

4. छात्रों के छोटे समूह बनाकर पंक्ति में ले जाएं, अच्छा हो यदि एक दृष्टिहीन छात्र के साथ एक न्यून दृष्टि छात्र हो। यदि पूर्ण दृष्टिहीन छात्र हों तो उनके साथ मार्गदर्शक भी हो सकते हैं। समेकित कक्षा में तो एक दृष्टिबाधित छात्र के साथ एक दृष्टिवान छात्र जा सकता है।

5. संग्रहालय से घूमकर आने के बाद कक्षा में, जो सामग्रियाँ संग्रहालय में देखी हैं, उनकी चर्चा होनी चाहिए। दृष्टिबाधित छात्र की यदि कोई जिज्ञासा रह गई है तो वह पूरी की जा सकती है। छात्र लिखित रूप से रिपोर्ट भी दे सकते हैं।

विद्यालय में संग्रहालय--

दृष्टिबाधित छात्रों के लिए विद्यालय में संग्रहालय बनाए जाने चाहिएं। इन छात्रों को वातावरण की विभिन्न सामग्रियों के समग्र प्रत्यय बनाने में ये बहुत योगदान देते हैं।

इन संग्रहालयों में राष्ट्रीय स्तर की सामग्रियाँ- राष्ट्रीय चिह्न, राष्ट्रीय झण्डा, महापुरुषों के द्वारा प्रयोग की गयी सामग्रियों के मॉडल, ऐतिहासिक इमारतों के मॉडल, जैसे संसद भवन, इण्डिया गेट, ताजमहल, चार मीनार, मन्दिरों के गोपुरम, मस्जिद की इमारत, चर्च की इमारत आदि बनवाकर रखे जा सकते हैं।

भूगोल सम्बन्धी सामग्रियाँ, जैसे ग्लोब, द्वीप, डेल्टा, ज्वालामुखी के मॉडल, समुद्र में पाये जाने वाली चीजों के अवशेष, पशु-पक्षी, बांध, यातायात के साधनों के मॉडल आदि रखे जा सकते हैं। विभिन्न स्पर्शीय मानचित्रों को भी संग्रहित किया जाना चाहिए।

इस संग्रहालय की बहुत-सी सामग्रियाँ बाजार में सूझ-बूझ के द्वारा ढूँढकर खरीदी जा सकती हैं, साथ ही उचित सलाह देकर बनवाई भी जा सकती हैं। कई सामग्रियाँ अध्यापक भी निर्मित कर सकते हैं। इन संग्रहालयों का विस्तार विद्यालय में धीरे-धीरे किया जा सकता है।

संग्रह करने के निर्देश--

1. यह संग्रहालय हवादार, प्रकाशयुक्त कक्ष में बनाया जाना चाहिए। यहाँ पर अवशेष आदि भी रखे जाते हैं, अतः स्वास्थ्य पर प्रभाव न पड़े, इसलिए ऐसा कमरा होना अत्यन्त आवश्यक है।

2. सामग्री देखने के बाद छात्र हाथ अवश्य धो लें।

3. सामग्री ऐसी हो जो इन बालकों में प्रत्ययों का निर्माण करे।

4. छूकर देखने से सामग्री खराब नहीं होनी चाहिए और सामग्री की जानकारी स्पर्श द्वारा देखने से स्पष्ट होनी चाहिए। दृष्टिमूलक सामग्रियों का भली प्रकार रूपान्तरण करना चाहिए।

5. कक्ष में कृत्रिम प्रकाश की व्यवस्था होनी चाहिए, जिससे न्यून दृष्टि छात्र भी सामग्री का निरीक्षण भली प्रकार कर सकें। इन छात्रों की दृष्टि सम्बन्धी आवश्यकताओं के अनुकूल सामग्री निर्मित होनी चाहिए।

6. सामग्री के साथ उसकी जानकारी ब्रेल में लिखी हुई होनी चाहिए, जिससे सामग्री की आवश्यक जानकारी छात्र द्वारा स्वयं प्राप्त की जा सके। सामग्री की जानकारी ध्वनि रूप में कैसेट में भी रिकॉर्ड की जा सकती है।

7. सामग्री इस प्रकार रखी जाए कि छात्र स्वयं छूकर देख सकें, उससे सम्बन्धित सामग्री सुन सकें या पढ़ भी सकें। एक सामग्री देखते समय दूसरी सामग्री इतनी दूर हो कि उसको नुकसान न पहुँचे और देखने, सुनने में दूसरे छात्रों को कोई बाधा न हो।

8. छोटी कक्षा के छात्र अपने अध्यापकों के साथ जाकर सामग्री देखें, बड़ी कक्षा के छात्र स्वयं भी देख सकते हैं।

दृष्टिबाधित छात्रों के लिए सामाजिक अध्ययन शिक्षण का मूल्यांकनः

राष्ट्रीय उद्देश्यों की प्राप्ति शिक्षा कराती है। यदि सारांश में शिक्षा के उद्देश्य की बात कहें तो शिक्षा बालक का ऐसा बहुमखी विकास कराती है, जो उसे राष्ट्र के विकास में योगदान देने वाला सभ्य, सुसंस्कृत नागरिक बनाती है। दूसरे शब्दों में, शिक्षा ज्ञानात्मक, भावनात्मक और निपुणताओं का विकास बालकों में कराती है। शिक्षण प्रक्रिया इन्हीं उद्देश्यों की प्राप्ति में योगदान देती है और यह उद्देश्य किस सीमा तक बालकों में विकसित हो रहे हैं, मूल्यांकन निर्धारित करता है।

हमारी शिक्षा की नीति ने स्पष्ट कहा है कि बालकों का व्यापक और निरन्तर मूल्यांकन विद्यालयों में होना चाहिए। व्यापक मूल्यांकन का अभिप्राय है कि मूल्यांकन शिक्षण के सभी उद्देश्यों को जाँचे, केवल ज्ञान ही नहीं, बल्कि बालक के सामाजिक गुण, उसकी योग्यताएं, उसकी निपुणताएं, उसके मूल्य, आदतें आदि सबका मूल्यांकन व्यापक मूल्यांकन कहलाएगा। शिक्षण सालभर चलने वाली प्रक्रिया है, अतः मूल्यांकन भी निरन्तर होना चाहिए। निरन्तर मूल्यांकन शिक्षण को अधिक प्रभावशाली बनाता है, छात्रों को स्वाध्याय की ओर प्रेरित करता है। छात्र सालभर निरन्तर अध्ययन में लगे रहते हैं, अतः सामाजिक अध्ययन शिक्षण के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए व्यापक और निरन्तर मूल्यांकन वांछनीय है।

प्राइमरी स्तर के छात्रों का मूल्यांकन बालकों की सीखने में होने वाली उन्नति को दर्शाते हैं। उनकी होने वाली कठिनाइयों का अध्यापक को आभास कराता है, जिससे अध्यापक उनकी कठिनाइयों का समाधान करके छात्रों की उन्नति में योगदान दे सके। अध्यापक अपने पढ़ाने के तरीके में परिवर्तन मूल्यांकन के आधार पर कर सकते हैं। प्राइमरी स्तर के छात्रों के सामाजिक अध्ययन शिक्षण के मूल्यांकन के लिए कई साधनों का प्रयोग कर सकते हैं। ये साधन निम्नलिखित हैं:-

छोटे उत्तरों वाले प्रश्नों द्वारा मूल्यांकन- इस स्तर के छात्रों से निबन्धात्मक प्रश्न न पूछकर एक वाक्य में उत्तर लें। यह क्रिया दस वाक्यों के उत्तर तक की जा सकती है। उदाहरण-

1. भारत की राजधानी का नाम बताओ?
2. भारत के प्राकृतिक प्रदेशों के नाम बताओ?

वस्तुनिष्ठ प्रश्नों का मूल्यांकन में प्रयोग करें। ये निम्न प्रकार के होते हैं:-

(1) रिक्त स्थानों की पूर्ति करें-

नोट- छात्र रिक्त स्थान में दिये जाने वाला शब्द प्रश्न संख्या के साथ कॉपी/कागज पर लिखें।

उदाहरण-

1. संसार के सबसे ऊँचे पर्वत का नाम ------- है।
2. -------- कुतुबुद्दीन ऐबक ने दिल्ली में बनवाई।

(2) अनेक उत्तरों में से सही उत्तर का चुनाव करें-

नोट-सही उत्तर प्रश्न संख्या के साथ लिखें।

1. जवाहरलाल नेहरू कौन थे? (प्रधानमंत्री, वैज्ञानिक, कवि)
2. उत्तर प्रदेश की राजधानी का नाम बताओ? (बनारस, भोपाल, लखनऊ)

(3) सही या गलत उत्तर बताएं-

नोट- प्रश्न संख्या के साथ सही या गलत लिखें।

उदाहरण-

1. मुम्बई की अपेक्षा दिल्ली में अधिक वर्षा होती है। सही/गलत
2. पाकिस्तान भारत के पश्चिम में है। सही/गलत

(4) मिलान करने वाले प्रश्न-

नोट- प्रश्न की संख्या लिखें। दी गई शब्दों की सूची से दूसरी सूची के शब्द मिलाकर लिखें।

उदाहरण-

1. जयपुर	मणिपुर
2. इम्फाल	राजस्थान

(5) वर्गीकरण करने वाले प्रश्न--

नोट- व्यर्थ शब्द को सूची में से हटाने के लिए उस शब्द को लिखिये।

उदाहरण-

1. बन्दरगाह, आयात, निर्यात, फूल

न्यून दृष्टि बालकों को बड़े अक्षरों में लिखा हुआ प्रश्न-पत्र दिया जा सकता है। प्राइमरी स्तर पर छात्रों के सामाजिक अध्ययन का मूल्यांकन मौखिक प्रश्नों को पूछकर भी किया जा सकता है। यह निर्भर करता है छात्रों के ब्रेल लिखने की क्षमता पर, क्योंकि ब्रेल धीमी गति से लिखी जाती है, अतः लिखित प्रश्नों के लिए अधिक समय देना चाहिए और पूर्ण वाक्य में उत्तर न लेकर प्रश्न संख्या के साथ शब्दों में उत्तर ले सकते हैं।

इसके अतिरिक्त अध्यापक पड़ताल सूची (Check List) बनाकर अपने निरीक्षणों द्वारा छात्र की सामाजिक अध्ययन सम्बन्धी योग्यताओं, मूल्यों, आदतों आदि का स्वयं मूल्यांकन कर सकता है।

मानचित्र सम्बन्धी प्रश्नों को हल करने में आने वाली समस्याएं एवं निदान–अध्यापक की भूमिका एवं उत्तरदायित्व:

दृष्टिबाधित छात्रों को मानचित्र सम्बन्धी प्रश्नों को हल करने में कई कठिनाइयाँ आती हैं, इसीलिए कई राज्यों में मानचित्र पर हल करने वाले प्रश्नों के स्थान पर छात्रों को अन्य प्रश्न बोर्ड परीक्षाओं में दिये जाते हैं। इसका कदापि यह अर्थ नहीं है कि छात्रों को मानचित्र अध्ययन कराया ही न जाए। उनको प्राइमरी स्तर से ही मानचित्र अध्ययन कराएं और उसका मूल्यांकन भी करें। हाँ, यह सत्य है कि दृष्टिबाधित छात्रों को मानचित्र के प्रश्नों को हल करने में कुछ कठिनाइयाँ अवश्य आती हैं, उनका निदान भी किया जा सकता है, जो कि निम्नलिखित हैं:--

1. **कठिनाई**– मानचित्र का छात्रों के मस्तिष्क में प्रत्यय ही नहीं बन पाता है। कारण है अभी तक मानचित्रों का उपयोग उनकी ब्रेल की सामाजिक अध्ययन की पुस्तकों में किया ही नहीं जाता है।

निदान– अध्यापक स्वयं स्पर्शीय मानचित्र का छात्रों के लिए निर्माण करे। एक बार अध्यापक यह बनाना शुरू कर देगा तो उसके विद्यालय में मानचित्रों का संकलन हो जाएगा।

2. कठिनाई– दृष्टिवानों की सामाजिक अध्ययन की पुस्तक में एक ही मानचित्र पर बहुत-सी सामग्री दिखा दी जाती है। स्पर्श द्वारा एक ही मानचित्र पर दृष्टिबाधित छात्रों को इतना सब दिखाना सम्भव नहीं है।

निदान– अध्यापक दृष्टिबाधित छात्रों के लिए एक ही मानचित्र को कई में परिणित करे। सामग्री अलग-अलग दिखाए और पढ़ाते समय उनका समन्वय करे।

न्यून दृष्टि बालक के लिए उसका बड़ा और स्पष्टता से लिखा रूप प्रस्तुत करे।

3. कठिनाई- मानचित्र पर स्पष्ट दिशा का ज्ञान नहीं होता है।

निदान- छात्र को इसको समझाने का तरीका अध्यापक बताए और अभ्यास कराए।

4. कठिनाई- मानचित्र पर दूरी का प्रत्यय स्पष्ट नहीं होता।

निदान- अध्यापक पैमाना देखने का अभ्यास कराए।

5. कठिनाई- निर्धारित चिह्न नहीं है।

निदान- अध्यापक अपने चिह्न निर्धारित कर सकता है।

मानचित्र पर प्रश्नों का हल तभी कराया जाए, जब छात्र उसको स्वतन्त्र रूप से भर सकें। इसके लिए खूब अभ्यास कराया जाना चाहिए। इसके लिए निम्नलिखित उपाय हैं:--

1. बहुत बड़े उभरे हुए मानचित्र न दें।

2. छात्र सामग्री को मोम के रंगीन चॉक से मानचित्र पर दर्शाएं / दिखाएं।

3. उंगलियाँ धीमी गति से मानचित्र पढ़ती हैं, इसका ध्यान रखा जाए, अतः समय अधिक दें।

4. जो मानचित्र भरने के लिए दें, उस पर सीमाएं स्पष्ट उभरी हुई होनी चाहिएं, क्योंकि यह मानचित्र भरने में Land Mark और Clue का काम करती हैं।

5. एक मानचित्र पर अगर कई चीजें पास-पास की पूछी गई हैं, तब छात्रों को उनको भरने में परेशानी होती है, जैसे भारत में लोहा और कोयला कहाँ-कहाँ पाया जाता है- यह भरना है, तब उसे अधिक सावधानी बरतनी पड़ती है। अच्छा हो यदि इस बात का ध्यान रखा जाए कि बहुत पास-पास की सामग्री प्राइमरी स्तर पर भरने के लिए न दें।

6. छात्रों को मानचित्र पर लिखने में दिक्कत होती है, इसके लिए Sticker दें, उस पर छात्र लिखकर मानचित्र पर चिपकाने का काम करें, अर्थात् मानचित्र पर Label लगाया जा सकता है।

7. कभी-कभी Spur-wheel का भी छात्र प्रयोग कर सकते हैं, जैसे कोई मार्ग या नदी दिखानी है, तब छात्र इसका सावधानी से प्रयोग करें।

मानचित्र पर मूल्यांकन की सावधानियाँ- यह सब कराने के बाद भी मानचित्र का मूल्यांकन करते समय अध्यापक अपनी सूझ-बूझ और समझदारी का प्रयोग करे। यदि थोड़ा-सा स्थान दिखाने के स्थान में परिवर्तन है, तब उसे सही मानकर नम्बर दे, जैसे इलाहाबाद गंगा-यमुना के संगम पर दिखाना है तो संगम के बाईं तरफ निशान लगाया है या दाहिनी तरफ, उसे सही माने। मोम के चाक से मोटा निशान पड़ता है, स्थान का विस्तार हो सकता है, उसे सही माने। दृष्टिबाधित छात्र मानचित्र पर ब्रेल में नहीं लिख सकते हैं, इसके लिए किसी दृष्टिवान छात्र का सहयोग दें।

पाठ योजना-एक

दिनाँक	20.08.2004
कक्षा	चार
कालांश	तीन
समयावधि	35 मिनट
विषय	सामाजिक अध्ययन
प्रकरण	भारत के प्राकृतिक प्रदेश (मानचित्र पर अध्ययन)

1. अनुदेशात्मक उद्देश्य- आज का पाठ पढ़ने के पश्चात् छात्रों के व्यवहार में होने वाले वांछित परिवर्तन के संदर्भ में।

2. ज्ञानात्मक उद्देश्य-

(1) छात्र भारत के प्राकृतिक प्रदेशों का प्रत्यय स्मरण कर सकेंगे।

(2) मानचित्र में प्रदर्शित ब्रेल सामग्री पढ सकेंगे।

3. बोधात्मक उद्देश्य-

(1) छात्र भारत के प्राकृतिक प्रदेशों की भौगोलिक स्थिति बता सकेंगे।

(2) प्राकृतिक प्रदेशों की दिशाएं बता सकेंगे।

4. कौशलात्मक उद्देश्य-

(1) छात्र भारत के मानचित्र पर प्राकृतिक प्रदेश दिखा सकेंगे।

(2) छात्र इन प्राकृतिक प्रदेशों की मानचित्र पर दिशा बता सकेंगे।

5. रुचि सम्बन्धी उद्देश्य- छात्र भारत के प्राकृतिक मानचित्र को देखने में रुचि लेंगे।

6. जीवन सम्बन्धी उद्देश्य- छात्र भारत की प्राकृतिक स्थिति का अपने जीवन में आवश्यकतानुसार लाभ उठा सकेंगे।

7. अभिवृत्यात्मक उद्देश्य- छात्रों का भारत के प्रति दृष्टिकोण व्यापक और तर्कसंगत होगा।

पूर्वज्ञान-

(1) छात्र भारत के प्राकृतिक प्रदेशों के नामों का अध्ययन कर चुके हैं।

(2) छात्रों को भारत के प्राकृतिक प्रदेशों की जानकारी दी जा चुकी है।

सहायक सामग्री-

भारत के प्राकृतिक प्रदेशों का स्पर्शीय मानचित्र।

प्रस्तावना प्रश्न-

(1) हिमालय प्रदेश से निकलने वाली दो नदियों के नाम बताओ।

(2) भारत के रेगिस्तान का क्या नाम है।

(3) भारत के प्राकृतिक प्रदेशों के नाम बताओ।

उद्देश्य कथन-

छात्रो, आज हम भारत के प्राकृतिक प्रदेशों को भारत के मानचित्र पर देखेंगे।

प्रस्तुतीकरण-

सामान्यत: प्रश्नोत्तर और अध्यापक कथनों को शिक्षण में प्रयोग किया जाएगा।

शिक्षण बिन्दु-

मानचित्र पर दिशा ज्ञान।

प्रत्येक छात्र को भारत का स्पर्शीय मानचित्र वितरित किया जाएगा, जिस पर भारत के प्राकृतिक प्रदेश दिखाए गये हैं।

शिक्षण बिन्दु	अध्यापक क्रियाएं	छात्र क्रियाएं
दिशा ज्ञान	**विकासात्मक प्रश्न–**	
	(1) दिशाओं के नाम बताओ।	पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण
	अध्यापक कथन–	
	किसी भी मानचित्र पर दिशा ज्ञान अवश्य दिया जाता है। यह मानचित्र जो आपके पास है, उस पर भी एक सीधी लकीर बाईं ओर बनी है और इस लकीर के ऊपर उत्तर लिखा है। इसका तात्पर्य है कि इस मानचित्र पर ऊपर की ओर उत्तर दिशा है और नीचे की ओर इस मानचित्र पर दक्षिण दिशा है। बाएं हाथ की ओर पश्चिम दिशा है और दाएं हाथ की ओर पूर्व दिशा है।	प्रत्येक छात्र अध्यापक के सहयोग से मानचित्र पर दिशा ज्ञान प्राप्त करेगा।
मानचित्र पर लिखी सामग्री पढ़ाना	**विकासात्मक प्रश्न–**	
	(1) इस मानचित्र पर सबसे ऊपर क्या लिखा है?	भारत के प्राकृतिक प्रदेश।
	अध्यापक कथन–	
	इस मानचित्र पर भारत के पाँच प्राकृतिक प्रदेश दिखाए गये हैं, इनको उत्तर दिशा के क्रम में हम सब देखेंगे।	
हिमालय का प्राकृतिक प्रदेश	**विकासात्मक प्रश्न–**	
	(1) भारत की किस दिशा में हिमालय पर्वत है?	उत्तर दिशा में।
	(2) यहाँ की जलवायु कैसी होती है?	बहुत ठण्डी, शीत जलवायु।

	(3) यहाँ की सबसे ऊँची चोटी का नाम बताओ?	एवरेस्ट।
	अध्यापक कथन–	
	आओ बच्चो इस हिमालय के पर्वतीय प्रदेश को मानचित्र पर देखें। यह भारत के उत्तर में उभरे भाग की तरह दिखाया गया है। इसका विस्तार उत्तर से पूर्व की ओर है।	प्रत्येक छात्र देखेगा और अध्यापक उसकी सहायता करेगा।
गंगा-ब्रह्मपुत्र का मैदानी प्रदेश	**विकासात्मक प्रश्न–**	
	(1) गंगा नदी कहाँ से निकलती है?	हिमालय पर्वत से।
	(2) भारत के मैदानी भाग को किस नाम से जाना जाता है?	गंगा-ब्रह्मपुत्र का मैदान।
	(3) यह मैदान कृषि के लिए क्यों उपयुक्त है?	यह समतल और उपजाऊ है।
	अध्यापक कथन–	
	अब गंगा-ब्रह्मपुत्र का मैदान मानचित्र पर देखें। यह हिमालय पर्वतीय प्रदेश के दक्षिण में है। इसका विस्तार हिमालय के नीचे पूर्व की ओर है।	छात्र इस मैदानी प्रदेश को मानचित्र पर पहचानने की क्रिया करेंगे। (अध्यापक आवश्यकतानुसार सहायता करेगा)।
समुद्र-तटीय मैदान	**विकासात्मक प्रश्न–**	
	(1) भारत का दक्षिणी भाग मानचित्र पर दिखाओ?	छात्र मानचित्र पर दिखाएंगे।
	अध्यापक कथन–	
	भारत के दक्षिणी भाग में भी एक मैदानी प्रदेश है, जो समुद्रतटीय मैदान कहलाता है। यह अरब	छात्र मानचित्र पर इस मैदान को अध्यापक की सहायता से पहचानेंगे।

	सागर और बंगाल की खाड़ी की ओर है।	
दक्षिण का पठारी प्रदेश	**विकासात्मक प्रश्न–**	
	(1) भारत का पठारी प्रदेश क्यों प्रसिद्ध है?	खनिज के लिए।
	(2) यहाँ की भूमि की क्या विशेषता हैं।	कठोर है।
	अध्यापक कथन–	
	इसे मानचित्र पर देखें, जो अभी तुमने मैदानी प्रदेश देखा है, उसके पास ही पठारी प्रदेश है।	छात्र देखेंगे और अध्यापक मदद करेगा।
	विकासात्मक प्रश्न–	
	(1) इस पठारी प्रदेश के उत्तर में कौन-सा मैदान है? मानचित्र पर देखकर बताओ।	गंगा-ब्रह्मपुत्र का मैदान।
	(2) इस पठारी प्रदेश की किस दिशा में समुद्रतटीय मैदान है? अध्यापक इसको पहचानने में छात्रों की मदद करेंगे।	पूर्व और पश्चिम में।
भारत के द्वीपीय प्रदेश	**विकासात्मक प्रश्न–**	
	(1) बंगाल की खाड़ी में भारत का कौन-सा द्वीप समूह है?	अंडमान और निकोबार द्वीप समूह।
	(2) अरब सागर में भारत का कौन-सा द्वीप समूह है?	लक्षद्वीप समूह।
	अध्यापक कथन–	
	आओ इन द्वीपों को मानचित्र पर देखें।	छात्र मानचित्र पर देखेंगे
	विकासात्मक प्रश्न–	
	(1) मानचित्र पर बंगाल की खाड़ी पढ़ो?	छात्र मानचित्र पर पढ़कर बताएंगे।

	अध्यापक कथन–	
	इसी खाड़ी में लम्बाकार रूप में अंडमान निकोबार द्वीप समूह है।	छात्र पहचानेंगे।
	विकासात्मक प्रश्न–	
	(1) अरब सागर मानचित्र पर कहाँ लिखा है? पढ़कर बताओ।	छात्र पढ़कर दिखाएंगे।
	अध्यापक कथन–	
	अरब सागर में भारत के दक्षिणी इलाके के पास लक्षद्वीप समूह है।	छात्र पहचानने का प्रयास करेंगे।
पुनरावृत्ति–	(1) मानचित्र पर हिमालय पर्वतीय प्रदेश दिखाओ।	
	(2) यह भारत की किस दिशा में है।	
	(3) भारत का मैदानी प्रदेश मानचित्र पर दिखाओ।	
	(4) भारत का मरुस्थलीय प्रदेश भारत की किस दिशा में है, मानचित्र पर दिखाओ।	
	(5) पठारी प्रदेश भारत की किस दिशा में है, मानचित्र पर दिखाओ।	
	(6) भारत के द्वीप समूहों पर हाथ रखो।	

गृह कार्य–

मानचित्र पर भारत के प्राकृतिक प्रदेशों को देखने का अभ्यास करो।

ब्रेल में लिखने की सुविधा की दृष्टि से प्रस्तुतीकरण निम्नलिखित प्रकार से लिखा जा सकता है:-

1. शिक्षण बिन्दु–

मानचित्र पर दिशा ज्ञान।

विकासात्मक प्रश्न-

(1) दिशाओं के नाम बताओ।

उत्तर- पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण।

अध्यापक कथन-

किसी भी मानचित्र पर दिशा ज्ञान अवश्य दिया जाता है। यह मानचित्र जो आपके पास है, उस पर भी एक सीधी रेख़ा बाईं ओर बनी है और इस रेखा के ऊपर उत्तर लिखा है। इसका तात्पर्य है कि इस मानचित्र पर ऊपर की ओर उत्तर दिशा है और नीचे की ओर दक्षिण दिशा है। बाएं हाथ की ओर पश्चिम दिशा है और दाएं हाथ की ओर पूर्व दिशा है।

(प्रत्येक छात्र अध्यापक के सहयोग से मानचित्र पर दिशा ज्ञान प्राप्त करेगा)।

2. शिक्षण बिन्दु--

मानचित्र पर लिखी सामग्री पढ़ाना।

विकासात्मक प्रश्न--

(1) इस मानचित्र पर सबसे ऊपर क्या लिखा है।

उत्तर- भारत के प्राकृतिक प्रदेश।

अध्यापक कथन--

इस मानचित्र पर भारत के पाँच प्राकृतिक प्रदेश दिखाए गये हैं। इनको उत्तर के क्रम में हम सब देखेंगे।

3. शिक्षण बिन्दु--

हिमालय का प्राकृतिक प्रदेश।

विकासात्मक प्रश्न--

(1) भारत की किस दिशा में हिमालय पर्वत है।

उत्तर- उत्तर दिशा में।

(2) यहाँ की जलवायु कैसी है।

उत्तर- बहुत ठण्डी, शीत जलवायु है।

(3) यहाँ की सबसे ऊँची चोटी का नाम बताओ।

उत्तर- एवरेस्ट

अध्यापक कथन--

आओ बच्चो इस हिमालय के पर्वतीय प्रदेश को मानचित्र पर देखें। यह भारत के उत्तर में उभरे भाग की तरह दिखाया गया है। इसका विस्तार उत्तर से पूर्व की ओर है।

(प्रत्येक छात्र मानचित्र पर अध्यापक की सहायता से देखेगा)।

4. शिक्षण बिन्दु--

गंगा-बह्मपुत्र का मैदानी प्रदेश।

विकासात्मक प्रश्न -

(1) गंगा नदी कहाँ से निकलती है?

उत्तर- हिमालय से।

(2) भारत के मैदानी भाग को किस नाम से जाना जाता है?

उत्तर- गंगा-ब्रह्मपुत्र का मैदान।

(3) यह मैदान कृषि के लिए क्यों उपयुक्त है?

उत्तर- यह समतल और उपजाऊ है।

अध्यापक कथन-

अब गंगा-ब्रह्मपुत्र का मैदान मानचित्र पर देखें। यह हिमालय पर्वतीय प्रदेश के दक्षिण में है। इसका विस्तार हिमालय के नीचे पूर्व की ओर है।

(छात्र इस मैदानी प्रदेश को मानचित्र पर पहचानने की क्रिया करेंगे। अध्यापक आवश्कतानुसाार उनकी सहायता करेगा)।

विकासात्मक प्रश्न-

(1) भारत का दक्षिणी भाग मानचित्र पर दिखाओ।

उत्तर- छात्र मानचित्र पर दिखाएंगे।

अध्यापक कथन-

भारत के दक्षिणी भाग में भी एक मैदानी प्रदेश है, जो समुद्रतटीय मैदान कहलाता है। यह अरब सागर और बंगाल की खाड़ी की ओर है।

(छात्र मानचित्र पर इस मैदान को अध्यापक की सहायता से पहचानेंगे)।

5. शिक्षण बिन्दु-

दक्षिण का पठारी प्रदेश।

विकासात्मक प्रश्न-

(1) भारत का पठारी प्रदेश क्यों प्रसिद्ध है?
उत्तर- खनिजों के लिए।

(2) यहाँ की भूमि की क्या विशेषता है?
उत्तर- कठोर है।

अध्यापक कथन-

इसे मानचित्र पर देखें, जो अभी तुमने मैदानी प्रदेश देखा है, उसके पास ही पठारी प्रदेश है।

(छात्र पहचानेंगे-अध्यापक मदद करेगा)।

विकासात्मक प्रश्न-

(1) इस पठारी प्रदेश के उत्तर में कौन-सा मैदान है? मानचित्र पर देखकर बताओ।
उत्तर- गंगा-ब्रह्मपुत्र का मैदान है।

(2) इस पठारी प्रदेश की किस दिशा में समुद्रतटीय मैदान है?
उत्तर- पूर्व और पश्चिम में।
(अध्यापक इसको पहचानने में छात्रों की मदद करेगा)।

6. शिक्षण बिन्दु-

भारत के द्वीपीय प्रदेश।

विकासात्मक प्रश्न--

(1) बंगाल की खाड़ी में भारत का कौन-सा द्वीप समूह है?

उत्तर- अंडमान और निकोबार द्वीप समूह।

(2) अरब सागर में भारत का कौन-सा द्वीप समूह है?

उत्तर- लक्षद्वीप समूह।

अध्यापक कथन-

आओ, इन द्वीपों को मानचित्र पर देखें।

विकासात्मक प्रश्न-

(1) मानचित्र पर बंगाल की खाड़ी पढ़ो

अध्यापक कथन-

इसी खाड़ी में लम्बाकार रूप से अंडमान और निकोबार द्वीप समूह दिखाए गये हैं।

(छात्र पहचान करेंगे)।

विकासात्मक प्रश्न-

(1) अरब सागर पढ़ो, मानचित्र पर कहाँ लिखा है?

उत्तर- छात्र पढ़कर बताएंगे/दिखाएंगे।

अध्यापक कथन-

अरब सागर में भारत के दक्षिणी इलाके के पास लक्षद्वीप समूह है।

(छात्र पहचानने का प्रयास करेंगे। अध्यापक निरीक्षण करेगा)।

अध्याय-24

दृष्टिबाधितों के द्वारा भाषा अधिगम

– श्रीमती कनक लाल

जब से मनुष्य इस संसार में जन्म लेता है, तभी से उसका सीखना प्रारम्भ हो जाता है। यह सीखना या अधिगम वह वातावरण से समायोजन करने के लिए करता है। जैसे-जैसे वह बड़ा होता है, उसे वातावरण में समायोजन करने के लिए भाषा का सहारा लेना पड़ता है। अधिगम और कुछ नहीं है, बस वातावरण में समायोजन करने के लिए मनुष्य अपने व्यवहारों में जो परिवर्तन लाता है, अधिगम कहलाता है।

दृष्टिबाधित बालक भी भाषा का अधिगम करता है। इस बालक का भाषा अधिगम दृष्टि अभाव के कारण दृष्टिवानों से बहुत भिन्न नहीं होता। हाँ, अधिगम के तरीकों पर अध्यापक को ध्यान देना पड़ता है। दृष्टिवान बालक दूसरों को देखकर और बोलते हुए सुनकर भाषा अधिगम करता है, साथ ही वह दूसरों को देखकर वातावरण का अन्वेषण करता है। दूसरों को देखते ही अन्तःक्रिया (बातचीत) करता है। यह सब उसके भाषा अधिगम में योगदान देता है। बालकों को दूसरों को देखने और सुनने का जितना अवसर मिलेगा, उतना ही उनका भाषा विकास होगा।

दृष्टिबाधित बालक देख नहीं पाता, सुनने पर ही उसका बल होता है। गतिशीलता की भी सीमाएं होती हैं, इस कारण उसके अनुभव भी सीमित हो जाते हैं। देख न पाने के कारण वह आस-पास के वातावरण को भी नहीं पहचान पाता है, इस कारण बात करने के लिए जानकारियों की कमी हो जाती है। संवेदी-उद्दीपन कम होता है, इस कारण प्रत्ययों का विकास सीमित होता है। सामग्रियाँ, जो वातावरण में व्याप्त हैं, उनको समझने में गति भी धीमी होती है। दूसरों के साथ संप्रेषण का भी अभाव होता है। यह बालक उचित इशारे, चेहरों के हाव-भाव नहीं समझ पाता है, न ही कर पाता है, रंगों का ज्ञान भी नहीं होता है। अतः आवश्यक है कि इन बालकों के भाषा अधिगम पर अध्यापक उचित ध्यान दे। इसके लिए वह निम्नलिखित उपायों को कर सकता है:-

1. इन बालकों के साथ सहचर्य बढ़ाए, खूब बात करे, बालकों को बोलने के लिए प्रेरित करे, छोटी-छोटी कहानियाँ, घटनाओं को सुनाए, बालकों को भी सुनाने के लिए प्रेरित करे। कहानी, कविता या घटना सुनाते समय उसमें आए शब्दों की जानकारियाँ मूर्त रूप में दें। यदि कुत्ते, बिल्ली की कहानी सुना रहे हैं,

तब उनको इन जानवरों को छूने का अवसर दे। कैसे बोलते हैं, क्या खाते हैं- इन सबकी चर्चा करे।

2. कहानियाँ या घटनाएं आदि सुनाते समय भाषा में उचित शब्दों का प्रयोग करे और आरोह-अवरोह के साथ बात को बोले।

3. वातावरण में व्याप्त विभिन्न सामग्रियाँ बताए, स्पर्श कराए, जिससे शब्दों के साथ उनका अर्थ और प्रत्यय स्पष्ट हो सके। बच्चों को जितना अधिक व्यावहारिक ज्ञान दे सकते हैं, दीजिए। जो भी काम आप करें, उसको विस्तार से इस बालक को बताइए। आपको इसमें कितना भी बोलना पड़े, इस बालक के लिए बोलिये। बालक की जिज्ञासा सम्बन्धी प्रश्नों का उचित उत्तर दीजिए। उचित का अर्थ है, उसमें दृष्टिमूलक बातें कम हों और अनुभव प्रधान जानकारियाँ हों। हर बात धैर्य से बताइए।

4. भाषा अधिगम के लिए उसकी बची हुई ज्ञानेन्द्रियों को उद्दीप्त करिये। उसके सुनने के कौशल का विकास कराइये। इन बालकों को चीजों को छूने के अधिक-से-अधिक अवसर देने चाहिएं, क्योंकि मात्र श्रवण के आधार पर वह उन वस्तुओं से सम्बन्धित उचित संकल्पनाओं को निर्मित नहीं कर पाएगा। ज्ञानेन्द्रियों का सहयोग लेते हुए विद्यालय के दैनिक जीवन की क्रियाओं को कराइये। इन क्रियाओं की चर्चा भी कीजिए।

5. इन बालकों की सामाजिक अन्त:क्रियाओं को प्रोत्साहित करने के लिए सक्रिय प्रयास कीजिए। सुनिश्चित करें कि ये बालक भी सामान्य दृष्टिवान बालकों को उपलब्ध होने वाले विभिन्न सामाजिक अनुभवों और अन्त:क्रियाओं का आनन्द लें।

श्रवण कौशल का दृष्टिबाधित बालकों के लिए महत्त्व:

श्रवण का अर्थ है, हवा से होकर आने वाली ध्वनि तरंगों को श्रवणेन्द्रिय द्वारा ग्रहण किया जाना और उसे अर्थ देना। श्रवण कौशल का सम्बन्ध श्रवणेन्द्रिय से होता है। श्रवण कौशल के अन्तर्गत श्रवण की तीक्ष्णता, श्रवण की सजगता, श्रवण द्वारा पहचानना, श्रवण की गई आवाज का चुनाव करना और आवाज का बोध करना आता है।

दृष्टिबाधित बालक के लिए श्रवण कौशल का जीवन में बहुत महत्त्व है। यह बालक आस-पास के वातावरण का पता लगाने के लिए श्रवणेन्द्रिय का प्रयोग करता है। यह वातावरण घर, पड़ोस, बाजार, स्कूल आदि विभिन्न स्थानों का हो

सकता है। वातावरण में कौन है, क्या काम हो रहा है, किस प्रकार काम हो रहा है आदि सब जानकारियाँ वातावरण के श्रवण कौशल द्वारा ज्ञात होती हैं।

दृष्टिबाधित बालक की विभिन्न संकल्पनाएं (प्रत्यय) भी श्रवण कौशल द्वारा विकसित होते हैं। शरीर के प्रति जागरूकता, वस्तु के प्रति जागरूकता, समय व दूरी की जागरूकता, समानताओं और विभिन्नताओं के प्रत्यय, वस्तु का मिलान करने के प्रत्यय, वर्गीकरण के प्रत्यय, आकारों के प्रत्यय आदि सभी प्रत्ययों में दृष्टिबाधित श्रवण कौशल का सहारा लेता है।

इसी प्रकार अनुस्थितिज्ञान और चलिष्णुता का प्रशिक्षण विकसित करने के लिए श्रवण कौशल अत्यन्त आवश्यक है। ध्वनि के स्रोत, दिशा का पता लगाना, वस्तु से निकलने वाली ध्वनि के आधार पर उसकी दूरी निश्चित करना। छड़ी द्वारा उत्पन्न ध्वनि के आधार पर जान पाना कि सड़क किस प्रकार की है- समतल, ऊँची-नीची, कच्ची-पक्की आदि। यह सब श्रवण कौशल द्वारा होता है।

दैनिक जीवन के कौशलों के प्रशिक्षण दृष्टिबाधित बालकों में विकसित कराना अत्यन्त आवश्यक है, ताकि वे अपने जीवन में आत्मनिर्भर बन सकें और सामुदायिक जीवन की विभिन्न गतिविधियों में भाग ले सकें। ये सब क्रियाएं श्रवण कौशल के प्रयोग किये बिना सम्भव हो ही नहीं सकती हैं।

संचार, भाषा और सामाजिक अन्त:क्रिया के बीच एक पारस्परिक सम्बन्ध है। दृष्टिबाधित बालक दूसरों को बोलते हुए सुनते हैं, तब उनमें भाषा का विकास होता है। इन बालकों को दूसरों को सुनने और दूसरों से अन्त:क्रिया करने के जितने अधिक अवसर दिये जाएंगे, उतना ही अधिक बालक का भाषा सम्बन्धी विकास होगा। इसके द्वारा व्यक्ति विचारों का आदान-प्रदान करता है। दूसरों को बोलते हुए सुनकर ही यह बालक भी अपनी भाषा का विकास करेगा। भाषा ही सब विषयों, ज्ञान-विज्ञानों का मूल आधार है। इसी में बालक सोचता है, बोलता है, स्वप्न देखता है, पाठशाला में भिन्न-भिन्न प्रकार की शिक्षा ग्रहण करता है, भावों की अभिव्यक्ति करता है। यह सब तभी सम्भव है, जब बालक में श्रवण कौशल का विकास भली प्रकार से किया जाए।

बहुत-सी ऐसी शैक्षिक सहायक सामग्रियाँ तथा उपकरण हैं, जो लिखित सामग्रियों को बोलकर सुनाते हैं। उनका प्रयोग श्रवण कौशल प्राप्त होने पर ही किया जा सकता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि दृष्टिबाधित बालकों के भाषा विकास में श्रवण कौशल का विकास कराना अत्यन्त आवश्यक है। इन बालकों की शिक्षा, बड़े होने

पर व्यवसाय, सामुदायिक जीवन, सभी जगहों पर इस कौशल के बिना जीवन ही अधूरा रह जाता है। यह इन बालकों के लिए जीवनयापन का सहज माध्यम है। अतः इस श्रवण कौशल का विकास प्रारम्भिक अवस्था से ही दृष्टिबाधित बालकों में कराना चाहिए।

श्रवण कौशल को विकसित करने के उपाय:

दृष्टिबाधितों में श्रवण कौशल सूचना एकत्रित करने का महत्त्वपूर्ण तरीका है। अच्छा श्रवण कौशल विकसित करने के लिए प्रशिक्षण और अभ्यास की आवश्यकता होती है। इस प्रशिक्षण के द्वारा दृष्टिबाधित बालकों में परिवेश की विभिन्न प्रकार की ध्वनियों के प्रति जागरूकता बढ़ाई जाती है। वे ध्वनियों में भेद करके, अर्थ समझकर उस वस्तु का नाम बता सकते हैं, जिनसे ध्वनि उत्पन्न हो रही है। विभिन्न ध्वनियों में से ध्वनि का चुनाव करके उस पर ध्यान केन्द्रित कर सकते हैं। ध्वनि की दिशा पहचान कर उसके स्रोत, उसकी दूरी तथा स्थिति निर्धारण कर सकते हैं। ध्वनि की दिशा जानकर उसके स्रोत की ओर जा सकते हैं।

श्रवण कौशल विकसित करने के लिए निम्नलिखित उपाय किये जा सकते हैं:-

1. परिवार के सभी सदस्यों की आवाज की पहचान कराइये।

2. पड़ोस में रहने वाले लोगों की आवाज की पहचान कराइये।

3. पालतू पशु-पक्षियों की आवाज की पहचान कराइये। अन्य पशु-पक्षियों की आवाज टेप करके सुनाइये और पहचान कराइये।

4. आवाज की दिशा की पहचान कराइये।

5. ऐसी ध्वनियों का प्रयोग कीजिए जो कम-ज्यादा हो सकें। इसके लिए रेडियो, टेपरिकॉर्डर का प्रयोग किया जा सकता है। छात्र कम-से-कम आवाज सुनकर बताएं। तेज आवाज कम करने के लिए कहें।

6. सड़क पर जाने वाले वाहनों की आवाज सुनकर बताएं कि किस वाहन की आवाज है, किस दिशा से आ रही है। किस वाहन की आवाज तेज है और किसकी भारी है।

7. आवाज के द्वारा दूरी की पहचान कराइये। छात्र पास से आने वाली आवाज पहचानें और दूर से आने वाली आवाज पहचानें। विभिन्न प्रकार की आवाज करने वाले और चलने वाले खिलौनों का इस क्रिया को कराने के लिए प्रयोग कर सकते हैं।

8. शान्त वातावरण में होने वाली आवाज पर छात्र ध्यान दें। घड़ी, पंखा आदि की आवाज पर ध्यान दिलवाइये।

9. एक कोलाहलपूर्ण वातावरण में तरह-तरह की आवाजों की पहचान कराइये। खेल के मैदान के शोर में तरह-तरह की आवाजें पहचानें। बाजार, मेले, अस्पताल, स्टेशन आदि स्थानों पर ले जाकर इस क्रिया को कराना चाहिए। टेपरिकॉर्डर में टेप की हुई विभिन्न स्थानों की आवाज कक्षा में सुनाकर उस पर विभिन्न प्रश्न कीजिए।

श्रवण के प्रशिक्षण के लिए अध्यापक अपनी सूझ-बूझ के द्वारा तरह-तरह की क्रियाओं को अपना सकता है। अध्यापक ये क्रियाएं दृष्टिबाधित बालकों की आयु, दृष्टिहीनता की आयु, दृष्टि की मात्रा आदि को ध्यान में रखकर कराएं।

भाषा में श्रवण कौशल विकसित करने के उपाय– भाषा की बुनियादी कुशलताओं के अन्तर्गत सुनना, बोलना, पढ़ना और लिखना आता है। सुनना और पढ़ना अर्थ ग्रहण के माध्यम हैं और बोलना और लिखना अभिव्यक्ति के साधन हैं। इसमें सबसे पहले श्रवण आता है। भाषा शिक्षण में इसका सबसे अधिक महत्त्व भी है। श्रवण को अर्थ ग्रहण का साधन माना जाता है, अर्थात् इसमें वाक्यों की हर ध्वनि को पूरा सुनना, ध्वनियों को अर्थ देना तथा वाणी के उतार-चढ़ाव के अनुसार वाक्य-ध्वनि में भावों की पहचान करना शामिल है। सही सुनना और अर्थ ग्रहण करना एक-दूसरे के अभिन्न अंग हैं। सुनने के लिए निम्नलिखित बातों की आवश्यकता है:-

1. सही सुनना।
2. धैर्यपूर्वक सुनना।
3. शब्द एवं वाक्यों का प्रसंगानुकूल अर्थ और भाव समझना।
4. कही गई बात के महत्त्वपूर्ण तथ्यों व भावों का चयन करना।
5. बात का सारांश निकालना।

जैसा कि अब तक जाना, भाषा शिक्षण में श्रवण एक महत्त्वपूर्ण क्रिया है। इसका उद्देश्य है- दृष्टिबाधित छात्रों के कानों तक भाषा की ध्वनियों, वर्ण, पद, वाक्य को विभिन्न प्रकार से प्रस्तुत किया जाए। इसके लिए अध्यापक निम्नलिखित बातों की ओर ध्यान दे:

अध्यापक शुद्ध उच्चारण करे और छात्रों से शुद्ध उच्चारण कराए। दृष्टिबाधित छात्र का उच्चारण केवल सुनने पर निर्भर करता है। वह होंठों का हिलना और

चेहरे पर भावों का आना देख नहीं पाता है। अतः अध्यापक का दायित्व है कि वह इन बालकों को शुरू से ही शुद्ध उच्चारण करने के लिए प्रेरित करे। श्रवण का सीधा सम्बन्ध उच्चारण से है और उच्चारण का सम्बन्ध वर्तनी से है। यदि उच्चारण अशुद्ध होगा तो वर्तनी भी अशुद्ध होगी। अतः वर्तनी को शुद्ध कराने के लिए उच्चारण पर ध्यान दे।

भाषा में उच्चारण के प्रमुखतः निम्नलिखित तीन क्षेत्र होते हैं:-

1. **वर्ण**- वर्ण के उच्चारण में अध्यापक को यह जानकारी होनी चाहिए कि उच्चारण के समय जीभ क्या काम करती है-मुँह में कहाँ छूती है, कहाँ रगड़ खाती है, सांस का जोर किसमें कम लगता है, किसमें अधिक लगता है, गले पर दबाव कब पड़ता है, कब नहीं और नाक से निकलने वाली ध्वनि कब निकलती है। प्राथमिक कक्षाओं में ध्वनियाँ, स्वर, व्यंजन तथा संयुक्ताक्षरों की पहचान, मात्रा लगाकर बोलना तथा लिखने का सही रूप छात्रों को बताना आवश्यक होता है।

2. **शब्द**- शब्दों का निर्माण वर्णों के सहयोग से होता है। छात्रों को यह जानकारी देनी चाहिए कि शब्द किन-किन अक्षरों से बना है, अर्थात् शब्द की अक्षर-रचना क्या है, बताना चाहिए। दीर्घ और ह्रस्व स्वरों का उच्चारण श्रवण से सम्बन्धित है, उसे स्पष्टता के साथ कराना चाहिए। संयुक्ताक्षरों का उच्चारण व लेखन भी श्रवण पर निर्भर होता है, वह कराना चाहिए।

3. **वाक्य**- वाक्यों का अर्थपूर्ण ढंग से उच्चारण कराना श्रवण द्वारा ही सम्भव है। वाक्य के उच्चारण से ध्वनि पर पड़ने वाले बल, उसका अनुपात और सुर आदि पैदा होता है। इसके कारण अर्थ बदल सकता है। यह किस प्रकार श्रवण से सम्बन्धित है, अध्यापक को समझदारी से छात्रों को स्पष्ट करना चाहिए।

भाषा अर्जन में श्रवण योग्यताओं का अभ्यास निम्न प्रकार से कराना चाहिए:-

1. ध्यान से सुनना।

2. समान ध्वनियों में पारस्परिक अन्तर करना। ह्रस्व और दीर्घ स्वरों का अभ्यास कराना।

3. बलाघात, स्वराघात, मधुरता, लालित्य, प्रभावोत्पादकता तथा चमत्कारपूर्ण ढंग से आरोह-अवरोह के साथ सुनकर उच्चारण करवाना चाहिए।

4. उच्चारण के अभ्यास के लिए तथा उसकी त्रुटियों को ठीक कराने के लिए स्वर-व्यंजनों को साधा जाना चाहिए।

5. शिक्षक बोलने का आदर्श दृष्टान्त उपस्थित करे, जिसे छात्र श्रवण करके वैसा ही बोलने का प्रयास करें।

6. शब्दों, मुहावरों एवं युक्तियों का प्रसंगानुकूल, वाक्यार्थ, लक्ष्यार्थ, व्यंग्यार्थ जैसी भी स्थिति हो, छात्र सुनकर ग्रहण कर सके।

7. वाचक द्वारा अशुद्ध उच्चरित ध्वनियों की त्रुटियों को छात्र पकड़ सके ओर उसका शुद्ध रूप निर्धारित कर सके।

8. श्रवण योग्यताओं के विकास के लिए कक्षा में वार्तालाप करने का पर्याप्त अवसर देना चाहिए। इससे छात्रों में शुद्धता, स्पष्टता तथा संकोचरहितता आती है। इसी प्रकार वाद-विवाद, अंत्याक्षरी, भाषण आदि सुनने के अवसर भी देने चाहिएं, छात्र इनमें भाग भी लें।

दृष्टिबाधित बालकों के भाषा शिक्षण के लिए सहायक सामग्री का निर्माण-सिद्धान्त व निर्देश:

आधुनिक समय में शिक्षा का एक मान्य सिद्धान्त बन चुका है कि सहायक सामग्री के प्रयोग द्वारा पाठ को प्रभावशाली और रोचक बनाया जा सकता है। कोरे शाब्दिक ज्ञान को महत्त्वहीन बताया जाता है। दृष्टिबाधित छात्रों के लिए अधिकतर शिक्षण सामग्री स्पर्शीय और श्रवणीय बनाई जाती है। न्यून-दृष्टि छात्रों के लिए स्पष्ट दृश्य सामग्रियों का प्रयोग किया जाना चाहिए।

भाषा शिक्षण में प्रयुक्त की जाने वाली सहायक सामग्रियाँ निम्नलिखित हैं:-

1. स्पर्शीय और दृश्य चित्र
2. मॉडल
3. चार्ट
4. फ्लैश कार्ड
5. टेपरिकॉर्डर
6. टेलीविजन
7. फिल्म
8. रेडियो
9. श्यामपट

10. कक्षा-अभिनय

11. म्यूजियम

इन सामग्रियों में से प्रथम चार सामग्रियाँ अध्यापक स्वयं बनाकर दृष्टिबाधित छात्रों को दे सकता है। इन सामग्रियों को बनाने के सिद्धान्त और निर्देश निम्नलिखित हैं:-

सिद्धान्त:

1. द्विगुणन का सिद्धान्त– इसके अन्तर्गत बनाई गई एक सामग्री की कई प्रतिलिपियाँ बनाई जाती हैं, जैसे ब्रेल में लिखी एक कविता की कई प्रतियाँ बनाना। यह अध्यापक हाथ से लिखकर कर सकता है। मशीनों (थर्मोफॉर्म मशीन) द्वारा भी द्विगुणीकरण कर सकते हैं।

2. रूपान्तरण का सिद्धान्त– इसके अन्तर्गत सामग्री को बदलकर इस प्रकार बना दिया जाता है कि दृष्टिबाधित छात्र उस सामग्री को श्रवण द्वारा या स्पर्श द्वारा समझ सके। एक कहानी या कविता को कैसेट में रिकॉर्ड करना उसका प्रिंट से श्रवणीय रूपान्तरण है। एक चित्र का स्पर्शीय बनना उसका रूपान्तरण है।

3. विकल्प का सिद्धान्त– जब कोई वस्तु दृष्टिबाधित छात्र को दृष्टिबाधिता के कारण नहीं बताई जा सकती या उपरोक्त सिद्धान्तों द्वारा नहीं बताई जा सकती, तब उसका विकल्प इन छात्रों को दिया जा सकता है, जैसे रंगों का ज्ञान नहीं दिया जा सकता, तब रंगों को वस्तु के साथ जोड़कर बताते हैं। प्राकृतिक दृश्यों को शाब्दिक चित्र द्वारा बताते हैं। इन बातों की जानकारी देने के लिए विकल्प के सिद्धान्त का प्रयोग करते हैं।

4. छोड़ देने का सिद्धान्त– जब किसी भी प्रकार से दृष्टिबाधित छात्रों को किसी वस्तु का ज्ञान नहीं दिया जा सके या उसका प्रत्यय स्पष्ट न किया जा सके, तब उस बात/वस्तु को छोड़ देते हैं। छोटी कक्षाओं में ऐसा कई बार किया जा सकता है।

निर्देश:

दृष्टिबाधित छात्रों के लिए सामग्री निर्माण करते समय निम्नलिखित निर्देशों का पालन करना चाहिए:-

1. जो भी सामग्री बनाएं उसका दृष्टिबाधित छात्र सहजता से लाभ ले सकें।

2. सामग्री ऐसी बनाएं जो स्पर्श द्वारा देखने पर टूट न जाए या विकृत न हो जाए।

3. सामग्री पर जो भी 'ब्रेल' में लिखा जाए, वह शुद्धता के साथ लिखा जाए।

4. सामग्री का जो 'ब्रेलीकरण' किया जाए, वह सहजता से पढ़ा जाए। सामग्री उभारने के कारण कई बार ब्रेल बिन्दु स्पष्ट उभरे हुए नहीं पढ़े जा पाते हैं, विशेषकर जब मशीनों पर उसका द्विगुणीकरण किया जाता है। इस बात का सामग्री बनाते समय ध्यान रखें।

5. ब्रेल कार्ड बनाते समय ध्यान रखें कि छात्र उसे सीधा रखकर पढ़ सके। इसके लिए कई उपाय कर सकते हैं। एक उपाय यह है, कार्ड के ऊपर का दाहिना कोना काट दें। छात्र को बताएं कि कार्ड को सीधा रखने का कौन-सा तरीका आपने अपनाया है।

6. प्रारम्भिक कक्षाओं में इन छात्रों को पंक्तियाँ ढूँढकर पढ़ने में परेशानी होती है। ब्रेल सामग्री बनाते समय प्रारम्भ में एक पंक्ति और दूसरी पंक्ति की दूरी अधिक रखें। धीरे-धीरे यह दूरी सामान्य दूरी तक ले आएं।

7. ब्रेल की छोटी-सी पुस्तक यदि निर्मित करनी है, तब इस बात का ध्यान रखें कि छात्र पुस्तक को सहजता से मेज या चौकी पर खोलकर दोनों हाथ का प्रयोग करते हुए पढ़ सकें। कई पृष्ठों को नत्थी करते समय भी इस बात का ध्यान रखें।

सामग्री की सूची में पाँच से आठ तक की संख्या की सामग्री छात्रों की श्रवण क्षमता के विकास में योगदान देती है। शुद्ध बोलने में और शुद्ध उच्चारण सीखने में इनका उपयोग किया जाना चाहिए। रिकॉर्ड कर बोलने का ढंग बताया जा सकता है। इनके द्वारा छात्रों को भाषा सीखने की प्रेरणा मिलती है। स्वाध्याय करने में सहायता मिलती है।

अध्यापक छात्रों के लिए पाठ्य-पुस्तकानुसार और कक्षानुसार उपयुक्त सामग्री का चयन करे, उसके प्रसारण का समय जाने और कक्षा के लिए उपयुक्त व्यवस्था करके छात्रों को रेडियो और टेलीविज़न पर प्रसारित होने वाली यह सामग्री सुनवाए। अध्यापक सुविधानुसार सामग्री को टेपरिकॉर्डर पर भी टेप करके कक्षा में सुनवा सकता है।

श्यामपट न्यून-दृष्टि छात्रों के लिए एक उपयुक्त शिक्षण सामग्री है। इस पर इन छात्रों की दृष्टि आवश्यकता के अनुसार अध्यापक को साफ-साफ पंक्तिबद्ध

करके लिखना चाहिए। यदि छात्र श्याम पट पर लिखी सामग्री पास जाकर पढ़ना चाहे, तब उसे पास जाने की अनुमति देनी चाहिए। इन छात्रों को भी श्यामपट पर लिखने के लिए प्रेरित करना चाहिए।

कक्षा-अभिनय कोई शिक्षण सामग्री नहीं है, किन्तु भाषा में कथाएं, वैचारिक विषय-वस्तु और भाव प्रधान विषय-वस्तु की उचित अभिव्यक्ति छात्र कर सकें, इसके लिए कक्षा में कक्षा-अभिनय का प्रयोग बहुलता से करना चाहिए। इससे छात्रों में भाषा शुद्धता से प्रयोग, उच्चारण, उतार-चढ़ाव के साथ बोलना, कविता के विभिन्न रूपों को उचित तरह से अभिव्यक्त करना आदि सब अध्यापक को शामिल करना चाहिए।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विभिन्न प्रकार की शिक्षण सामग्रियों के प्रयोग से भाषा अध्ययन को रोचक और आकर्षक बनाया जा सकता है।

अध्याय-25

न्यून दृष्टि बालकों की शिक्षा

-डॉ. एस. सान्याल

दृष्टिबाधित व्यक्तियों में ऐसे अनेक व्यक्ति होते हैं, जिनके पास कुछ मात्र में दृष्टि होती है। अनुमान लगाया जाता है कि ऐसे व्यक्तियों की संख्या पूर्णत: दृष्टिहीनों की संख्या से चार गुना अधिक है। इन व्यक्तियों के लिए उपयुक्त सेवाएं अत्यन्त आवश्यक हैं। प्रारम्भिक अवस्था से ही इनके पास जो अवशेष दृष्टि है, उसके प्रयोग के लिए प्रोत्साहित करना तथा दृष्टि की सीमाओं के कारण जो सीमित तथा असम्पूर्ण दृष्टिमूलक सूचनाएं इन्हें मिलनी हैं, उनका भी प्रयोग करना सिखाना चाहिए।

चूँकि ऐसे बालक कानूनी तौर से दृष्टिबाधितों के वर्ग में आते हैं, इसलिए अधिकतर ऐसे बालक दृष्टिबाधितों के विद्यालयों में प्रवेश लेते हैं। इन विद्यालयों में इनकी शेष दृष्टि के विकास का अपेक्षाकृत कम अवसर मिलता है। कभी-कभी दृष्टिवानों के विद्यालयों में पढ़ने वाले ऐसे न्यून दृष्टि बालकों को मंद बुद्धि भी सोचा जाता है, क्योंकि दृष्टि की सीमा के कारण इनकी वाचन की गति धीमी तथा श्यामपट से देखकर न लिख पाना आदि कुछ ऐसे लक्षण दिखाई देते हैं। दोनों परिस्थितियों में यह आवश्यक हो जाता है कि इन बालकों की सही पहचान हो जाए तथा इनकी दृष्टि क्षमता का मूल्यांकन किया जाए एवं शिक्षित किया जाए। इन बालकों की शैक्षिक आवश्यकताएं भी दृष्टिवान तथा पूर्णत: दृष्टिहीनों से कुछ मात्रा में अलग होती है।

नि:शक्त व्यक्ति (समान अवसर, अधिकारों का संरक्षण तथा पूर्ण भागीदारी) अधिनियम, 1995 में अल्प या न्यून दृष्टि वालों को दृष्टिहीनों से भिन्न एक अलग श्रेणी के रूप में सम्मिलित किया गया है।

इस अधिनियम के अनुसार न्यून दृष्टि वाले व्यक्ति से अभिप्राय उन व्यक्तियों से है, जिनकी दृष्टि क्रियाशीलता में उपचार या सर्वोत्तम सुधार के बाद भी दोष होता है, किन्तु वे उपयुक्त सहायक उपकरणों के साथ कार्यों को करने या उनकी योजना बनाने के लिए दृष्टि का प्रयोग करते हों या ऐसी सम्भावना हो कि वे दृष्टि का प्रयोग कर सकेंगे।

न्यून दृष्टि बालकों की पहचान:

किसी न्यून दृष्टि बालक की पहचान उसकी आँखों की बाह्याकृति, उसके आचरण तथा उसकी दृष्टि सम्बन्धी शिकायतों से की जा सकती है। बालक के

माता-पिता, अध्यापक, सम्बन्धित अन्य व्यक्ति- सभी के निरीक्षण से न्यून दृष्टि बालक की पहचान करना आसान हो जाता है। न्यून दृष्टि बालक की पहचान करने में निम्न बातें सहायता देंगी--

-- माता-पिता से प्राप्त सूचनाएं।

-- चिकित्सक से प्राप्त सूचनाएं।

नीचे कुछ ऐसे चिह्न, लक्षण तथा व्यवहार दिए जा रहे हैं जो कि एक न्यून दृष्टि बालक की पहचान करने में मदद देंगे--

(1) आँखों की बाह्याकृति :

1. आँखें अत्यधिक लाल होना।
2. आँखों में पानी आना।
3. भेंगापन।
4. पलकों का सिकुड़ना।
5. पुतली का धुंधला दिखाई देना।
6. अस्थिर आँखें।
7. पलकों का झुक जाना।
8. अधिक या लगातार गुहेरियों (Styes) का होना।

(2) व्यक्ति का आचरण:

1. दूर की वस्तुओं को देखने के लिए सिर को आगे अथवा पीछे करते रहना।
2. सिर को घुमाकर केवल एक आँख से देखना।
3. सिर को एक तरफ झुकाना।
4. किताब या किसी भी वस्तु को देखने के लिए बहुत पास जाना।
5. अत्यधिक पलकें झपकाना।
6. आँखें रगड़ना।
7. एक आँख को ढककर देखना।
8. पढ़ने में मन न लगना।
9. दृष्टिमूलक कार्य करने में अत्यधिक थक जाना या अधिक समय तक पढ़ने के बाद पढ़ने की क्षमता में कभी आना।

10. पढ़ते समय लाइन का खो जाना।

11. पढ़ते समय आँखों की जगह सिर को घुमाना।

12. समान आकृति के अक्षरों को पढ़ने में अक्सर दिक्कत आना; जैसे --म, भ, घ, ध आदि।

13. वस्तुओं से टकराना।

14. लिखते समय लाइन का टेढ़ा-मेढ़ा हो जाना।

(3) आँखों के इस्तेमाल/प्रयोग करते समय शिकायतः

1. सिरदर्द।

2. उल्टी आने की शिकायत।

3. आँखों में जलन या खुजली।

4. धुँधला दिखाई देना।

5. आँखों में दर्द।

न्यून दृष्टि बालकों की शैक्षिक समस्याएँ एवं निदानात्मक उपायः

न्यून दृष्टि कई कारणों से होती है। इन कारणों का बालक की शैक्षिक आवश्कता पर प्रभाव पड़ता है। नीचे न्यून दृष्टि के कुछ मुख्य कारण तथा उसके अनुसार शैक्षिक आवश्यकताओं तथा आवश्यक अनुकूलन का वर्णन किया जा रहा है--

(1) वर्णहीनता (Albinism)

1. कक्षा-कक्ष में नियन्त्रित प्रकाश।

2. पढ़ाते या कुछ बनाते समय शिक्षक खिड़की या प्रकाश के स्रोत के सामने न खड़ा हो।

3. पुस्तक में अगर महत्त्वपूर्ण बातों को मार्कर (Marker) द्वार चिह्नित किया जाए तो उससे पंक्ति ढूँढने या सूचनाएं ढूँढने में मदद मिलेगी।

4. बाहर कार्य करते समय टोपी, काला चश्मा पहनना उचित रहेगा।

5. चिकित्सक के परामर्श अनुसार आवर्धक (मैग्निफायर) दिया जाना चाहिए।

6. निकट के कार्य करने में थकान महसूस करने से कुछ देर आँखों को विश्राम देना चाहिए।

(2) निकट दृष्टि दोष (Myopia)

1. इलाज के लिए चश्मे या कॉन्टेक्ट लेंस (Contact Lens) पहनने की आवश्यकता है।

2. अच्छा प्रकाश लेकिन चमक कम होनी चाहिए।

3. श्यामपट को देखने के लिए पास बैठने की जरूरत हो सकती है।

4. रेटिनल डिटेचमेन्ट Retinal Detachment न हो जाए, इसके लिए सावधानी बरतनी चाहिए।

(3) (Nystagmus) :

1. सिर को एक तरफ करके देखने की कोशिश कर सकता है।

2. पास से कार्य करने से आँखें जल्दी थक सकती हैं, इसलिए इनको कुछ समय के बाद आँखों को विश्राम देना चाहिए।

3. दृष्टिमूलक कार्यों में भी विविधता होनी चाहिए।

4. Line Marker, Ruler तथा Typoscope से इन बालकों को सही पंक्ति में पढ़ने तथा लिखने में मदद मिलेगी।

5. अच्छा प्रकाश तथा पृष्ठभूमि से रंग विभेद आवश्यक है।

(4) मोतिया बिंद (Cataracts) :

1. आँखों के पास लाकर पढ़ता है/देखता है।

2. सामग्री का वृहदीकरण करना चाहिए।

3. छात्रों के पीछे से रोशनी आनी चाहिए।

4. शिक्षक को खिड़की या प्रकाश के स्रोत के पास खड़े होकर नहीं पढ़ाना चाहिए।

5. Adjustable Table Lamp सहायक हो सकता है।

6. मोतिया बिंद अगर लेंस के केन्द्र के पास है, तब पास की वस्तु देखने में कठिनाई होती है तथा तीव्र प्रकाश से भी देखने में कष्ट होता है। ऐसे में प्रकाश का स्तर (Level) धीमा होना चाहिए।

7. अगर मोतिया बिंद लेंस के बाहरी तरफ हो, तब ज्यादा प्रकाश की आवश्कता होगी।

8. लेंस को निकाल देने पर चिकित्सक के द्वारा दिये जाने वाले चश्मे नियमित पहनने चाहिएं।

9. विभिन्न प्रकार के प्रकाश में समायोजन करने में इन्हें कठिनाई होती है, इसलिए समायोजन के लिए अधिक समय देना होगा।

(5) Astigmatism :

1. नजदीकी कार्य करने से आँखें जल्दी थक जाती हैं तथा सरदर्द हो सकता है। इन्हें सही चश्मा तथा देखने के लिए अच्छा प्रकाश और पृष्ठभूमि से रंग विभेद चाहिए।

(6) Corneal Ulcers :

1. Eccentric viewing कर सकता है।
2. अच्छा प्रकाश आवश्यक है।
3. अच्छी पृष्ठभूमि से रंग विभेद होना चाहिए।

(7) काला मोतिया :

1. बालक की आँखों में दर्द के लक्षण के बारे में शिक्षक को सचेत रहना पड़ेगा।
2. अगर दवा डालनी है तो नियमित रूप से डाली जाए।
3. चमक रहित अच्छा प्रकाश होना चाहिए।
4. अच्छा रंग विभेद आवश्यक है।
5. C.C.T.V. से पढ़ने में मदद मिल सकती है।

(8) Optic Atrophy :

1. अच्छा प्रकाश और रंग विभेद आवश्यक है।
2. मोटे अक्षर पढ़ने में सहायक होंगे।
3. ब्रेल तथा अन्य स्पर्शीय सामग्री भी आवश्यक हो सकती है।
4. चित्र या छपी हुई सामग्री स्पष्ट तथा दूर-दूर हो।

5. क्या दिखाई दे रहा है, यह समझने में ज्यादा समय लगता है, इसलिए दृष्टि प्रशिक्षण का कार्यक्रम इन बालकों के लिए अत्यन्त जरूरी है।

(9) Retinopathy of Prematurity:

1. मस्तिष्क में क्षति के कारण इन बालकों में कई बार समस्यामूलक आचरण या धीमी गति से विकास दिखाई देता है। इन बालकों के लिए प्रारम्भिक हस्तक्षेप तथा संवेदी उद्दीपन आवश्यक होता है।

2. पास के कार्यों को करने के लिए वृहदीकरण की आवश्यकता होती है।

3. C.C.T.V. लाभदायी हो सकता है।

न्यून दृष्टि बालक के लिए कक्षा प्रबन्ध:

एक न्यून दृष्टि बालक के लिए कक्षा-कक्ष में ज्यादा सामग्री, कम रोशनी या खिड़की से आने वाली अतिरिक्त चमक सर्वथा अनुपयुक्त है। दृष्टिदोष युक्त बालक के लिए कक्षा के प्रबन्ध में कुछ विशेष बातों का ध्यान रखना चाहिए-

1. कक्षा का वातावरण ऐसा हो कि न्यून दृष्टि बालक को दृष्टि का प्रयोग करने के लिए प्रोत्साहन मिले।

2. पठन सामग्री तथा उपकरण आदि कक्षा अथवा संसाधन कक्ष में निश्चित स्थान पर रखे जाएं तथा सभी खानों में मोटे अक्षर और ब्रेल से नामांकन किया जाए।

3. ब्रेल तथा मोटे अक्षर की पुस्तक, ब्रेलर, टाइपराइटर, C.C.T.V. आदि सभी सामग्री तथा उपकरण सुरक्षित रखने के लिए ज्यादा जगह की आवश्यकता होती है, इसके लिए पर्याप्त जगह का प्रावधान होना चाहिए।

4. आवर्धक लेंस, चश्मे आदि का जब प्रयोग न हो रहा हो, तब Case में सुरक्षित रखना चाहिए ताकि धूल से लेंस को नुकसान न हो।

5. कक्षा में बालक के बैठने की स्थिति उसकी दृष्टि की मात्रा तथा दृष्टि हानि के कारण पर निर्भर करती है। ज्यादातर ऐसे बालकों को श्यामपट के पास बैठने से देखने में आसानी होती है।

6. बालक के पीछे की तरफ से प्रकाश आये, बैठने का प्रबन्ध ऐसा होना चाहिए।

7. दो खिड़कियों के बीच में रिक्त स्थान पर कोई चित्र/चार्ट नहीं टाँगना चाहिए, इससे जिन बालकों को प्रकाश से परेशानी है, उन्हें देखने में कष्ट होगा।

8. चार्ट, चित्र आदि दीवार पर छात्रों की आँखों के स्तर पर लगाने चाहिएं।

9. चार्ट आदि बहुत पास नहीं लगाने चाहिएं तथा पृष्ठभूमि से इनके रंग में विभेद स्पष्ट होना चाहिए।

10. कक्षा में आवाज नियन्त्रित रखी जाए तो अच्छा होगा, क्योंकि न्यून दृष्टि बालकों को सुनने पर भी निर्भर करना होता है।

उपयुक्त शैक्षिक उपकरण:

कोई भी एक उपकरण सभी न्यून दृष्टि बालकों के लिए उपयुक्त नहीं होता है। इन उपकरणों का चयन तथा प्रयोग करने के लिए प्रशिक्षण कई बातों पर निर्भर है, जिससे दृष्टिदोष उत्पन्न होने के कारण तथा अवशिष्ट दृष्टि की मात्रा के साथ-साथ न्यून दृष्टि बालक द्वारा सूक्ष्म तथा स्थूल मांसपेशियों पर नियन्त्रण, सीखने के लिए अभिप्रेरणा तथा उसकी विशिष्ट आवश्यकताएं सम्मिलित हैं।

न्यून दृष्टि बालकों के लिए उपयुक्त सहायक शैक्षिक उपकरणों को मोटे रूप में प्रकाशीय (ऑप्टिकल सहायक), अप्रकाशीय (नॉन ऑप्टिकल सहायक) तथा इलेक्ट्रॉनिक सहायक साधनों के रूप में वर्गीकृत किया गया है। न्यून दृष्टि वाले बालकों के लिए सहायक उपकरणों का चयन करने से पहले यह सुनिश्चित कर लें कि बालक की दृष्टि की नेत्र विशेषज्ञ द्वारा जाँच करवायी गयी है या नहीं।

(अ) अप्रकाशीय उपकरण/साधन (Non-optical Devices);

बहुत-से न्यून दृष्टि वाले बालक अप्रकाशीय सहायक साधनों के प्रयोग से लाभ उठा सकते हैं। दिन-प्रतिदिन की क्रियाओं को करने में भी इन उपकरणों का लाभ मिल सकता है। यह प्रकाशीय युक्तियों के साथ अथवा उसके बिना उपयोग किया जा सकता है। अप्रकाशीय उपकरण/साधन निम्न प्रकार के होते हैं--

(1) प्रकाश/चमक को बढ़ाने या नियंत्रण करने वाले साधन (Devices that enhance or control light/glaze)

1. अवशोषी लेंस (Absorptive Lens)- यह अत्यधिक प्रकाश अथवा चमक को नियंत्रित करने में सहायक होते हैं, जैसे धूप के चश्मे, मेज पर रखने वाले टेबल लैम्प (जिसको इधर-उधर घुमाना सम्भव हो), चमक को नियंत्रित करने वाले फिल्टर (Glaze Contol Filter)

(2) पृष्ठभूमि से रंग विभेद (Contrast) बढ़ाने के लिए साधन--

1. फिल्टर (Filter)- नारंगी और पीले फिल्टर कंट्रास्ट में सुधार के लिए प्रयोग में लाये जाते हैं।

2. टाइपोस्कोप (Typoscope)- यह एक काले रंग का गत्ता या प्लास्टिक की शीट होती है, जिसमें एक खाना कटा हुआ होता है। इससे केवल पढ़ी जाने वाली लाइन दिखाई देती है। काली शीट अन्य सभी लाइनों को ढक देती है तथा छपे हुए पृष्ठ की चमक कम कर देती है। इसे आसानी से बनाया जा सकता है।

3. मोटी लाइनों वाले कागज- जिन न्यून दृष्टि बालकों को साधारण कागज की लाइन देखने में कठिनाई होती है, उनके लिए लाइन मोटी की जा सकती है।

4. बड़े छापे वाली पुस्तक- कई न्यून दृष्टि वाले बालकों को बड़े छापे वाली पुस्तकें पढ़ने में सहायता देती हैं।

5. फेल्टटिप वाले कलम (Felt-tip Pen)- सफेद कागज पर काला फेल्टटिप या स्केच पेन से लिखने में एक न्यून दृष्टि बालक को आसानी हो सकती है तथा इससे वह अपनी लिखी हुई सामग्री पढ़ भी सकता है।

6. हाईलाइटर (Highlighter)- हाईलाइटर कलम बाजार में आसानी से उपलब्ध होती है। इस कलम की सहायता से लाइन का कंट्रास्ट स्पष्ट किया जा सकता है।

7. चमक रहित सतह- न्यून दृष्टि बालक जहाँ कार्य करेगा (उसकी) सतह में (वहाँ की) चमक नहीं होनी चाहिए।

8. कंट्रास्ट रंगों के बोर्ड- विभिन्न वस्तुओं को दिखाने के लिए उपयुक्त रंग विभेद वाले बोर्ड का चयन करके उस पर रखकर प्रदर्शन किया जा सकता है।

(3) स्पर्शीय/श्रवण रूप से सहायता देने वाले साधन :

1. टेप रिकॉर्डर- न्यून दृष्टि बालक कई बार अधिक समय तक दृष्टि का प्रयोग करके पढ़ नहीं सकते। पढ़ने के साधन के रूप में इन बालकों के लिए भी टेप रिकॉर्डर उपयोगी है।

लिखने का फ्रेम (Writing Frame)- इस फ्रेम में बनी लाइनों को एक न्यून दृष्टि बालक आसानी से स्पर्श करके समझ सकता है तथा उसके बीच से लाइन सीधी रखकर लिख सकता है।

उपर्युक्त अप्रकाशीय उपकरणों के अतिरिक्त पढ़ने के लिए स्टैण्ड, सफेद वोर्ड, श्यामपट आदि भी एक न्यून दृष्टि बालक को सहायता देगा।

(ब) प्रकाशीय उपकरण (Optical Devices) :

(1) पढ़ने के लिए विभिन्न आकार के आवर्धक लेंस **(Reading Magnifiers)-**

1. हाथ में पकड़ने वाले आवर्धक लेंस-- इस आवर्धक को हाथ से पकड़कर पृष्ठ या वस्तु को पढ़ा या देखा जाता है। पकड़ने में सही स्थिति बनाए रखनी पड़ती है। यह अधिक मंहगा नहीं होता तथा बालक इसे अपने पास रख सकता है।

2. **स्टैण्ड वाले आवर्धक (Stand Magnifiers)--** यह एक मजबूत लेंस होता है, जिसको प्लास्टिक के एक स्टैण्ड में कस देते हैं। बच्चों द्वारा प्रयोग करने में स्टैण्ड पर लगा आवर्धक हाथ से पकड़ने वाले लेंस की अपेक्षा साधारण तथा अधिक आसान होता है।

3. सिर पर लगाए जाने वाले आवर्धक **(Head Borne Magnifiers)-** ये चश्मे के फ्रेम में लगाये जाने वाले आवर्धक होते हैं। इनका यह लाभ होता है कि दोनों हाथ अन्य कार्य करने के लिए स्वतन्त्र होते हैं।

4. **(Illuminated Hand or Stand Magnifiers)--** ये हाथ से पकड़ने वाले या स्टैण्ड पर लगे हुए आवर्धक की तरह ही होते हैं, अन्तर केवल यह है कि इनसे टॉर्च की तरह प्रकाश उपलब्ध कराने की व्यवस्था होती है।

(2) दूर के कार्यों के लिए आवर्धकों में छोटे दूरबीन आते हैं। इसका प्रयोग तभी किया जा सकता है, जब प्रयोगकर्ता बैठा हो या खड़ा हो। चलते समय इसका प्रयोग न करना श्रेयस्कर होगा।

(स) इलेक्ट्रॉनिक उपकरण:

(1) Closed Circuit Television (C.C.T.V.)-- यह एक इलेक्ट्रॉनिक आवर्धक प्रणाली है, जिसका प्रयोग मुद्रित सामग्री या चित्रों को आवर्धित करने के लिए किया जाता है। C.C.T.V. 60 गुणा तक बड़ी करके छवि प्रस्तुत कर सकते हैं। प्रयोगकर्ता अपनी इच्छा के अनुसार छापे का आकार तथा अक्षरों के कंट्रास्ट को नियंत्रित कर सकता है।

वृहत्तरकरण: अर्थ एवं समस्या:

छापे की सामग्री तथा छोटी वस्तुओं को अपनी आँखों के बहुत पास ले जाने से उसका आकार बड़ा दिखता है, लेकिन ऐसा हमेशा सम्भव नहीं है, इसलिए प्रकाशीय युक्तियों की सहायता से छोटी चीज को बड़ा करके देखा जा सकता है। इसी को 'वृहत्तरकरण' कहा जाता है। आवर्धक लैंस की क्षमता पर वृहत्तरकरण की सीमा निर्भर करती है।

समस्याएं:

1. पढ़ने के लिए आवर्धक को छापे की सामग्री की प्रत्येक पंक्ति के साथ साथ चलना पड़ता है। कभी-कभी एक समय पर केवल एक शब्द या शब्द का एक हिस्सा ही दिखाई देता है।

2. वृहत्तरकरण करने से शुरू-शुरू में पढ़ना बहुत धीमी गति से होता है, इसलिए पढ़ना सीखने के समय आवर्धक की अपेक्षा बड़े छापे वाली अध्ययन सामग्री अधिक अच्छी रहेगी।

3. आवर्धक का उचित प्रयोग करना सीखना कठिन होता है, अत: इसके लिए अत्यधिक अभ्यास की आवश्यकता है।

शैक्षिक मूल्यांकन की समस्याएं:

न्यून दृष्टि बालकों में अवशिष्ट दृष्टि की मात्रा में पर्याप्त अन्तर होने के कारण उनके अध्यापकों को मूल्यांकन प्रक्रिया में कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है, क्योंकि वे किसी एक प्रमापीकृत प्रक्रिया को दृष्टि की मात्रा में व्यक्तिगत अन्तर के कारण नहीं अपना सकते हैं। अध्यापकों को निम्न बिन्दुओं पर ध्यान देना चाहिए-

1. अलग-अलग बच्चों की आवश्यकता के चलते प्रश्न-पत्र तैयार करते समय छापे के आकार को लेकर अध्यापक समस्याग्रस्त हो सकता है, हालांकि इसका हल बच्चों को उनकी आवश्यकता के अनुसार आवर्धक उपलब्ध कराकर किया जा सकता है।

2. दृष्टि की सीमा के चलते बच्चों द्वारा परीक्षा के लिए अधिक समय की माँग तथा अध्यापक द्वारा वांछित अतिरिक्त प्रयास करने होंगे।

3. उत्तर पुस्तिका को पढ़ने में अतिरिक्त श्रम की आवश्यकता होगी। हो सकता है कि न्यून दृष्टि बालकों का हस्तलेख पठन योग्य न हो या फिर वर्तनी की समस्या भी आ सकती है। एक अध्यापक को मूल्यांकन करते समय न केवल अधिक उदारवादी दृष्टिकोण अपनाना होगा, वरन् इससे अवश्यंभावी शिक्षा के गिरते स्तर के बीच समन्वय बनाना होगा।

4. चित्र तथा मापन सम्बन्धी प्रश्नों के उत्तर में यथार्थता में कुछ छूट दे सकते हैं।

न्यून दृष्टि बालकों की दृष्टि का मूल्यांकन:

(1) क्रियात्मक मूल्यांकन- दो बालकों की दृष्टि तीक्ष्णता या अवशेष दृष्टि की मात्रा एक-सी होने पर भी वे दोनों दृष्टि को अलग-अलग तरह से उपयोग करते हैं। इस अन्तर का कारण उनकी क्रियात्मक दृष्टि (Functional Vision) है। क्रियात्मक दृष्टि का सम्बन्ध व्यक्ति की अपनी अवशेष दृष्टि का प्रयोग कर पाने की योग्यता से है। एक बालक की दृष्टि बहुत क्षीण हो सकती है तथा बुनने, पढ़ने आदि बारीक कार्यों के लिए पर्याप्त नहीं भी हो सकती है, लेकिन उनकी यह दृष्टि वस्तुओं को देखने तथा स्वतन्त्रतापूर्वक घूमने के लिए पर्याप्त हो सकती है। प्रशिक्षण से इस क्रियात्मक दृष्टि को सुधारा अथवा और उपयोगी बनाया जा सकता है, लेकिन प्रशिक्षण देने से पहले इनकी क्रियात्मक दृष्टि का सही मूल्यांकन होना चाहिए। विकासशील देशों में न्यून दृष्टि का क्रियात्मक मूल्यांकन करने के लिए विश्व स्वास्थ्य संगठन ने एक परीक्षण की रूपरेखा प्रकाशित की है। इस परीक्षण का प्रयोग अत्यन्त आसान है तथा दृष्टिबाधित बालकों के शिक्षक इसे उपयोग कर सकते हैं। नीचे इस मूल्यांकन का संक्षिप्त वर्णन किया जा रहा है :-

इस मूल्यांकन में 19 पद हैं, जिनको पूरा होने में एक घण्टे से भी कम समय लगता है। यदि दृष्टि प्रशिक्षण का कार्यक्रम प्रस्तुत करना है तो यह पूर्ण मूल्यांकन आवश्यक है अन्यथा आठ पदों का लघु कार्यक्रम भी किया जा सकता है। किसी बालक पर उसकी न्यून दृष्टि के प्रभाव को अधिक अच्छी तरह समझने के लिए छोटे कार्यक्रमों का प्रयोग किया जा सकता है। मूल्यांकन के पदों को सात भागों में सूचीबद्ध किया गया है। क्रियाओं को सरल से जटिल क्रम में रखा गया है। प्रथम से पंचम भाग में वास्तविक वस्तुएं तथा व्यक्तित्व का प्रयोग किया जाता है। छठे से सातवें भाग में चित्र तथा संकेतों का प्रयोग किया जाता है (जो मूल्यांकन कार्यक्रम के manual दिया हुआ है)।

पदों का वर्णनः

1. वस्तुओं के बारे में जागरूकता तथा ध्यान--

(A) ध्यान।

(B) पहुँच (छोटी वस्तु - 1 मीटर की दूरी से)।

2. आँखों की गति का नियन्त्रण-- वस्तुओं का आँखों से पीछा करना (Tracking)--

(A) किसी वस्तु पर दृष्टि बनाए रखना।

(B) पीछा करना (गेंद लुढ़का दी जाए - 4 मीटर तक)।

3. आँखों की गति का नियन्त्रण-- नजर दौड़ाना (Scanning)--

(A) दृष्टि लक्ष्य परिवर्तन (एक वस्तु से दूसरी वस्तु तक नजर दौड़ाना- 1 मीटर की दूरी)।

(B) दृष्टि निर्धारण परिवर्तन।

4. वस्तुओं का विभेदीकरण--

(A) वस्तु को ढूँढना।

(B) मार्ग का अनुसरण करना।

(C) वस्तुओं से बचना।

(D) वस्तुओं को पहचानना।

5. क्रियाओं को पहचानने के लिए वस्तु की बारीकियों को अलग करना तथा वस्तु मिलान करना--

(A) नकल करना (शरीर की गति का अनुकरण- 5 मीटर से)।

(B) चेहरे का हाव-भाव।

(C) आकार मिलान।

6. चित्रों में बारीकियों को अलग करना--

(A) क्रियाओं को पहचानना।

(B) जटिल चित्र।

7. आकृति, संख्या, शब्दों का प्रत्यक्षीकरण तथा पहचान--

(A) अमूर्त चित्र।

(B) संख्या मिलान।

(C) आन्तरिक बारीकियाँ।

(D) शब्द मिलान।

क्रियात्मक मूल्यांकन के लिए सामान्य निर्देश:

1. मूल्यांकन के लिए जिन वस्तुओं का प्रयोग किया जाए, वे उन बालकों की पूर्व परिचित होनी चाहिएं।

2. वस्तुओं को चुनने तथा उपयोग करने में उनके आकार, दूरी, कंट्रास्ट, रंग, स्थिति पर ध्यान दीजिए।

3. प्रकाश की उचित मात्रा तथा दिशा पर ध्यान देना होगा।

4. यदि कोई बालक लगातार चार या पाँच पद पूरे नहीं कर पाता है तो मूल्यांकन रोक दीजिए, साथ ही रोकने के कारण को लिखिए।

5. देखने के लिए बालक कितनी दूर खड़ा है, यह नोट कीजिए।

6. अगर बालक देखने के लिए असामान्य स्थिति पर वस्तु को रखता है तो इसके बारे में सूचना एकत्रित कीजिए।

7. सुनिश्चित कर लें कि जहाँ आप काम कर रहे हैं, वहाँ कोई चमक नहीं हो।

8. इन परीक्षण पदों के लिए कोई समय सीमा निर्धारित नहीं है। प्रत्येक कार्य के लिए पर्याप्त समय दीजिए।

9. परीक्षण के दौरान बालक द्वारा पूछे गये प्रश्न और व्यक्त किये गये विचार भी लिखिए।

(2) औपचारिक मूल्यांकन - औपचारिक रूप से एक नेत्र विशेषज्ञ सामान्यतः दूर से देख पाने की योग्यता (दृष्टि तीक्ष्णता) की जाँच स्नैलेन आई चार्ट के प्रयोग से करते हैं। चार्ट में एक शृंखला E अक्षर, संख्या या चित्र बने होते हैं। ये ऊपर सबसे बड़े आकार के होते हैं और नीचे की पंक्तियों में ये धीरे-धीरे छोटे होते हैं। हर पंक्ति को सामान्य दृष्टि वाला व्यक्ति कुछ निर्दिष्ट दूरी, जैसे

60, 36, 24, 18, 12, 9, अथवा 6 मीटर से देख सकता है। बालक को 6 मीटर की दूरी पर खड़ा करने से अगर वह चार्ट के सबसे नीचे की पंक्ति तक पढ़ सकता है तो उसकी दृष्टि तीक्ष्णता 6/6 होगी, अर्थात् उसकी दृष्टि सामान्य कहलाएगी, लेकिन अगर वह 24 मीटर की पंक्ति तक देख सकता है, उसके आगे नहीं, तब उसकी दृष्टि तीक्ष्णता 6/24 कहलाएगी। इस परिमाप में ऊपर की संख्या चार्ट से दूरी का परिमाप तथा नीचे की संख्या एक सामान्य दृष्टिवान उस पंक्ति को कितनी दूरी से देख सकता है, उसका परिमाप है। दोनों आँखों में इस परिमाप में अन्तर हो सकता है।

निकट दृष्टि परीक्षण:

निकट दृष्टि तीक्ष्णता का अर्थ लिखना, पढ़ना या अन्य कोई पास से किए जाने वाले दृष्टिमूलक कार्यों के लिए दृष्टि योग्यता है। इसे जाँचने के लिए सामान्यतः विभिन्न माप के छापों के अक्षरों को दिखाया जाता है। हर मुद्रित आकृति का परिमाप N से दिया जाता है। किसी बालक की निकट दृष्टि तीक्ष्णता जाँचने के लिए मुद्रित छापों का आकार तथा cm से यह कितनी दूरी से देखा गया, यह लिखा जाता है, जैसे N 5 at 25 cm, अक्षर की जगह छोटे बालक अथवा अशिक्षित व्यक्तियों के लिए चित्र भी प्रस्तुत किया जाता है।

सम्पूर्ण मूल्यांकन-

दृष्टि के सम्पूर्ण मूल्यांकन में निम्नलिखित तत्त्व सम्मिलित होते हैं:-

1. दूर की दृष्टि का परीक्षण।

2. निकट की दृष्टि का परीक्षण।

3. दृष्टि क्षेत्र का परीक्षण, जिससे ज्ञात होता है कि क्षेत्र पूर्णतः ठीक है या बाधित।

4. रंगों की दृष्टि की पहचान, जिसमें रंगों की पहचान करना तथा उनके नाम बताना सम्मिलित हैं।

5. पृष्ठभूमि से रंग विभेद सम्बन्धी परीक्षण, जिसमें यह देखा जाता है कि कैसे यह तत्त्व बच्चे द्वारा दृष्टि के प्रयोग को प्रभावित करता है।

6. दृष्टिमूलक क्रियात्मकता परीक्षण, जिसके अन्तर्गत यह देखते हैं कि कैसे बच्चा अपनी दृष्टि का प्रयोग किसी उद्देश्य विशेष के लिए करता है।

दृष्टि प्रशिक्षण एवं उद्दीपनः

अर्थ--न्यून दृष्टि बालकों को अपनी दृष्टि को प्रभावी ढंग से प्रयोग में लाने के लिए दृष्टि प्रशिक्षण की आवश्यकता होगी। यह समझना महत्त्वपूर्ण है कि प्रत्येक कम दृष्टि वाला बालक अलग तरह से देखता है, इसलिए प्रशिक्षण क्रियाएं भी प्रत्येक बालक के लिए अलग-अलग होंगी। प्रशिक्षण से 'दृष्टि कैसे उपयोग की जाती है', इसमें सुधार लाया जा सकता है। इस प्रशिक्षण के बाद दृष्टि के माप नहीं बदलते, जैसे प्रशिक्षण के कारण दृष्टि तीक्ष्णता या दृष्टि क्षेत्र में परिवर्तन नहीं होगा।

दृष्टि उद्दीपन का अर्थ है, किसी व्यक्ति की अवशिष्ट दृष्टि के अधिकतम प्रयोग को विकसित करने में उसकी सहायता करना। दृष्टि उद्दीपन द्वारा दृष्टि बोध व कुशलता का स्तर बढ़ता है।

दृष्टि उद्दीपन के लिए प्रशिक्षण विधियाँः

दृष्टि उद्दीपन के लिए उद्दीपन क्रियाओं का एक विशेष क्रम से प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।

प्रशिक्षण शुरू करने से पहले इस बात को सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि बालक दृष्टि प्रशिक्षण के लिए तैयार है। प्रशिक्षण के लिए सुझावों को ठीक उन्हीं वर्गों में बाँटा गया है, जैसे कि क्रियात्मक दृष्टि के मूल्यांकन में किया जाता है। मूल्यांकन से हमें पता चलता है कि किन-किन दक्षताओं में किसी बालक को प्रशिक्षण की आवश्यकता है।

दृष्टि प्रशिक्षण के लिए संकेतः

-- प्रशिक्षण को दिन-प्रतिदिन की गतिविधियों का हिस्सा बनाने की कोशिश कीजिए।

-- प्रशिक्षण के छोटे-छोटे सत्र आयोजित कीजिए।

-- जब तक एक कौशल को अच्छी तरह न सीख लिया जाए, तब तक अगले कौशल पर मत जाइए।

-- अगर बालक थक जाए तो गतिविधि जारी रखने पर जोर मत दीजिए।

-- अन्य ज्ञानेन्द्रियों, जैसे सुनने तथा स्पर्श के प्रशिक्षण को भी अपने कार्यक्रम में सम्मिलित कीजिए।

-- सभी बालकों द्वारा सभी कौशलों को प्राप्त नहीं किया जा सकता है। यदि किसी कौशल को प्राप्त न किया जा सके तो बालक को वही कार्य करने का कोई अन्य तरीका बताइए।

-- ऐसी सामग्री का प्रयोग कीजिए, जिससे बालक में रुचि उत्पन्न हो।

दृष्टि प्रशिक्षण के लिए क्रियाएं:

(1) वस्तुओं की तरफ ध्यान देना तथा जागरूकता– ध्यान आकृष्ट करने के लिए रुचिकर एवं चमकीली वस्तुओं, जैसे खिलौने अथवा रंगीन गेंद को हाथ में रखकर घुमाइए। निरीक्षण कीजिए कि बालक आँख से वस्तु की ओर ध्यान दे रहा है। तब तक उस क्रिया का अभ्यास कराइए, जब तक कि स्थिरीकरण को स्थापित न कर लिया जाए। स्थिरीकरण की अवधि को तीन सैकेण्ड तक बढ़ाने की कोशिश कीजिए।

(2) आँखों की गति का नियंत्रण-- वस्तु का आँखों से पीछा करना (Tracking)-

क्रिया-1: वस्तु को बालक के चेहरे के पास रखिए और इसे धीरे-धीरे चलाइए तथा बालक के सामने नीचे रख दीजिए। आँखों द्वारा वस्तु की गति का अनुसरण किया जाना चाहिए। एक मीटर की दूरी से शुरू कीजिए, जब देखने में सुधार आने लगे तब दूरी बढ़ाइए।

क्रिया-2: आप वस्तुओं को लुढ़काने और फेंकने से सम्बन्धित बहुत सारी क्रियाएं कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, बालक के सिर के ऊपर एक हल्की वस्तु पकड़िए जो जमीन पर धीरे-धीरे गिरेगी। वस्तु को गिरने दीजिए तथा बालक को इसे ढूँढ़ने के लिए कहिए तथा यह देखिए कि क्या बालक वस्तु को देखता है तथा वस्तु की गति का अनुसरण करता है।

क्रिया-3: बालक के सामने एक मीटर दूर खड़े होकर हवा में विभिन्न आकृतियाँ बनाइए। आकृतियाँ हाथ घुमाकर, छड़ी हिलाकर अथवा किसी चमकीली रंगीन वस्तु से बनाई जा सकती हैं। आकृतियों को आँखों की गति से देखना चाहिए।

(3) आँखों की गति का नियन्त्रण - नजर दौड़ाना -

क्रिया-1: दो पूर्व परिचित वस्तुओं को चुनिए तथा उन्हें बालक के सामने रखिए। बारी-बारी से आँखों की गति को सीधे वस्तु पर जाना चाहिए। जब बालक

एक ही पंक्ति में वस्तु को ढूँढना सीख ले तो ऊपर-नीचे ढूँढने का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।

क्रिया-2: यदि बालक छपे हुए शब्दों को पढ़ लेता है या कम से कम अक्षरों को पहचान लेता है तो उसे किसी पुस्तक का एक पृष्ठ खोलकर दीजिए। उसको किसी एक अक्षर विशेष पर गोला खींचने के लिए कहिए।

क्रिया-3: किसी आकृति में अक्षरों या संख्याओं को अलग-अलग जगह पर रख दीजिए। बालक को आकृति में किसी अक्षर या संख्या विशेष की ओर इशारा करने या उस पर निशान लगाने के लिए कहिए।

क्रिया-4: बालक को किसी दृश्य की व्याख्या करने के लिए तथा वस्तुओं के नाम बताने के लिए कहिए, जिसे वह किसी खिड़की अथवा बाहर, जहाँ खड़े हैं, वहाँ से देख सकता है। जब बालक दृश्य के बारे में बता दे, तब आप इसकी व्याख्या कर सकते हैं।

(4) वस्तुओं में अन्तर करना – यदि बालक ने खाना, कपड़ा आदि को रंग से पहचानना सीख लिया है तो वस्तुओं में विभेद करने के लिए रंगों का प्रयोग किया जा सकता है और साथ ही उसे विभिन्न रंगों के नाम भी सिखाए जा सकते हैं। वस्तु की सामान्य आकृति से वस्तु की पहचान करने में सहायता मिल सकती है। विभिन्न वस्तुओं की पृष्ठभूमि से रंगों में भिन्नता का अन्तर उनको पहचानने में सहायक हो सकता है।

क्रिया-1: वस्तुओं में अन्तर कर पाने का मूल्यांकन करने के लिए बालक से उसकी एक पूर्व परिचित वस्तु को केवल देखकर बिना छुए नाम बताने के लिए कहिए। फिर दो और बाद में और ज्यादा वस्तुओं को बालक के सामने रखकर उस वस्तु को ढूँढने को कहिए जिसका आपने नाम लिया है। बाद में बालक से सभी वस्तुओं के नाम बताने के लिए कहा जा सकता है।

क्रिया-2: विभिन्न आकृतियों को एक गत्ते पर चिपकाइए। इन आकृतियों में से एक आकृति को अलग गत्ते पर भी चिपकाइए। बच्चे को यह अलग वाली आकृति दे दीजिए और उसको यह आकृति गत्ते पर चिपकी वैसी ही आकृति के साथ मिलाने के लिए कहिए। धीरे-धीरे इन क्रियाओं को और कठिन बनाने के लिए मिलती-जुलती आकृतियों का प्रयोग कीजिए।

(5) वस्तुओं, क्रियाओं को पहचानने के लिए बारीकियों में अन्तर करना-

क्रिया-1: बालक को कुछ एक जैसी वस्तुएं, जैसे चाकू, चम्मच, कांटा आदि दिखाइए, जिनकी आकृति लगभग समान हो, लेकिन प्रत्येक में एक सिरा अलग हो। बालक को वस्तुओं को पहचानने के लिए उनकी विशिष्टताओं तथा अन्य वस्तुओं से क्या अन्तर है, इस बारे में बात कीजिए।

क्रिया-2: कई वस्तुओं, जैसे पेन, पेन्सिल, रबर आदि मेज पर फैला दीजिए। इनमें से कोई एक चीज बालक को दिखाइए और फिर बिना छुए उसे पहचानने को कहिए। फिर उस वस्तु की स्थिति बदल दीजिए और बालक को उसे ढूँढने के लिए कहिए।

क्रिया-3: शरीर की गतिविधियों की नकल करना- पूरे शरीर की गति से शुरू कीजिए (झुकना, इधर-उधर घूमना आदि), फिर हाथ अथवा पैरों की बड़ी गतियों, शरीर के छोटे हिस्सों, जैसे सिर की गति की नकल करवाना। धीरे-धीरे और अधिक छोटे अंगों, जैसे उंगलियों की गति को दिखाइए और नकल करवाइए।

क्रिया-4: चेहरे के हाव-भाव की नकल करना-- शरीर की क्रियाएं सिखाने के बाद बालक को चेहरे के भावों की नकल करने के लिए कहिए। बालक के पास (एक मीटर की दूरी से कम) खड़े होकर कार्य करना शुरू करें। फिर चेहरे के हाव-भाव बनाइए, जिनको नकल किया जाना है, जैसे दोनों आँखें बन्द करना, मुँह को खोलना तथा बन्द करना और मुस्कराना।

क्रिया-5: दृश्य रिक्त पूर्ति-- एक वस्तु के विभिन्न भागों को दिखाइए तथा वे किस तरह मिलकर सम्पूर्ण वस्तु बनाते हैं यह समझाइए और फिर वस्तु को पहचानने के लिए कहिए कि कौन-सा भाग छुपा है।

क्रिया-6: किसी वस्तु अथवा जानवर का चित्र बनाइए, लेकिन उसमें कोई हिस्सा छोड़ दीजिए और बालक को उसका छोड़ा हुआ हिस्सा पहचानने को कहिए और यदि सम्भव हो तो उसका चित्र बनाने को कहें।

क्रिया-7: वस्तुओं की लम्बाई/आकार के अनुसार मिलान, विभिन्न लम्बाइयों तथा आकारों की वस्तुओं का प्रयोग कीजिए। इनमें लकड़ी, सब्जियाँ, फल, पंख अथवा मोती हो सकते हैं। वस्तुओं को छाँटने को कहिए तथा अलग-अलग बक्सों में रखने को कहिए। उदाहरण के लिए, सभी छोटे मोतियों को छोटी कटोरी तथा बड़े मोतियों को बड़ी कटोरी में रखने को कहिए।

(6) चित्र की बारीकियों में अन्तर करना-

क्रिया-1: आकृति के अनुसार चित्रों का मिलान करना- शुरू में सामान्य आकृतियां, जैसे वर्गाकार और वृत्ताकार का प्रयोग करें। पहले ठोस आकृतियों से ठोस आकृतियों को मिलाने की क्रिया करवाइए, फिर ठोस आकृतियों को उनके खाकों के साथ मिलान करवाइए। एक पृष्ठ में दी गयी विभिन्न आकृतियों में से बालक उन आकृतियों को इंगित कर सकता है, जिनकी आकृतियाँ समान हों अथवा सभी समान आकृतियों में बालक रंग भर सकता है।

क्रिया-2: चित्रों में रेखांकित विभिन्न भावों की नकल करना- विभिन्न चित्रों में दिखाई गयी गतिविधियां की नकल करवाइए। साधारण क्रियाओं, जैसे बैठना, लेटना, खड़े होना से शुरू करवाइए।

क्रिया-3: व्यक्ति तथा वस्तुओं वाले ऐसे चित्रों का उपयोग कीजिए जो एक दृश्य दिखाते हैं। बालक को पहचानना है कि चित्रों में क्या-क्या है। उदाहरण के लिए, सभी व्यक्तियों को ढूँढिए कि वे क्या कर रहे हैं तथा वस्तुओं के नाम बताइए।

(7) अक्षरों, संख्याओं तथा शब्दों की पहचान तथा उनका प्रत्यक्षीकरण-

क्रिया-1: संख्याओं तथा अक्षरों में समानताओं तथा विषमताओं के बारे में चर्चा कीजिए, जैसे कि यह रेखाएं सरल, वक्र अथवा पूर्ण रूप से गोल हो सकती हैं। आसपास के वातावरण में जैसे संकेत पाए जाते हैं अथवा कक्षा-कक्ष के श्यामपट में लिखी हुई संख्याओं और अक्षरों का मिलान, कार्ड पर लिखी हुई संख्याओं और अक्षरों से करवाइए।

क्रिया-2: वस्तुओं और क्रियाओं (किसी जटिल चित्र में) उनके शब्दों/वाक्यों से मिलाना, जैसे बाजार के चित्र में शब्दों, जैसे आदमी, फल, मेज, टोकरी, सब्जियों का मिलान कीजिए।

निष्कर्ष:

दृष्टिबाधितों के लिए कोई भी शिक्षा या पुनर्वास का कार्यक्रम हो, न्यून दृष्टि बालकों के लिए आवश्यक सेवाएं उसमें सम्मिलित होनी चाहिएं। उदाहरण के लिए, अगर चलिष्णुता का भी प्रशिक्षण देना है, उसमें भी न्यून दृष्टि बालक चलने-फिरने में कैसे अपनी दृष्टि का सही उपयोग करेगा, इस बारे में बताना चाहिए।

यही बात दिन-प्रतिदिन की क्रियाओं का कौशल या प्रत्यय निर्माण- सभी पर लागू होती है।

अन्त में न्यून दृष्टि बालकों की शिक्षा के लिए कुछ महत्त्वपूर्ण बातें निम्न हैं :-

-- परिवार तथा समाज की भागीदारी।

-- विभिन्न व्यावसायिकों को न्यून दृष्टि की आवश्यकताओं के बारे में प्रशिक्षण प्राप्त कराना। इसके लिए नए व्यवसायी समूह का गठन न करके जो लोग संस्था में इन बालकों के साथ कार्य कर रहे हैं, उनकी कार्यकुशलताओं को इस दिशा में बढ़ाना चाहिए।

-- कार्यक्रमों का नियमित पर्यवेक्षण होना आवश्यक है।

अध्याय-26

नेत्र एवं नेत्रों की देखभाल

-डॉ. सन्दीप मल्होत्रा

आँखें भगवान के सर्वश्रेष्ठ उपहारों में से एक अनूठी देन हैं। इसके द्वारा हम संसार के सौंदर्य एवं अनूठे चमत्कारों को देखते हैं और उनका आनन्द उठाते हैं। किसी भी सामान्य व्यक्ति का लगभग 70-80 प्रतिशत ज्ञान आँखों द्वारा ही ग्रहण किया गया होता है।

प्रत्येक जीव को भगवान ने दो आँखें दी हैं। वैसे देखने के लिए एक आँख भी पर्याप्त है, लेकिन दो आँखों के होने से हम सामने के दृश्य को पूरी तरह से यानी तीन आयामों (3 dimensions) में देख सकते हैं। वस्तु की गहराई और स्थिति का ठीक अनुमान हमें दो आँखों से बेहतर मिल जाता है।

आँख की संरचना:

आँख एक कैमरे के समान है, जो बाहर के दृश्य को हमारे मस्तिष्क तक पहुँचाती है। वस्तुत: हम अपने मस्तिष्क से ही देखते हैं। यह हिस्सा हमारे सिर के पिछले भाग में होता है, जिसे 'Occipital Lobe of Brain' कहते हैं। यूँ तो आकार में हमारी आँखें कुछ-कुछ पिंग-पांग की गेंद जैसी होती हैं, लेकिन उन्हें गौर से देखें तो गेंदनुमा होते हुए भी वह पूरी तरह गोल नहीं होतीं। एक वयस्क आँख का सामान्य व्यास औसतन् 24 मिलीमीटर होता है। उसका अगला हिस्सा कुछ उभरा हुआ होता है और पीछे का हिस्सा कुछ चपटा होता है।

देखने में आँख चाहे पेचीदा-सी लगती हो, लेकिन यदि उसे खोलकर देखें तो प्याज की तरह उसमें भी परतें होती हैं, जैसे प्याज की एक के बाद एक कई परतें होती हैं, उसी प्रकार आँख की भी एक के नीचे एक करके तीन परतें होती हैं।

सबसे बाहर की तरफ श्वेतपटल (Sclera) और पारदर्शक स्वच्छमण्डल (Cornea) होता है। (Figure-1) श्वेतपटल एक ठोस एवं मजबूत खोल होता है। यह आँख को आकार (Shape) देता है। यह प्राय: 5/6 भाग ढकता है और शेष 1/6 भाग पारदर्शक स्वच्छमण्डल होता है। जहाँ श्वेतपटल और पारदर्शक स्वच्छमण्डल का मिलन होता है, उसे Limbus कहते हैं।

श्वेतपटल का कुछ हिस्सा हम देख सकते हैं, बाकी हड्डियों के कोटर में छुपा रहता है। श्वेतपटल के इस दृष्टिगत (Visible) भाग पर एक बारीक झिल्ली चढ़ी रहती है। आँख के अगले भाग से होते हुए यह दोनों पलकों की भीतरी सतह का रूप ले लेती है, जिसे हम Conjuctiva कहते हैं।

पारदर्शक स्वच्छमण्डल शीशे की तरह स्वच्छ और पारदर्शक होता है, लेकिन देखने में काला, गोलाकार दिखता है, क्योंकि इसके नीचे काले रंग के टिशूज (Tissues) होते हैं। यह आगे से कई रंग का, जैसे नीला, भूरा, काला, हरा आदि दिखाई दे सकता है, जैसे-जैसे इसके नीचे के टिशूज का रंग होगा। पारदर्शक स्वच्छमण्डल श्वेतपटल से उठता हुआ आगे की तरफ थोड़ा उभरा हुआ होता है, जैसे घड़ी के ऊपर शीशा। कार्निया का मुख्य कार्य है कि यह प्रकाश की किरणों को आँख के भीतर पहुँचाता है तथा रेटिना (Retina) के ऊपर किरणों को केन्द्रित करता है।

कार्निया लेंस की तरह मुड़ा हुआ होता है। इसकी पावर +42 डायप्टर (Dioptre) होती है। आँख की कुल आवश्यकता +60 डायप्टर होती है, जिसमें से +42 मात्र कार्निया ही प्रदान करता है।

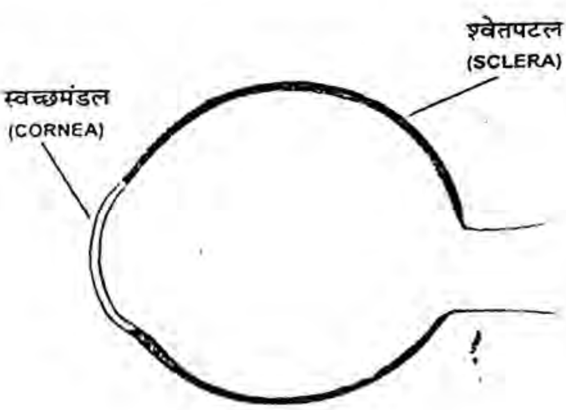

पहली परत

(Figure-1)

दूसरी परत स्कलेरा कार्निया के अन्दर यूविया (Uvea) है। पीछे से आगे इसके तीन भाग हैं-- (1) कायरायड (Choroid), (2) सिलियरी बॉडी (Ciliary Body) तथा (3) आयरिस (Iris), (Figure-2) कायरायड की परत में रक्तवाहिनी नाड़ियां और काले पिगमैंट होते हैं। इसका कार्य पूरी आँख को रक्त देना है और जो पिगमैंट्स हैं वे अनावश्यक रोशनी की किरणों को फैलने से रोकते हैं और ये चौंधाने वाली रोशनी (ग्लेयर) को रोकते हैं। कायरायड पूरी स्कलेरा को अन्दर से ढकता है; सिवाय आगे 5 मिलीमीटर के। आगे का 5 मिलीमीटर सिलियरी बॉडी से ढका होता है। यह त्रिकोणीय है और यह मांसपेशियों एवं ग्रन्थियों से (मसल्स एवं ग्लैण्डस्) से बना होता है। ये मसल्स लेंस से जुड़ी होती हैं तथा लेंस की पावर को बदलने में सहायक होती हैं, जैसे दूर और नजदीक का फासला होने पर पावर बदल जाती है। ग्लैण्डस् से (1) स्वच्छ द्रव्य (एक्वुअस ह्यूमर) बनता है, जो आँख का दाब (प्रैशर) सीमित रखता है। (2) ये लेंस तथा कार्निया को पोषण देते हैं। आइरिस या आँख का उपतारा कार्निया के एकदम पीछे होता है। यह चारों तरफ से पर्दे से 360 डिग्री तक घिरा है; सिवाय एक छोटे से छिद्र के, जिसे आँख की पुतली (Pupil) कहते हैं। कार्निया के पारदर्शी होने के कारण हम पीछे केआइरिस को देख सकते हैं और इसी के रंग से आँख का रंग कहा जाता है।

आँख के तारे का आकार आवश्यकतानुसार घटता-बढ़ता रहता है। यह काम पुतली की दो मांसपेशियां करती हैं। इसमें से एक सिकुड़कर तारे को छोटा करती है तो दूसरी उसे फैलाती है। किस समय हम कितनी रोशनी में काम कर रहे हैं, उस हिसाब से ही पुतली को ये मांसपेशियां तारे का आकार तय करती हैं। तेज रोशनी में तारे को छोटा कर देती हैं और कम रोशनी में उसे फैला देती हैं। इससे नपा-तुला प्रकाश ही आँख के भीतर जा पाता है। यह सब कैमरे की 'एपर्चर सैटिंग' जैसे होती हैं। कुछ दवाएं आँख के तारे में असामान्य फैलाव या सिकुड़न ला सकती हैं। तारे का फैलाव तारा-विस्फारक दवा डालकर किया जाता है। इससे पूरा पर्दा दिखने लगता है, जिससे विस्तृत जाँच की जा सकती है और रोग की सही जानकारी मिल जाती है।

पुतली के पीछे एक गोल पारदर्शी लेंस होता है। यह शक्ल से बाइकान्वेक्स होता है। इसका काम स्वच्छमण्डल और आँख के तारे से होकर आई प्रकाश किरणों को पर्दे पर केन्द्रित करना है। इसकी पावर +18 dioptre है, जो कार्निया के +42 dioptre से मिलकर +60 dioptre बन जाती है। इस लेंस का आकार आवश्यकतानुसार ढल जाता है। यह काम उससे सिलियरी तंतुपेशियां कराती हैं। जब पास की चीजें देखनी हों तो लेंस कुछ मोटा और दूर की चीजें देखनी हों तो लेंस पतला हो जाता

हैं। लेंस का यह लचीलापन हमें दूर व पास-- दोनों दूरियों पर देखने में सहायता करता है। लेंस का यह लचीलापन उम्र बढ़ने के साथ-साथ कम होता जाता है और इससे हमारी नजदीक की निगाह पर भी असर पड़ता है। चालीस वर्ष की उम्र के बाद यह विशेषतया प्रकट होने लगता है, इसलिए पढ़ने के चश्मे की आवश्यकता पड़ जाती है।

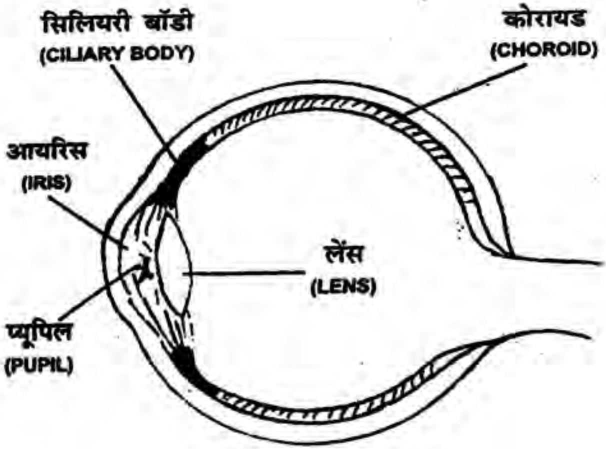

दूसरी परत

(Figure-2)

तीसरी परत आँख का पर्दा अर्थात् रेटिना है। **(Figure-3)** आँख का यह सबसे अंदरूनी और संवेदमशील भाग है। इसके एक वर्ग इंच से भी छोटे क्षेत्र में 13.7 करोड़ संवेदी कोशिकाएं पाई जाती हैं। इनमें से 13 करोड़ शलाकाएं (राड्स) होती हैं, जो काले और सफेद का अन्तर करती हैं तथा 70 लाख शंकु (कोन) होते हैं, जो रंगों की पहचान करते हैं।

एक नस हर शलाका और शंकु से निकलती है और फिर सब नसें वापिस आकर एक जगह इकट्ठी होती हैं, जिसे 'औप्टिक नर्व' (Optic Nerve) या 'क्रेनियल नर्व' कहते हैं। एक औप्टिक नर्व हर आँख से निकलकर वापिस दिमाग के ओसीपिटल लोब पहुँचती है।

शलाकाएं पर्दे के हर हिस्से में फैली होती हैं। रात के समय यदि जुगनू भी आँख के आगे से गुजर जाए तो भीतर जैविक प्रक्रियाओं का हड़कंप-सा मच जाता है। सबसे पहले तो शलाकाओं में उपस्थित रंग-द्रव्य रॉड्स में फ़ोटो रासायनिक परिवर्तन होते हैं। वह अपना रंग छोड़ देता है और रंगहीन विटामिन 'ए' में तबदील हो जाता है। इसी से बहुत बारीक विद्युत तरंगें उपजती हैं, जो पर्दे की तंत्रकीय कोशिकाओं से दृष्टि-तंत्रिका और फिर दृष्टि-तंत्रिका से संवाहित होकर मस्तिष्क के दृष्टि सम्बन्धी क्षेत्र में पहुँच जाती हैं। इन तरंगों की रफ्तार 300 मील प्रति घण्टा होती है। मस्तिष्क में स्थित दृष्टि-केन्द्र इन तरंगों का तुरन्त विश्लेषण करके सामने की घटना का ब्यौरा प्रस्तुत कर देता है। इस सारी प्रक्रिया में केवल .002 सैकेण्ड लगते हैं।

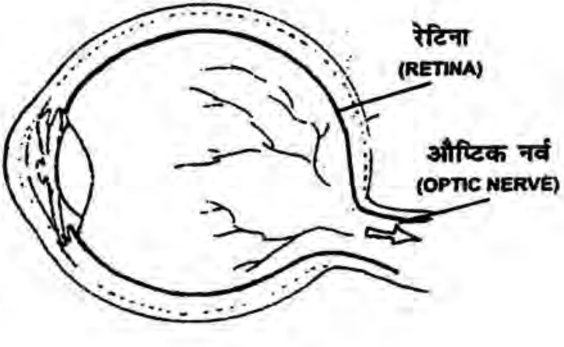

तीसरी परत

(Figure-3)

पूरा रेटिना देखने का कार्य नहीं करता। रेटिना का केवल एक छोटा-सा हिस्सा ही देखने का कार्य करता है, जो कि केवल 2-3 मिलीमीटर का होता है और जहाँ सारी रोशनी केन्द्रित होती है, इसे 'फ़ोबिया सेंट्रेलिस' कहा जाता है। यही पर्दे का सबसे संवेदनशील भाग है। इसी से मुख्यतः हम रंगों की पहचान कर पाते हैं और बारीक काम कर लेते हैं। लेकिन शंकु रंगों की पहचान कैसे करते हैं? इस विषय में अभी पूरी तरह ज्ञान (शोध) नहीं हो पाया। कहा जाता है कि शंकु में तीन प्रकार के रंग द्रव्य होते हैं--लाल, हरा और नीला। इन्हीं रंगों के

जोड़-तोड़ का हिसाब हमारे मस्तिष्क को रंगों का सही बोध कराता है, परन्तु कुछ लोग जन्म से ही 'कलर ब्लाइंड' होते हैं, वे एक या अधिक रंगों को पहचानने में असमर्थ होते हैं। रंग-अंधता का यह विकार वंशानुगत होता है तथा पुरुषों में अधिकतर पाया जाता है। शंकुओं की विशेष बात यह है कि वे कम प्रकाश में काम नहीं करते, इसलिए कम प्रकाश में रंगों को पहचान पाना सम्भव नहीं होता और चीजें भूरी दिखाई देती हैं। ऐसे समय में हम शलाकाओं द्वारा ही देखते हैं।

लेंस और पर्दे के बीच की जगह में भी एक द्रव्य पदार्थ पाया जाता है, जो जैली की तरह होता है। यह 'विट्रिअस' है और यह पारदर्शी होता है। नेत्रगोलक को ऊपर-नीचे, दायें-बायें घुमाने के लिए कुदरत ने हमें छः नेत्र मांसपेशियां भी दी हैं। एक दिन में आँख लगभग एक लाख बार हिलती-डुलती है। इसके लिए इन्हें इतनी कसरत करनी पड़ती है कि उतने में तो टांग की मांसपेशियां 50 मील की दूरी तय कर लें। छः मांसपेशियाँ इस प्रकार हैं:

(1) सुपीरियर रेक्टस (Superior Rectus)- आँख को ऊपर की ओर घुमाना।

(2) इनफीरियर रेक्टस (Inferior Rectus)- आँख को नीचे की ओर घुमाना।

(3) मीडियल रेक्टस (Medial Rectus)- आँख को भीतर अर्थात् नाक की ओर घुमाना।

(4) लैटरल रेक्टस (Leteral Rectus)- आँख को बाहर अर्थात् कान की ओर घुमाना।

(5) सुपीरियर ऑबलीक् (Superior Obllque)- आँख को बाहर और नीचे घुमाना।

(6) इनफीरियर ऑबलीक् (Inferior Oblique)- आँख को ऊपर और बाहर घुमाना।

दृष्टिबाधा के कारण:

यदि आँख की बनावट में कोई कमी रह जाए या किसी हिस्से में बीमारी शुरू हो जाए अथवा आँख की कार्यक्षमता में त्रुटि आ जाए तो दृष्टि सही नहीं रहती, यही 'दृष्टिबाधा' है। इसके अनेक कारणों में से हम कुछ मुख्य कारणों की ही चर्चा करेंगे।

सबसे पहले हम यह समझ लें कि सामान्य दृष्टि किसे कहते हैं? नेत्र-विशेषज्ञ के अनुसार सामान्य दृष्टि वह है, जब व्यक्ति नेत्र जाँच के समय एक चार्ट पर अंकित अक्षरों की पंक्तियों को निर्धारित मापदण्ड के अनुसार पढ़ ले। यह चार्ट छः मीटर की दूरी पर रखा होता है। इसमें सात पंक्तियाँ होती हैं, जिस पर हर पंक्ति में कुछ अक्षर अंकित होते हैं। सबसे ऊपर का बड़ा अक्षर 6/60 की दृष्टि दर्शाता हैं तथा सबसे नीचे की पंक्ति का अक्षर 6/6 की दृष्टि दर्शाता है और यही 'सामान्य दृष्टि' है। यदि वह 6/9 से कम अर्थात् 6/12 या उससे कम तक पढ़ता है तो वह सामान्य से कमजोर दृष्टि है, परन्तु 6/60 से बेहतर है। जब व्यक्ति की 6/60 से कम दृष्टि हो तो उसे 'दृष्टिहीन' कहा जाता है।

'इकानॉमिक दृष्टिहीनता' (Economic Blindness) उसे कहते हैं, जब बेहतर/आँख में व्यक्ति की दृष्टि 6/60 से कम हो और वह व्यक्ति दृष्टि के प्रयोग से अपना व्यवसाय करने में असमर्थ हो।

'सामाजिक दृष्टिहीनता' (Social Blindness) उसे कहते हैं, जब बेहतर आँख में व्यक्ति की दृष्टि 3/60 से भी कम हो और वह व्यक्ति बिना किसी और की सहायता के किसी भी अपरिचित जगह पर जाने में असमर्थ है।

'पूर्ण दृष्टिहीनता' (Total Blindness) उसे कहते हैं, जब बेहतर आँख में दृष्टि 1/60 या उससे कम हो। यह व्यक्ति दो या तीन फुट की दूरी तक ही देख सकता है।

विश्व में अंधेपन के पाँच प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं:-

(1) सफेद मोतियाबिंद।

(2) काला मोतियाबिंद।

(3) रोहे या कुकरे।

(4) विटामिन 'ए' की कमी।

(5) औनकोसरकेएसिस (Onchocerciasis)।

विश्व स्वास्थ्य संगठन (W.H.O) एवं एन.पी.सी.बी. (N.P.C.B) ने मिलकर 1986-89 में भारत में एक अध्ययन किया, जिसके अनुसार भारत में 120 लाख व्यक्ति दृष्टिहीन हैं और दृष्टिहीनता का मापदण्ड उन्होंने बेहतर आँख में 6/60 से कम दृष्टि लिया है। इस अध्ययन के अनुसार भारत में दृष्टिहीनता के प्रमुख कारण प्रतिशततानुसार इस प्रकार हैं:

क्रम	कारण	प्रतिशत
1.	सफेद मोतियाबिंद	81
2.	रोहे कुकरे	0.2
3.	स्वच्छपरांधता	3
4.	विटामिन 'ए' की कमी	0.04
5.	दृष्टि-विकार	7
6.	काला मोतिया	2
7.	अन्य कारण	6.76

वैसे तो भगवान की सृष्टि में हर रचना अद्‌भुत एवं अपूर्व है, परन्तु आँख की रचना में उसे ऐसी क्षमता दी है जो किसी और अंग में नहीं। एक क्षण में आकाश की ओर तथा दूसरे ही क्षण धरती पर छोटी-से-छोटी वस्तु देखने में आँख का सक्षम होना प्रकृति की सबसे अनूठी देन है।

वास्तव में आँख में जो अद्‌भुत फोकसीय प्रणाली है, उसी से यह चमत्कार सम्भव होता है। आँख का आकार, लम्बाई, उसके अंगों की स्थिति और उनका वर्तन अंक (रिफ्रेक्टिव इंडेक्स) कुछ ऐसे बने हैं कि आँख दूर एवं पास की वस्तु आसानी से साफ-साफ देख सकती है। दूर की चीजों को देखने के लिए स्वच्छमण्डल का उभार कुछ ऐसा होता है कि दूर से आ रही प्रकाश किरणों को एक बिन्दु के रूप में आँख के पर्दे पर केन्द्रित कर देता है और पास की चीजों को देखने के लिए भीतर स्थित लेंस अपना कार्य करता है। वह अपना आकार बदलने की क्षमता के कारण उसकी गोलाई और वक्रता में परिवर्तन ले आता है, जिसके कारण आँख सामने की छोटी-से-छोटी वस्तु, जैसे किताब के अक्षर भी साफ पढ़ लेती है।

दृष्टि के विकार : यह दृष्टिबाधा का प्रमुख कारण है। जीवन में कई बार हर चीज सामान्य नहीं होती। यदि आँख की बनावट में कोई कमी रह जाए तो दृष्टि में भी कई विकार आ जाते हैं। बनावट की कमियाँ इस प्रकार से हो सकती हैं-- 1. आँख के गोले की लम्बाई (भीतरी गहराई), 2. स्वच्छमण्डल या लेंस की वक्रता तथा 3. आँख के किसी भाग का वर्तन अंक असामान्य होना या लेंस के स्थान का आगे-पीछे होना। इनमें से कोई भी कमी हो तो दृष्टि असामान्य हो जाती है-- या तो पास की या दूर की या फिर पास और दूर दोनों की नज़र कमजोर हो जाती है। उम्र का भी दृष्टि पर प्रभाव पड़ता है। जन्म के समय आँख

की लम्बाई कम होती है और आँख का पर्दा पूरी तरह विकसित नहीं होता, फिर जैसे-जैसे हम बढ़ते हैं वैसे-वैसे उसकी लम्बाई बढ़ती जाती है और चार-पाँच वर्ष की उम्र तक लगभग 78 प्रतिशत तक वृद्धि हो जाती है और इस आयु तक दृष्टि लगभग सामान्य हो जाती है। वैसे यह विकास प्रक्रिया किशोर अवस्था तक जारी रहती है, लेकिन यह विकास प्रक्रिया हर व्यक्ति की आँख में कई बार सामान्य नहीं हो पाती--किसी की आँख की लम्बाई कम रह जाती है तो किसी की ज्यादा--केवल एक -दो मिलीमीटर कम-ज्यादा होने से उम्र भर के लिए आँखें कमजोर हो जाती हैं। यह छोटा-सा अवगुण ही दृष्टि दुर्बलता के अधिकांश मामलों में रोग का कारण बन जाता है। वास्तव में आँख की लम्बाई हमारे जीन्स तय करते हैं, इसलिए यह अवगुण हमें विरासत में ही मिलता है।

आँख यदि लम्बी हो तो दूर से आ रही प्रकाश किरणें आँख के पर्दे तक पहुँचने से पहले ही अपना बिम्ब बना लेती हैं, इसी से दूर की आकृतियाँ धुंधली नज़र आती हैं। यही मायोपिया है। (Figure-4) यह दृष्टि दुर्बलता का आम विकार है, लेकिन इसमें पास की चीजें ठीक दिखाई देती हैं, इसलिए मायोपिक व्यक्ति को 'निकट-दृष्टीय' (नियर-साइटिड) भी कहा जाता है। मायोपिया के लक्षण प्रायः 8-10 वर्ष की उम्र में प्रकट होते हैं। समझदार माता-पिता एवं सजग अध्यापक इस विकार का पता लगाने में बहुत योगदान दे सकते हैं। स्कूल में बच्चे को ब्लैकबोर्ड यदि ठीक से दिखाई न दे, यदि किताब को आँखों के बहुत पास ले जाकर पढ़ता हो तो अध्यापक की भूमिका यही है कि वह बच्चे के माता-पिता को सूचित कर दे। घर में टेलीविज़न देखने के लिए यदि बच्चा बहुत नजदीक बैठ कर देखे, खेलने के लिए खुले मैदान के खेलों में रुचि कम होने लगे या दूर की वस्तुओं को आँख भींचकर देखे तो माता-पिता को समझ लेना चाहिए कि कहीं दृष्टि में कोई कमी है-- वैसे इसमें घबराने वाली बात नहीं है। इसका माइनस (-) कानकेव लेंस से इलाज किया जा सकता है। (Figure-5) इन लेंसेज का उपयोग ऐनक के द्वारा भी हो सकता है और यदि चाहें तो कॉन्टेक्ट लेंस भी लग सकते हैं।

आँख यदि छोटी है तो यह विकार हाइपरमेट्रोपिया है। (Figure-6) इसमें न तो पास की चीजें साफ दिखाई देती हैं और न दूरी की। छोटी उम्र में इसका पता नहीं चलता, लेकिन बारीक काम करने में निगाह पर जोर पड़ता है, इसलिए हाइपरमेट्रोपिक व्यक्ति को 'दूर-दृष्टीय' (फॉर-साइटिड) भी कहते हैं। ऐसा व्यक्ति जब नजरें गड़ाकर कार्य करता है तो सिलियरी नेत्रपेशी को तनाव में रहकर क्रियाशील होना पड़ता है, ताकि उससे बंधे अपने प्राकृतिक लेंस का आकार आवश्यकतानुसार बना रहे। इसके कारण आँख में तनाव के लक्षण दृष्टिगत होते हैं और बहुत परेशानी होती है।

कई बार कमजोर नजर भी आँख में भेंगापन ला सकती है। हाइपरमेट्रोपिया में दुर्बल आँख भीतर की तरफ धंसने लगती है। इसे 'कन्वर्जेंट स्क्विन्ट' कहते हैं। इसके विपरीत मायोपिया के होते यदि भेंगापन आए तो उसे 'डायवर्जेंट स्क्विन्ट' कहा जाता है। इसमें आँख का भटकाव भीतर के बजाय बाहर की तरफ होता है।

इस हाइपरमेट्रोपिया का इलाज + या कान्वैक्स लेंसेज से होता है। (Figure-7) इन लेंसेज को भी ऐनक के शीशे में लगाएं और चाहें तो कान्टेक्ट लेंस लगा सकते हैं।

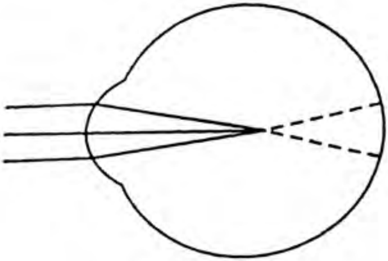

मायोपिया (MYOPIA)

(Figure-4)

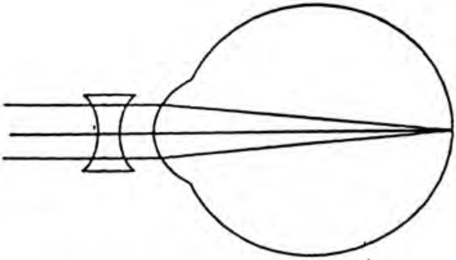

मायोपिया का कान्केव लेंस द्वारा उपचार

(Figure-5)

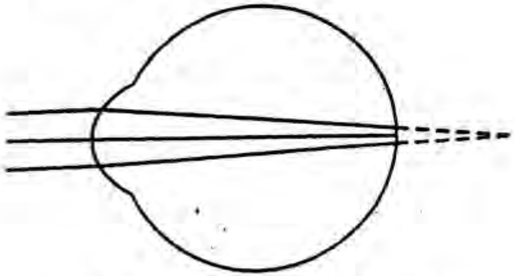

हाइपरमेट्रोपिया (HYPERMETROPIA)

(Figure-6)

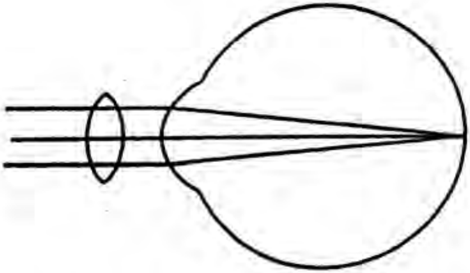

हाइपरमेट्रोपिया का कान्वैक्स लेंस द्वारा उपचार

(Figure-7)

दृष्टि दुर्बलता के ये दोनों विकार अन्य कारणों से भी उत्पन्न हो सकते हैं। कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं, जिनकी आँख के स्वच्छमण्डल का उभार न केवल कम-ज्यादा होता है बल्कि उनकी सतह भी एक समान नहीं होती--एक रेखांश में उसकी वक्रता कुछ होती है तो दूसरे रेखांश में कुछ और, फलतः प्रकाश किरणें आँख के भीतर किसी भी स्थान पर फोकस (एक बिन्दु) नहीं हो पातीं। यही 'ऐस्टिग्मेटिज्म' (Astigmatism) है। ऐस्टिग्मेटिज्म का उपचार भी हो सकता है। यह सिलिंड्रीकल लेंसेज द्वारा ठीक किया जा सकता है। इन लेंसेज के एक अक्षरेखा में पावर होती है और दूसरे हिस्से में नहीं होती।

एक और दृष्टि-विकार, जिसे 'प्रेसबायोपिया' कहते हैं, इसका आयु बढ़ने के साथ अटूट सम्बन्ध है। उम्र के बढ़ने के साथ लेंस का लचीलापन घटता जाता है, जिससे उसकी समंजन-क्षमता भी कमजोर पड़ती जाती है। 40 की उम्र में अधिकतर लोगों को चश्मे के बिना पढ़ने में कठिनाई होने लगती है। निगाह का बारीक काम करना, जैसे सुई में धागा पिरोना मुश्किल हो जाता है। इसका इलाज भी पढ़ने वाले चश्मे लगाकर किया जाता है। शीशों की पावर आयु के हिसाब से बदलती रहती है, जैसे 40 वर्ष के व्यक्ति को +0.75 डायप्टर और 60 वर्ष की आयु में +3.0 डायप्टर हो सकती है और यदि दूर की नजर भी कमजोर हो तो ऐसे व्यक्ति को बाएफोकल चश्मे की आवश्यकता होती है। ऐसे में शीशे का ऊपरी भाग दूर की नजर के लिए और निचला भाग पढ़ने के काम आता है। शुरू में इस चश्मे के साथ परेशानी हो सकती है, जैसे सीढ़ियाँ उतरते समय, लेकिन धीरे-धीरे गर्दन नीचे करके देखने की आदत हो जाती है।

दूर की दृष्टि की जाँच का आम तथा सरल तरीका स्नेलेन चार्ट पढ़वाना है। यह चार्ट छः मीटर की दूरी से पढ़ना होता है। इसमें लिखे अक्षरों या आकृतियों को पहले एक आँख से फिर दूसरी आँख से पढ़वाया जाता है। कोई किस पंक्ति तक ठीक-ठीक पढ़ पाता है, इससे पता चलता है कि उसकी दूर की नजर कैसी है। इसी प्रकार पास की नजर जाँचने के लिए भी कुछ विशेष परीक्षण कार्ड बने हुए हैं, जिन पर अलग-अलग आकार में पंक्तियाँ छपी होती हैं, इससे पता चलता है कि नजर कितनी कमजोर है अर्थात् 'रिफ्रैक्टिव एरर' क्या है और उसे किस नम्बर के शीशे से दूर किया जा सकता है।

इसके जाँच की दो विधियाँ हैं। आम विधि तो 'रेटिनोस्कोपी' है। इसमें कमरे में अंधेरा करके एक मीटर की दूरी से इस यंत्र द्वारा जाँच की जाती है। इस यंत्र द्वारा बिंबित प्रकाश से आँख में किस प्रकार का अक्स बनता है तथा यंत्र को दाएं-बाएं हिलाने पर छाया किस दिशा में चलती दिखाई देती है, इससे पता चलता है कि विकार किस किस्म का है, फिर आँख पर अलग-अलग नम्बर का लेंस लगाकर देख लिया जाता है कि किस नम्बर के शीशे से छाया सामान्य होती है। दूसरी विधि से जाँच कम्प्यूटरयुक्त नजर जाँचने वाली मशीन के द्वारा भी की जा सकती है। लोगों में यह गलत धारणा है कि यह दूसरी विधि, जो 'ऑटोमेटेड रिफ्रैक्शन' तकनीक है, वह रेटिनोस्कोपी से बेहतर है। मरीज किस नम्बर के शीशे से साफ देख पाता है, इस जाँच के बाद ही दोनों विधियों में चश्मे का नम्बर दिया जाता है। इसके लिए परीक्षण फ्रेम का प्रयोग होता है, जिस पर अलग-अलग नम्बर के शीशे लगाकर मरीज से पूछा जाता है कि उसे किस शीशे से सबसे अच्छा दिखाई देता है।

भेंगापन : यह दृष्टिबाधा का दूसरा प्रमुख कारण है। **(Figure-8)** कुछ अध्ययनों के अनुसार, किसी भी जनसंख्या में भेंगेपन की तादाद दो से चार प्रतिशत है। जब किसी व्यक्ति की दोनों आँखों की नजर एक जगह या दिशा में समानान्तर नहीं होती, उसे 'भेंगापन' कहा जाता है। एक सामान्य व्यक्ति जिस किसी चीज को देखना चाहता है, उसकी दोनों आँखें उसी दिशा में घूम जाती हैं, अर्थात् दोनों आँखें सदा एक-दूसरे के समानान्तर रहती हैं, चाहे वे किसी भी दिशा में क्यों न देखें। इसी को हम 'द्विनेत्रीय दृष्टि' (बायनाक्यूलर विजन) कहते हैं, जो हमें हर चीज का त्रिआयामी बोध कराती है।

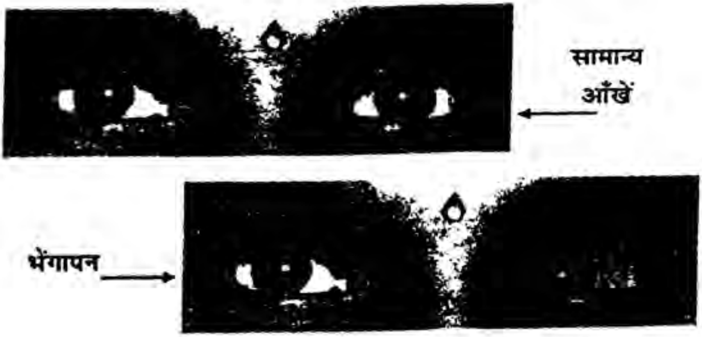

(Figure-8)

लेकिन कुछ लोगों में दोनों आँखों का आपसी तालमेल नहीं होता, ऐसे में जो स्वस्थ आँख है, वह तो ठीक अपने लक्ष्य की ओर देखती है, लेकिन दूसरी आँख किसी दूसरी दिशा की ओर चली जाती है, यही आँख का भेंगापन है, जिसे स्क्विन्ट, टेरपन और तिरपटपन भी कहते हैं। भेंगी आँख किसी भी दिशा में भटक सकती है--भीतर की तरफ, बाहर की तरफ, ऊपर या नीचे की तरफ--हर मामले में भेंगेपन की तीव्रता भी अलग-अलग होती है। किसी में दोनों आँखों के कोण का अन्तर 5 डिग्री से भी कम होता है तो किसी में 45 डिग्री या इससे ज्यादा। तीन महीने से कम उम्र के बच्चों को इस रोग में नहीं गिना जाता, क्योंकि बच्चे की आँख की फोकसीय प्रणाली इस उम्र में ही आकर स्थापित होती है। लेकिन यदि किसी बच्चे की आँख में 6 महीने का हो जाने पर भी टेर हो तो उसे नेत्रविशेषज्ञ के पास अवश्य ले जाना चाहिए। बच्चा द्विनेत्रीय दृष्टि तभी प्राप्त कर सकता है, यदि उसका उपचार 3 वर्ष की उम्र से पहले ही शुरू हो जाए। यदि यह समय

हाथ से निकल जाए तो भी 6 वर्ष की आयु से पहले-पहले अगर इलाज शुरू हो जाए तो द्विनेत्रीय दृष्टि न सही, आँख की रोशनी तो बच सकती है। वैज्ञानिक तौर पर देखें तो भेंगापन दो प्रकार का होता है-- अधरंगी तथा सहवर्ती। दोनों के कारण बिल्कुल अलग-अलग हैं। अधरंगी भेंगापन (पैरालिटिक स्क्विन्ट) नेत्रगोलक घुमाने वाली 6 में से किसी एक या अधिक नेत्र मांसपेशी के काम न कर पाने से होता है। ऐसी स्थिति के कई कारण हैं:

1. नेत्र मांसपेशी की तंत्रिका काम करना बंद कर दे।
2. तंत्रिका का मस्तिष्क रिले केन्द्र काम न करे।
3. तंत्रिका या नेत्र मांसपेशी कोई चोट खा बैठे।

इन सभी स्थितियों में नेत्र मांसपेशी शक्तिहीन हो जाती है और नेत्रगोलक उस दिशा में घूमने के योग्य नहीं रहता, जिस दिशा में वह नेत्र मांसपेशी उसे स्वस्थ होते हुए ले जाती है। इसके मुख्य कारण हैं--मधुमेह रोग, सिर की चोट, उच्च रक्तचाप और ब्रेन ट्यूमर।

अधरंगी भेंगेपन में रोगी को एक चीज के दो-दो बिम्ब दिखाई देते हैं, इससे रोगी की गर्दन की मुद्रा भी अजीब हो जाती है। वह सिर एक तरफ झुकाकर देखता है। उसे अपने आस-पास रखी चीजों का सही अनुमान नहीं होता।

अधरंगी भेंगेपन के इलाज के लिए ज्यादा कुछ नहीं किया जा सकता, लेकिन कुछ मामलों में आँखों के व्यायाम से थोड़ा-बहुत लाभ हो सकता है। जिन रोगियों में मांसपेशी पर लकवे का केवल आंशिक असर हो तो विकार में स्थायित्व आ जाने के बाद दोष को सुधारने के लिए नेत्र मांसपेशियों का ऑपरेशन किया जाता है। स्वस्थ आँख की भी वही नेत्र मांसपेशी सिमटा दी जाती है, ताकि दोनों आँखों में मेल बैठ सके।

सहवर्ती भेंगापन (कॉनकॉमीटेंट स्क्विन्ट) इससे बिल्कुल अलग होता है। इसमें छहों नेत्र मांसपेशियाँ, उनकी तंत्रिकाएं और तंत्रिकाओं के मस्तिष्क में स्थित रिले केन्द्र बिल्कुल सामान्य होते हैं, इसलिए नेत्रगोलक सक्रिय रहते हैं, तब भी दोनों आँखों का ध्रुव मेल नहीं खाता और फलस्वरूप दोनों आँखें अलग-अलग बिन्दु पर केन्द्रित रहती हैं और दोनों का दिशा-अन्तर हर दिशा में एक जैसा रहता है, यानी आँखों के बीच हमेशा एक निश्चित कोण का ही भेद रहता है।

सहवर्ती भेंगेपन के अधिकतर मामले बचपन से ही शुरू होते हैं। इसमें रोगी को कोई विशेष कठिनाई महसूस नहीं होती, हालांकि दृष्टि द्विनेत्रीय नहीं रहती।

यदि समय पर ध्यान न दिया जाए तो भेंगी आँख की नजर धीरे-धीरे कम होती जाती है और एक उम्र के पश्चात् वह बिल्कुल अंधी हो जाती है। भेंगापन होने से बच्चा द्विनेत्रीय दृष्टि का सुख नहीं भोग सकता। कुछ विशेष व्यवसाय करने के योग्य भी नहीं रहता और एक अच्छा खिलाड़ी बनने की तो कभी सोच भी नहीं सकता।

सहवर्ती भेंगेपन का उपचार सफल हो सकता है, यदि रोगी समय से नेत्र विशेषज्ञ के पास चला जाए। इलाज के लिए कई कदम उठाए जाते हैं। आँखों की जाँच के बाद चश्मा दिया जाता है, जिसे हर समय पहनना होता है। कुछ माता-पिता को ऐसा लगता है कि छोटा बच्चा चश्मा नहीं पहन पाएगा, पर यदि उन्हें पता लग जाए कि चश्मा पहनना कितना जरूरी है तो वे दो वर्ष के बच्चे को भी चश्मा पहनने के लिए राजी कर सकते हैं। कुछ मामलों में तो केवल चश्मा पहनने से ही भेंगापन सुधर जाता है। इन बच्चों को हर 6 महीने बाद आँख की जाँच कराते रहना चाहिए, इससे चश्मे के नम्बर को यदि बदलना हो तो देर नहीं होती। यह सिलसिला 8 वर्ष की उम्र तक बनाए रखना पड़ता है। जिन बच्चों की भेंगी आँख सुस्त हो चुकी होती है, उसे फिर से जगाने के लिए स्वस्थ आँख पूरी तरह परदे से ढक दी जाती है, इससे रोगी आँख फिर से काम करने के लिए विवश हो जाती है। कुछ बच्चों में स्वस्थ आँख की सक्रियता रोकने के लिए एट्रोपिन दवा डाल दी जाती है। जब कमजोर आँख काम करने लगती है तो दोनों आँखों में आपसी तालमेल बैठाने के लिए विशेष नेत्र व्यायाम (ऑर्थापटिक एक्सरसाइज) कराए जाते हैं। इससे 10 डिग्री से कम का तिरछापन ही दूर किया जा सकता है। चश्मा लगाने के बाद भी भेंगेपन का कोण 10 डिग्री से अधिक हो तो ऑपरेशन जरूरी हो जाता है। इसके बाद भी नेत्र व्यायाम और चश्मे की जरूरत बनी रहती है। इसके लिए न केवल भेंगी आँख अपितु स्वस्थ आँख को भी शल्य-सुधार की आवश्यकता हो सकती है। कुछ मामलों में ऑपरेशन दो या तीन चरणों में पूरा होता है।

भेंगापन यदि बहुत पुराना पड़ जाए और इलाज की उम्र निकल जाए, तब भी सुन्दरता के लिए ऑपरेशन द्वारा भेंगी आँख को सीधा किया जा सकता है। इससे रोगी आँख की नजर तो वापिस नहीं आती, लेकिन दोष छिप जाता है। यह ऑपरेशन किसी भी उम्र में हो सकता है।

वैसे तो हर मामले में भेंगेपन की तीक्ष्णता अलग-अलग होती है, लेकिन कुछ मामलों में तो वह छिपा रहता है और उसका पता सिर्फ नेत्रीय जाँच से ही होता है। ऐसे रोगी प्रायः आँखों की मांसपेशियों में तनाव और सिरदर्द की शिकायत

करते हैं। ऐसे मामलों में भेंगापन तब दिखाई देता है, जब रोगी कहीं दूर निगाह टिकाता है अथवा अपने ख्यालों में खोया हो, बहुत थका हुआ हो या किसी लम्बी बीमारी, जैसे खसरा, तेज बुखार या छोटी माता से उठा हो अथवा किसी एक दिशा में देखे तब।

स्वच्छपरांधता (Corneal Blindness): स्वच्छमण्डल आँख का प्रवेश द्वार है। प्रकाश किरणें इससे गुजरकर ही आँख के भीतर पहुँचती हैं और पर्दे पर अपनी प्रतिछवि बनाती हैं। वैसे स्वच्छमण्डल का पारदर्शी बने रहना सामान्य दृष्टि के लिए बुनियादी आवश्यकता है, पर यदि स्वच्छमण्डल पर सफेदी उतर आए तो आँख एकदम सूनी हो जाती है। ऐसा प्रतीत होने लगता है, जैसे किसी ने आँख के तारे के आगे धुंधला पर्दा डाल दिया हो। स्वच्छमण्डलीय पारदर्शिता नष्ट हो जाती है, जिससे आँख देख नहीं पाती, यही 'स्वच्छपरांधता' है, जो विश्व में अंधेपन का एक बड़ा कारण है। भारत में ही लाखों लोग इससे पीड़ित हैं। स्वच्छमण्डल की पारदर्शिता के नष्ट होने के कई करण हैं, जैसे चोट, रोहे, आँख के कुछ संक्रामक विकार और बच्चों में कुपोषण आदि। बड़ों में मोतियाबिंद के ऑपरेशन के बाद की एक जटिलता (एकेकिक बूलस केरेटोपैथी) से भी यह नष्ट हो सकती है। ऐसे में कोई भी ऐसी स्थिति, जो स्वच्छमण्डल को जख्मी करती है, इसके लिए जिम्मेदार हो सकती है और त्वचा का गहरा जख्म भरने पर भी अपना निशान छोड़ जाता है। ल्यूकोमा (सफेद धब्बे) को दूर करने के लिए नेत्र चिकित्सक स्वच्छमण्डल का प्रत्यारोपण (कॉर्नियल ट्रांसप्लांट) करते हैं। पुराना अपार दर्शक स्वच्छमण्डल पूरी सफाई के साथ आँख से काटकर निकाल लिया जाता है और उसकी जगह नया स्वस्थ पारदर्शक स्वच्छमण्डल आँख में सिल दिया जाता है। अक्सर लोगों में धारणा है कि प्रत्यारोपण में पूरी की पूरी आँख बदल दी जाती है, लेकिन ऐसा नहीं है--न तो यह जरूरी है और न ही तकनीकी तौर पर सम्भव। प्रत्यारोपण के लिए स्वस्थ स्वच्छमण्डल किसी दानी के नेत्रों से प्राप्त किया जाता है, जो अपनी मृत्यु के बाद भी किसी के लिए मसीहा सिद्ध होता है। इस विषय में लोगों के बीच में बहुत-से अंधविश्वास फैले हुए हैं कि इससे पार्थिव शरीर विरूप हो जाता है तथा अगला जन्म खराब हो जाएगा और वे अंधे पैदा होंगे, परन्तु वास्तविकता यह है कि नेत्रदान से पार्थिव शरीर का चेहरा जरा भी नहीं बिगड़ता और चेहरे का दर्शन करने वालों को इसका बोध तक नहीं होता। नेत्रदान के लिए कोई भी व्यक्ति किसी भी उम्र में शपथपत्र भर सकता है, लेकिन उसे पूरा करने का दायित्व उसके परिजनों पर ही आता है, उनकी इच्छा व सहमति के बगैर मृतक का प्रण पूरा नहीं हो सकता, इसलिए मृत्यु से पहले अपनी इच्छा अपने परिजनों पर प्रकट कर देनी चाहिए।

नेत्रदान के अपने कुछ मूलभूत नियम हैं। मृत देह से नेत्र मृत्यु के 6 घण्टे के अन्दर निकालने जरूरी होते हैं। जैसे-जैसे समय बीतता है, देह बिगड़ती जाती है, इसलिए मृत्यु के तुरन्त बाद ही निकटतम नेत्र बैंक में सूचित करना होता है और जब तक डॉक्टर मृतक के घर नेत्र उत्सारण के लिए आए, इस दौरान घर वालों को कुछ सावधानियाँ बरतनी चाहिएं। मृतक के नेत्रों को बन्द कर देना चाहिए, शरीर को पंखे के नीचे नहीं रखना चाहिए। गर्मी के मौसम में मृतक की आँखों पर नेत्रदान होने तक ठण्डे पानी की पट्टी भी रखी जा सकती है। सर्दी के मौसम में नेत्रदान मृत्यु के 12 घण्टे तक भी हो सकता है।

नेत्रदान की भी कुछ सीमाएं हैं, जिनमें मृतक का नेत्रदान स्वीकार नहीं किया जाता। अगर किसी की मृत्यु रेबीज, एड्स, हैपिटाइटिस, रक्त कैंसर, लिम्फोसार्कोमा, विषरक्तता, सर्पदंश, मस्तिष्कीय सूजन, छुतहा बीमारी अथवा टेटनस से हो या मृत्युपूर्व आँखों में काला मोतिया, नेत्र श्लेष्मिका शोथ, रेटिनोब्लास्टोमा, स्वच्छमण्डलीय विकार अथवा आँख के अग्रभाग का ट्यूमर रहा हो तो उसकी आँखें दान में नहीं ली जातीं, इसलिए डॉक्टर को मृतक के परिवार वालों से पूछ लेना चाहिए कि मृत्यु किस कारण से हुई है।

उत्सारण के बाद नेत्र या उनसे प्राप्त किए गये स्वच्छमण्डलीय ऊतक को नेत्र बैंक में 10 दिन के लिए सुरक्षित रखा जा सकता है। देश के अधिकांश नेत्र बैंकों में इसकी बहुत सीमित सुविधाएं हैं और प्रतिरक्षक आमतौर पर उपलब्ध हैं, उनसे एक से चार दिन के भीतर स्वच्छमण्डल का इस्तेमाल करना जरूरी होता है। कोई भी व्यक्ति यदि नेत्रदान करने का इच्छुक है तो वह 1919 टेलीफोन नम्बर पर सम्पर्क कर सकता है।

सफेद मोतियाबिंद : मोतियाबिंद आँख के प्राकृतिक लेंस का धुंधलापन है। आज हम जानते हैं कि मोतियाबिंद की कई किस्में हैं। यह बच्चे, बूढ़े किसी को भी हो सकता है, परन्तु अधिकतर ऐसे मामले प्रौढ़ अवस्था में देखे जाते हैं, विशेषकर 50 वर्ष की आयु के बाद।

लेंस की पारदर्शिता घटते जाना बढ़ती उम्र की स्वाभाविक प्रक्रिया है, जैसे उम्र के बढ़ने के साथ-साथ मानव शरीर में अन्य परिवर्तन आने शुरू हो जाते हैं, जैसे बालों का सफेद होना, त्वचा से सौंदर्य कम होना, शरीर से लोच का जाते रहना इत्यादि। उम्र ढलने की प्रक्रिया के साथ मोतिया दोनों आँखों में लगभग साथ-साथ उभरता है, लेकिन इसके पकने और बढ़ने की गति अलग-अलग भी हो सकती है। आमतौर पर इनकी शुरूआत 40 से 60 वर्ष की उम्र में होती है, किन्तु किस उम्र में यह किस गति से बढ़ेगा, इसका अनुमान लगाना कठिन है. लेंस

में मोतिया पड़ने के कई कारण हैं। एक तो बढ़ती उम्र है ही, यह विरासत में भी मिल सकता है और इसके अलावा और भी स्थितियाँ हैं जो लेंस की पारदर्शिता को नष्ट करती हैं, जैसे सूर्य का प्रकाश, पराबैंगनी (अल्ट्रावायलेट) किरणें, विकिरण तथा औद्योगिक उच्चताप का लेंस पर असर। कुछ दवाएं भी, जैसे स्टीरायड या एंटीकोलिनेस्ट्रेस यदि लम्बे समय तक इस्तेमाल की जाएं तो मोतिया पैदा कर सकती हैं। इनसे बचाव थोड़ा-बहुत कर सकते हैं। यदि खान-पान में विटामिन-सी, राइबोफ्लेविन और विटामिन-ई की पूरी खुराक लेते रहें तो ये लेंस को ठीक/जवान रख सकती हैं।

कुछ शारीरिक रोग भी मोतिया को बढ़ावा देते हैं, जैसे मधुमेह (डायबिटीज), पैराथायरायड टिटेनी, मयोटानिक डिस्ट्रॉफी इत्यादि। यही संकट कुछ अन्य नेत्र विकारों के साथ भी रहता है, जो आँख के किसी हिस्से में सूजन या हानि पहुँचाने वाले परिवर्तन पैदा करके लेंस के पोषण में रुकावट पैदा करते हैं। आँख में चोट लग जाने पर लेंस धुंधला पड़ सकता है।

मोतियाबिंद बच्चों में भी पाया जाता है। यह गर्भकाल में आई अड़चनों से पैदा होता है। यदि माँ को छोटी माता (जर्मन मीजल्स) कभी हुई हो, गर्भकाल में पौष्टिक आहार की कमी हो या आंवल से रक्त-स्राव हो, तो गर्भ में स्थित शिशु की आँख के लेंस ठीक से विकसित नहीं होते। कुछ गुणसूत्रीय विकार, जैसे डाऊन सिनड्रॉम और गैलेक्टोसीमिया तथा थायरायड हार्मोन की कमी भी बचपन में मोतिया का कारण हो सकते हैं।

मोतियाबिंद के लक्षण दृष्टि सम्बन्धी होते हैं। पहले तो दृष्टि प्रक्रिया में अड़चन आने लगती है, फिर धीरे-धीरे नजर में धुंधलापन बढ़ता जाता है, फिर एक समय आता है, जब आँख देख नहीं पाती । यह रोग लेंस के भीतर धुंधले बिन्दु उपजने से शुरू होता है। ये बिन्दु प्रकाश-किरणों के मार्ग में बाधा डालते हैं तथा किरणें इन बिन्दुओं से टकराकर इधर-उधर बिखर जाती हैं, जिससे दृष्टिभ्रम पैदा होते हैं, जैसे एक ही चीज दो-तीन दिखती हैं, बल्ब के आस-पास इन्द्रधनुष दिखने लग सकता है या कुछ खास रंग गहरे या हल्के दिखने लग सकते हैं।

मोतिया यदि लेंस के बीच के हिस्से में हो तो परेशानी प्रारम्भ से ही महसूस होने लगती है, लेकिन मोतिया यदि किनारे-किनारे हो तो काफी दिनों तक दिक्कत नहीं आती। कुछ मामलों में पास की नजर बेहतर लगने लग जाती है और पढ़ने के लिए चश्मा पहनने की जरूरत नहीं रहती, लेकिन ऐसा ज्यादा दिन तक नहीं चलता। लेंस का धुंधलापन जैसे-जैसे बढ़ता है, वैसे-वैसे नजर कमजोर होती जाती है, कुछ समय बाद लेंस पूरा अपारदर्शी हो जाता है, इस स्थिति में केवल इतना

ही पता चल पाता है कि प्रकाश किस ओर से आ रहा है या फिर इतना कि कुछ फुट दूरी पर आँखें उंगलियाँ गिन पाती हैं।

मोतियाबिंद पर अभी तक कोई भी दवा प्रभावशाली सिद्ध नहीं हो पाई है। यह रोग किस गति से बढ़ेगा, यह भी निश्चित नहीं रहता। कई मामलों में तो मोतिया एक ही अवस्था में कई वर्ष निकाल देता है और इस बीच दृष्टि एक-सी बनी रहती है। यदि कोई दवा संयोगवश थोड़ी देर के लिए कारगर साबित हुई भी हो तो ऐसा नहीं हुआ कि वह स्थायी तौर पर मोतियाबिंद की गति को रोक सके।

जब तक मोतिया प्रारम्भिक अवस्था में और दृष्टि कामचलाऊ हो, तब तक ऐनक का नम्बर समय से बदलते रहना ठीक है। इस बीच लेंस का वर्तन थोड़े-थोड़े समय पर बदलता रहता है और इसलिए नम्बर में भी बदलाव आता है।

मोतिया जब दैनिक जीवनचर्या में तकलीफ देने लगे और दृष्टि इतनी भी न रहे कि काम चल सके तो व्यक्ति को किसी नेत्र विशेषज्ञ के पास जाना चाहिए तथा ऑपरेशन के विषय में सलाह लेनी चाहिए। मोतिया कब पूरी तरह पकेगा, इस बात का इन्तजार नहीं करना चाहिए, क्योंकि यह पुरानी मान्यता थी कि पकने के बाद ही मोतिया का ऑपरेशन हो सकता है, परन्तु अब ऐसा नहीं समझा जाता। ऑपरेशन कब और कितना जरूरी है, यह निर्णय तो व्यक्ति के व्यवसाय पर भी निर्भर करता है। एक सेवानिवृत्त व्यक्ति आराम से इन्तजार कर सकता है, जबकि सर्जन, लेखक, आर्टिस्ट आदि के लिए ऑपरेशन जल्दी करा लेना आवश्यक है।

आजकल ऑपरेशन के लिए कई तरह की विधियाँ अपनाई जा रही हैं। इन सब विधियों का मूल सिद्धान्त तो यही है कि धुंधले हो गये लेंस को आँख से बाहर निकालना, ताकि प्रकाश किरणें आँख के अन्दर आसानी से जा सकें और आँख फिर से देखने लग जाए, लेकिन प्राकृतिक लेंस को आँख से बाहर निकाल देने के बाद लेंस का काम अब किससे लिया जाए? आँख की फोकसीय प्रणाली कैसे सामान्य बने कि प्रकाश किरणें दृष्टि-पटल पर ठीक से छवि बना पाएं? सबसे नया तरीका मोतियाबिंद से धुंधला हुआ लेंस निकालकर उसी समय आँख में सही नम्बर का लेंस फिट कर देना है, जिसे Intra Ocular Lens 'आई.ओ.एल.' कहते हैं।

आई.ओ.एल. की सबसे बड़ी खूबी यह है कि यह बहुत-कुछ प्राकृतिक लेंस की ही तरह काम करता है। इसमें प्राकृतिक लेंस जैसा लचीलापन नहीं होता, परन्तु इतनी क्षमता होती है कि आँख दूर और पास की चीजें सामान्य ढंग से देख सके। चीजों का आकार भी ठीक दिखता है। दोनों आँखों का आपसी तालमेल

भी नहीं बिगड़ता, जिससे त्रिआयामीय दृष्टि सामान्य रहती है। अपने इन्हीं गुणों के कारण आई.ओ.एल. आज सभी सम्पन्न देशों में लोकप्रिय है।

आई.ओ.एल. लगवाने के लिए नेत्र सर्जन आँख की जाँच करके लेंस की किस्म और नम्बर का निर्णय लेता है। साधारणतया इस ऑपरेशन के लिए रोगी को बेहोशी की दवा (जनरल एनेस्थीसिया) देने की आवश्यकता नहीं पड़ती। मन शांत रहे, इस उद्देश्य से ऑपरेशन की सुबह और पहली रात प्रशांतक दवाएं दी जाती हैं। ऑपरेशन के समय ऑपरेशन क्षेत्र को सुन्न करने का टीका लगाया जाता है ताकि दर्द न हो और आँख हिले-डुले नहीं।

एक और नई तकनीक आजकल प्रचलित है, जिसे 'फ़ेको-इमल्शन' कहा जाता है। नेत्र सर्जन लेंस को निकालने से पहले उच्च फ्रीक्वेंसी की ध्वनि तरंगों द्वारा लेंस के कठोर हुए नाभिकीय को छोटे-छोटे टुकड़ों में तोड़ लेते हैं, ताकि लेंस 3 मिलीमीटर के छोटे से चीरे से ही निकाला जा सके। इस तकनीक को अपनाने का सबसे बड़ा लाभ यह है कि इसमें एक या दो टांकों की जरूरत पड़ती है और स्वच्छमण्डल से भी छेड़छाड़ नहीं करनी पड़ती। 3 मिलीमीटर का चीरा श्वेतपटल पर लगाया जाता है न कि स्वच्छमण्डल पर। इसके जरिये ही 'फ़ेको-इमल्शीफ़ाइट' उपकरण भीतर ले जाया जाता है और फिर लेंस के टुकड़ों को यंत्र द्वारा बाहर निकाल लिया जाता है।

लेकिन इस तकनीक में एक दिक्कत भी है। लगभग 30 प्रतिशत रोगियों में एक समय के बाद लेंस के पीछे का कैप्सूल, जो ऑपरेशन के समय जानबूझकर छोड़ा गया था, अपनी पारदर्शिता गंवा देता है। इस 'आफ्टर कैटरेक्ट' से दृष्टि दोबारा धूमिल हो जाती है। 'याग लेसर' को एक या दो बार प्रयोग करके कैप्सूल पर आए मोतिया को साफ कर दिया जाता है और आँख का दोबारा ऑपरेशन नहीं करना पड़ता।

नेत्र चिकित्सा के शिविर: आई.सी.एम.आर. के 1980 के एक अध्ययन के अनुसार यह तथ्य उभरकर सामने आया कि हमारे देश में अंधेपन का मुख्य कारण मोतियाबिंद है। कुल अंधे रोगियों में 80 प्रतिशत इसी रोग से पीड़ित होते हैं। अनुमान लगाया जाता है कि लगभग 75 लाख लोगों के अंधेपन का कारण परिपक्व मोतियाबिंद है। इसके अतिरिक्त लगभग 22 लाख लोग प्रतिवर्ष अपनी बढ़ती उम्र के साथ-साथ इस रोग की ओर बढ़ते जा रहे हैं।

अन्य तथ्य जैसे--

1. मोतियाबिंद एक उपचार योग्य रोग है, यानि समय पर इलाज होने से यह ठीक हो जाने वाला रोग है।

2. यह बड़ी उम्र में होता है, जबकि बूढ़े लोग अस्पताल में आने-जाने के लिए अपने बच्चों पर निर्भर रहते हैं।

3. नेत्र रोग की चिकित्सा की सुविधाएं प्राय: शहरों में ही उपलब्ध होती हैं, जबकि इस रोग के रोगी अधिकतर गाँवों में पाए जाते हैं। रोगी गाँव से शहर, जो कि 40-50 किलोमीटर की दूरी पर होते हैं, आने-जाने में कतरा जाते हैं, इसलिए वे इस रोग के उपचार की सुविधाओं से वंचित रह जाते हैं, जो कि बड़े शहरों के केन्द्रों में उपलब्ध होती हैं।

इन बातों को ध्यान में रखकर ही एक बड़ी संख्या के रोगी अपना उपचार नहीं करा पाते। इस समस्या को दूर करने के लिए एक नई नीति (स्ट्रेटेजी) अपनाई गई है, जिसे 'नेत्र शिविर' कहते हैं। इस नए तरीके के अन्तर्गत कुछ नेत्र रोग विशेषज्ञ अपने कर्मचारियों के साथ गाँव में जाकर नेत्र शिविर का आयोजन करते हैं। यह 10 दिन का होता है और इसमें 'शल्य सुविधा' (ऑपरेशन) का पूरा प्रबन्ध होता है।

नेत्र शिविर लगाने के लिए चुनाव निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखकर किया जाता है:-

1. उस गाँव के 200 किलोमीटर के अन्दर कोई बड़ा नेत्र रोग केन्द्र न हो।

2. उस गाँव में एक वर्ष के भीतर पहले कोई नेत्र शिविर आयोजित न हुआ हो।

3. किसी स्थानीय स्वयंसेवी संस्था का सौजन्य प्राप्त हो।

4. शिविर के लिए कोई पक्का भवन हो, जैसे कोई स्कूल, पंचायत घर अथवा कोई प्राथमिक चिकित्सा केन्द्र।

5. बिजली और स्वच्छ पानी की व्यवस्था पूर्ण रूप से होनी चाहिए। यदि बिजली चली जाए तो उसका विकल्प भी होना चाहिए।

6. उस भवन में 100-200 रोगियों के रहने का प्रबन्ध होना चाहिए तथा शौचालय की भी व्यवस्था होनी चाहिए।

नेत्र शिविर में 10 दिन की दिनचर्या इस प्रकार है--

1. एक से तीन दिन-- मोतियाबिंद रोगियों की जाँच होती है और ऑपरेशन से पहले की तैयारी के लिए उन्हें दाखिल किया जाता है।

2. चार से पाँच दिन-- इस बीच ऑपरेशन किया जाता है तथा पट्टी आदि बदलने का काम किया जाता है।

3. छः से दस दिन-- ऑपरेशन के बाद की देखभाल होती है तथा ओ.पी.डी. शुरू होती है, जिसमें ऑपरेशन वाले रोगी को दवाइयाँ दी जाती हैं तथा ऐनक का नम्बर दिया जाता है। दसवें दिन रोगी को छुट्टी दी जाती है तथा आवश्यक सावधानी बरतने की भी सलाह दी जाती है। जिस रोगी को ऑपरेशन के बाद भी आगे इलाज की जरूरत होती है उसे बड़े अस्पताल में जाने का निर्देश दिया जाता है।

इन नेत्र शिविरों में स्कूल के बच्चों के नेत्रों की भी जाँच होती है। ध्यान रहे कि इन शिविरों में केवल मोतियाबिंद के रोगियों के ही ऑपरेशन होते हैं। कभी-कभी आँख के छप्पर (पलक) का छोटा ऑपरेशन भी किया जाता है। काले मोतियाबिंद का भी कभी-कभी ऑपरेशन कर देते हैं, लेकिन नेत्र की कोई बड़ी बीमारी का ऑपरेशन शिविर मे नहीं होता, उसके लिए बड़े अस्पतालों में ही सुविधा उपलब्ध होती है।

काला मोतिया: आकार में छोटे-से दिखने वाले नेत्र का संसार बड़ा ही विचित्र एवं रोचक है। इसके अन्दर एक शान्त-सी झील स्थित है, जिसमें सबसे आगे पारदर्शक स्वच्छमण्डल है, बीच में पुतली और पीछे लेंस है। इस झील का स्वच्छ पानी ही 'एक्वुअस ह्यूमर' जो आँख के दाब (प्रेशर) को सीमित रखता है और आँख का गोलक खिला हुआ रहता है। इसी से आँख अपनी गोल आकृति बनाए रखती है।

एक्वुअस ह्यूमर आँख 'सिलियरी बॉडी' में बनता है और इसी से स्वच्छमण्डल और लेंस का पालन-पोषण होता है। एक्वुअस ह्यूमर आँख के पिछले हिस्से में बनता है और पुतली के रास्ते अगले कोष्ठ में प्रवेश करता है। इस कोष्ठ के किनारे कुछ निकास नलियाँ बनी होती हैं, जिनके द्वारा द्रव आँख से बाहर जाता रहता है। इस द्रव का बनना और बाहर जाते रहना साथ-साथ चलने वाली क्रियाएं हैं और इसी कारण इन दोनों में एक सन्तुलन बना रहता है और इस एक्वुअस ह्यूमर की कुल मात्रा सदा एक जैसी बनी रहती है। इससे आँख का भीतरी दाब भी एक समान रहता है, जो कि 10 से 20 मिलीमीटर मरक्यूरी के बीच होता है।

आँख के इसी भीतरी दबाव के बढ़ने से काला मोतिया होता है। यही ग्लूकोमा, सबलबाय और नीला मोतिया है। यह दाब के बढ़ने के दो कारण हो

सकते हैं या तो द्रव ज्यादा बन जाए या उसकी निकासी ठीक से न हो। अक्सर कमी निकासी में ही होती है और इसी से सन्तुलन बिगड़ जाता है।

काला मोतिया का बुरा प्रभाव आँख के सभी अवयवों पर पड़ता है, परन्तु सबसे अधिक हानि दृष्टि-तन्त्रिका की ही होती है। दाब बढ़े रहने से उसका पोषण करने वाली रक्त धमनियों में खून का दौरा घट जाता है, फलतः उसके कोमल तार एक-एक करके नष्ट होते जाते हैं, इससे तंत्रिका सूखती जाती है और दृष्टि सिमटती जाती है। कई बार शुरू में इसका पता नहीं चलतां और आँख की नजर चली जाती है।

नेत्र दृष्टि बचाने के लिए इस रोग की शुरू में ही पहचान जरूरी है। अधिकांशतः इस रोग के कोई स्पष्ट लक्षण नहीं होते, इसलिए इसका पता आँखों की विशेष डॉक्टरी जाँच से ही चल सकता है। 40 वर्ष की आयु के बाद इस रोग की दर लगभग 2 से 2.5 प्रतिशत हो जाती है, इसलिए इस उम्र में जब पढ़ने का चश्मा लगे तो आँखों की जाँच नेत्र विशेषज्ञ द्वारा जरूर करा लेनी चाहिए।

सामान्य लोगों की तुलना में मधुमेहियों में काला मोतिया आठ गुना अधिक पाया जाता है। अतः हर मधुमेही को समय-समय पर अपने नेत्रों की जांच कराते रहना चाहिए। कुछ परिवारों में यह रोग वंशानुगत भी होता है, इसलिए यदि माता-पिता अथवा भाई-बहिन को यह रोग हो तो स्वयं भी इस रोग के प्रति सजग रहना चाहिए।

काला मोतिया की आम किस्म सिंपल (ओपन एंगल) ग्लूकोमा है। इसका कारण है कि आँख से द्रव बाहर निकालने वाली निकास नलियाँ तंग हो जाती हैं और द्रव की निकासी धीमी होती जाती है, फलस्वरूप आँख के अन्दर द्रव की मात्रा बढ़ जाती है, जिससे आँख का आन्तरिक दाब बढ़ जाता है। यह रोग स्त्री-पुरुष दोनों में समान रूप से पाया जाता है। यह 40 से 70 वर्ष की आयु में अधिक होता है। इस रोग का शुरू में पता नहीं चलता और केन्द्रीय दृष्टि आखिर तक साफ नहीं रहती है। समय के साथ-साथ आँख का दृष्टि क्षेत्र घटता जाता है। कुछ लोगों में नजर कमजोर होने के लक्षण भी पाए जाते हैं और धीरे-धीरे दृष्टि इतनी कमजोर हो जाती है कि आँख देख नहीं पाती। इस पूरी प्रक्रिया में कई वर्ष लग जाते हैं और यदि इस बीच रोग का पता चल जाए तो इलाज कराने से आँख की रोशनी बच सकती है।

क्लोज्ड ऐंगल ग्लूकोमा इसके (सिंपल) विपरीत है। इसके लक्षण शुरू में ही दिखाई देने लग जाते हैं। पहले-पहल आँख का दाब कभी-कभी बढ़ता है।

सुबह के समय, कम रोशनी हो, मन बेचैन हो अथवा गुस्से में हो या थका हुआ हो तो अचानक आँख में या उसके इर्द-गिर्द दर्द होने लगता है, नजर धुंधली होने लगती है, बल्ब तथा वाहनों की हैडलाइट्स के आस-पास इन्द्रधनुषी रंग दिखाई देने लगते हैं। ये लक्षण कुछ मिनट से कुछ घण्टों तक रह सकते हैं और फिर गायब हो जाते हैं। यह लक्षण कई दिनों, हफ्तों एवं महीनों बाद भी उभर आते हैं, लेकिन कुछ समय बाद यह क्रम नियमित हो जाता है। इस बीच आँख कभी भी काला मोतिया के दौरे का शिकार हो सकती है। इसमें आँख में भयानक दर्द होता है। कभी पीड़ा के कारण कै भी आ जाती है और नजर धुंधली पड़ जाती है। यदि समय पर इलाज न मिले तो नजर गंवाने की पूरी सम्भावना है।

सिंपल ग्लूकोमा में आँख के पर्दे की जाँच से रोग का पता चलता है। पर्दे की सतह पर कुछ खास परिवर्तन नजर आते हैं, जिनका सम्बन्ध बढ़े हुए दाब से होता है। आँख के दाब का पता लगाने के लिए 'टोनोमीटर' यंत्र का प्रयोग किया जाता है। आँख को सुन्न करके उसके मध्य भाग पर टोनोमीटर रखकर भीतरी दाब नापा जाता है। यदि दाब बढ़ा हुआ हो तो काला मोतिया होने का पक्का प्रमाण है। आँख का दृष्टि क्षेत्र कितना और कैसा है, यह जांचने से भी इस रोग का पता लग सकता है तथा यह भी स्पष्ट हो जाता है कि रोग का आंख पर कितना प्रभाव पड़ चुका है, इसे ही 'फील्ड चार्टिंग' कहते हैं।

इस रोग का जितना जल्दी पता लग जाए उतना ही इलाज के लिए अच्छा है। हालांकि यह रोग जड़ से नहीं जाता, लेकिन इलाज लेते रहने से दाब को नियन्त्रण में रखा जा सकता है और आँख की रोशनी बचाई जा सकती है। इसका इलाज पूरी उम्र तक चलता है। इसके लिए रोगी को समय-समय पर अपने नेत्र विशेषज्ञ के पास जाते रहना चाहिए और नियमित रूप से आँखों की जांच कराते रहना चाहिए।

सिंपल ग्लूकोमा के रोगी का इलाज पहले तो दवाओं से ही वश में करने का प्रयास किया जाता है। दवा नियमित रूप से लेनी पड़ती है, लेकिन यदि रोग दवाओं से काबू में नहीं आता या रोगी अपनी देखभाल नहीं कर सकता और नियमित रूप से दवा लेने में असमर्थ है तो लेज़र या ऑपरेशन का सहारा लेना पड़ता है। इसके बाद भी डॉक्टरी जांच के लिए जाते रहना पड़ता है।

क्लोज्ड ऐंगल ग्लूकोमा का इलाज केवल ऑपरेशन है। यह जितनी जल्दी हो जाए उतना ही अच्छा है। समय से किया गया एक छोटा-सा ऑपरेशन आंख की नजर को बिगड़ने से बचा सकता है। यह ऑपरेशन दूसरी आँख के लिए भी

बहुत आवश्यक होता है, भले ही उस आँख में काला मोतिया के लक्षण न हों। यह 'आईरिडेक्टोमी' का ऑपरेशन शल्य से तो किया ही जाता है, यह लेज़र से भी किया जा सकता है।

काला मोतिया में मुख्यतः नेत्र दवाएं उपयोगी मानी जाती हैं, जो कि एक बार शुरू करने पर उम्र भर चलाई जाती हैं। यदि दवाएं नियम से प्रयोग होती रहें तो काला मोतिया बढ़ने से रुक जाता है।

शिक्षक की भूमिकाः

यह बात सच है कि बच्चे माता-पिता की अपेक्षा अपने शिक्षक की बात अधिक सुनते हैं और मानते भी हैं। यह बात भी सच है कि अध्यापक बच्चों की आँखों के विषय में, यदि कोई भी कठिनाई या दोष हो तो उसे जल्दी जान लेते हैं, क्योंकि वह माता-पिता से अधिक पढ़ाई के समय बच्चों के पास होते हैं। स्कूल में 6-8 घण्टे के समय में अध्यापक को पता चल जाता है कि पढ़ते समय बच्चों को कैसी बाधाएं या दिक्कतें आती हैं। माता-पिता को या परिवार वालों को इसका बाद में पता चलता है। शिक्षक की दो मुख्य भूमिकाएं उभरकर सामने आती हैं:-

1. बच्चों को सही मुद्रा में बैठकर पढ़ने की आदत डालने में योगदान दे सकते हैं। यदि बच्चे ठीक ढंग से या ठीक मुद्रा में बैठकर नहीं पढ़ते हैं तो कई प्रकार के दोष उत्पन्न हो सकते हैं, जैसे आँख पर ज्यादा जोर पड़ने से आँख का लाल होना, आँखों में खुजली होना, पानी बहना, सिरदर्द होना इत्यादि। यदि थोड़ा-सा ध्यान दिया जाए या सावधानी बरती जाए तो इन दोषों से बचाव हो सकता है। अध्यापक इन सब दोषों से बचाव के ढंग बताने के अलावा बच्चों को अच्छे व संतुलित भोजन के विषय में भी शिक्षा दे सकता है, जिससे आँखें ठीक रह सकें। विटामिन-ए के विषय में बता सकता है कि किन-किन फलों और सब्जियों के सेवन से यह मिलता है और इसके सेवन से आँखें ठीक रह सकती हैं।

2. अध्यापक बच्चों की आँखों का दोष जल्दी जान सकते हैं। दृष्टि-दोष पता लगाने के निम्नलिखित कई तरीके हैं, जिनमें मुख्यतः शिक्षक अपना योगदान दे सकते हैं:-

(1) ब्लैकबोर्ड से नकल करते समय गलत लिखना।

(2) पिछली सीट से ठीक दिखाई न पड़ने पर आगे बैठने की कोशिश करना।

(3) पुस्तक को आँखों के समीप लाकर पढ़ना।

(4) दूसरे बच्चों के साथ खेलने से कतराना और ठीक से गेंद या रैकेट आदि दिखाई न देना।

ऐसे दोष वाले बच्चों को 'मायोपिया' हो सकता है। शिक्षक को फौरन ही बच्चे के माता-पिता को सूचित करना चाहिए, ताकि वे अपने बच्चे की आँखों की जांच शीघ्रातिशीघ्र करा सकें। यदि किसी बच्चे को चश्मा लगा हो तो शिक्षक यह ध्यान रखे कि बच्चा पढ़ते समय चश्मा न उतारे। ऐसी आँख वाले बच्चों को लगातार चश्मा पहने रखना चाहिए। शिक्षक का यह भी कर्तव्य है कि जिस बच्चे को कन्जंक्टिवाइटिस हो, उसे कक्षा में नहीं बैठने देना चाहिए, क्योंकि यह छूत की बीमारी है और बहुत जल्दी फैलती है।

जिन बच्चों को अक्सर सिरदर्द रहता हो, उन्हें भी आँख की जांच करवानी चाहिए। यदि स्कूल में किसी कारण बच्चे की आँख में चोट लग जाए तो उसे तब तक आँख बन्द रखने के लिए कहा जाए, जब तक कि उसे किसी नेत्र विशेषज्ञ के पास न ले जाया जाए।

कान एवं कानों की देखभाल

– डॉ. सी.पी. थपलियाल

कान अथवा कर्ण, नेत्र के पश्चात् दूसरी प्रमुख ज्ञानेन्द्रिय Sense Organ है जिसके माध्यम से हम इस संसार को जानते हैं, समझते हैं और विभिन्न व्यवहार करते हैं, कान वातावरण में उत्पन्न होने वाली विभिन्न ध्वनि-तरंगों को अपने तंत्र द्वारा ग्रहण कर मस्तिष्क तक सम्प्रेपित करता है और इस प्रकार हमें वातावरण-सम्बन्धी ध्वनि-ज्ञान प्राप्त होता है, साधारणत: यही 'सुनना' अथवा 'श्रवण' कहलाता है, कान अथवा कर्ण को इसीलिए 'श्रवणेन्द्रिय' भी कहा जाता है। श्रवण के द्वारा ही हम बोलना सीखते हैं और दूसरों के साथ भाषिक-सम्पर्क कर पाते हैं। हमारे दैनिक जीवन में श्रवणेन्द्रिय विभिन्न प्रकार से अहम् भूमिका निभाती है अत: इसकी संरचना, कार्यविधि आदि के सम्बन्ध में सामान्य जानकारी का होना वांछनीय है।

संरचना की दृष्टि से कान को मुख्य तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है:

(i) बाह्य कर्ण (External Ear)
(ii) मध्य कर्ण (Middle Ear)
(iii) अन्त: कर्ण (Internal Ear)

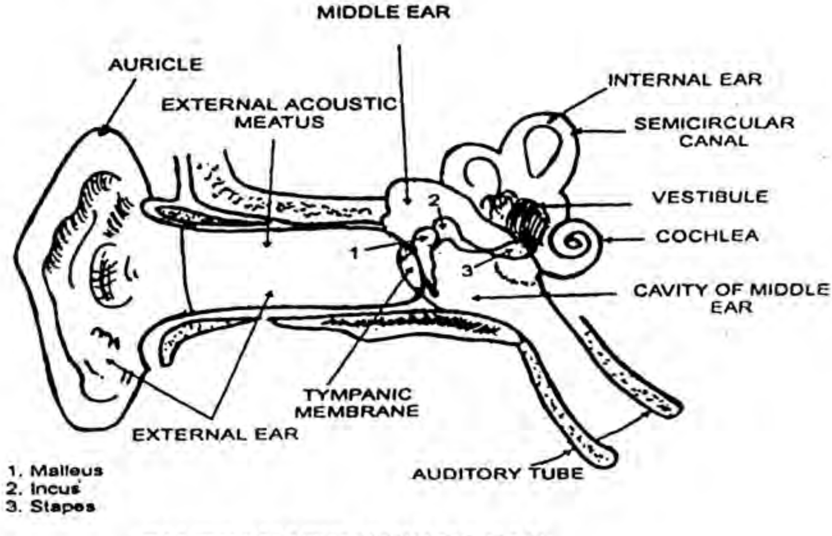

DIAGRAMATIC VIEW OF EAR

बाह्य कर्ण (External Ear) :

बाह्य कर्ण को पुन: दो भागों में विभक्त किया जा सकता है:

(i) कर्ण शष्कुली (Auricle Pinna)

(ii) कर्ण पथ (External Acoustic Meatus)

(i) कर्ण शष्कुली (Auricle Pinna): यह कान का बाहर दिखाई देने वाला- शिर के पार्श्व में रहने वाला भाग है। जानवरों में यह भाग काफी बड़ा होता है जो मक्खियाँ आदि भगाने के काम भी आता है जबकि जलचरों में यही भाग पानी में कर्ण गुहा को ढकने का कार्य भी करता है। यह भाग एक ही तरुणास्थि (Cartilage) का बना होता है जिसमें कुछ उभार और कुछ गड्ढे होते हैं तथा ऊपर त्वचा होती है। कान के नीचे के भाग में कोई तरुणास्थि नहीं होती। नीचे के इसी भाग (lobule) में स्त्रियाँ गहने पहनती हैं तथा इसी भाग से आवश्यकता पड़ने पर डाक्टर जांच के लिये खून लेते हैं। इस बाह्य भाग का कार्य वायुमण्डल में व्याप्त ध्वनि तरंगों को ग्रहण कर उसे कर्णपथ की ओर भेजना है।

(ii) कर्ण पथ (External Acoustic Meatus): यह कर्ण शष्कुली (Pinna) के मध्य के गहरे भाग (Concha) से कर्ण पटल (Drum या Tympanic Membrane) तक चलने वाली एक नलिका है जिसका बाहरी 1/3 भाग तरुणास्थि का और अन्दर की ओर का 2/3 भाग अस्थि का बना होता है। पूरी नलिका कुछ 'S' के आकार की होती है जिस पर त्वचा चिपकी रहती है तथा ऊपर कुछ बाल भी होते हैं। इस भाग में कर्णगूथ ग्रन्थियाँ (Ceruminous Glands) होती हैं जिनसे कर्णगूथ (Ear Wax) निकलता है- साधारण भाषा में इसे ही कान का मैल कहा जाता है। कर्णगूथ इस नलिका की सफाई तो करता ही है साथ ही इसे शुष्क होने से भी बचाता है। कान के इस भाग में होने वाली छोटी सी फुन्सी भी बहुत पीड़ादायक होती है तथा यह पीड़ा जबड़े तक महसूस होती है।

मध्य कर्ण (Middle Ear):

मध्यकर्ण कान की हड्डी-शंखास्थि (Temporal bone) में स्थित अवकाश युक्त कुछ चपटा सा भाग है जो सामने की ओर एक नलिका (Eustachean Tube) के द्वारा कण्ठ (Pharynx) के साथ सम्बन्ध बनाता है। यह नलिका लगभग 36 मि.मी. लम्बी होती है। इसी प्रकार मध्य कर्ण गुहा (Cavity) पीछे की ओर भी एक छिद्र के माध्यम से कान के पीछे की हड्डी (Mastoid Process) के साथ सम्बन्ध बनाती है। मध्य कर्ण के बाहर की ओर की भित्ति- कर्ण पटल (Tympanic

Membrane) से बनती है तथा अन्दर की ओर अन्त: कर्ण स्थित होता है। गुहा के ऊपर की ओर की अस्थि बहुत पतली होती है जिसके ऊपर मस्ति स्थित होता है।

मध्य कर्ण में तीन छोटी अस्थियां होती हैं। बाहर की ओर हथौड़ी या मु के आकार की **Malleus,** बीच में दांत के आकार की Incus और अन्दर ओर रकाब के आकर की stapes होती है। बाहर की अस्थि कर्ण पटल (Dru के साथ और अन्दर की अस्थि अन्त: कर्ण के एक छिद्र (Oval Window) ऊपर मांसपेशियों के द्वारा अच्छी प्रकार से खिंची और बन्धनों से जकड़ी रह है।

अन्त: कर्ण (Internal Ear):

यह भाग शंखास्थि (Temporal Bone) में अनियमित रूप से बने हु रास्ते या कोटर (Irregular Cavities) हैं जिनके अन्दर कला (Membrane) द्वार निर्मित वैसी ही रचनायें रहती हैं। अत: अन्त: कर्ण के दो भाग-अस्थि निर्मित अन्त कर्ण (Bony Labyrinth) और कला निर्मित अन्त: कर्ण (Membranous Labyrinth) होते हैं तथा दोनों के अन्दर कुछ तरल क्रमश: Perilymph तथा Endolymph रहते हैं। कला निर्मित अन्त: कर्ण में सुनने और शरीर के संतुलन (Balance) का बोध कराने वाली नाड़ी के सूत्र (Nerve Endings) पहुंचे रहते हैं।

अस्थि निर्मित अन्त: कर्ण (Bony Labyrinth): अस्थि निर्मित अन्त: कर्ण के पुन: तीन भाग होते हैं:

(i) प्रधाण (Vestibule)

(ii) अर्धवृत्त नलिकायें (Semicircular Canals)

(iii) कर्णावर्त (Cochlea)

प्रधाण (Vestibule): यह मध्य कर्ण के बीच की लगभग 5 मि.मी. के करीब की अण्डाकार रचना होती है जिसके सामने की ओर कर्णावर्त (Cochlea) और पीछे की ओर अर्धवृत्त नलिकायें (Semicircular Canals) होती हैं। इसकी पार्श्वभित्ति पर एक छिद्र प्रधाण गवाक्ष (Oval Window) होता है जिसपर stapes अस्थि का आधार भाग लगता है तथा ऊपर और पीछे की ओर अर्धवृत्त नलिकाओं के खुलने के पाँच छिद्र होते हैं। आगे की ओर यह कर्णावर्त (Cochlea) के साथ जुड़ा रहता है।

अर्धवृत्त नलिकायें (Semicircular Canals): ये तीन होती हैं जो प्रधाण के ऊपर और पीछे की ओर स्थित होती हैं। इनका व्यास 0.8 मि.मी. होता है, तथा एक सिरा कुछ फूला हुआ होता है। जिसे Ampulla कहते हैं।

कर्णावर्त (Cochlea): यह घोंघे के कोष (Snail's Shell) के आकार की रचना है जिसकी लम्बाई 5 मि.मी. और चौड़ाई 9 मि.मी. होती है। इसके मध्य में शंख नाभि के समान रचना (Modiolus) होता है जिसके चारों ओर एक नलिका के पौने तीन चक्कर लगे होते हैं। Modiolus से अन्दर की ओर अस्थि का ही कुछ उभरा हुआ भाग अन्दर की ओर जाता है (Spiral Camina) जिसके अन्दर की ओर आधार कला (Basilar Membrane) लगी होती है जो कर्णावर्त नलिका को दो भागों में बांट देती है।

कला निर्मित अन्तः कर्ण (Membranous Labyrinth): यह अस्थिनिर्मित अन्तः कर्ण के भीतर पाई जाने वाली उसी के आकर की रचना है जिसके बाहर एक तरल Perilymph और अन्दर की ओर दूसरा तरल Endolymph होता है। कान के इस भाग में निम्न रचनायें होती हैं।

(i) प्रधाण (Vestibule) के अन्दर रहने वाले (a) Utricle (b) Saccule

(ii) अर्धवृत्त नलिकाओं (Semicircular Canals) में रहने वाले Semicircular Ducts तथा

(iii) कर्णावर्त (Cochlea) के अन्दर स्थित Duct of Cochlea

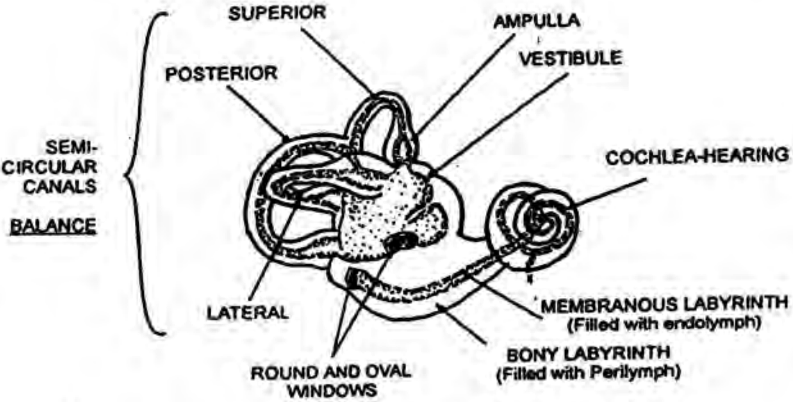

THE RIGHT LABYRINTH OF THE EAR

यह तीनों प्रणालियाँ आपस में जुड़ी रहती हैं जैसे Semicircular Ducts-Utricle में खुलती हैं; Utricle-Saccule में तथा Saccule, Duct of Cochlea के साथ सम्बन्ध बनाता है। इन सभी भागों में कर्ण नाड़ी (Vestibulo-Cochiear-nerve) के तन्तु पहुंचे रहते हैं जो अन्त: कर्ण में होने वाले संज्ञा परिवर्तनों को मस्तिष्क तक पहुंचाते हैं जहां पर ध्वनि का वास्तविक ज्ञान होता है।

Duct of Cochlea के अन्दर ही कुछ विशिष्ट प्रकार की रचनायें होती हैं जिन्हें Organ of Corti कहा जाता है जिनमें स्थित रोम-कोषों (Hair-Cells) तक कर्ण नाड़ी के सूत्र पहुँचे रहते हैं।

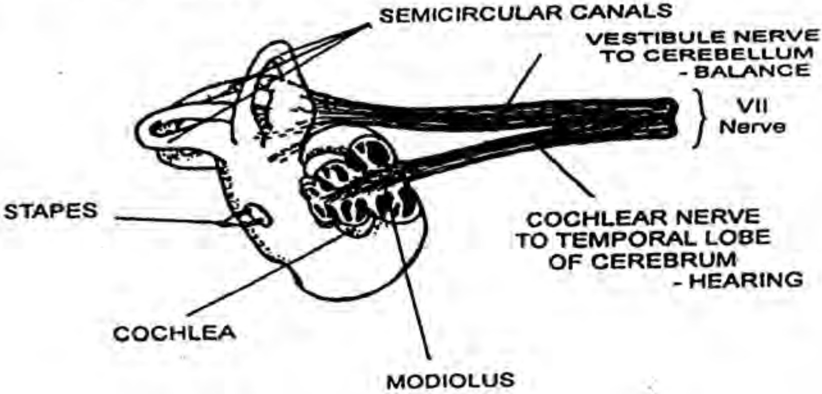

THE AUDITORY NERVE SHOWING
THE VESTIBULAR AND COCHLEAR PORTIONS

कर्णेन्द्रिय/श्रवणेन्द्रिय के कार्य :

1. ध्वनि ज्ञान (Hearing):- जैसा कि हम जानते हैं- वायु मण्डल में ध्वनि तरंगें व्याप्त रहती हैं। वाह्य कर्ण इन तरंगों को ग्रहण कर श्रुति पथ (External Acoustic Meatus) के द्वारा कर्ण पटल (Drum of ear या Tympanic Membrane) तक पहुंचाता है जिस पर कम्पन (Vibrations) पैदा होते हैं। मध्य कर्ण में स्थित अस्थियां जो एक ओर कर्ण पटल से तथा दूसरी ओर अन्त: कर्ण से जुड़ी रहती हैं- इन कम्पनों को अन्त: कर्ण तक पहुंचाती हैं। कर्ण पटल के दोनों ओर वायु का दवाव समान होता है क्योंकि मध्य कर्ण भी Eustach ear tube के द्वारा कण्ट और फलस्वरूप बाह्य वातावरण के सम्पर्क में रहता है। मध्यकर्ण की अस्थियों का कम्पन अन्त: कर्ण के तरल (Perilymph तथा Endolymph)

में भी तरंगें पैदा करता है जिसे Cochlea में स्थित Organ of Corti Hair Cells ग्रहण कर नाड़ी सूत्रों के माध्यम से मस्तिष्क (Cerebrum) तक पंहुचाते हैं- जहाँ पर वास्तविक ध्वनि का ज्ञान होता है।

2. शारीरिक संतुलन (Balance or Equilibrium):- यदि किसी कारण से हमारा शरीर एक तरफ झुकता है तो शारीरिक असंतुलन पैदा होता है। शरीर में आए इस असंतुलन के कारण कान के Balance System में स्थित Semicircular Ducts में विद्यमान तरल पर प्रभाव पड़ता है, जिसे वहाँ पर स्थित नाड़ी सूत्र (Vestibular nerve) ग्रहण कर लघु मस्तिष्क (Cerebellum) तक पहुंचाते हैं फलस्वरूप हम सिर की स्थिति शरीर के अनुवाद सही कर शरीर को संतुलित कर लेते हैं।

क़र्ण के सामान्य रोग :

I. बाह्य कर्ण में प्राय: मैल (Ear Wax) जमा हो जाता है जिसकी अधिक मात्रा कान के परदे के कार्य में बाधा पैदा कर सकती है। इस मैल को निकालने के लिये सही रूप में रुई (Ear Buds) का प्रयोग करना चाहिये- सलाई, माचिस की तिल्ली आदि का नहीं, इनके प्रयोग से कान का परदा फट सकता है जिससे सुनने में परेशानी होगी। बाह्य कर्ण में होने वाली फुन्सी आदि बहुत पीड़ादायक होती है अत: उसकी सही चिकित्सा होनी चाहिये।

II. गले की खराबी से कर्ण-कण्ठ नलिका (Eustachean Tube) में भी सूजन हो जाती है जिससे परदे के दोनों ओर वायु का दबाव एक समान न होने के कारण सुनने में कठिनाई होती है- अत: कण्ठ-नासिका आदि का समय पर उचित इलाज होना चाहिये।

III. मध्य कर्ण में शोथ और संक्रमण बाह्य कर्ण से (परदे के फट जाने से) अथवा नासिका-कण्ठ (कर्ण-कण्ठ नलिका के रास्ते) से पहुंच सकता है। यहाँ से यह संक्रमण कान के पीछे की हड्डी (Mastoid Process); अन्त: कर्ण में अथवा कान के ऊपरी भाग से मस्तिष्क (Meninges) में भी पहुँच सकता है। अत: मध्य कर्ण संक्रमण (Otitis Media) की समय पर सही चिकित्सा होनी चाहिये।

IV. अन्त: कर्ण में भी संक्रमण मध्य कर्ण से पहुंच सकता है जिससे सिर में चक्कर आ सकते हैं, वमन हो सकता है तथा बधिरता हो सकती है, कभी कभी इस प्रकार के सामान्य रोग आराम तथा साधारण शामक औषधियों से ठीक हो जाते हैं अन्यथा लापरवाही से पूर्ण बधिरता हो सकती है सिर की चोट के कारण

कर्ण नाड़ी विकृति से भी बाधिर्य की उत्पत्ति हो सकती है। इसी प्रकार मस्तिष्क की शल्य क्रिया आदि से भी श्रवण-शक्ति और शरीर के संतुलन (Balance) पर प्रभाव पड़ सकता है। मशीनों की तेज आवाजें, शहर का विभिन्न प्रकार का कोलाहल मनुष्य की श्रवण शक्ति पर दुष्प्रभाव डालता रहता है और वह बधिर हो सकता है। बधिर मनुष्य समाज से अलग थलग पड़ जाता है। यदि छोटे बच्चों में सुनने की शक्ति नहीं होती तो वे बोलना भी नहीं सीख पाते साथ ही मानसिक रूप से भी पिछड़ सकते हैं।

उपरोक्त विवेचन का उद्देश्य कान के रोगों के कारणों की सामान्य जानकारी देना है ताकि आवश्यकता पड़ने पर रोग का चिकित्सक से निदान व इलाज करवाया जा सके। नाक-गले के रोगों का भी समय पर इलाज होना चाहिए। कान साफ करने के लिये रुई (Buds) का ही प्रयोग करना चाहिए। यदि कान का परदा फट गया हो तो उसकी शल्य चिकित्सक से चिकित्सा करवा लेनी चाहिए। मध्य कर्ण शोथ (Otitri Media) की विशिष्ट चिकित्सक (E.N.T. Specialist) के द्वारा ही चिकित्सा होनी चाहिये। अन्तः कर्ण के रोगों में आजकल अन्तः कर्ण प्रत्यारोपण (Cochlear Implantation) होता है किन्तु यह बहुत मंहगा इलाज है- इसमें अत्यधिक रुपये लगते हैं और उस पर भी पूर्ण लाभ हो जाये ऐसा नहीं कहा जा सकता। आजकल श्रवण यंत्र (Hearing Aid) का सुनने के लिये सहायक यंत्र के रूप में प्रयोग बहुतायत से हो रहा है। ये यंत्र नये-नये रूपों में आ रहे हैं किन्तु यदि बधिरता का कारण अन्तः कर्ण और कर्ण नाड़ी (Auditory Nerve) में खराबी हो तो श्रवण यंत्र भी विशेष लाभदायक नहीं होता।

दृष्टिहीन बालकों के लिए श्रवणेन्द्रिय का महत्त्व और इस सम्बन्ध में शिक्षक की भूमिका :

अध्याय के आरम्भ में ही कहा गया है कि श्रवणेन्द्रिय, नेत्र के पश्चात् दूसरी प्रमुख ज्ञानेन्द्रिय है, क्योंकि यह भी नेत्र की ही भांति दूर से ही बिना सम्पर्क में आये वातावरण की जानकारियों को ग्रहण करने में सक्षम है। नेत्र के काम न कर पाने की स्थिति में दृष्टिहीनों के लिये यह महत्त्वपूर्ण ज्ञानेन्द्रिय का स्थान ले लेती है और उल्लेखनीय भूमिका का निर्वाह करते हुए दृष्टि के अभाव को भी काफी हद तक दूर करती है। यह भी स्पष्ट किया जा चुका है कि श्रवणेन्द्रिय के दो मुख्य कार्य हैं- 1. श्रवण और 2. शारीरिक सन्तुलन। दृष्टिहीनों के लिए शारीरिक सन्तुलन का भी विशेष महत्त्व है- वाहन में बैठकर यात्रा करते समय वाहन की कम-ज्यादा गति का बोध, वाहन का रुकना या चलना, किसी ओर मुड़ना, पुल या

फ्लाईओवर पर चढ़ना अथवा उतरना इत्यादि का ज्ञान कान के संतुलन तंत्र (Balance System) द्वारा सम्भव हो पाता है। यह ज्ञान दृष्टिहीन व्यक्ति को उसके ओरियन्टेशन में महत्त्वपूर्ण सहायता देता है, साथ ही गिरने से भी बचाता है, अतः दृष्टिहीन बालकों के शिक्षकों को शिक्षण के साथ-साथ उनके कान संबंधी स्वास्थ्य पर भी विशेष ध्यान देना चाहिए।

यदि किसी बालक को बार-बार गले-नाक की खराबी होती हो, छींके आती हों, वह सिर को एक तरफ मोड़कर सुनने का प्रयत्न करता हो, बालक पढ़ाई पर ध्यान नहीं देता हो, बार-बार कान खुजाता हो या कान बहने की शिकायत हो तो उसे तुरन्त ही चिकित्सक के पास भेजना चाहिये। अध्यापक कभी-कभी गुस्से में थप्पड़ मार देते हैं- कभी यदि जोर से कान पर लग जाये तो कान का परदा फट सकता है जिससे बधिरता उत्पन्न हो सकती है अतः अध्यापक बालक को इस तरह का दण्ड न दे। बालकों को खेलते हुये कभी इस प्रकार की चोट भी लग सकती है। कान से खून आना, चक्कर आना तथा उल्टियां आना आभ्यन्तर चोट के लक्षण हैं- जिसमें कान से लेकर मस्तिष्क तक में विकार हो सकता है। अतः ऐसे में तुरन्त ही अभिभावकों को अथवा चिकित्सक को सूचित करना चाहिये या अस्पताल भेजना चाहिये। अध्यापक दृष्टिहीन बालकों के अभिभावकों विद्यालय के अन्य कर्मचारियों, दृष्टिवान छात्रों आदि को भी दृष्टिहीनों के लिए कान के इस तरह के महत्त्व एवं इस विषय में आवश्यक बातों की जानकारी दे सकता है।

अध्याय-28

दृष्टिबाधितों की शिक्षा व पुनर्वास में सरकारी व गैर-सरकारी संस्थाओं की भूमिका, कार्य व उत्तरदायित्व

-डॉ. आर.एस. चौहान

आज हमारे देश में दृष्टिबाधित बालकों तथा अन्य आयु वर्ग के लोगों की प्रगतिशील आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति में अनेक सरकारी व गैर-सरकारी संगठनों का योगदान रहा है। इनमें से कुछ संस्थाओं की चर्चा इस अध्याय के अन्तर्गत की जा रही है।

सामाजिक न्याय एवं आधिकारिता मन्त्रालय (Ministry of Social Justice & Empowerment), नई दिल्ली:-

केन्द्रीय समाज कल्याण मन्त्रालय को अब सामाजिक न्याय एवं आधिकारिता मन्त्रालय कहा जाता है। इसके अन्तर्गत विकलांगों की शिक्षा तथा पुनर्वास के लिए एक पृथक् 'विकलांगता सम्भाग' (Disability Division) का गठन किया गया है। इसके दृष्टिबाधा विषयक प्रमुख कार्यों का विवरण निम्नलिखित अनुच्छेदों में प्रस्तुत किया जा रहा है:-

राष्ट्रीय दृष्टिबाधितार्थ संस्थान (National Institute for the Visually Handicapped), देहरादून:-

मन्त्रालय के अन्तर्गत दृष्टिबाधा के क्षेत्र में राष्ट्रीय दृष्टिबाधितार्थ संस्थान, देहरादून भारत सरकार का शीर्षस्थ संगठन है। यह दृष्टिबाधितों के लिए शिक्षा व पुनर्वास, राष्ट्रीय स्तर की सेवाएं चलाने, सम्बद्ध क्षेत्र में आवश्यक व्यावसायिक प्रशिक्षण का प्रबन्ध करने तथा शोध के लिए उत्तरदायी है। इसकी विस्तृत चर्चा इस अध्याय में अन्यत्र की जाएगी।

मन्त्रालय ने राष्ट्रीय दृष्टिबाधितार्थ संस्थान, देहरादून के माध्यम से वर्ष 2000-2001 में दृष्टिबाधित बालकों के लिए प्राथमिक स्तर के 270 तथा माध्यमिक स्तर के 110 शिक्षकों को प्रशिक्षण दिया। इसी अवधि के दौरान संस्थान के माध्यम से 72 पुनर्वास तथा नेत्र-शिविर आयोजित करवाये गये जिनमें 31,676 विकलांग व्यक्तियों को सेवाएं दी गईं।

राष्ट्रीय विकलांग वित्त एवं विकास निगम (NHFDC), फरीदाबाद:

मन्त्रालय ने 24 जनवरी, 1997 को इस निगम की स्थापना की। यह विकलांग व्यक्तियों को अपना रोजगार शुरू करने अथवा उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए रियायती दरों पर ऋण उपलब्ध करवाता है। इससे वही व्यक्ति लाभ उठा सकता है जिसकी वार्षिक आय शहरी क्षेत्र में एक लाख रुपये तथा ग्रामीण क्षेत्र में अस्सी हजार रुपये तक हो।

राष्ट्रीय पुनर्वास परिषद् (Rehabilitation Council of India), नई दिल्ली:

इसकी स्थापना राष्ट्रीय पुनर्वास परिषद् अधिनियम, 1992 के अन्तर्गत की गयी: इस अधिनियम को वर्ष 2000 में संशोधित किया गया। परिषद् विभिन्न विकलांगता क्षेत्रों के व्यावसायिकों का केन्द्रीय रजिस्टर तैयार करने, विकलांगता के क्षेत्र में चलाए जाने वाले प्रशिक्षण कार्यक्रमों का मानकीकरण करने तथा उन्हें मान्यता प्रदान करने एवं पाठ्यक्रमों में आवश्यक फेर-बदल करने इत्यादि के लिए उत्तरदायी है।

विकलांग व्यक्तियों के लिए मुख्य आयुक्त का कार्यालय:

नोएडा स्थित यह कार्यालय अन्य गतिविधियों के साथ-साथ विकलांगता अधिनियम, 1995 की धाराओं का उल्लंघन करने वाले संगठनों के विरुद्ध शिकायतें सुनकर विकलांगजनों को राहत पहुँचाने का काम भी करता है।

जिला पुनर्वास केन्द्र (District Rehabilitation Centre):

देश में ग्यारह जिला पुनर्वास केन्द्र कार्यरत हैं। ये दृष्टिबाधित समेत सभी प्रकार के विकलांगजनों को प्रारम्भिक पुनर्वास सेवाएं सुलभ करवाते हैं।

विविध:

इन कार्यक्रमों के अतिरिक्त सामाजिक न्याय एवं आधिकारिता मन्त्रालय द्वारा दृष्टिहीनों तथा अन्य विकलांगों के लिए आवासीय विद्यालय एवं व्यावसायिक प्रशिक्षण केन्द्र चलाने के लिए गैर-सरकारी संगठनों को अनुदान देने, विकलांग व्यक्तियों को उपकरण सुलभ करवाने तथा चुने गये श्रेष्ठ विकलांग कर्मचारियों और उनके लिए कार्यरत श्रेष्ठ व्यावसायिकों (Professionals) को 'अन्तर्राष्ट्रीय विकलांग दिवस' पर पुरस्कार देने और विकलांग व्यक्तियों को रोजगार दिलवाने के लिए 'विशेष

रोजगार कार्यालय तथा सामान्य रोजगार कार्यालयों में विशेष कोष्ठ चलाने इत्यादि की योजनाएं भी क्रियान्वित की जा रही हैं।

इन समस्त योजनाओं से दृष्टिबाधित व्यक्ति भी लाभान्वित हो रहे हैं, किन्तु अलग से इनके आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं।

(मन्त्रालय की वर्ष 2001-2002 की वार्षिक रिपोर्ट पर आधारित)।

मानव संसाधन विकास मन्त्रालय (Ministry of Human Resource Development), नई दिल्ली:-

मानव संसाधन विकास मन्त्रालय (MHRD) द्वारा ऐसी कोई परियोजना नहीं चलाई जा रही जो केवल दृष्टिबाधितों के लिए ही हो, परन्तु ऐसी परियोजनाएं अवश्य हैं जिनमें अन्य विकलांग/गैर-विकलांगों के साथ-साथ दृष्टिबाधित बालकों को भी शामिल किया जाता है।

विकलांग बालकों हेतु समेकित शिक्षा (Integrated Education for Disabled Children) योजना: इस योजना को सन् 1982 में समाज कल्याण मन्त्रालय से मानव संसाधन विकास मन्त्रालय के शिक्षा विभाग को स्थानान्तरित किया गया था। इस योजना के अन्तर्गत अन्य विकलांग बालकों के साथ-साथ दृष्टिबाधित बालक भी लाभान्वित हो रहे हैं। इस योजना में सन् 1987 में किये गये संशोधनों के अनुसार इसे गैर-सरकारी संगठन भी चला सकते हैं। इसी कारण इसकी लोकप्रियता तथा दृष्टिबाधित लाभार्थियों की संख्या में पिछले दशक में काफी वृद्धि हुई है।

जिला प्राथमिक शिक्षा परियोजना (DPEP): मन्त्रालय इस परियोजना को विश्व बैंक की आर्थिक सहायता से चला रहा है। प्रारम्भ में यह गैर-विकलांग बालकों तक सीमित थी। 1997 में समेकित शिक्षा को भी इसमें सम्मिलित किया गया, परन्तु समेकित शिक्षा आयाम के साथ इस परियोजना को 1999 से ही लागू किया जा सका, परिणामस्वरूप अन्य विकलांग बालकों के साथ-साथ अब इससे दृष्टिबाधित बालक भी लाभान्वित हो रहे हैं। इस परियोजना के अन्तर्गत अब तक 18 राज्य शामिल किये जा चुके हैं।

सर्व शिक्षा अभियान (SSA): मन्त्रालय ने इस अभियान के अन्तर्गत 'विशिष्ट आवश्यकता समूह' (Groups with Special Needs) के बालकों को भी इसमें सम्मिलित किया है। दृष्टिबाधित बालक भी विशिष्ट आवश्यकता समूह का

अंग है। परियोजना की विशेष बात यह है कि इसमें 'शून्य अस्वीकृति' (Zero Rejection) नीति को अपनाया गया है ताकि प्रत्येक बालक को शिक्षा का लाभ प्राप्त हो सके। सर्व शिक्षा अभियान के दस्तावेज में स्पष्ट रूप से लिखा है, "सर्व शिक्षा अभियान सुनिश्चित करेगा कि विकलांगता के प्रकार, वर्ग तथा मात्रा पर ध्यान दिये बगैर विशिष्ट आवश्यकता वाले प्रत्येक बालक को उपयुक्त परिवेश में शिक्षा प्रदान की जाये।"

इस परियोजना में विशिष्ट आवश्यकता वाले बालकों को आवश्यक उपकरण सुलभ करवाने तथा उनके लिये शिक्षकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था भी की गयी है।

विकलांग बालकों हेतु समेकित शिक्षा परियोजना (Project Integrated Education for the Disabled) :– 1987 से 1993 तक 'विकलांग बालकों हेतु समेकित शिक्षा परियोजना' (Project Integrated Education for the Disabled--PIED) चलाई। शुरू में यह परियोजना छः राज्यों में आरम्भ की गयी। बाद में दो और राज्यों में इसको लागू किया गया। 1990 में दिल्ली नगर निगम तथा गुजरात को भी इसमें सम्मिलित कर लिया गया। इस परियोजना में भी दृष्टिबाधित बालकों को शामिल किया गया था।

('DPEP' से सम्बद्ध सामग्री, सर्व शिक्षा अभियान के दस्तावेज तथा 'PIED' से सम्बद्ध मूल्यांकन पर आधारित)।

स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मन्त्रालय (Ministry of Health and Family Welfare) नई दिल्ली:–

स्वास्थ्य तथा परिवार कल्याण मन्त्रालय ने 1976 में राष्ट्रीय दृष्टिहीनता नियन्त्रण कार्यक्रम (National Programme for the Control of Blindness--NPCB) आरम्भ किया। यह कार्यक्रम पूर्णतः केन्द्रीय सरकार द्वारा पोषित है। इसके उद्देश्यों में दृष्टिहीनता का प्रतिशत 1.4 से घटाकर 0.3 तक लाना, देश में विभिन्न स्तरों पर आँखों की देखभाल की प्रणाली विकसित करना, दृष्टि क्षति से ग्रस्त बालकों की देखभाल के लिए शिक्षकों को प्रशिक्षण देना, दृष्टि क्षतिग्रस्त बालकों को चश्मे इत्यादि उपलब्ध करवाना तथा दृष्टिहीनता के नियन्त्रण के लिए विभिन्न श्रेणी के कार्मिकों को प्रशिक्षण देना आदि शामिल हैं।

इस कार्यक्रम द्वारा देश के समस्त जिलों में जिलाधीशों के नेतृत्व में जिला दृष्टिहीनता नियन्त्रण समिति (District Blindness Control Society--DBCS)

का गठन किया जा चुका है। ये समितियाँ अपने जिलों के विद्यालयों में आँखों की जाँच तथा दृष्टिहीनता के बारे में सर्वेक्षण करती हैं। जिलों में चलाए जा रहे विभिन्न कार्यक्रमों को सहायता भी इन्हीं समितियों के माध्यम से दी जाती है।

आन्ध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, उड़ीसा, राजस्थान, तमिलनाडु तथा उत्तरांचल में चलाई जा रही दृष्टिहीनता नियन्त्रण गतिविधियों को आंशिक रूप से विश्व बैंक की आर्थिक सहायता 1994-1995 से प्राप्त हो रही है।

मोतियाबिंद दृष्टिहीनता का हमारे देश में सबसे बड़ा कारण है। इस पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। इसके ऑपरेशनों की संख्या वर्ष 1992-93 में 16 लाख से बढ़कर वर्ष 2001 में 36.26 लाख हो गयी। इस प्रयास में भारत को डेनमार्क तथा विश्व स्वास्थ्य संगठन का सहयोग भी प्राप्त हुआ है। इस राष्ट्रीय अभियान में गैर-सरकारी संगठनों को सहायता भी ली जा रही है। वर्ष 2000-2001 में जिला दृष्टिहीनता नियन्त्रण समितियों के माध्यम से विभिन्न गैर-सरकारी संगठनों को 42 करोड़ रुपये का अनुदान दिया गया।

विश्व बैंक की सहायता प्राप्त परियोजना के अन्तर्गत सात राज्यों में नेत्र-वार्ड, ऑपरेशन थियेटर तथा डार्क-रूम बनाये गये हैं। एन.पी.सी.बी. के द्वारा प्रशिक्षण मैनुअल का प्रकाशन, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों के चिकित्सा अधिकारियों, नर्सों तथा सहायकों को प्रशिक्षण और आवश्यक उपकरण भी उपलब्ध करवाये जाते हैं।

(एन.पी.सी.बी. से सम्बद्ध एक दस्तावेज से प्राप्त सूचनाओं पर आधारित)।

श्रम मन्त्रालय (Ministry of Labour), नई दिल्ली:-

विशेष रोजगार कार्यालय (Special Employment Exchange): देश भर में विकलांग व्यक्तियों के लिए चलाये जा रहे विशेष रोजगार कार्यालय और कोष्ठों के लिए श्रम मन्त्रालय के रोजगार एवं प्रशिक्षण महानिदेशालय द्वारा नीतियाँ तथा प्रक्रियाएँ निर्धारित की जाती हैं। इन विशेष रोजगार कार्यालयों की संख्या 23 तथा विशेष कोष्ठों की संख्या कुछ वर्ष पहले 55 तक पहुँच चुकी थी।

व्यावसायिक पुनर्वास केन्द्र (Vocational Rehabilitation Centre): जून, 1968 में मुम्बई तथा हैदराबाद में दो व्यावसायिक पुनर्वास केन्द्रों की स्थापना से यह योजना शुरू की गयी थी। इनका उद्देश्य विकलांग व्यक्तियों की व्यावसायिक तथा मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं का मूल्यांकन कर उन्हें समायोजन प्रशिक्षण प्रदान करना है। ऐसे केन्द्रों की संख्या 17 है। बड़ौदा तथा पटना स्थित

केन्द्र केवल विकलांग महिलाओं के लिए हैं। 5 केन्द्रों के अन्तर्गत ग्रामीण व्यक्तियों के लाभ के लिए 'ग्रामीण पुनर्वास विस्तार कार्यालय' (Rural Rehabilitation Extension Office) स्थापित किये गये हैं।

इन केन्द्रों में दृष्टिबाधितों के लिए सेवाएं सीमित मात्रा में ही उपलब्ध हैं। पिछले दो दशकों में दृष्टिबाधितों को इनके द्वारा पी.सी.ओ. दिलवाने तथा उन्हें रोजगार के लिए प्रायोजित करने के कुछ उदाहरण सामने आये हैं।

(लक्ष्मण प्रसाद, "Rehabilitation of the Physically Handicapped", 1994 से प्राप्त सूचनाओं पर आंशिक रूप से आधारित)।

राष्ट्रीय दृष्टिबाधितार्थ संस्थान, (National Institute for the Visually Handicapped) देहरादून:-

इसका आरम्भ सन् 1943 में सेन्ट डंसटन्स युद्ध दृष्टिहीनार्थ आवास (St. Dunstan's Hostel for the War Blinded) के रूप में हुआ था। इसका उद्देश्य युद्ध में दृष्टिहीन हुए सशस्त्र सेनाओं के भारतीयों को प्रशिक्षण देकर उनका पुनर्वास करना तथा विदेशी सैनिकों को पुनर्वास हेतु लंदन इत्यादि भेजे जाने तक इस केन्द्र में आवास सुविधाएं उपलब्ध करवाना था। प्रथम विश्वयुद्ध में दृष्टिहीन हुए एक न्यूजीलैण्डवासी सर क्लूथा मैकेन्जी को इस केन्द्र का संचालक नियुक्त किया गया।

1 जनवरी, 1950 से इसे भारत सरकार के शिक्षा मन्त्रालय ने अपने नियन्त्रण में ले लिया तथा इसका नाम 'प्रौढ़ान्ध प्रशिक्षण केन्द्र' (Training Centre for the Adult Blind--TCAB) रखा गया। इस इकाई में वर्तमान में भी 18-40 वर्ष की आयु वर्ग के दृष्टिहीन महिला व पुरुषों को अनेक नये-पुराने व्यवसायों में प्रशिक्षण दिया जाता है।

इसके पश्चात् भारत सरकार ने दृष्टिहीनों की शिक्षा एवं पुनर्वास सेवाओं के विकास के लिए अंन्य कई एककों की स्थापना की, जिनकी संक्षिप्त जानकारी यहाँ दी जा रही है।

भारत के प्रथम ब्रेल मुद्रणालय 'केन्द्रीय ब्रेल प्रेस' (Central Braille Press--CBP) की स्थापना सन् 1951 में की गयी। इसमें विद्यालय स्तर की पाठ्य-पुस्तकों को आजकल प्राथमिकता के आधार पर छापा जाता है। सामान्य ज्ञान की कुछ पुस्तकें तथा पत्रिकाएं भी प्रकाशित की जा रही हैं। पिछले कुछ वर्षों में इसे कम्प्यूटरीकृत कर दिया है।

ब्रेल उपकरण बनाने वाले एकक 'एम.बी.ए.' (Manufacturing of Braille Appliances) की स्थापना 1952 में हुई। इसके द्वारा ब्रेल स्लेट, टेलर फ्रेम, अवेकस, लांग/फोल्डिंग छड़ियाँ इत्यादि अनेक शैक्षिक तथा मनोरंजन सम्बन्धी उपकरण बनाये जा रहे हैं।

आश्रित कार्यशाला (Sheltered Workshop) को 1954 में आरम्भ किया गया था। इसका उद्देश्य टी.सी.ए.बी. के प्रशिक्षणार्थियों को प्रशिक्षण समाप्त होने पर अपने व्यवसाय में कुछ अतिरिक्त अनुभव उपलब्ध करवाना तथा एक सीमित अवधि के लिए अस्थायी रोजगार प्रदान करना था। अनेक कारणों से इस वांछनीय इकाई को लगभग एक दशक पूर्व बन्द कर दिया गया।

युवा दृष्टिहीन महिलाओं को भी प्रशिक्षण सुविधाएं प्रदान करने की दृष्टि से प्रौढ़ान्ध प्रशिक्षण केन्द्र की 'महिला शाखा' (Women Section) को 1957 में आरम्भ किया गया। इस केन्द्र का मुख्य प्रशिक्षण व्यवसाय आज भी कुर्सी बुनाई है। यद्यपि कुछ अन्य सहायक व्यवसायों में भी प्रशिक्षण दिया जाता है। लेखक के विचार से-महिला व पुरुष-दोनों प्रशिक्षण केन्द्रों में व्यापक सुधार तथा आधुनिकीकरण की बहुत आवश्यकता है।

बालकों की स्कूली शिक्षा के लिए 'दृष्टिहीन बालकों हेतु आदर्श विद्यालय' (Model School for Blind Children--MSBC) का स्थापना वर्ष 1959 है। 1980 के दशक में इसका नाम 'दृष्टिबाधितार्थ आदर्श विद्यालय' (Model School for the Visually Handicapped--MSVH) रखा गया। इसमें आजकल नर्सरी से बारहवीं कक्षा तक दृष्टिबाधित बालक-बालिकाओं को शिक्षा दी जा रही है।

प्रिन्ट विकलांग 'राष्ट्रीय पुस्तकालय' (National Library for the Print Handicapped--NLPH) वर्ष 1963 में स्थापित किया गया। संस्थान के एक प्रकाशन के अनुसार देश भर में इस पुस्तकालय के सदस्यों की संख्या दस हजार से भी ऊपर है। कुछ वर्षों बाद इसमें ध्वन्यांकित इकाई को भी जोड़ा गया, परन्तु इकाई को 1990 में एक स्वतन्त्र एकक का दर्जा दे दिया गया।

राष्ट्रीय दृष्टिहीनार्थ केन्द्र (National Centre for the Blind-NCB): बेहतर प्रशासन की दृष्टि से उपर्युक्त इकाइयों को एक ही प्रशासनिक निदेशालय के अन्तर्गत लाया गया। इस निदेशालय की स्थापना दिसम्बर, 1967 में की गयी और इसे 'राष्ट्रीय दृष्टिहीनार्थ केन्द्र' (National Centre for the Blind) का नाम दिया गया।

राष्ट्रीय दृष्टिबाधितार्थ संस्थान की स्थापना व विकास: 1970 के दशक में शोध तथा आदर्श राष्ट्रीय सेवाएं विकसित करने के उद्देश्य से विभिन्न विकलांगता क्षेत्रों में राष्ट्रीय संस्थानों का विचार सामने आया। राष्ट्रीय दृष्टिहीनार्थ केन्द्र का दर्जा बढ़ाकर 2 जुलाई, 1979 को इसे 'राष्ट्रीय दृष्टिबाधितार्थ संस्थान' (National Institute for the Visually Handicapped--NIVH) घोषित कर दिया गया।

संस्थान के निम्नलिखित तीन प्रमुख उद्देश्य निर्धारित किये गये थे:-

(1) राष्ट्रीय स्तर की आदर्श पुनर्वास सेवाएं विकसित करना।

(2) दृष्टिबाधितों की शिक्षा व पुनर्वास हेतु मानव संसाधन विकसित करना।

(3) दृष्टिबाधितों की शिक्षा एवं पुनर्वास से सम्बद्ध विभिन्न विषयों पर खोज करना तथा उसमें सहायता करना।

1982 में संस्थान को वर्तमान सामाजिक न्याय एवं आधिकारिता मन्त्रालय के अन्तर्गत एक स्वायत्त संगठन का दर्जा दे दिया गया।

दक्षिण भारतीय दृष्टिबाधितों की सुविधा के लिए संस्थान ने सन् 1988 में एक क्षेत्रीय केन्द्र चेन्नई में स्थापित किया। सन् 1997 में कोलकाता व हैदराबाद में एन.आई.वी.एच. ने अपने चैप्टर्स शुरू किये, सन् 2000 में 'जिला विकलांग पुनर्वास केन्द्र' (District Disabled Rehabilitation Centre--DDRC) योजना लागू की और सन् 2001 में सुंदर नगर (हिमाचल प्रदेश) में 'संयुक्त पुनर्वास केन्द्र' (Composite Rehabilitation Centre--CRC) की स्थापना की।

इस प्रसार का उद्देश्य अधिकाधिक दृष्टिहीनों को पुनर्वास सेवाएं प्रदान करना है। डी.डी.आर.सी. तथा सी.आर.सी. द्वारा दृष्टिबाधितों के साथ-साथ अन्य विकलांगों को भी आवश्यक पुनर्वास सेवाएं दी जाती हैं।

शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम :- 1979 के बाद बम्बई, दिल्ली, नरेन्द्रपुर (पश्चिम बंगाल) तथा चैन्नई के क्षेत्रीय दृष्टिहीनार्थ शिक्षक-प्रशिक्षक केन्द्रों को एन.आई.वी.एच. के प्रशासनिक नियन्त्रण में लाया गया। कुछ क्षेत्रीय केन्द्रों को यह परिवर्तन पसन्द नहीं आया जिसने अगले वर्षों में कुछ तनाव और समस्याओं को भी जन्म दिया, परिणामस्वरूप नरेन्द्रपुर तथा चेन्नई केन्द्रों को छोड़कर शेष केन्द्र 1985-86 सत्र के समाप्त होने पर बन्द कर दिये गये।

इसी बीच संस्थान ने 1984-85 सत्र से दृष्टिबाधितार्थ माध्यमिक शिक्षण-प्रशिक्षण डिप्लोमा पाठ्यक्रम आरम्भ किया। यह पाठ्यक्रम शुरू में केवल संस्थान

के मुख्यालय में ही चलाया गया। इसके अतिरिक्त दृष्टिबाधितार्थ प्राथमिक शिक्षण-प्रशिक्षण के लिए एक पत्राचार पाठ्यक्रम भी चलाया गया। यह पाठ्यक्रम सन् 1986-87 तक ही चल पाया।

दृष्टिबाधितार्थ प्राथमिक विद्यालय डिप्लोमा पाठ्यक्रम तैयार किया गया। नये पाठ्यक्रम को 1987 से हैदरावाद तथा भुवनेश्वर में शुरू किया गया।

संस्थान ने सत्र 2002-2003 से अपने मुख्यालय के परिसर में चार वर्षीय बी.ए., बी.एड. (B.A., B.Ed.) पाठ्यक्रम गढ़वाल विश्वविद्यालय के सहयोग से आरम्भ किया है। पाठ्यक्रम को सफलतापूर्वक पूरा करने वालों को बी.ए., बी.एड. की उपाधि गढ़वाल विश्वविद्यालय द्वारा प्रदान की जायेगी।

2002-2003 सत्र में संस्थान देश के चार स्थानों पर माध्यमिक शिक्षकों तथा 20 केन्द्रों में प्राथमिक शिक्षकों के लिए पाठ्यक्रम आयोजित कर रहा है। 20 केन्द्रों में से 2 केन्द्र बधिर/दृष्टिहीनों के अध्यापकों के लिए हैं।

अनेक सीमाओं के बावजूद एन.आई.वी.एच. द्वारा प्रशिक्षित अध्यापकों की गुणवत्ता का स्तर प्रशंसनीय रहा है। अनेक कारणों से शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रम के लिए पृथक् एवं स्वतन्त्र विभाग तथा विभागाध्यक्ष का अभाव इसकी स्पष्ट विकलांगता तथा उपयुक्त विकास की ज्वलंत समस्याएं रही हैं।

विविध गतिविधियाँ:- संस्थान की अनेक उपलब्धियों में भारती ब्रेल, हिन्दी, गुजराती इत्यादि भाषाओं में ब्रेल आशुलिपि, हिन्दी के लिए संकोच व संक्षेप संहिता तथा गणित संहिता का विकास शामिल है। साथ ही साथ इसने गणित किट, ब्रेल शॉर्ट हैण्ड मशीन तथा इंटरप्वाइंट ब्रेल स्लेट भी विकसित की।

संस्थान प्राथमिक स्तर पर संस्थाओं के माध्यम से छात्रों को निःशुल्क ब्रेल पाठ्य-पुस्तकें उपलब्ध करवाता है और विशिष्ट उपकरणों तथा सभी ब्रेल साहित्य को सस्ती दरों पर प्रदान करता है।

(संस्थान के अनेक प्रकाशनों तथा व्यक्तिगत जानकारी पर आधारित)

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली:-

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिपद् (National Council for Educational Research and Training--NCERT) की स्थापना 1 सितम्बर, 1961 को विद्यालय स्तरीय शिक्षा के सभी पक्षों की गुणवत्ता में सुधार के उद्देश्य से की गयी थी। वर्तमान में यह परिषद् पूर्णतः केन्द्रीय सरकार से वित्तीय सहायता

प्राप्त मानव संसाधन विकास मन्त्रालय के अन्तर्गत एक स्वायत्त संगठन है। इसका मुख्य कार्यपालक अधिकारी निदेशक होता है।

विकलांग बालकों हेतु कार्यक्रमः वर्ष 1984 में परिषद् ने अपने शिक्षा एवं विस्तार सेवा विभाग के अन्तर्गत विकलांग बालकों की शिक्षा से सम्बद्ध इकाई स्थापित की। राष्ट्रीय दृष्टिबाधितार्थ संस्थान, देहरादून तथा अन्य संगठनों के सहयोग से इस इकाई ने आरम्भिक कार्यक्रम शुरू किये।

इस इकाई द्वारा दृष्टिबाधित, न्यून दृष्टि, श्रवण विकलांग तथा मानसिक विकलांग बालकों की समेकित शिक्षा के क्षेत्र में कई परियोजनाएं चलाई गईं। समेकित शिक्षा इकाइयों में कार्यरत शिक्षकों के लिए अल्पकालिक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम आयोजित करने के साथ-साथ विभिन्न विकलांगता वर्गों के बालकों की पहचान, उनकी विशिष्ट शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सामग्री भी तैयार की।

दृष्टिबाधित बालकों को विज्ञान तथा गणित शिक्षण सम्बन्धी कार्यशालाओं का आयोजन व न्यून-दृष्टि बालकों की शैक्षिक आवश्यकताएं पूरी करने के लिए पाठ्यक्रम भी आयोजित किये।

समस्त विकलांग बालकों की शैक्षिक आवश्यकताएं पूरा करने के लिए बहु-कौशल शिक्षक-प्रशिक्षण परियोजना (MCTTP) विशिष्ट शिक्षा इकाई का एक और कार्यक्रम था।

विशेष आवश्यकता समूह शिक्षा विभागः 1995 में इस इकाई का नाम बदल दिया गया तथा इसे विभाग का दर्जा दे दिया गया। नाम रखा गया- 'विशेष आवश्यकता समूह शिक्षा विभाग' (Department of Education of Groups with Special Needs--DEGSN)। इसके अन्तर्गत अब अल्पसंख्यक वर्ग, अनुसूचित जाति/जनजाति के बालकों, लड़कियों तथा सब प्रकार के विकलांग बालकों की शिक्षा पर ध्यान दिया जाता है। समेकित शिक्षा के स्थान पर अब विभाग का विशेष बल 'सम्मिलित शिक्षा' (Inclusive Education) पर है।

(आंशिक रूप से परिषद् के एक प्रकाशन पर आधारित)।

ऑल इण्डिया कन्फेडरेशन ऑफ दी ब्लाइंड, दिल्लीः-

'अखिल भारतीय दृष्टिहीन परिसंघ' (All India Confederation of the Blind), जो ए.आइ.सी.बी. (AICB) के नाम से सुविख्यात एवं लोकप्रियता के शिखर तक पहुँचा हुआ संगठन है, इसकी स्थापना सितम्बर, 1980 में की गयी थी। यह

भारत के तीन प्रमुख संगठनों में से एक ऐसा ज्वाजल्यमान प्रकाशस्तम्भ है, जो अपनी आभा से दृष्टिहीन जीवन को आत्मालोकित और विश्वासमयी दृष्टि प्रदान करता है। मात्र दो दशक की अवधि के दौरान ही इससे सुसम्बद्ध होने वाली लगभग 22 शाखाएँ हैं। गतिविधियों एवं कार्यक्रमों की दृष्टि से इसने पंजाब से कर्नाटक तथा गुजरात से असम तक राष्ट्र के 11 से अधिक राज्यों में अपने कार्यक्रमों का सुपरिणाम अनुभव किया है, एक अमिट छाप छोड़ी है और दृष्टिहीन कल्याण का उद्घोष किया है।

परिसंघ ने 12 दृष्टिहीनों को लेकर 3 कार्यक्रम प्रारम्भ किए थे, परन्तु वर्तमान में लगभग 20 कार्यक्रमों का सफल संचालन करते हुए 15,000 दृष्टिहीनों तथा उनके परिवारों को शिक्षा, प्रशिक्षण एवं पुनर्वास सेवाएं प्रदान की जा रही हैं। कम्प्यूटर प्रशिक्षण परियोजना, वृद्धों के लिए स्वर्णिम आयु केन्द्र, उनके लिए पेंशन स्कीम जैसे कार्यक्रमों के अतिरिक्त परिसंघ निम्नलिखित अन्य सेवाओं को भी संचालित कर रहा है, इन सभी सेवाओं पर 1,70,00,000 रुपये प्रतिवर्ष व्यय हो रहे हैं:

ग्रामीण क्षेत्रों में घर-घर जाकर दृष्टिहीनों को आवश्यकतानुसार सेवाएं अर्पित करना; ऐसे ग्रामीणों की सेवा करना, जो बड़ी आयु के कारण लिख-पढ़ नहीं सकते; अलवर, पटना, मुजफ्फरपुर, नलगोंडा, बाँदा व चित्रकूट में परिसंघ द्वारा समुदाय आधारित पुनर्वास कार्यक्रम चलाया जा रहा है, इन ग्रामीण दृष्टिहीनों को स्वरोजगार निमित्त अपनी दुकान/व्यापार शुरू करने के लिए ब्याज मुक्त ऋण प्रदान करना, सी.बी.आर. कार्यक्रमों के माध्यम से अब तक 2000 दृष्टिहीनों का सफल पुनर्वास किया जा चुका है; अन्य परियोजनाओं के अन्तर्गत वास्तविक मूल्य को 75% राशि पर दृष्टिहीनों के काम में आने वाले उपकरण सुलभ कराना; ध्वन्यांकित पुस्तकें अधिकाधिक मात्रा में विद्यालयी व विश्वविद्यालयी विद्यार्थियों को उपलब्ध कराना; दृष्टिहीन बालक-बालिकाओं के लिए विद्यालय चलाना; न्यून दृष्टि वालों के लिए इकाई, संगठन संचालन में उच्चस्तरीय प्रशिक्षण, दृष्टिबाधित युवतियों/महिलाओं के लिए राष्ट्रीय मंच का गठन, उच्च शिक्षा प्राप्त कर रही कुशाग्र 15 योग्य युवतियों को छात्रवृत्ति तथा छात्रावास उपलब्ध कराना; आकस्मिक रूप से दृष्टि गँवाने वाले भाई-बहनों के लिए विशिष्ट प्रशिक्षण को व्यवस्था, उन्हें स्वच्छन्दतापूर्वक चलने की ट्रेनिंग देना, ताकि वे लाश बनकर एक स्थान पर टिक न जाएँ; किसी कारणवश बीच में नौकरी छूटे तो उनके अधिकारों का सतत आन्दोलन रूप सक्रिय करना।

अब तक परिसंघ की स्फूर्तिदाई गतिविधियों का परिणाम है कि 100 दृष्टिबाधित व्यक्ति रोजगार पा चुके हैं, जिनमें दस को श्रेष्ठ कर्तव्यनिष्ठा के लिए पुरस्कृत भी किया गया है। संस्थान हिन्दी व अंग्रेजी में आशुलिपि का एक वर्षीय

प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाता है और अनेकानेक विषयों पर ब्रेल लिपि में पुस्तकें उपलब्ध कराता है।

परिसंघ के सपने अनन्त हैं, गतिविधियों के पड़ाव भी अनन्त हैं। यह संस्थान सिर्फ कल्याण का केन्द्र न बने, अपितु हर दृष्टिहीन की आशा का आधार बने, इसी दिशा में आशा की किरण बने रहने की लिए नई मंजिलों की तलाश जारी है।

परिसंघ का ध्येय दृष्टिविहीन वर्ग की आत्मचेतना और आत्मविवेक है। यह तो गतिविधियों का संक्षिप्त झरोखा है।

नेशनल एसोसिएशन फॉर द ब्लाइंड, मुम्बई:-

नेशनल एसोसिएशन फॉर द ब्लाइंड (NAB), मुम्बई की स्थापना 19 जनवरी, 1952 के दिन बम्बई में दृष्टिहीनता की रोकथाम तथा दृष्टिहीनों के कल्याण हेतु की गयी। स्वर्गीय अल्पाईवाला इसकें संस्थापक अध्यक्ष बने।

प्रारम्भ में वर्ल्ड कॉउंसिल फॉर दी वेलफेयर ऑफ द ब्लाइंड (डब्ल्यू.सी.डब्ल्यू.बी) द्वारा सभी छः सीटें इसे दी गयीं। एन.ए.बी. अध्यक्ष को उसका उपाध्यक्ष भी बनाया गया। पर्किन्स स्कूल, अमेरिकन फाउन्डेशन फार द ओवरसीज ब्लाइंड (ए.एफ.ओ.बी.) तथा रॉयल कॉमनवेल्थ सोसायटी फार द ब्लाइंड (आर.सी.एस.बी.) इसी के माध्यम से भारत में सहायता भेजा करते थे।

देश भर में एन.ए.बी. की 18 राज्य शाखाएं तथा 64 जिला शाखाएं हैं।

एन.ए.बी. का योगदान शिक्षक-प्रशिक्षण तथा दृष्टिहीनों की शिक्षा व पुनर्वास के क्षेत्र में प्रशंसनीय समझा जा सकता है। 1960 से पर्किन्स स्कूल ने प्रार्थना-पत्र एन.ए.बी. के माध्यम से मँगवाना शुरू कर दिया था। माता लक्ष्मी नर्सरी की स्थापना 1969 में हुई, जो दृष्टिबाधित बालकों को स्कूल शिक्षा के लिए तैयार करती है, अन्य विकलांगताओं से ग्रस्त दृष्टिहीनों के लिए कार्यक्रम 1995 में शुरू किया गया तथा बधिर दृष्टिहीनों के लिए भी अब 9 केन्द्र चलाये जा रहे हैं। समेकित शिक्षा के क्षेत्र में इसने 1982 से काम शुरू किया।

एन.ए.बी. ने पुरानी मशीनों की सहायता से 1958 में जिस छोटी-सी ब्रेल प्रेस की स्थापना की थी, वह आज देश की आधुनिकतम व बड़ी ब्रेल प्रेसों की श्रेणी में आ चुकी है।

मुम्बई में पृथक् पुनर्वास विभाग की स्थापना 1978 में की गयी। इसमें वयस्क दृष्टिबाधितों के लिए पुनर्वास पाठ्यक्रम आयोजित किये जाते हैं। इसके

अलावा एन.ए.बी. माउंट आबू (राजस्थान) तथा फान्सा (गुजरात) में भी वयस्क दृष्टिहीनों के लिए पुनर्वास केन्द्र चला रही है।

इस संगठन ने दृष्टिबाधितों को रोजगार दिलवाने का काम 1952 में शुरू कर दिया था। प्राप्त आँकड़ों के अनुसार अब तक इसके द्वारा 6 हजार दृष्टिहीन महिला व पुरुषों को रोजगार दिलवाया जा चुका है। साथ ही साथ, अब स्वरोजगार की योजना भी लागू की गयी है। दृष्टिबाधित वृद्धों के लिए मुम्बई से कुछ दूर खण्डाला में एक केन्द्र 1970 में स्थापित किया गया।

स्पष्ट है कि एन.ए.बी. ने दृष्टिबाधित बालकों से लेकर वृद्ध व्यक्तियों तक के लिए शिक्षा व पुनर्वास के कार्यक्रम आरम्भ किये हैं।

(आंशिक रूप से 'Blind Welfare' दिसम्बर, 2001 के अंक पर आधारित)

नेशनल फेडरेशन ऑफ द ब्लाइंड, दिल्ली:-

संयुक्त राज्य अमेरिका में दृष्टिहीनों के संघ द्वारा अपने अधिकारों के लिए सशक्त आन्दोलन चलाया गया। इससे प्रेरित होकर भारत के कुछ शिक्षित दृष्टिहीनों ने वर्ष 1970 में दिल्ली में 'राष्ट्रीय दृष्टिहीन संघ' (National Federation of the Blind) की स्थापना की। यह संगठन एन.एफ.बी. (N.F.B.) के नाम से लोकप्रिय हुआ। तत्कालीन परिवेश को ध्यान में रखते हुए यह एक भिन्न व प्रगतिशील कदम था। इसके उद्देश्यों में शिक्षा, प्रशिक्षण व रोजगार के क्षेत्रों में दृष्टिहीनों के लिए समान अवसरों हेतु संघर्ष करना इत्यादि सम्मिलित हैं।

संघ की 1998-99 की वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार देश भर में इसकी 12 शाखाएं, 3 एफिलिएट तथा 21 इकाइयाँ हैं। इसकी कुछ प्रमुख उपलब्धियाँ तथा गतिविधियाँ इस प्रकार हैं:-

दृष्टिहीनों के लिए ग्रुप-ए तथा ग्रुप-बी नौकरियों के लिए अधिकतम आयु में 10 वर्ष की छूट प्राप्त करना। वर्ष 1998-99 में 531 दृष्टिबाधितों को नौकरी दिलवाना।

एन.एफ.बी. ने 1977 में एक ब्रेल पुस्तकालय की स्थापना बहादुरगढ़ (हरियाणा) में की। इसकी अपनी अनुलेखन तथा प्रूफ-रीडिंग इकाइयाँ भी हैं और सदस्य संख्या है-- 579, इस संगठन ने वर्ष 1988-89 में बहादुरगढ़ में ही ब्रेल प्रेस स्थापित की। इस प्रेस में हिन्दी व अंग्रेजी की पुस्तकें, मासिक पत्रिका 'स्पर्श-सेतु' तथा त्रैमासिक अंग्रेजी पत्रिका 'विजनरी' (Visionary) छापी जाती हैं।

संघ ने अनुस्थितिज्ञान तथा चलिष्णुता परियोजना 1977 में शुरू की। इसके अन्तर्गत अनुदेशक को देश के विभिन्न भागों में भेजकर दृष्टिबाधितों को सुगमतापूर्वक चलने-फिरने का प्रशिक्षण दिया जाता है।

इसके अतिरिक्त इस संगठन द्वारा जम्मू में दृष्टिहीन बालिकाओं के लिए तथा कानपुर में लड़कों के लिए विद्यालय बनाये जा रहे हैं। इसके द्वारा समय-समय पर सम्मेलन भी आयोजित किये जाते हैं।

(एन.एफ.बी. की वर्ष 1998-99 की रिपोर्ट से प्राप्त सूचनाओं पर आधारित)।

ब्लाइंड पीपुल्स एसोसिएशन, अहमदाबाद:-

स्वर्गीय जगदीश के. पटेल ने 1954 में कुछ दृष्टिहीनों के साथ मिलकर एक मनोरंजन क्लब के रूप में इसकी शुरूआत की थी। इसका नाम रखा-'ब्लाइंड मैन्स एसोसिएशन' (Blind Men's Association) यह संगठन बी.एम.ए. (B.M.A) के नाम से लोकप्रिय हुआ। कुछ वर्ष पूर्व इसका नाम बदल दिया गया। संगठन का वर्तमान नाम है- 'ब्लाइंड पीपुल्स एसोसिएशन' (Blind People's Association)। लोग प्रायः इसे बी.पी.ए. (B.P.A) कहकर ही पुकारते हैं। वर्तमान में यह संगठन दृष्टिहीनता की रोकथाम से लेकर दृष्टिबाधित व अन्य विकलांगों के लिए शिक्षा, परामर्श, पुनर्वास एवं रोजगार की परियोजनाएं चला रहा है। इसके कुछ प्रमुख कार्यक्रम इस प्रकार हैं:-

वयस्क दृष्टिहीनार्थ प्रशिक्षण विद्यालय किशोरावस्था/युवावस्था में दृष्टिहीन हुए व्यक्तियों को मनोवैज्ञानिक रूप से स्वयं को विकलांगता से समायोजित करने में तथा प्राथमिक स्तर की शिक्षा ग्रहण करने में सहायता देता है।

बी.पी.ए. द्वारा संचालित माध्यमिक तथा उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में 150 दृष्टिहीन छात्र शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं।

इस संगठन के तकनीकी विद्यालय में दृष्टिबाधितों को मोटर-रिवाइंडिंग, खड्डीचालन, किताबसाजी व लकड़ी के काम में एक वर्ष का प्रशिक्षण दिया जाता है।

इसके अतिरिक्त समेकित शिक्षा योजना के अन्तर्गत 400 दृष्टिबाधित बच्चे शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। संगीत में रुचि रखने वाले दृष्टिहीनों के लिए संगीत विद्यालय उपलब्ध है, दृष्टिबाधितों को आशुलिपि प्रशिक्षण की सुविधा भी उपलब्ध है। बी.पी.ए. के कम्प्यूटर प्रशिक्षण केन्द्र में दृष्टिबाधित तथा अन्य विकलांग व्यक्ति

भी प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं। इसके अलावा इस संगठन के द्वारा बधिर दृष्टिहीनों के लिए भी कार्यक्रम चलाया जा रहा है।

(आंशिक रूप से बी.पी.ए. की 2000-2001 की वार्षिक रिपोर्ट पर आधारित)।

हेलन केलर इन्टरनेशनल, न्यूयॉर्क:-

कु. हेलन केलर के योगदान के कारण उनकी स्मृति में 'अमेरिकन फाउंडेशन फॉर ओवरसीज ब्लाइंड' (AFOB) का नाम बदलकर सन् 1977 में 'हेलन केलर इन्टरनेशनल' (Helen Keller International--HKI) रखा गया।

स्वयं ए.एफ.ओ.बी. का जन्म सितम्बर, 1945 में हुआ था। सर्वप्रथम इसने यूरोपीय दृष्टिहीनों की सहायता के लिए कदम उठाये, जिनकी संस्थाएं/संगठन तथा प्रशिक्षण सामग्री द्वितीय विश्व युद्ध में नष्ट कर दी गयी थीं। आवश्यकता का आकलन करने के बाद ए.एफ.ओ.बी. ने नये/पुराने कपड़ों के लिए अपील की। वर्ष 1946 के अन्त तक 60 हजार पाउण्ड कपड़े तथा एक लाख साबुन फ्रांस, बेल्जियम, नॉर्वे तथा हॉलैण्ड की दृष्टिहीनार्थ संस्थाओं को भेजे गये। दृष्टिहीनों की नष्ट-संस्थाओं के पुनर्निर्माण का कार्य 1949 तक प्रायः समाप्त हो चुका था। अतः ए.एफ.ओ.बी. ने दूसरे महाद्वीपों की ओर ध्यान देना शुरू किया।

1950 के दशक के आरम्भ में इस संगठन ने मिश्र, इरान, इराक, कुवैत और इजराइल में पुनर्वास परियोजनाएं चलाईं। येरुसलम में प्रथम ब्रेल प्रेस लगायी और बेरूत (लेबनान) में अपना क्षेत्रीय कार्यालय भी 1962 में स्थापित किया, दक्षिण अमेरिका में इसका क्षेत्रीय कार्यालय 1957 में पहले चिली और फिर अर्जेन्टीना में बनाया गया। सुदूर-पूर्व के लिए इसका क्षेत्रीय कार्यालय पहले मनीला (फिलीपीन्स) और फिर मलेशिया में सक्रिय हुआ। 1961-71 के मध्य विश्व के 7 देशों में दृष्टिहीनता से सम्बद्ध इसकी 21 परियोजनाओं पर लगभग 28 मिलियन डॉलर का व्यय किया गया।

सन् 1968 से ए.एफ.ओ.बी. ने दृष्टिहीनता की रोकथाम पर विशेष ध्यान देना शुरू किया। वर्ष 1972 तक इस संगठन की गतिविधियाँ 103 देशों में फैल चुकी थीं।

वर्तमान में भी एच.के.आई. का मुख्यालय पहले की तरह न्यूयॉर्क में है और अब भी यह संगठन विश्व स्तर पर सक्रिय है किन्तु इसके काम का केन्द्र-बिन्दु नेत्र स्वास्थ्य व उससे सम्बद्ध प्रशिक्षण है। इसका नेत्र स्वास्थ्य विभाग वयस्क

तथा बाल मोतियाबिंद, न्यून दृष्टि पुनर्वास एवं आरम्भिक नेत्र देखभाल परियोजनाओं का उत्तरदायित्व सम्भालता है। स्वास्थ्य एवं पौष्टिकता विभाग विटामिन-ए कैप्सूल वितरण व शिशुओं के लिए स्तनपान के महत्त्व पर ध्यान देता है। इसके अतिरिक्त नदी-दृष्टिहीनता (River Blindness), रोहे (Trachoma) विभाग इनसे उत्पन्न दृष्टिहीनता की रोकथाम का काम करते हैं तथा प्रशिक्षण व शिक्षा विभाग सेवाओं की बढ़ती माँग पूरा करने के लिए कर्मचारियों के प्रशिक्षण की व्यवस्था करता है।

(आंशिक रूप से ए.एफ.ओ.बी. द्वारा प्रकाशित 'The Unseen Minority'1976 तथा एच.के.आई. की वेबसाइट से प्राप्त सूचनाओं पर आधारित)।

वर्ल्ड ब्लाइंड यूनियन (W.B.U):-

वर्ल्ड कॉउंसिल फार वेलफेयर ऑफ दी ब्लाइंड (डब्ल्यू.सी.डब्ल्यू.बी.) तथा इन्टरनेशनल फेडरेशन ऑफ द ब्लाइंड (आई.एफ.बी.) के आपसी विलय के फलस्वरूप 1984 में डब्ल्यू.बी.यू. का गठन किया गया। इसकी नियमावली को संघ की प्रथम महासभा द्वारा रियाद (सऊदी अरब) में 26 अक्तूबर, 1984 को स्वीकार किया गया।

यह एक गैर-राजनीतिक, गैर-धार्मिक, गैर-सरकारी व गैर-लाभ कमाने वाला संगठन है। यह संघ 158 देशों के दृष्टिहीन तथा आंशिक रूप से देखने वालों के 600 संगठनों का प्रतिनिधित्व करता है। इसे संयुक्त राष्ट्र की अन्य एजेन्सियों के साथ-साथ आर्थिक व सामाजिक आयोग में सलाहकार की भूमिका प्राप्त है।

दुनिया भर में डब्ल्यू.बी.यू. के 6 क्षेत्रीय संघ हैं। वर्तमान में इसकी अध्यक्ष स्वीडन की सुश्री किकी नॉर्डस्ट्रॉम हैं। दृष्टिहीन महिलाओं तथा बालकों के लिए इसकी स्थायी समितियाँ हैं।

संघ की मान्यता है कि दृष्टिहीन तथा आंशिक रूप से दृष्टिवान (Partially Seeing) सहित प्रत्येक व्यक्ति जन्म के समय समान होता है और उसे व्यक्तिगत सम्मान एवं मूल मानवाधिकारों का हक है। ये अधिकार उसे विकलांगता, जाति, रंग, लिंग, भाषा अथवा धर्म इत्यादि के आधार पर बिना भेदभाव के पूर्ण रूप से बिना किसी सीमा के प्रदान किये जायें।

डब्ल्यू.बी.यू. के निम्नलिखित उद्देश्य हैं:

दृष्टिहीनता की रोकथाम तथा इलाज को प्रोत्साहन देना, दृष्टिहीन तथा आंशिक रूप से दृष्टिवानों के कल्याण को आगे बढ़ाना, दृष्टिहीन/आंशिक दृष्टिवानों में व्याप्त

उच्च निर्धनता दर के विरुद्ध कदम उठाना तथा दृष्टिहीनता के क्षेत्र में ज्ञान एवं अनुभव के आदान-प्रदान के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय मंच उपलब्ध करवाना।

(संघ की वेबसाइट से प्राप्त सूचनाओं पर आधारित)।

क्रिस्टोफल ब्लींडनमिशन (सी.बी.एम.) जर्मनी:-

जर्मनी के एक ईसाई मिशनरी अरनेस्ट जेकाब क्रिस्टोफल (Ernest Jacob Christoffel) ने 1908 में 'क्राइस्ट लिश ब्लींडनमिशन' (Christ Liche Blindenmission)--(Christian Mission to the Blind--CBM) नामक संगठन बनाया। उन्होंने तुर्की में 1908 में दृष्टिहीन, अन्य विकलांग तथा अनाथों के लिए सेवाएं शुरू कीं। सन् 1919 में उनके देश से निष्कासन के साथ ही उनका काम भी बन्द हो गया।

क्रिस्टोफल ने 1925 और 1928 में क्रमशः तबरीज तथा इस्फान (इरान में दृष्टिहीन एवं दूसरे विकलांगों के लिए दो आश्रयगृह बनाये। दूसरे विश्व युद्ध ने इस सारे परिश्रम पर पुनः पानी फेर दिया गया। 1951 में एक बार फिर वह इरान लौटे पर बढ़ती आयु के कारण कुछ अधिक न कर पाये और 1955 में उनको मृत्यु हो गयी।

उनके योगदान को देखते हुए, उनकी स्मृति में सी.बी.एम. का नाम बदलकर 1956 में 'क्रिस्टोफल ब्लींडनमिशन' (Christoffel Blindenmission) रख दिया गया। इसका मुख्यालय बेन्सहाइन, जर्मनी में है।

सी.बी.एम. द्वारा अफगानिस्तान में आँखों की देखभाल का काम सन् 1963 में शुरू किया गया। इसके कुछ समय बाद ही इरान में भी इसकी शुरूआत की गयी। इसके द्वारा मोतियाबिंद का पहला ऑपरेशन 1967 में करवाया गया। अगले वर्ष सी.बी.एम. के सेवा क्षेत्र में इथियोपिया, तंजानिया तथा भारत को भी सम्मिलित कर लिया गया। सी.बी.एम. के प्रमुख कार्यक्षेत्र इस प्रकार हैं:-

(1) दृष्टिहीनता की रोकथाम और उपचार।

(2) विकलांग व्यक्तियों की शिक्षा तथा पुनर्वास।

(3) आवश्यक सेवाओं के लिए विभिन्न देशों में राष्ट्रीय स्तर पर अलग-अलग तरह के व्यावसायिकों का प्रशिक्षण।

आँखों के अस्पताल, नेत्र चिकित्सा की चलती-फिरती इकाइयाँ, दृष्टिहीन तथा बधिर व्यक्तियों की शिक्षा और पुनर्वास के कार्यक्रम तथा शारीरिक रूप से

विकलांग व्यक्तियों के लिए अस्पताल सी.बी.एम. की वर्तमान में प्रमुख परियोजनाएं हैं।

(सी.बी.एम. की वेबसाइट से प्राप्त सूचनाओं पर आधारित)।

साईट सेवर्स, ब्रिटेन:-

साईट सेवर्स का वास्तविक एवं पंजीकृत नाम आज भी 'रॉयल कॉमनवेल्थ सोसायटी फॉर दि ब्लाइंड' (Royal Commonwealth Society for the Blind--RCSB) है। इसकी स्थापना एक विलक्षण दृष्टिहीन व्यक्ति सर जॉन विल्सन ने 1950 में की थी। उन्होंने आजीवन इस संगठन का मार्गदर्शन किया और अनेक देशों में दृष्टिहीनता की रोकथाम तथा दृष्टिहीनों के पुनर्वास में प्रशंसनीय भूमिका निभायी।

आर.सी.एस.बी. का मुख्यालय इंग्लैण्ड में है। यह राष्ट्रमण्डलीय देशों में अपनी गतिविधियाँ चलाता है। भारत में इसका कार्यक्रम 1960 के दशक से ही चल रहा है। जनवरी, 1970 में भारतीय कार्यालय का स्तर बढ़ाकर उसे पूरे एशिया के लिए उत्तरदायित्व सौंप दिया गया और डॉ. राजेन्द्र टी. व्यास को इसका प्रथम निदेशक नियुक्त किया गया। उन्होंने 1992 तक इसका सफलतापूर्वक मार्गदर्शन किया। आज भी इसका कार्यालय मुम्बई में स्थित है परन्तु अब वह केवल भारत के लिए उत्तरदायी है।

दृष्टिहीनता की रोकथाम तथा दृष्टिहीन व्यक्तियों के जीवन को पुनर्वास के माध्यम से अधिक सुखद व उपयोगी बनाना इसके प्रमुख उद्देश्य हैं, परन्तु अधिक बल दृष्टिहीनता की रोकथाम पर ही है।

अफ्रीका महाद्वीप में रिवर ब्लाइंडनेस के उन्मूलन में आर.सी.एस.बी. की ऐतिहासिक भूमिका रही है।

यह संगठन दृष्टि जाँच के लिए तथा मोतियाबिंद के उपचार के लिए शिविर लगाता है। छोटे बालकों में दृष्टिहीनता रोकने के लिए विटामिन-ए की गोलियाँ, बाँटता है, आवश्यकतानुसार नर्सों व डॉक्टरों को प्रशिक्षण दिलवाता है, आँखों की देखभाल के लिए शिविर आयोजित करता है। स्थानीय सरकारी और गैर-सरकारी संगठनों के माध्यम से दृष्टिबाधित बालकों के लिए समेकित शिक्षा कार्यक्रम भी चलाता है।

आज विश्व में लाखों व्यक्ति आर.सी.एस.बी. के प्रयासों के फलस्वरूप दृष्टिवान हैं अथवा दृष्टिबाधा के बावजूद सफल और उपयोगी जीवन व्यतीत कर

रहे हैं। 1980 के दशक से इसे साईट सेवर्स कहा जाने लगा और अब पंजीकृत नाम के बजाय अनेक लोग इसे साईट सेवर्स के नाम से ही पहचानते हैं।

(आर.सी.एस.बी. की साईट सेवर्स सम्बन्धी जानकारी उसकी वेबसाइट, भूतपूर्व एशिया डायरेक्टर डॉ. व्यास तथा भारत स्थित साईट सेवर्स के कार्यालय से टेलीफोन द्वारा प्राप्त सूचनाओं पर आधारित)।

विश्व स्वास्थ्य संगठन (World Health Organisation-WHO):-

विश्व स्वास्थ्य संगठन संयुक्त राष्ट्र की एक प्रमुख व महत्त्वपूर्ण एजेंसी है। इसका मुख्यालय जेनेवा (स्विट्जरलैण्ड) तथा दक्षिण-पूर्व एशिया के लिए इसका कार्यालय नई दिल्ली में स्थित है। भारत के अतिरिक्त इस क्षेत्र में बांग्लादेश, थाईलैण्ड तथा इण्डोनेशिया इत्यादि देश सम्मिलित हैं।

विश्व स्वास्थ्य संगठन मूलत: दृष्टिहीनता के विषय में चिकित्सा के कारण से ही अधिक सक्रिय रहता है किन्तु सीमित रूप से पुनर्वास कार्य भी करता है।

उपलब्ध सूचनाओं के अनुसार इस संगठन ने सर्वप्रथम 1950 के दशक में ए.एफ.ओ.बी. के साथ मिलकर अफ्रीका व एशिया में दृष्टिहीनता उन्मूलन के लिए कई उपाय किये थे। तत्पश्चात् 1970 के दशक में इसने चेचक के पूर्ण उन्मूलन में सफलता पायी और इस तरह दृष्टिहीनता के एक बड़े स्रोत को समाप्त कर दृष्टिहीनता घटाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसके द्वारा भारत के राष्ट्रीय दृष्टिहीनता नियन्त्रण कार्यक्रम में भी सक्रिय सहयोग किया जा रहा है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन ने समुदाय आधारित पुनर्वास (सी.बी.आर.) की अवधारणा प्रस्तुत की और उसके लिये एक प्रशिक्षण मैनुअल भी तैयार किया। सी.बी.आर. के माध्यम से अनेक दृष्टिबाधित भी लाभान्वित हो रहे हैं।

इसके अतिरिक्त डब्ल्यू.एच.ओ. दृष्टिहीनता, उसके कारण तथा दृष्टिहीनों की सामाजिक और आर्थिक स्थिति के सम्बन्ध में सर्वेक्षण करता है, उनके परिणामों को विश्लेषण के बाद प्रकाशित करता है और सम्बद्ध सरकारों को उपयुक्त कदम उठाने के लिए प्रेरित करने के साथ-साथ आवश्यक सहयोग भी देता है। स्वयं भी सरकार और गैर-सरकारी संगठनों के साथ मिलकर दृष्टिहीनता की रोकथाम के लिए आर्थिक सहायता देता है तथा परियोजनाओं में अपनी प्रत्यक्ष भूमिका निभाता है।

दक्षिण-पूर्व एशिया क्षेत्र में स्वास्थ्य स्थिति (Health Situation in the South-East Asia Region), 1998-2000 इसकी नवीनतम रिपोर्ट है, जिसमें

दृष्टिहीनता सम्बन्धी इस क्षेत्र के आँकड़े प्रस्तुत किये गये हैं। संगठन के अनुसार इस क्षेत्र के देशों में 50 से 80 प्रतिशत तक दृष्टिहीनता के लिए मोतियाबिंद जिम्मेदार है और 90 प्रतिशत दृष्टिहीनता ऐसी है जिसे रोका जा सकता है।

दक्षिण-पूर्व एशिया सम्बन्धी क्षेत्रीय समिति ने सितम्बर, 2000 की अपनी बैठक में इस क्षेत्र के लिए 'दृष्टि-2020' (Vision-2020) कार्यक्रम के लिए प्रस्ताव पारित किया। इसके अनुसार यह संगठन सरकारी तथा गैर-सरकारी संगठनों के सहयोग से दृष्टिहीनता की रोकथाम के लिए विशेष अभियान चलायेगा।

(आंशिक रूप से संगठन की 1998-2000 रिपोर्ट से प्राप्त सूचनाओं पर आधारित)।

पुनर्वास

-डॉ. आर.एस. चौहान

प्रस्तुत अध्याय में पुनर्वास के अर्थ तथा उसकी परिभाषा के साथ-साथ पुनर्वास की आवश्यकता की चर्चा की गई है, साथ ही समुदाय पर आधारित पुनर्वास (Community based Rehabilitation) का अर्थ एवं महत्त्व तथा इसके आयोजन की चर्चा भी इस अध्याय में प्रस्तुत की गई है।

अर्थ एवं परिभाषा:-

अंग्रेजी शब्द 'Rehabilitation' के लिए हिन्दी में 'पुनर्वास' शब्द को बिना किसी मतभेद के स्वीकार कर लिया गया है। 'एकीकृत शिक्षा' जैसे कुछ शब्द तथा शब्द समूहों के विपरीत 'पुनर्वास' के लिए किसी और शब्द का प्रयोग नहीं किया जाता।

पुनर्वास के अनेक अर्थ व आयाम होते हैं। अतः इस सम्बन्ध में स्पष्टता तथा सार्थक विचार-विमर्श के लिए इस अध्याय की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए, पुनर्वास के अर्थ पर चर्चा और इसकी परिभाषा अपेक्षित है।

चैम्बर्स ट्वेन्टीएथ सैन्चुरी शब्दकोष की एक प्रविष्टि के अनुसार, "Rehabilitation means to restore to former privileges, rights, ranks etc., to make fit after disablement, illness or imprisonment for earning a living or playing a part in the world".

अर्थात्

(पुनर्वास का अभिप्राय भूतपूर्व विशेषाधिकार, अधिकार, पदवी इत्यादि को लौटाना, विकलांगता, बीमारी या कारावास के पश्चात् जीविका उपार्जन अथवा विश्व में भूमिका निभाने योग्य बनाना होता है)।

सम्बद्ध पुस्तक और इस अध्याय की आत्मा को ध्यान में रखते हुए यहाँ पर पुनर्वास की चर्चा विकलांगों, विशेषकर दृष्टिबाधितों की आवश्यकताओं के अनुसार की जाएगी। उपर्युक्त शब्दकोषीय प्रविष्टि से ऐसा प्रतीत होता है कि बड़ी आयु में विकलांग हुए व्यक्तियों को विभिन्न प्रक्रियाओं, तकनीकों व प्रशिक्षण के माध्यम से पूर्णतया अथवा आंशिक रूप से उनकी विकलांगता से पहले की आर्थिक,

सामाजिक, राजनीतिक तथा मानसिक स्थिति में पहुँचाना ही पुनर्वास कहलाएगा। यह मात्र आंशिक सत्य है। परम्परा के अनुसार उस स्थिति में भी 'पुनर्वास' शब्द का ही प्रयोग किया जाता है, जब विकलांग बालकों को अपनी शारीरिक क्षति अथवा दृष्टिबाधा के बावजूद जीवन में अपने शारीरिक, मानसिक, सामाजिक व आर्थिक विकास के सम्भावित उच्चतम बिन्दु पर पहुँचने तथा उस स्थिति को बनाए रखने के लिए सामान्य से भिन्न परन्तु उनके लिए उपयुक्त शिक्षण-प्रशिक्षण तकनीकों का प्रयोग किया जाता है। स्पष्ट है कि पुनर्वास शब्द का प्रयोग विकलांग बालकों तथा वयस्कों, दोनों के संदर्भ में किया जाता है, इसे किसी विशेष आयु वर्ग के विकलांग के लिए आरक्षित नहीं किया गया है, अर्थात् पुनर्वासोन्मुख प्रक्रियाओं व प्रशिक्षण का प्रयोग वयस्क व्यक्ति के विकलांग होने पर उसे यथासम्भव पूर्व आर्थिक, सामाजिक एवं मानसिक स्थिति तक पहुँचाने के लिए भी किया जाता है तथा जन्म के समय विकलांगता से ग्रस्त अथवा बाल्यकाल में विकलांग हुए बालकों को अपने अधिकतम चहुँमुखी विकास तक पहुँचाने के लिए अपनाई गयी प्रक्रियाओं तथा तकनीकों के लिए भी किया जाता है। निम्नलिखित अनुच्छेदों में पुनर्वास की कुछ प्रमुख परिभाषाएं दी जा रही हैं:-

"The term Rehabilitation refers to any process, procedure or programme that enables a disabled individual to function at a more independent and satisfying level. This functioning should include all aspects- physical, mental, emotional, social, eductional and vocational- of the individual's life." (Encyclopedia of Special Education, Volume-3, Page-1329).

अर्थात्

(पुनर्वास का तात्पर्य किसी भी ऐसी प्रक्रिया, कार्यवाही अथवा कार्यक्रम से है जो विकलांग व्यक्ति को अधिक स्वतन्त्र तथा सन्तोषजनक स्तर पर कार्य करने में सक्षम बनाती हो। इसमें सम्बद्ध व्यक्ति के जीवन के समस्त आयाम- शारीरिक, मानसिक, सांवेगिक, सामाजिक, शैक्षिक तथा व्यावसायिक- पक्ष सम्मिलित होने चाहिएं)।

निश्चित रूप से यह एक व्यापक परिभाषा है और इसके अन्तर्गत सर्वांगीण पुनर्वास की ओर संकेत स्पष्ट है।

भारतीय विकलांगता अधिनियम, 1995 की धारा 2 (W) के अनुसार, "Rehabilitation refers to a process aimed at enabling persons with disabilities to reach and maintain their physical, sensory, intelectual, psychiatric or social functional levels."

अर्थात्

(पुनर्वास का अभिप्राय उस प्रक्रिया से है जिसका उद्देश्य विकलांगताग्रस्त व्यक्तियों को अपनी शारीरिक, संवेदी, बौद्धिक, मनोचिकित्सकीय या सामाजिक स्तरों को व्यावहारिक रूप में प्राप्त करने व बनाए रखने में सक्षम बनाना होता है)।

इस परिभाषा का अभिप्राय यह है कि दृष्टिबाधित सहित विकलांगताग्रस्त समस्त व्यक्तियों को ऐसी उपयुक्त पुनर्वास प्रक्रिया उपलब्ध करवाई जाए जिससे वे शारीरिक, संवेदी, बौद्धिक, मनोचिकित्सकीय अथवा सामाजिक क्षेत्रों में जिस/जिनमें भी सम्बद्ध विकलांग व्यक्ति विकलांगता के कारण पिछड़ा हो, अपनी शक्ति के अनुसार अधिकतम स्तर को प्राप्त कर सके। यह पुनर्वास प्रक्रिया उनके उच्चतम स्तर तक पहुँचने पर समाप्त नहीं होगी अपितु आवश्यकतानुसार चलती रहेगी ताकि उस उच्चतम बिन्दु पर भविष्य में वे स्वयं को स्थिर रख सकें।

यहाँ पर 'प्रक्रिया' शब्द को अत्यधिक व्यापक अर्थ में लिया गया है और इसके अन्तर्गत वे समस्त तकनीकें, उपाय, प्रशिक्षण विधियाँ एवं विशिष्ट उपकरण शामिल हैं जिनकी आवश्यकता विकलांग विशेष को अपने अधिकतम विकास बिन्दु पर पहुँचने तथा उस श्रेष्ठता को बनाए रखने के लिए हो सकती है। इस परिभाषा के कुछ शब्द भ्रम उत्पन्न कर सकते हैं, परन्तु ध्यान रहे कि यह विकलांगता की सामान्य परिभाषा है और अधिनियम में सम्मिलित मानसिक विकलांग, मानसिक रोगी तथा प्रमस्तिष्क पक्षाघात से ग्रस्त इत्यादि सभी विकलांग वर्गों के लिए है। संक्षेप में पुनर्वास का अभिप्राय विकलांगताग्रस्त प्रत्येक आयु, वर्ग, लिंग, सामाजिक एवं आर्थिक स्तर के व्यक्ति का अधिकतम सर्वांगीण विकास करना तथा उसे स्वयं व समाज के लिए उपयोगिता की अधिकतम स्थिति में बनाए रखना है।

उद्देश्य:-

ऊपर की गयी चर्चा से पुनर्वास के उद्देश्य स्पष्ट हो जाते हैं। यहाँ पर उन्हें एक सूची के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास है, जिससे उन्हें समझने में सरलता एवं सुगमता रहे। प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं:-

1. विकलांग व्यक्तियों का विकलांगता की मात्रा तथा उनके पुनर्वास को प्रभावित करने वाले आन्तरिक एवं बाह्य कारणों का यथोचित मूल्यांकन।

2. मूल्यांकन के दौरान स्वयं विकलांग व्यक्ति, उसके परिवारजन तथा परिचितों के विचारों, भावनाओं एवं सुझावों को समझना।

3. सम्बद्ध व्यक्ति के लिए उसके और उसके परिवार तथा पुनर्वास विशेषज्ञों के मध्य विचार-विमर्श एवं सुझावों के आधार पर एक मान्य, व्यावहारिक परन्तु सर्वोत्तम पुनर्वास रणनीति तैयार करना।

4. पुनर्वास रणनीति के सफल कार्यान्वयन के लिए आवश्यक संसाधनों की प्राप्ति हेतु सम्भावित स्रोतों की जानकारी देना।

5. सरकार के विभिन्न निकायों द्वारा तथा गैर-सरकारी संगठनों द्वारा प्रदान की जाने वाली रियायतों व सुविधाओं की जानकारी देना।

6. पुनर्वास रणनीति के क्रियान्वयन के अनुभव से प्राप्त जानकारी के आधार पर उसमें आवश्यक संशोधन करना।

7. आवश्यकतानुसार विकलांग व्यक्ति/व्यक्तियों को अधिक पुनर्वास सेवाओं के लिए परामर्श देना।

8. विकलांग व्यक्तियों की विकलांगता की जाँच, जहाँ सम्भव हो वहाँ यथोचित इलाज तथा विकलांगता का प्रमाणीकरण।

9. व्यक्ति के सन्तुलित किन्तु बहुआयामी- शारीरिक, मानसिक, सांवेगिक, आर्थिक, व्यावसायिक, सामाजिक एवं शैक्षिक-पुनर्वास को सुनिश्चित बनाना ताकि वह स्वयं व समाज के लिए उपयोगी एवं उत्तरदायी नागरिक के रूप में सफल जीवन व्यतीत कर सके।

ऊपर बताये गये सामान्य उद्देश्यों के आधार पर विकलांग विशेष के लिए निश्चित तथा स्पष्ट पुनर्वास उद्देश्यों की सूची उसकी पुनर्वास योजना में सम्मिलित की जा सकती है, जो उसकी व्यक्तिगत सम्भावित क्षमताओं तथा आवश्यकताओं व सामाजिक-आर्थिक वास्तविकताओं के अनुसार होनी चाहिए।

समुदाय आधारित पुनर्वास-अर्थ एवं परिभाषा:-

समुदाय आधारित पुनर्वास के इक्के-दुक्के उदाहरण 1970 अथवा उससे पूर्व के दशक में भी भारत में उपलब्ध थे परन्तु इस अवधारणा (Concept) का तेजी से प्रसार व उपयोग 1980 के दशक में ही आरम्भ हुआ। इसका साधारण अर्थ है संस्थागत पुनर्वास के बजाय विकलांग व्यक्तियों का उनके अपने परिवेश में व्यक्तिगत आवश्यकताओं के अनुसार समुदाय की सहायता से व्यावहारिक परन्तु बहुआयामी पुनर्वास। इसके अन्तर्गत विकलांगजनों, उनके परिवारजनों तथा समुदाय के मानव एवं अन्य संसाधनों का अधिकतम उपयोग करने का प्रयास किया जाता

है। इसमें प्रत्येक आयु वर्ग के व्यक्तियों को सम्मिलित किया जाता है तथा प्रति व्यक्ति पुनर्वास व्यय को न्यूनतम रखने की दृष्टि से प्रायः सब प्रकार के विकलांगों को पुनर्वास परियोजनाओं में सम्मिलित किया जाता है।

भारत में इसके तीव्र विकास के प्रमुख कारण कम व्यय, विकलांगों की अधिक संख्या तथा विकलांगजनों का भौगोलिक बिखराव (Geo Scatter) है। इसकी आवश्यकता व महत्त्व पर इस अध्याय में अन्यत्र चर्चा की जायेगी।

सामाजिक न्याय एवं आधिकारिता मन्त्रालय, भारत सरकार द्वारा 1998 के दौरान विकलांग व्यक्तियों के लिए स्वयंसेवी कार्यक्रमों को प्रोत्साहित करने की योजना के अन्तर्गत समुदाय आधारित पुनर्वास (Community Based Rehabilitation- CBR) परियोजनाओं के लिए भी स्वयंसेवी संगठनों को वित्तीय सहायता देने का निर्णय लिया गया।

'समुदाय आधारित पुनर्वास' शब्दावली में सम्मिलित विभिन्न शब्दों की व्याख्या सी.बी.आर. कार्यकारी दल, 1997 (CBR Working Group, 1997) ने कुछ इस प्रकार की है:-

समुदाय आधारित पुनर्वास के सन्दर्भ में 'समुदाय' का अर्थ है: (1) समान हित वाले व्यक्तियों का ऐसा समूह जो नियमित रूप से एक-दूसरे से मिलते-जुलते हैं तथा/अथवा (2) कोई भौगोलिक, सामाजिक अथवा शासकीय प्रशासनिक इकाई।

व्यावहारिक रूप में इसका अभिप्राय किसी गाँव, बस्ती, ब्लॉक, भ्रमणशील चरवाह-समूह, जनजातीय कबीले या छोटे-छोटे द्वीपों पर बसे व्यक्ति-समूह से समझना चाहिये।

आधारित (Based) : 'आधारित' का अर्थ है कि निःशक्त व्यक्तियों के पुनर्वास तथा एकीकरण का उत्तरदायित्व सम्बद्ध परिवार एवं समूह का है। समुदाय को यह समझना चाहिए कि सभी मनुष्यों का समान महत्त्व है तथा उन सबके अधिकार, विशेषाधिकार एवं उत्तरदायित्व भी समान हैं। यह समुदाय का उत्तरदायित्व है कि उनके पूर्ण पुनर्वास तथा समाज की मुख्य धारा में उनको स्वीकृति के लिए उपयुक्त अवसर प्रदान करे।

इसके माध्यम से कार्यकारी दल का उद्देश्य समुदाय के सदस्यों को इस बात का एहसास करवाना था कि विकलांग भी उनका ही हिस्सा हैं और उनके पूर्ण पुनर्वास में सारे समुदाय का हित साधन भी होगा और साथ ही साथ विकलांगों का यह अधिकार भी है जिसे समुदाय को सहज रूप में स्वीकार करना चाहिए।

'पुनर्वास' (Rehabilitation) को कार्यकारी दल ने एक सतत प्रक्रिया का नाम दिया जिसमें समुदाय विशेष को अपने मूर्त व अमूर्त संसाधनों का इस्तेमाल करना चाहिए।

मूर्त संसाधनों से अभिप्राय धन, खेत-खलियान, औद्योगिक इकाई, चल-अचल सम्पदा इत्यादि से है तथा अमूर्त संसाधनों का अर्थ बौद्धिक क्षमता, विभिन्न कौशल, विशेषज्ञता एवं सेवा से है।

परिभाषा:- पुनानी व रावल ने अपनी पुस्तक 'विजुअल इम्पेयरमेंट हैण्डबुक, 2000- द्वितीय संस्करण' (Visual Impairment Handbook, 2000-Second Edition) में विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) द्वारा दी गयी सी.बी.आर. को परिभाषा को इस तरह उद्धृत किया है:-

"C.B.R. involves measures taken at the community level to use and build on the resources of the community, including the impaired, disabled and the handicapped persons themselves, their families and their community as a whole."

अर्थात्

(सी.बी.आर. के अन्तर्गत समुदाय विशेप के स्तर पर, स्वयं क्षतिग्रस्त. नि:शक्त तथा विकलांग व्यक्तियों, उनके परिवारों व सम्पूर्ण समुदाय सहित, अपने संसाधनों का प्रयोग करने एवं उनके आधार पर किए गये रचनात्मक उपाय सम्मिलित होते हैं)।

इसका अभिप्राय यह हुआ कि इस प्रकार के पुनर्वास में विकलांगों के परिवारों तथा सम्पूर्ण समुदाय के साथ-साथ स्वयं उनको (विकलांगों को) भी महत्त्वपूर्ण संसाधन माना जाता है। साथ ही साथ समुदाय के अन्य मूर्त-अमूर्त संसाधनों का रचनात्मक प्रयोग पुनर्वास की प्रक्रिया में किया जाता है अर्थात् पुनर्वास की यह प्रक्रिया समुदाय स्फूर्त होती है। डेविड बर्नर (1994) की पुस्तक 'ग्रामीण विकलांग बालक' (Disabled Village Children) के भारतीय संस्करण में इस तरह के प्रयास को 'ऊर्ध्वमुखी पुनर्वास' की संज्ञा दी गयी है। जहाँ तक विकलांगों को संसाधन के रूप में प्रयोग करने के महत्त्व का प्रश्न है, यह एक स्वस्थ तथा रचनात्मक विचार है, परन्तु इसका सफल प्रयोग निश्चित रूप से पुनर्वास कार्य में संलग्न व्यक्तियों के विकलांगों की शक्तियों में विश्वास पर निर्भर करता है। यह विचार सुनने में जितना आकर्षक तथा सरल लगता है विकलांगों, विशेषकर दृष्टिबाधितों के, उनके स्वयं के पुनर्वास में संसाधन के रूप में प्रयोग करने के संदर्भ में उतना ही जटिल और कठिन होगा। हाँ, डेविड बर्नर की मान्यता है कि

विश्व के अनेक भागों में सर्वाधिक उत्तेजक व अर्थपूर्ण पुनर्वास गतिविधियों में से कुछ एक का नेतृत्व स्वयं विकलांगों द्वारा किया जा रहा है। वे (विकलांग) आदर्श के रूप में काम कर सकते हैं।

दृष्टिहीनता सम्बन्धी (1944) भारत सरकार के प्रतिवेदन में मैकेन्जी ने भी सुझाव दिया था कि दृष्टिहीनों के संस्थानों में उन्हें अधिकाधिक नेतृत्व तथा कार्य के अवसर दिए जाने चाहिएं।

समस्त विकलांगों की स्थिति पर टिप्पणी करना तो कठिन है, परन्तु दृष्टिबाधितों के संगठनों के अध्ययन से बिना अधिक परिश्रम के इस विचार के विरुद्ध सबल प्रमाण मिल जाएंगे। अक्सर यह अनुभव किया जाता है कि वहाँ कार्यरत अनेक दृष्टिवान तो उन्हें मात्र एक 'आवश्यक बुराई' के रूप में ही स्वीकार करते हैं।

पुनानी व रावल अपनी पहले उद्धृत पुस्तक में पुनर्वास के विषय में स्पष्टीकरण देते हुए कहते हैं कि सी.बी.आर. को समुदाय में ही समयबद्ध एवं उपयुक्त सेवाएं प्रदान करते हुए लक्ष्योन्मुखी, व्यक्तिगत आवश्यकतानुसार कम व्यय वाला तथा परिणामोन्मुखी होना चाहिए। इसका उद्देश्य समुदाय की सक्रिय सहभागिता, भूमिका एवं उसके संसाधनों के अधिकतम प्रयोग द्वारा समुदाय के विश्वासवर्द्धन में योगदान देना, विकलांग व्यक्ति की कुशलता का निखार तथा सामुदायिक जीवन में उसकी सक्रिय सहभागिता में वृद्धि और एकीकरण होता है।

इससे भी यही पता चलता है कि सी.बी.आर. के अन्तर्गत सम्बद्ध समुदाय के द्वारा अपने संसाधनों का प्रयोग करते हुए विकलांग व्यक्ति को आवश्यक प्रशिक्षण द्वारा समुदाय का सक्रिय एवं उत्तरदायी सदस्य बनाने का प्रयास किया जाता है।

हाँ, यह ध्यान रहे कि सी.बी.आर. भी पुनर्वास का एक महत्त्वपूर्ण प्रकार अवश्य है किन्तु एकमात्र प्रकार नहीं। विशेषज्ञ इस बिन्दु पर सहमत हैं कि जहाँ कहीं व्यक्ति विशेष अपने पुनर्वास के लिए अपेक्षाकृत अधिक व उच्चतर कोटि की पुनर्वास सेवाओं की आवश्यकता अनुभव करता हो, जिन्हें समुदाय प्रदान करने में असमर्थ हो, वहाँ पर सी.बी.आर. कार्यक्रम का यह भी उत्तरदायित्व है कि ऐसे व्यक्ति को उपयुक्त संस्था और सेवाओं का परामर्श दे।

समुदाय आधारित पुनर्वास की आवश्यकता एवं महत्त्वः-

भारत सहित विभिन्न विकासोन्मुख देशों में विकलांगों की अधिक संख्या आश्चर्यजनक सामाजिक व आर्थिक विषमताएं, पुनर्वास हेतु सीमित संसाधन तथा

विकलांगों की भिन्न-भिन्न परिस्थितियों और उनके भौगोलिक बिखरावों को ध्यान में रखते हुए यदि हम उनकी पुनर्वास आवश्यकताओं पर विचार करें तो सी.बी.आर. की आवश्यकता तथा महत्त्व स्वयं स्पष्ट हो जाते हैं। फिर भी, अधिक स्पष्टता और सुविधा की दृष्टि को ध्यान में रखते हुए इन बिन्दुओं पर निम्नलिखित अनुच्छेदों में कुछ विस्तारपूर्वक चर्चा की जा रही है:-

(1) प्रौढ़ तथा वृद्धजनों की समस्याएं (Problems of the Adult and Old People)- राष्ट्रीय सैम्पल सर्वे, 2002 तथा अन्य सर्वेक्षण बताते हैं कि 60 वर्ष तथा उससे बड़ी आयु वर्ग के व्यक्तियों में दृष्टिहीनता का प्रतिशत सर्वाधिक होता है। सामान्य जानकारी के आधार पर भी हम कह सकते हैं कि 45 वर्ष की आयु के बाद अनेक लोग अन्य कारणों के साथ-साथ मोतियाबिन्द से दृष्टिहीनता का शिकार हो जाते हैं। इस आयु में इन लोगों को उनके घर से दूर पुनर्वास के लिए ले जाना अनेक कारणों से कठिन होता है। अतः उन्हें अपने परिवेश में रखते हुए ही पुनर्वास सेवाएं उपलब्ध करवाना सर्वश्रेष्ठ तथा आवश्यक है।

(2) महिलाओं की विशेष स्थिति (Special Position of the Women)- एन.एस.एस.ओ. के 1991 के सर्वेक्षण से यह तथ्य उभरता है कि कुल मिलाकर दृष्टिबाधित वर्ग में महिलाओं की दृष्टिबाधा दर 53.89% है जो पुरुषों की तुलना में अधिक है। हमारे सामाजिक परिवेश में महिलाओं के लिए, विशेषकर दृष्टिहीन महिलाओं के लिए आवश्यक प्रशिक्षण सेवाएं घर से दूर प्राप्त करने के अवसर अत्यधिक सीमित हो जाते हैं। अतः उनके लिए भी अपने ही परिवेश में रहते हुए आवश्यकतानुसार पुनर्वास सेवाएं प्राप्त करना अधिक श्रेयस्कर सिद्ध होगा। इसलिए उन्हें भी हम सी.बी.आर. के माध्यम से परिवार का व समुदाय का उत्पादक, सक्रिय एवं सम्मानित सदस्य बना सकते हैं।

(3) अधिकतर पुनर्वास सेवाओं का शहरी स्वरूप तथा नगर केन्द्रित होना (Urban Based Rehabilitation Services)- अभी तक अधिकतर पुनर्वास संस्थाएं नगरों में केन्द्रित हैं और उनकी सेवाओं का स्वरूप भी प्रायः नगरीय आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर तैयार किया गया है। दूसरी ओर स्थिति यह है कि दृष्टिबाधितों में से 83.69% व्यक्ति ग्रामीण क्षेत्रों में पाए जाते हैं। इनके लिए सामान्यतः समुदाय आधारित पुनर्वास सेवाएं अपेक्षाकृत अधिक श्रेयस्कर व प्रभावी सिद्ध होंगी।

(4) सीमित लाभार्थी (Limited Beneficieries)- पुनानी व रावल (2000) के अनुसार संगठित शहरी केन्द्रों में 5000 दृष्टिबाधित व्यावसायिक प्रशिक्षण

प्राप्त कर रहे हैं। इसे देखते हुए जरूरतमंद सभी दृष्टिहीनों को ऐसी सुविधाएं उपलब्ध करवाने में न जाने कितना समय लग जाएगा, इसलिए शीघ्रातिशीघ्र अधिक-से-अधिक व्यक्तियों को पुनर्वास सेवाओं का लाभ पहुँचाने के लिए सी.बी.आर. योजनाएं अनिवार्य हैं।

(5) प्रति व्यक्ति पुनर्वास व्यय की उच्च दर तथा सीमित संसाधन (High Per Capita Cost of Rehabilitation and Limited Resources)- यह सही है कि प्रथम पंचवर्षीय योजना की तुलना में हमारे देश में दसवीं पंचवर्षीय योजना में विकलांग पुनर्वास सेवाओं के लिए सरकार ने हजारों गुना अधिक धन की व्यवस्था की है परन्तु संख्या की दृष्टि से तो यह भी बहुत कम है। साथ ही साथ, यह एक तथ्य है कि नगरों में स्थापित पुनर्वास केन्द्रों में ढाँचागत सुविधाओं पर अधिक खर्च तथा लाभार्थियों के लिए कपड़ा व भोजन की व्यवस्था के कारण पुनर्वास का प्रति व्यक्ति व्यय बहुत बढ़ जाता है। सीमित संसाधनों का अधिकतम उपयोग करने तथा लाभार्थियों की संख्या बढ़ाने की दृष्टि से भी सी.बी.आर. एक वांछनीय विकल्प है।

(6) सामाजिक सुरक्षा उपायों का अभाव (Lack of Social Security Measures)- पुनानी व रावल भारत में न्यूनतम जीवन स्तर बिताने के लिए सामाजिक सुरक्षा उपायों के अभाव को भी एक कारण मानते हैं जिसकी वजह से यहाँ सी.बी.आर. की आवश्यकता स्वाभाविक है। यह एक कटु सत्य है कि विकलांग होने के पश्चात् सम्बद्ध व्यक्ति की जीविकोपार्जन सम्बन्धी क्षमता पर प्राय: कुप्रभाव पड़ता है। फलत: उसके परिवार एवं समाज में उसके सम्मान को भी ठेस पहुँचती है। ऐसी स्थिति में यदि सीमित संसाधनों से अपने ही परिवेश में उसकी जीविकोपार्जन की क्षमता पूर्ण अथवा आंशिक रूप से पुनर्जीवित की जा सके तो उसकी पारिवारिक एवं सामुदायिक स्थिति को भी एक सीमा तक पूर्ववत् बनाना सम्भव होगा।

(7) दाता संगठनों की पसन्द (Choice of Donor Organisations)- इनके अतिरिक्त एक और सबल कारण सी.बी.आर. को महत्त्वपूर्ण आवश्यकता बनाता है। सम्भवत: इसे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कारणों में से एक समझना उपयुक्त होगा। भारत के प्राय: सभी पुनर्वास संगठन भारत सरकार तथा/अथवा विदेशी दाता संगठनों के अनुदान से अपनी सेवाएं चलाते हैं। अनुदानदाता को प्रसन्न रखना तथा उसकी शर्तें स्वीकार करना एक अनिवार्यता है। वे चाहते हैं कि उनके धन का अधिकतम उपयोग हो। आजकल सी.बी.आर. को धन के अधिकतम उपयोग का पर्यायवाची समझा जाता है। अत: यह एक आवश्यकता है।

उपर्युक्त स्पष्टीकरण से समुदाय आधारित पुनर्वास का महत्त्व व उसकी आवश्यकता सिद्ध हो जाती है।

सफल समुदाय आधारित पुनर्वास कार्यक्रम की विशेषताएं (Characteristics of a successful CBR Programme):-

एक सफल समुदाय आधारित पुनर्वास कार्यक्रम की कुछ प्रमुख विशेषताओं का वर्णन इस खण्ड में निम्न प्रकार से किया जा रहा है:-

(1) समस्त विकलांगों हेतु (For all Handicapped)- सी.बी.आर. की मान्यता है कि जहाँ कहीं इसके अन्तर्गत कार्यक्रम चलाए जाएं वहाँ के हर प्रकार के विकलांग को पुनर्वास सेवाएं उपलब्ध करवाई जानी चाहिएं। अत: किसी भी सी.बी.आर. कार्यक्रम की पहली विशेषता है 'सबके लिए पुनर्वास'। इसके कारण बड़ी संख्या में जरूरतमंद मिल जाते हैं और परिणामस्वरूप आर्थिक व मानव संसाधनों का अधिकतम उपयोग सम्भव हो पाता है।

क्या दृष्टिहीनों के लिए पृथक् कार्यक्रम होना चाहिए? यहाँ पर एक प्रश्न उठता है कि क्या सम्मिलित पुनर्वास/व्यापक पुनर्वास (जिसमें हर प्रकार के विकलांग शामिल हों) सेवा में दृष्टिहीनों को पर्याप्त एवं उपयुक्त सेवाएं प्राप्त हो सकेगीं? पुनानी तथा रावल (2000) के विचार से ऐसा सम्भव नहीं। उनका कहना है कि जहाँ कहीं सब प्रकार के विकलांगों के लिए कार्यक्रम चलाया जाता है उसमें दृष्टिबाधितों को 'न्यूनतम' लाभ प्राप्त होता है। उनके अनुसार बहुश्रेणी विकलांगों के लिए चलाए जा रहे व्यावसायिक पुनर्वास केन्द्र (VRC), जिला पुनर्वास केन्द्र (DRC), विकलांग बालकों हेतु एकीकृत शिक्षा (IEDC) तथा सी.बी.आर. कार्यक्रमों में दृष्टिबाधितों की सहभागिता लगभग नगण्य रही है। तर्क काफी सशक्त प्रतीत होता है।

इसके अतिरिक्त एक बात और भी है। दृष्टिबाधितों को अपेक्षाकृत अधिक सघन प्रशिक्षण की आवश्यकता पड़ती है तथा उनके प्रशिक्षण में शुरू में समय की भी अधिक आवश्यकता होती है।

तीसरा पक्ष यह है कि केवल ऐसे ही प्रशिक्षक उन्हें प्रशिक्षित कर सकते हैं जिन्होंने दृष्टिबाधितों से सम्बन्धित गहन व दीर्घकालिक प्रशिक्षण स्वयं प्राप्त किया हो, जबकि सी.बी.आर. में अधिकतर प्रशिक्षक अल्पकालिक प्रशिक्षण प्राप्त होते हैं, परिणामस्वरूप वे दृष्टिहीनों पर अधिक ध्यान नहीं दे पाते। परन्तु यह भी वास्तविकता है कि यदि कार्यक्रम केवल दृष्टिबाधितों के लिए आयोजित किये जायेंगे तो प्रति व्यक्ति पुनर्वास व्यय में निश्चित रूप से कुछ वृद्धि होगी। अत: प्रश्न गुणवत्ता

बनाम संख्या/प्रति व्यक्ति व्यय का है, इसलिए अन्तिम निर्णय भी सम्बद्ध स्वयंसेवी संगठनों को ही लेना पड़ेगा। इसमें लेखक की भूमिका विचार प्रस्तुत करने तक सीमित है।

(2) समुदाय की सक्रिय भूमिका (Active Role of the Community)- किसी भी सी.बी.आर. कार्यक्रम की सफलता का एक मापदण्ड उसमें सम्बद्ध समुदाय-स्वयं विकलांग व्यक्ति, उनके परिवारजन तथा सम्पूर्ण समुदाय की सक्रिय सहभागिता एवं उसके मूर्त एवं अमूर्त संसाधनों का अधिकतम प्रयोग है। इसकी जाँच किसी भी कार्यक्रम के सत्यपरक मूल्यांकन से सम्भव है।

(3) विकलांग व्यक्तियों का समुदाय में एकीकरण तथा उनके आत्मविश्वास में वृद्धि (Integration of the Disabled in the Community and Enhancement in their Self Confidence)- एक सफल सी.बी.आर. कार्यक्रम वही कहा जायेगा जिसके परिणामस्वरूप विकलांगों को उनका समुदाय पुन: वैसा ही अथवा लगभग वैसा ही सामाजिक स्थान देने लगे जैसा कि उन्हें विकलांगता से पूर्व प्राप्त था। यदि ऐसा होता है तो आवश्यक प्रशिक्षण से प्राप्त कौशलों एवं सामाजिक रूप से पुनर्स्वीकृति के पश्चात् विकलांगों के आत्मविश्वास में स्वत: वृद्धि होगी।

(4) प्रति व्यक्ति निम्न व्यय दर (Low Rate of Per Capita Cost)- अभी तक कोई ऐसा आँकड़ा तो प्रस्तुत नहीं किया गया है। सम्भवत: ऐसा आँकड़ा दे पाना भी कठिन है कि एक सफल सी.बी.आर. कार्यक्रम में प्रति व्यक्ति कितना व्यय हो, परन्तु सफलता का यह एक अत्यधिक महत्त्वपूर्ण मापदण्ड है। इतना ही कहा जा सकता है कि संस्थागत पुनर्वास की तुलना में व्यय बहुत कम होना चाहिए।

(5) सभी आयु वर्ग के व्यक्तियों के लिए सुविधा (Facility for People of All Age Groups)- समुदाय आधारित पुनर्वास कार्यक्रम के अन्तर्गत बाल्यावस्था, प्रौढ़ावस्था व वृद्धावस्था, प्रत्येक आयु के विकलांगों के लिए सेवाएं उपलब्ध होनी चाहिएं।

(6) पुनर्वास के समस्त पक्षों का सम्मिश्रण (Mixture of all Dimensions of Rehabilitation)- इसमें शिक्षा, प्रशिक्षण, दैनिक कौशल, विकलांगता सम्बन्धी जाँच व प्रमाणपत्र, विकलांगों में तथा उनके अधिकारों के विषय में जन-चेतना एवं बेहतर पुनर्वास सेवाएं प्राप्त करने के लिए आवश्यक परामर्श इत्यादि सभी पक्षों का उपयुक्त ध्यान रखा जाना चाहिए।

इसके अतिरिक्त छोटी-मोटी विशेषताएं और भी गिनवाई जा सकती हैं परन्तु उसे संख्यावृद्धि का ही एक प्रयास समझा जायेगा। वास्तव में किसी भी समुदाय आधारित पुनर्वास कार्यक्रम की प्रमुख विशेषताएं ये ही हैं। कार्यक्रमों की सफलता इस बात से मापी जा सकती है कि उनमें उपर्युक्त बिन्दुओं में से कितने और किस सीमा तक उपलब्ध हैं।

पुनर्वास में विभिन्न विशेषज्ञों की भूमिका व उत्तरदायित्व:-

यहाँ पर समुदाय आधारित पुनर्वास की ऐसी परियोजना को ध्यान में रखकर इस बिन्दु पर चर्चा की जायेगी जो मूलतः दृष्टिबाधित व्यक्तियों के लिए हो। हर प्रकार के विकलांगों वाली सम्मिलित पुनर्वास परियोजना में विशेषज्ञों की संख्या तथा विशेषज्ञता के क्षेत्र भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। साथ ही यह भी समझना आवश्यक है कि विशेषज्ञों की व्यक्तिगत भूमिका के साथ-साथ उन्हें सामूहिक रूप से एक दल के रूप में काम करना होगा, तभी पुनर्वास प्रक्रिया सफल हो पायेगी। व्यक्तिगत भूमिका तथा उत्तरदायित्व का उद्देश्य सामूहिक प्रभाव को अधिकतम बनाना है। इसका उद्देश्य पारस्परिक तनाव अथवा श्रेष्ठता स्थापित करना कतई नहीं। यहाँ पर न्यूनतम संख्या वाली विशेषज्ञ टीम की चर्चा की जा रही है। साधनों की अधिकता एवं विकलांगों की संख्या अधिक होने पर उनके अनुसार इनकी संख्या में भी वृद्धि करनी होगी।

1. समन्वयक अथवा संचालक (Co-ordinator): समन्वयक की केन्द्रीय भूमिका होती है, उसे पुनर्वास टीम की रीढ़ की हड्डी समझना चाहिए। एक योग्य समन्वयक अपने पुर्नवास दल के लिए आदर्श मित्र, मार्गदर्शक तथा दार्शनिक की भूमिका निभाता है। उसे नेतृत्व के गुणों से सम्पन्न, अनुभव व प्रशिक्षण से दृष्टिबाधितों की पुनर्वास सेवाओं का जानकार, कर्मठ तथा दृष्टिबाधा तथा दृष्टिबाधितों के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण वाला होना चाहिए। उसकी भूमिका व उत्तरदायित्व में अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित बिन्दु सम्मिलित होंगे:-

(1) पुनर्वास दल का नेतृत्व तथा प्रशासन।

(2) अन्य सदस्यों की सहायता से पुनर्वास क्षेत्र का चयन, भविष्य में पुनर्वास सेवा के लिए चुने जाने वाले सम्भावित क्षेत्रों का चयन।

(3) विभिन्न विशेषज्ञों व कर्मचारियों में कार्य आवंटन तथा उनका प्रोत्साहन एवं पर्यवेक्षण।

(4) विभिन्न विशेषज्ञों तथा कर्मचारियों को उनके काम के लिए आवश्यक सुविधाएं उपलब्ध करवाना।

(5) विभिन्न विशेषज्ञों से प्रगति रपट प्राप्त करना तथा उन पर चर्चा करना।

(6) पुनर्वास सेवाएं प्राप्त करने वाले लोगों को आवश्यक उपकरण उपलब्ध कराना।

(7) प्रशिक्षण समाप्त होने पर पुनर्वास प्राप्त करने वालों को नियमानुसार वित्तीय तथा अन्य सहायता उपलब्ध कराना।

(8) कार्य प्रतिवेदन तैयार करना और उसे अपने मुख्यालय भेजना।

2. मनोवैज्ञानिक (Psychologist): कुछ लोग समुदाय आधारित पुनर्वास कार्यक्रमों में मनोवैज्ञानिक की सेवाएं आवश्यक मानते हैं तथा कुछ नहीं। यदि मनोवैज्ञानिक को पुनर्वास दल में सम्मिलित किया जाये तो उसकी भूमिका एवं उत्तरदायित्व निम्नलिखित होंगे:-

(1) पुनर्वास सेवाएं प्राप्त करने वाले व्यक्तियों की मानसिकता का आकलन।

(2) सम्बद्ध दृष्टिबाधितों के प्रति उनके परिवारजनों, निकट सम्बन्धियों तथा समुदाय के लोगों की अभिवृत्तियों का आकलन।

(3) स्वयं दृष्टिबाधितों का अपने प्रति तथा दृष्टिबाधा के प्रति अभिवृत्तियों का आकलन।

(4) सम्बद्ध व्यक्तियों के पारिवारिक व सामुदायिक समायोजन में सम्भावित बाधक तथा सहायक कारकों का आकलन।

(5) सम्बद्ध समुदाय तथा सेवा प्राप्त करने वाले दृष्टिबाधितों में पारस्परिक सामूहिक बातचीत, चित्रों, फिल्मों, पत्र-पत्रिकाओं और सफल दृष्टिबाधितों से बातचीत के सत्रों पर आधारित कार्यक्रम तैयार करना, जिससे समुदाय में और स्वयं दृष्टिबाधितों में सकारात्मक अभिवृत्तियाँ विकसित हो सकें।

(6) प्रत्येक केस की तथा सामान्य प्रगति रपट तैयार करना।

3. बहुद्देशीय पुनर्वास कर्मी (Multi-purpose Rehabilitation Worker): प्रारम्भ में सी.बी.आर. कार्यक्रमों में सामान्य गतिविधियों तथा प्रशिक्षण में सामान्य सहायता के लिए बिना प्रशिक्षण प्राप्त अथवा अल्पकालिक प्रशिक्षण के आधार पर कुछ कर्मचारी रखे जाते थे, जिन्हें 'फील्ड वर्कर' (Field Worker) कहा

जाता था। अब इनके स्थान पर बहुदेशीय कर्मियों को रखने का रुझान बढ़ता जा रहा है। इनकी भूमिका व उत्तरदायित्व निम्नलिखित होते हैं:-

(1) दृष्टिबाधितों का सर्वेक्षण।

(2) सम्बद्ध व्यक्तियों का जीवन-वृत्त (Case History) तैयार करना।

(3) विकलांगता की जाँच करवाना।

(4) आवश्यकतानुसार उनको विशेषज्ञ चिकित्सकों के पास ले जाना तथा इलाज करवाना।

(5) दृष्टिहीनता प्रमाणपत्र बनवाने की व्यवस्था करना।

(6) उपलब्ध सुविधाओं तथा रियायतों के विषय में जानकारी देना और उन्हें प्राप्त करने में सहायता करना।

(7) आवश्यकतानुसार दृष्टिवर्धक उपकरणों की व्यवस्था करना।

4. अनुस्थितिज्ञान तथा गतिशीलता अनुदेशक (Orientation and Mobility Instructor):

(1) सम्बद्ध व्यक्तियों के वर्तमान गतिशीलता कौशलों का आकलन।

(2) उनकी गतिशीलता आवश्यकताओं का आकलन।

(3) स्थानीय आवश्यकताओं तथा व्यक्तिगत आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए उपयुक्त छड़ी का चुनाव व प्रयोग के लिए परामर्श।

(4) व्यावहारिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए अनुस्थितिज्ञान तथा गतिशीलता का प्रशिक्षण।

(5) व्यावहारिक आवश्यकताओं पर आधारित सम्बद्ध व्यक्तियों के लिए दैनिक कौशलों का आकलन।

(6) सूचीबद्ध कौशलों में प्रशिक्षण।

5. व्यावसायिक अनुदेशक तथा विशेष शिक्षक (Vocational Instructor and Special Teacher): स्थानीय आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए ये दोनों कार्य एक ही व्यक्ति को भी सौंपे जा सकते हैं अथवा इनके लिए दो अलग व्यक्तियों की नियुक्ति भी की जा सकती है। दोनों ही स्थितियों में अनुदेशक का भली-भाँति प्रशिक्षित होना वांछनीय होगा। दोनों कार्य एक ही अनुदेशक को सौंपने की स्थिति में उसकी भूमिका एवं प्रमुख उत्तरदायित्व निम्नांकित होंगे:-

(1) सम्बद्ध व्यक्तियों की शिक्षण/प्रशिक्षण सम्बन्धी आवश्यकताओं का आकलन।

(2) व्यक्तिगत आवश्यकताओं पर आधारित संप्रेषण कौशलों (Communication Skills) का प्रशिक्षण।

(3) व्यक्तिगत आवश्यकता आधारित गणित शिक्षण।

(4) दृष्टिबाधित बालकों के मांता-पिता को उनकी शिक्षा सम्भावनाओं तथा उसके लाभ के विषय में बताना।

(5) सम्बद्ध माता-पिता को स्थिति के अनुसार अपने बालकों को आवासीय विद्यालय अथवा एकीकृत शिक्षा योजना में शिक्षा हेतु भेजने के लिए प्रेरित करना।

(6) आवासीय विद्यालय अथवा एकीकृत शिक्षा कार्यक्रम में ऐसे बालकों को प्रवेश दिलवाना।

(7) स्कूल के पश्चात् ऐसे बालकों की विशिष्ट शिक्षा आवश्यकताओं की पूर्ति में सहयोग देना।

(8) प्रौढ़ व्यक्तियों की व्यावसायिक प्रशिक्षण सम्बन्धी आवश्यकताओं का आकलन।

(9) उन्हें आवश्यकतानुसार स्वतन्त्र रूप से अपना कार्य करने का प्रशिक्षण देना।

(10) उनके परिवारजनों को उन्हें यथोचित सहयोग देने में प्रशिक्षित करना।

(11) प्रशिक्षण सम्पन्न होने के बाद उन्हें अपने संगठन से आवश्यक आर्थिक तथा अन्य सहायता दिलवाने का प्रबन्ध करना।

कार्मिकों की वास्तविक संख्या का निर्धारण पुनर्वास सेवा के लिए चुने गये क्षेत्र के आकार तथा वहाँ उपलब्ध विकलांग व्यक्तियों की संख्या के अनुसार करना होगा।

अध्याय-30

दृष्टिबाधितों की शिक्षा व पुनर्वास के क्षेत्र में महान विभूतियों का संक्षिप्त जीवन परिचय एवं योगदान

-डॉ. आर.एस. चौहान

भूमिका:

आज अपने देश में भी अनेक दृष्टिबाधित महिला व पुरुष सामाजिक दृष्टि से सम्मानित और उपयोगी, आर्थिक रूप से सुखद एवं संतोषजनक तथा राजनीतिक क्षेत्र में सक्रिय व प्रभावशाली जीवन व्यतीत कर रहे हैं। हमारे समाज में ऐसी सुखद स्थिति केवल कुछ दृष्टिहीनों को ही प्राप्त है। इस वर्ग के अधिकतर सदस्य आज भी अशिक्षा और फलस्वरूप निर्धनता के कुचक्र में फंसे हैं। परन्तु यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि पिछली शताब्दियों की तुलना में 20वीं शताब्दी के दृष्टिबाधितों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति में आशातीत प्रगति हुई है और उनमें से अनेक के लिए अब बहुत-सी सकारात्मक सम्भावनाएं उपलब्ध हैं।

वर्तमान की सुखद और आशाजनक परिस्थितियाँ स्वयं दृष्टिहीन व उनके हितैषी दृष्टिवान मित्रों के सैकड़ों साल के अथक परिश्रम का परिणाम हैं। इनमें से अनेक का योगदान प्रत्यक्ष तथा अन्य का अप्रत्यक्ष रहा है। इस अध्याय में हम ऐसी ही कुछ असाधारण विभूतियों की चर्चा करेंगे।

चर्चा के लिए इनके क्रम के निर्धारण हेतु जन्मतिथि को आधार मानना उचित व तर्कसंगत होगा।

(1) दनी दिदरो (Denis Diderot)
(1713-1784)

जन्म व शिक्षा:

प्रसिद्ध फ्रांसीसी दार्शनिक दनी दिदरो का जन्म 5 अक्तूबर, 1713 को फ्रांस में हुआ। उन्होंने 1729 से 1732 तक पेरिस में अध्ययन किया तथा सितम्बर, 1732 में पेरिस विश्वविद्यालय से कला निष्णात की उपाधि प्राप्त की।

असाधारण विचारक व लेखक:

दिदरो की भेंट एक अन्य क्रान्तिकारी विचारक और दार्शनिक रूसो से सन् 1741 में हुई। बाद में रूसो के माध्यम से एक और प्रसिद्ध दार्शनिक कांदियाक

(Condillac) से हुई। सत्ता विरोधी विचारों के कारण दिदरो को कारावास का दण्ड भी भुगतना पड़ा।

विश्वकोष ब्रिटेनिका के अनुसार वह 'लेखक व दार्शनिक' थे। उन्होंने दर्शनशास्त्र की कई पुस्तकें लिखीं। यह भी माना जाता है कि चार्ल्स डार्विन द्वारा प्रतिपादित विकासवाद के सिद्धान्त की जड़ें दिदरो की पुस्तकों में मिलती हैं।

दिदरो ने सन् 1745 में विश्वकोष के सह-सम्पादक के रूप में कार्य प्रारम्भ किया। वह बाद में विश्वकोष के मुख्य सम्पादक भी बने। उन्होंने विश्वकोष की रचना सन् 1772 में पूरी की।

दृष्टिबाधितों की शिक्षा में योगदानः

दृष्टिबाधितों की शिक्षा में उनका योगदान निश्चित रूप से अप्रत्यक्ष किन्तु ऐतिहासिक महत्त्व का है। कहा जाता है कि कोई भी दर्शन रोटी नहीं पका सकता, किन्तु यह भी उतना ही सच है कि बिना किसी दर्शन के कोई भी रोटी नहीं पक सकती। दरअसल दिदरो ने दृष्टिबाधित वर्ग की शिक्षा के लिए दार्शनिक धरातल तैयार किया। उनकी विद्वता एवं प्रसिद्धि ने यह सुनिश्चित किया कि अन्य विद्वान इन विचारों को उपयोगी व महत्त्वपूर्ण समझें और किसी मेहनती तथा महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति को इन विचारों को क्रियान्वित करने के लिए प्रेरित करें। ये विचार रूसो के माध्यम से ओई तक पहुँचे जिन्होंने इन्हें व्यावहारिक रूप देने की शुरुआत की।

वास्तव में, माइकल एनैगनोस ने लिखा, "दिदरो इस पिछड़े वर्ग की स्थिति एवं आवश्यकताओं की ओर ध्यान आकर्षित करने वाला तथा उन्हें लोकप्रिय बनाने वाला प्रथम लेखक था....." (फैरेल, 1956)।

1749 में दिदरो ने दृष्टिहीनों से सम्बद्ध अपना निबन्ध "Lettre Sur les aveugles" प्रकाशित किया। जिसका अंग्रेजी अनुवाद अगले ही वर्ष छाप दिया गया। यह उनकी दृष्टिहीनों के विषय में जिज्ञासा और सौभाग्यवश एक शिक्षित दृष्टिबाधित व्यक्ति लनोत्क (Lenotre) से भेंट तथा साक्षात्कार का परिणाम था।

इसके बाद फैरेल के अनुसार दिदरो की 1760 में फ्रांस की एक विदुषी दृष्टिबाधित युवती मिलैनी (Meleanie de Salignac) से मुलाकात हुई। उसने भी अपनी भाषा, ज्योतिष, रेखागणित, बीजगणित, ज्ञान एवं काव्य प्रतिभा से इस दार्शनिक व चिन्तक को बहुत प्रभावित किया। मिलैनी से भेंट के लगभग 20 वर्ष बाद अपने संशोधित निबन्ध में दिदरो ने उसके विषय में विस्तारपूर्वक लिखा।

1751 में उनका मूक-बधिर सम्बन्धी निबन्ध "Lettre Sur les sourds et muets" सामने आया।

शैविग्नि व ब्रेवरमैन (1950) के अनुसार दिदरो ने दृष्टिहीनों की शिक्षा के सम्बन्ध में तीन अभूतपूर्व सम्भावनाएं प्रस्तुत कीं:-

(1) दृष्टि की क्षति के परिणामस्वरूप स्वत: अन्य ज्ञानेन्द्रियाँ सशक्त नहीं होतीं, अपितु एक ज्ञानेन्द्रिय की क्षति दूंसरी ज्ञानेन्द्रियों के अनुभवों की ओर अधिक ध्यान देने के लिए बाध्य करती है।

(2) दृष्टिहीन व्यक्ति की शिक्षा उसकी अवशिष्ट ज्ञानेन्द्रियों पर आधारित होनी चाहिए, उसके अभाव पर नहीं।

(3) दृष्टिहीन मूक-बधिर को भी स्पर्श किये जाने वाली वस्तुओं से स्थूल प्रतीक जोड़कर तथा बार-बार स्पर्श करवाकर स्पर्श-संवेदन द्वारा शिक्षित किया जा सकता है।

स्पष्ट है कि प्रारम्भ में दिदरो के दूसरे नियम की कई लोगों ने अवहेलना की तथा उसके दुष्परिणाम दृष्टिहीनों को भुगतने पड़े। नियम 3 का सहारा लेकर डा. हाओ ने दृष्टिहीन मूक-बधिर लौरा ब्रिजमैन को शिक्षा देकर नया इतिहास रचा।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि दनी दिदरो का योगदान दृष्टिहीन तथा दृष्टिहीन मूक-बधिर व्यक्तियों की शिक्षा में अप्रत्यक्ष किन्तु अभूतपूर्व रहा है।

(2) वैलांतां ओई (Valentin Hauy)

(1745-1822)

जन्म व शिक्षा:

वैलांतां ओई का जन्म 13 नवम्बर, 1745 के दिन पेरिस के पास एक जुलाहा परिवार में हुआ था। अतिरिक्त आय की दृष्टि से उनके पिता निकट के मठ में थोड़ा काम किया करते थे। इस तरह वैलांतां और उनके बड़े भाई रैने संन्यासियों के सम्पर्क में आये जिन्होंने इन बालकों को शिक्षारूपी अमृत का दान दिया।

बड़े होने पर दोनों भाई आजीविका की तलाश में पेरिस पहुँचे। रैने ने एक वैज्ञानिक तथा वैलांतां ने सरकारी अनुवादक के रूप में काम शुरू किया।

दृष्टिहीन कल्याण में रुचि:

(1) महत्त्वाकांक्षा- ओई के बड़े भाई ने वैज्ञानिक के रूप में अच्छी प्रसिद्धि प्राप्त की। उसी समय एक अन्य फ्रांसीसी द्वारा एक मूक-बधिर बालक को सफलतापूर्वक शिक्षित करने का समाचार प्रचलित था। साथ ही साथ ओई ने रूसो के माध्यम से दिदरो के विचारों को जान लिया था, जिनमें दृष्टिहीनों को शिक्षित करने की सम्भावनाएं सम्मिलित थीं। इन कारकों की सम्मिलित शक्ति ने युवा ओई को एक स्पष्ट दिशा की ओर बढ़ने के लिए प्रेरित किया जो उसकी महत्त्वाकांक्षा को पूरा कर सकती थी।

(2) दृष्टिहीनों की दुर्दशा- सितम्बर, 1771 की एक शाम कार्यालय से लौटते समय वैलांतां ने पास के कॉफी हाउस से फूटते ठहाकों की आवाज सुनी। कौतुहलवश वहाँ जाकर देखा तो वह बहुत विचलित हुए। 10 दृष्टिहीन भिखारी हास्यास्पद व अपमानजनक वेशभूषा में नकली साजों पर हाथ मार-मार कर अनाप-शनाप गा रहे थे और श्रोता हंस रहे थे। ओई ने मन ही मन निश्चय किया कि वह एक दिन दृष्टिहीनों को शिक्षित बनाकर वास्तविक पुस्तकें पढ़ने को देंगे।

(3) ईमानदारी व असाधारण स्पर्श शक्ति का प्रभाव- प्रतिदिन की भाँति ओई ने एक दृष्टिहीन भिखारी को भीख दी और आगे चल पड़े। तुरन्त उसने आवाज दी और पूछा कि और दिनों की तुलना में अधिक कीमत का सिक्का उन्होंने जानकर दिया था अथवा भूलवश। एक ओर उसकी ईमानदारी और दूसरी ओर उसकी असाधारण स्पर्श शक्ति ने वैलांतां को बहुत प्रभावित किया।

(4) मारिया से भेंट- 1784 में प्रसिद्ध दृष्टिहीन संगीतकार मारिया पेरिस आई। एक संगीत सभा के बाद ओई ने मारिया से भेंट की तथा विस्तारपूर्वक उसकी शिक्षा व पढ़ने-लिखने के तरीकों के विषय में जानकारी प्राप्त की।

(5) ऐतिहासिक कदम- "1784 में ओई ने एक सामाजिक संस्था की सहायता से पेरिस में दृष्टिहीनों के प्रथम विद्यालय की स्थापना की जिसमें-दृष्टिवान तथा दृष्टिहीन-दोनों प्रकार के बच्चों को प्रवेश दिया जाता था तथा साथ-साथ शिक्षित किया जाता था" (एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका, खण्ड-2, 1987) इसे एक अभूतपूर्व और दूरगामी परिणामों से युक्त शान्तिपूर्ण क्रान्ति का भव्य प्रतीक समझा जा सकता है।

रेखा-टाइप:

सन् 1786 में एक दिन फ्रांसुवा ने ओई के मेज पर रखे एक कागज पर अंगुली चलाते हुए उभरे हुए अंग्रेजी के "ओ" अक्षर की आकृति को पहचान लिया।

इसके तुरन्त बाद ओई ने मारिया की तकनीकों को त्याग दिया तथा दृष्टिहीनों के पढ़ने-लिखने के लिए विशेष रूप से मोटे कागज पर रोमन लिपि के इटैलिक अक्षर छापने लगे। लेखक ने इस प्रकार की कुछ पुस्तकें पेरिस के अजायबघर में देखी हैं। इसमें बाद में कई संशोधन भी किये गये। इस प्रणाली को रेखा-टाइप का नाम दिया गया।

कई इतिहासकारों ने इसे ओई की भूल कहा है। लेखक इस बात से सहमत है क्योंकि इस बड़े आदमी की बड़ी भूल ने दृष्टिहीनों की शिक्षा पर लगभग एक शताब्दी तक कुप्रभाव डाला।

विदेश यात्राएं:

1789 की फ्रांसीसी क्रान्ति ने ओई के ऐतिहासिक विद्यालय की जड़ें हिला दीं। अनेक परिवर्तनों के बाद इसे वयस्क दृष्टिहीनों के एक आश्रम से जोड़ दिया गया। कुछ दिन बाद वैचारिक मतभेद के कारण ओई को स्कूल से निकाल दिया गया।

सन् 1806 में वैलांतां ओई को रूसी जार से निमन्त्रण मिला। रास्ते में बर्लिन के पास एक दृष्टिहीनार्थ विद्यालय की स्थापना में ओई ने सक्रिय सहयोग दिया, किन्तु रूस पहुँचकर भाषा सम्बन्धी कठिनाइयों तथा अधिकारियों के नकारात्मक रुख के कारण उन्हें सीमित सफलता ही मिली। उन्होंने वहाँ पर जिस विद्यालय की स्थापना की वह आश्रय-गृह से अधिक तरक्की न कर सका। ओई सन्त ब्लादीमीर सम्मान के साथ 1817 में पेरिस लौट आये। यहीं पर 19 मार्च, 1822 को 77 वर्ष की आयु में उनका देहान्त हो गया।

फ्रांसीसी सरकार ने 1861 में उनके द्वारा स्थापित एक विद्यालय में उनकी अर्द्ध-मूर्ति का अनावरण किया।

(3) लुई ब्रेल (Louis Braille)

(1809-1852)

जन्म व शिक्षा:

स्पर्श लिपि 'ब्रेल' के आविष्कारक एवं दृष्टिहीनों की शिक्षा में साक्षरता का महत्त्वपूर्ण आयाम जोड़ने वाले इस कर्मठ योद्धा का जन्म 4 जनवरी, 1809 के दिन प्रातःकाल चार बजे पेरिस के पास कूवरे (Coupvray) नामक कस्बे में हुआ था।

लुई के पिता साइमन रेने ब्रेल घोड़ों की लगाम व जीन बनाया करते थे। उनकी वर्कशॉप घर के एक कोने में ही थी। लुई एक दिन वर्कशॉप में खेल रहे थे। पिता का ध्यान बालक की ओर से हटा। इसी बीच लुई ने चमड़े का एक टुकड़ा काटने की कोशिश की, औजार फिसला और एक आँख में जा लगा। पहले एक और अन्ततः दोनों आँखों की दृष्टि जाती रही।

लुई की शिक्षा स्थानीय विद्यालय में शुरू हुई। 1818 के छात्र रजिस्टर से इसकी पुष्टि होती है। इसके बाद फरवरी, 1819 में लुई को पेरिस स्थित दृष्टिहीनार्थ विद्यालय में दाखिला मिल गया। वह विद्यालय उनके लिए स्कूल के साथ-साथ प्रयोगशाला, कर्मभूमि और संघर्ष-क्षेत्र भी बना।

विद्यालय के एक प्रधानाचार्य ने लुई के विषय में लिखा, "कुशाग्र बुद्धि की सहायता से अपनी प्रगति व शिक्षा में सफलता के आधार पर उसने शीघ्र ही अपने लिये एक विशेष स्थान बना लिया......। वह उर्वरा कल्पना का धनी था परन्तु सदैव उसे तर्क के नियन्त्रण में रखता था।" फलतः लुई ने वहाँ सिखाये जाने वाले विषयों को शीघ्र ही सीख लिया।

बारबियर से भेंट:

फ्रांसीसी तोपखाने के एक अधिकारी चार्ल्स बारबियर ने गुप्त संदेश भेजने के लिए बारह बिन्दुओं पर आधारित एक 'रात्रि लेखन' प्रणाली विकसित की थी। अप्रैल, 1821 में लिखे पत्र द्वारा इसकी सूचना उन्होंने दृष्टिहीनार्थ विद्यालय के प्रधानाचार्य को दी। उसी वर्ष चार्ल्स बारबियर ने विद्यालय के कुछ छात्रों को अपनी प्रणाली सिखाई। इनमें लुई ब्रेल भी शामिल थे।

बारबियर की प्रणाली में प्रत्येक अक्षर के लिए पृथक् चिह्न नहीं थे और न ही इसमें विराम चिह्नों की व्यवस्था थी। एक भेंट के दौरान लुई ने कप्तान बारबियर का ध्यान इन सीमाओं की ओर आकर्षित किया। दोनों के मध्य एक लम्बे संघर्ष की यह शुरुआत थी।.

योगदान:

लुई ने 'रात्रि लेखन' प्रणाली को आधार बनाकर एक उपयुक्त स्पर्श-लिपि विकसित करने के लिए मेहनत शुरू कर दी। सर्वप्रथम 1825 और फिर सुधार के बाद 1829 में उन्होंने छः बिन्दुओं पर आधारित अपनी लिपि का स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया। छः बिन्दुओं को ऊपर से नीचे की ओर तीन-तीन बिन्दुओं की दो पंक्तियों में रखा गया। इन बिन्दुओं को विभिन्न स्थितियों में रखकर 63 आकृतियाँ

तैयार की गयीं। यह एक पूर्ण लिपि थी, जिसमें प्रत्येक अक्षर के लिए अलग चिह्न तथा विराम चिह्नों की भी व्यवस्था की गयी थी।

स्वयं कप्तान बारबियर ने ब्रेल की प्रशंसा करते हुए 1833 में लिखे एक पत्र में कहा, "दृष्टि से वंचित व्यक्तियों के विशेष उपयोग के लिए तुम्हारे द्वारा तैयार की गयी वाचन विधि को मैंने बड़ी रुचि के साथ परखा है। इतनी दीप्तिपूर्ण तथा इतनी शीघ्र सफलता उस मार्ग की ओर शुभ संकेत है, जिस ओर तुम्हारे स्पष्ट विचार तुम्हें प्रशस्त करेंगे।"

लुई ने अपनी प्रणाली को 1834 तक अन्तिम रूप दे दिया था। 1837 में उन्होंने ब्रेल में संगीत के लिए स्वर-लिपि भी प्रकाशित की। यह पहली स्पर्श लिपि थी, जिसे पढ़ने के साथ-साथ लिखना भी सरल था।

सफलता-असफलता के बीच संघर्ष:

लुई ब्रेल को 1828 में अपने ही विद्यालय में शिक्षक की नौकरी मिलने और फिर 1833 में एक स्थानीय चर्च में आरगन वादक की अंशकालीन नौकरी मिलने से आर्थिक स्वतन्त्रता मिली तथा अपनी खोजी मनोवृत्ति को सन्तुष्ट करने का अवसर भी। परन्तु उन्हें इस बात का खेद था कि छात्रों में लोकप्रियता के बावजूद स्कूल अधिकारियों ने उनकी लिपि को औपचारिक मान्यता नहीं दी थी। वह शाम के समय ही छात्रों को इसका अभ्यास करवा सकते थे। 22 फरवरी, 1844 के दिन आयोजित एक समारोह में स्कूल के उपप्रधानाचार्य ने उनकी लिपि की सार्वजनिक रूप से पहली बार प्रशंसा की।

रैफीग्राफी:

लुई ब्रेल ने सामान्य रोमन अक्षरों को लिखने के लिए रैफीग्राफी प्रणाली विकसित की। इसमें एक उपकरण की सहायता से बिन्दुओं को क्रमिक रूप से उभार कर अक्षर लिखे जाते थे। अपने दृष्टिवान मित्रों तथा परिवारजनों को वह इसी माध्यम से पत्र लिखते थे। ऐसी मान्यता है कि टाइपराइटर का विकास लुई के इसी उपकरण को देखकर किया गया।

महाप्रयाण:

लगातार परिश्रम, मान्यता के अभाव के कष्ट तथा लम्बे समय तक सीलनभरी इमारत में रहने के फलस्वरूप 1835 में लुई को क्षय रोग ने आ घेरा। कई वर्षों तक संघर्ष करने के बाद उन्होंने 1850 में क्षय रोग के कारण अवकाश ले लिया परन्तु फिर भी विद्यालय परिसर में ही रहते रहे।

18 दिसम्बर, 1851 को अचानक स्वास्थ्य अधिक बिगड़ जाने के कारण लुई ब्रेल को उनके कमरे से हटाकर विद्यालय के अस्पताल में भेज दिया गया। एक महान आविष्कारक सामाजिक मान्यता के अभाव में लगभग अकेला मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहा था। उनके निकटतम मित्र कौलतात के अनुसार 6 जनवरी, 1852 के दिन लुई ब्रेल की तबियत तेजी से बिगड़ने लगी, दोपहर तक उन्हें बोलने में भी कठिनाई होने लगी और शाम के साढ़े सात बजे सूर्यास्त के साथ-साथ लुई ब्रेल ने भी अपना पार्थिव शरीर त्याग दिया।

(4) विलियम मून (William Moon)
(1818-1894)

जन्म व शिक्षाः

स्पर्श लिपि 'मून' के जनक विलियम मून का जन्म इंग्लैण्ड के टन्ब्रिज वेल्स नामक स्थान पर 1818 में हुआ तथा उनका बचपन अपने दादा-दादी के साथ बीता।

विलियम की एक आँख लोहित ज्वर (Scarlet Fever) के कारण खराब हो गयी तथा दूसरी आँख पर भी कुप्रभाव पड़ा। फलस्वरूप विलियम के लिए अध्ययन एक कठिन कार्य था, परन्तु उन्होंने स्कूली शिक्षा किसी प्रकार दृष्टिवान बालकों के साथ पूरी की। अनेक बार शल्य-चिकित्सा के बाद उनकी दूसरी आँख भी खराब हो गयी और वह 21 वर्ष की आयु में पूर्णतया दृष्टिहीन हो गये।

बाद में वह अपनी माँ तथा बहिन के साथ ब्राइटन नगर में रहने लगे। यहीं पर चर्च में उनकी मुलाकात ऐन काडल नामक युवती से हुई, जिससे कुछ समय पश्चात् उन्होंने विवाह कर लिया।

योगदानः

दृष्टिहीनता के बावजूद मून ने साहस औ॰ सर्मपण व सामाजिक योगदान की मिसाल कायम की। दृष्टिहीन विभूतियों की एक पुस्तक की लेखिका मेरी टॉमस के अनुसार विलियम ने 'फ्रेयरे' की स्पर्श लिपि सीखी, परन्तु मेनुअल ऑफ भारती ब्रेल (Manual of Bharti Braille, 1980) के अनुसार उन्होंने उस समय उपलब्ध सभी स्पर्श लिपियों पर महारथ हासिल की थी। (Mary Thomas, 1956, NIVH, 1980)।

दृष्टिहीनार्थ विद्यालय की स्थापना:

मून ने अपने ब्राइटन स्थित घर में ही दृष्टिबाधित बालकों तथा कुछ वयस्कों को पढ़ाना शुरू किया। बाद में चलकर इस प्रयास ने संस्था का रूप ले लिया और इसे ब्राइटन दृष्टिहीनार्थ विद्यालय के नाम से जाना गया।

उन्होंने अनुभव किया कि अन्य स्पर्श लिपियों की तुलना में उनके द्वारा विकसित लिपि को बच्चे अपेक्षाकृत आसानी से सीख लेते थे। उनका एक छात्र एडवर्ड कागलिंग फ्रेयरे लिपि को पाँच वर्ष में भी नहीं सीख सका, परन्तु 'मून लिपि' सीखना शुरू करने के दस दिन बाद ही वह इसे पढ़ने लगा।

मून-लिपि:

यह लिपि मात्र 9 चिह्नों पर आधारित है। यही एकमात्र लिपि है जो ब्रेल के अतिरिक्त अब भी कुछ दृष्टिहीनों द्वारा इस्तेमाल की जा रही है। अलग-अलग स्थिति में रखे जाने पर इन चिह्नों का अर्थ भिन्न-भिन्न होता है। वाचन गति बढ़ाने के लिए इस लिपि को दो-दो पंक्तियों के समूह में प्रस्तुत किया जाता है। पहली पंक्ति बाएं से दाहिनी ओर तथा दूसरी पंक्ति लौटते समय दाएं से बाईं ओर पढ़ी जाती है। इस लिपि में कुछ संक्षेपों का प्रयोग भी होता है।

ब्राइटन के एक अन्य दृष्टिबाधित व्यक्ति चार्ल्स लाथर को मून लिपि बहुत अच्छी लगी, फलत: चार्ल्स ने इस लिपि में मुद्रण के लिए आर्थिक सहायता दी तथा एक बड़ी मून प्रेस के भवन का शिलान्यास 1856 में किया गया।

मेरी टॉमस के अनुसार 1847 और 1886 के मध्य में विलियम मून ने 350 भाषाओं में साहित्य छापा। अंग्रेजी के बाद जिस विदेशी भाषा में मून-लिपि में साहित्य छपा वह चीनी भाषा थी।

अपने देश में सफलता के पश्चात् उन्होंने जर्मनी, फ्रांस तथा हॉलैण्ड में अपने काम का प्रसार किया। उन्होंने 1882 में संयुक्त राज्य अमेरिका की यात्रा की तथा फिलाडेल्फिया, शिकागो और पिट्सबर्ग में मून साहित्य के पुस्तकालयों की स्थापना की। सन् 1894 में इस कर्मठ व्यक्ति की जीवन-यात्रा समाप्त हो गई।

(5) डॉ. नीलकंठ राय डी. छत्रपति

(1854-1922)

जन्म व शिक्षा:

डा. नीलकंठ राय देहयाभाई छत्रपति का जन्म सन् 1854 में हुआ। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा बड़ौदा में हुई। अहमदाबाद के मिशन हाई स्कूल से मैट्रिक करने के बाद वहीं पर ग्रांट मेडिकल कॉलेज में मेडिकल शिक्षा ग्रहण की।

व्यावसायिक जीवनः

शुरू में निजी प्रैक्टिस में परिश्रम से लोकप्रियता हासिल की। उसके बाद एक धनाढ्य व्यक्ति के आग्रह पर छोटे से औषधालय की स्थापना और विकास में अपना योगदान दिया। यह औषधालय 'रणछोड़ लाल औषधालय' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

अन्ततः उन्हें अहमदाबाद के सिविल अस्पताल में सहायक सर्जन का पद प्राप्त हो गया। वह अपने औपचारिक कार्य के साथ-साथ "लेन्सेट" मेडिकल पत्रिका के लिए लेख भेजा करते थे। उन्होंने गुजराती में भी कुछ छोटी-मोटी पुस्तकों की रचना की।

दृष्टिहीनता से समायोजनः

1892 के आसपास डा. छत्रपति को टेनिस खेलने में असुविधा होने लगी। दृष्टि के लगातार कम होने के कारण उन्हें सरकारी नौकरी भी छोड़नी पड़ी।

'लेन्सेट' के सम्पादक तथा सिविल अस्पताल के भूतपूर्व मुख्य सर्जन ने डा. छत्रपति को प्रोत्साहित किया। दृष्टिहीनों के विषय में सामग्री भेजी और लंदन के दृष्टिहीनार्थ संस्थान का पता भी दिया। संस्थान से उन्हें ब्रेल चार्ट और फिर अनेक पत्र-पत्रिकाएं प्राप्त हुईं, जिनसे उन्हें सक्रिय और उपयोगी जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा मिली।

डा. छत्रपति ने एक दृष्टिवान सहायक की सहायता से पढ़ना तथा गुजराती पत्रिकाओं में लेख भेजना शुरू किया।

दृष्टिहीन कल्याण की योजनाएंः

अपने समायोजन के बाद उनका ध्यान अन्य दृष्टिहीनों की ओर गया। 1895 में उन्होंने बड़ौदा के तत्कालीन शासक से तीन सौ रुपये का अनुदान प्राप्त किया। वह अधिक जानकारी के लिए कुमारी ऐनी शार्प से मिलने अमृतसर भी गये। वहाँ से लौटकर उन्होंने अहमदाबाद में एक दृष्टिहीनार्थ संस्था की स्थापना की। इसमें दृष्टिहीन युवतियों को भी प्रवेश दिया गया। इस विद्यालय की एक अन्य विशेषता यह थी कि कई छात्र घरों से आते थे।

अहमदाबाद से मुम्बईः

इंग्लैण्ड की रानी विक्टोरिया की मृत्यु के बाद मुम्बई के नागरिकों ने उनकी स्मृति में एक दृष्टिहीनार्थ विद्यालय स्थापित करने और इसका उत्तरदायित्व डा. छत्रपति

को सौंपने का निर्णय लिया। वह अहमदाबाद से अपने छात्रों को लेकर मुम्बई पहुँचे और सन् 1902 में विक्टोरिया मेमोरियल दृष्टिहीनार्थ विद्यालय की स्थापना की। डा. छत्रपति लगभग दो दशक तक इस विद्यालय का संचालन करते रहे।

कार्यशाला की स्थापना:

अपने अनेक भूतपूर्व छात्रों में फैली बेरोजगारी तथा सम्बद्ध समस्याओं को दूर करने के लिए डा. छत्रपति ने 1916 में लेमिंग्टन रोड पर एक छोटी-सी कार्यशाला स्थापित की। इसमें रहकर दृष्टिबाधित कुर्सियाँ बुनकर आजीविका कमाने लगे। 1927 में इसे एक अन्य संस्था ने ले लिया, जिससे इसके कर्मचारियों की स्थिति में काफी सुधार हुआ।

भारतीय भाषाओं के लिए ब्रेल कोड:

नीलकंठ राय अंग्रेजी भाषा जानते थे तथा पहले-पहल अंग्रेजी ब्रेल से उनका परिचय हुआ था। अतः यह स्वाभाविक था कि वह अंग्रेजी ब्रेल कोड तथा भारतीय भाषाओं के लिए विकसित ब्रेल कोड में समानता रखना पसन्द करते। उनके द्वारा विकसित ब्रेल कोड को शुरू में 'नीलकंठ ब्रेल' और बाद में 'इण्डियन ब्रेल' के नाम से जाना गया। 1916 में स्थापित एक सरकारी समिति ने भी इस कोड को स्वीकृति प्रदान कर दी।

1921 में स्वास्थ्य बिगड़ने के कारण वह अहमदाबाद लौट गये। वहीं पर सितम्बर, 1922 में इस कर्मवीर का देहान्त हो गया।

(6) कु. एनी शार्प (Annie Sharp)
(1858-1903)

जन्म:

कु. एनी शार्प का जन्म इंग्लैण्ड के टैंगली मेयर नामक स्थान पर 23 अक्टूबर, 1858 को हुआ। उनके पिता का नाम सेमुअल शार्प था।

कु. शार्प के सम्बन्ध में सूचनाओं का बड़ा अभाव है। लेखक के अनेक प्रयासों तथा विस्तृत पत्राचार के बाद भी बहुत ही सीमित जानकारी मिल पायी। पाठक इसका कुछ अंदाजा इस बात से लगा सकते हैं कि उनकी जन्म-मृत्यु की तिथियाँ भी लेखक को उनकी कब्र खोजने के बाद ही मिल पायीं।

एनी, उनकी तीनों बहनें तथा एक भाई सभी अविवाहित रहे, परिणामस्वरूप उनके परिवार में किसी व्यक्ति के उपलब्ध न होने के कारण उनके सम्बन्ध में अधिक जानकारी प्राप्त करना असम्भव रहा।

कु. ह्युलिट (Hewlit) का योगदान:

कु. ह्युलिट भी एक ऐंग्लिकन मिशनरी थीं। वह 1879 में भारत आयीं। यहाँ पहुँचकर उन्हें लगा कि दृष्टिहीनों के लिए काम करने की बड़ी जरूरत है। इसका एक कारण यह भी था कि वह बचपन में स्वयं मिजल्स के फलस्वरूप एक वर्ष तक दृष्टिहीनता का अनुभव कर चुकी थीं।

कु. ह्युलिट ने एनी को दृष्टिहीनों की शिक्षा के सम्बन्ध में विशेष प्रशिक्षण प्राप्त करने और भारत आने के लिए प्रोत्साहित किया। जब कु. शार्प 1886 में भारत पहुँची तो उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई।

प्रथम विद्यालय की स्थापना:

कु. शार्प ने औपचारिक रूप से अपनी संस्था का कार्य 1887 में अमृतसर स्थित सेन्ट कैथरिंस अस्पताल के परिसर में आरम्भ किया। उन्होंने इसका नाम 'ईसाई दृष्टिहीनार्थ उत्तर भारत औद्योगिक गृह' रखा। इस संस्था के पाठ्यक्रम में बाइबिल शिक्षा, साधारण हस्तकला और ब्रेल का प्रशिक्षण शामिल थे। संस्था में किसी भी आयु के दृष्टिहीन प्रवेश पा सकते थे और वे वहाँ आजीवन रह सकते थे। यह परम्परा काफी वर्षों तक चलती रही।

ऐतिहासिक योगदान:

संस्था की समस्त सीमाओं के बावजूद कु. शार्प का योगदान प्रशंसनीय एवं ऐतिहासिक महत्त्व का है। उन्होंने भारतीय दृष्टिहीनों को एक नयी दिशा दिखाई। इस देश के निर्बल तथा असहायतम वर्ग के लोगों के लिए औपचारिक शिक्षा से पूर्व दृष्टिहीनों के लिए एक संस्था अन्यत्र स्थापित की गयी थी परन्तु इस सम्बन्ध में कोई भी प्रमाण उपलब्ध नहीं है।

स्थानान्तरण:

एनी शार्प अपनी संस्था के लिए एक उपयुक्त स्थान चाहती थीं। अन्ततः राजपुर, देहरादून में उन्हें स्थान प्राप्त हो गया। 9 अप्रैल 1903 को वह अपनी संस्था और सहेली कु. ह्युलिट के साथ राजपुर पहुँचीं। कु. ह्युलिट कुछ दिन बाद अमृतसर लौट गयी।

दुर्भाग्यवश 24 अप्रैल, 1903 को हैजे के कारण कु. शार्प की मृत्यु अल्प आयु में ही हो गयी।

एक अन्य स्कूल की स्थापना में योगदानः

ऐतिहासिक दस्तावेजों से पता चलता है कि डा. नीलकंठ राय डी. छत्रपति ने 1895 में अहमदाबाद में दृष्टिहीनों की संस्था स्थापित करने से पहले कु. शार्प से भेंट की थी। इस तरह कु. शार्प का अप्रत्यक्ष योगदान उस संस्था के लिए भी रहा।

नाम परिवर्तनः

एनी के पश्चात् उनकी बहनें-ऐमिली तथा फ्रांसिस- कुछ समय के लिए यहाँ आयीं पर उन्हें धन और सामग्री की व्यवस्था करने के लिए इंग्लैण्ड लौटना पड़ा। उनका भाई भी इंग्लैण्ड से संस्था के लिए सहायता का प्रबन्ध करता था। कु. फ्रांसिस ने इस संस्था का संचालन जनाना बाइबिल तथा मेडिकल मिशन को सौंप दिया। उसके बाद इसके नाम में 'गृह' के बजाय 'विद्यालय' जोड़ा गया।

1918 में एनी शार्प की तीसरी बहन डा. मारिया शार्प देहरादून पहुँची परन्तु एक सप्ताह के बाद ही उनका भी हैजे के कारण देहान्त हो गया।

कु. एनी शार्प, उनकी तीन बहिनों तथा भाई के योगदान को ध्यान में रखते हुए 1930 के दशक में किसी समय विद्यालय का नाम बदलकर शार्प मेमोरियल स्कूल फॉर दि ब्लाइंड रखा गया। प्रसन्नता का विषय है कि यह स्कूल उत्साह वर्धक प्रगति कर रहा है।

(7) मारिया मॉन्टेसरी (Maria Montessori)

(1870-1952)

जन्म व आरम्भिक शिक्षाः

मारिया का जन्म सन् 1870 में इटली के एक नगर में हुआ था। उनके पिता सरकारी अधिकारी थे। जब मारिया की आयु 5 वर्ष थी तो यह परिवार रोम में जा बसा।

असाधारण निर्णयः

माध्यमिक स्तर पर शिक्षा के लिए मारिया ने तकनीकी शिक्षा को चुना जो तत्कालीन परिस्थितियों में किसी लड़की के लिए असाधारण बात थी। दरअसल, शुरू में मारिया का विचार इंजीनियर बनने का था परन्तु बाद में उन्होंने चिकित्सा

विज्ञान के अध्ययन के लिए निर्णय लिया, एनसाइक्लोपीडिया ऑफ एजुकेशन, रिसर्च एण्ड स्टडीज़ (खण्ड-6, सन् 1985) के अनुसार 1896 में मारिया ने चिकित्सा विज्ञान की उपाधि प्राप्त कर इस क्षेत्र में प्रवेश करने वाली प्रथम इतालवी महिला होने का कीर्तिमान स्थापित किया।

मैडम मॉन्टेसरी ने अपना शोध कार्य रोम विश्वविद्यालय के मनोचिकित्सा क्लीनिक में किया। शोध के अधिक अवसर प्राप्त करने की दृष्टि से उन्होंने यहाँ पर कई वर्ष तक स्वयंसेवक के रूप में भी कार्य किया। इस कार्य के सिलसिले में उन्हें अनेक बार रोम के मानसिक विकलांग बालकों के केन्द्रों में भी जाना पड़ता था। फलस्वरूप उन्होंने जाँ-मार्क-गेस्पाग ईताग (Jean-Marc-Gaspard Itard) तथा उनके शिष्य ओ. एदवाग सैगें (O.Edouvard Seguin) के विचारों व शिक्षा तकनीकों का अध्ययन किया। इसके परिणामस्वरूप उन्हें जीवन में एक नयी दिशा प्राप्त हुई तथा विश्व को बालकों के लिए एक नयी शिक्षा विधि।

योगदान:

सन् 1907 में मारिया ने रोम की एक मलिन बस्ती में पिछड़े बालकों के लिए एक विद्यालय की स्थापना की। इस तरह मॉन्टेसरी के पहले "बालगृह" (Case dei Bambini) की स्थापना हुई।

उन्होंने अपनी शिक्षा तकनीकों के विकास में इताग तथा सैगें से प्रेरणा ली। इताग ने मूक-बधिर बालकों के लिए ज्ञानेन्द्रियों को प्रशिक्षित करने के लिए सामग्री विकसित की थी। सैगें ने इस सामग्री का प्रयोग मूढ़ (Idiot) बालकों की शिक्षा प्रणाली विकसित करने के लिए किया।

मॉन्टेसरी की मान्यता थी कि बालकों को 0-6 तथा 7-18 वर्ष के 2 महत्त्वपूर्ण काल-खण्डों में रखा जा सकता है। प्रथम खण्ड, विशेष रूप से 3-6 वर्ष का काल-खण्ड उनमें संवेदी-विकास (Sensory Development) की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होता है। इस काल-खण्ड के बच्चों के लिए मारिया ने दैनिक कौशल विकसित करने की दृष्टि से व्यावहारिक गत्यात्मक क्रियाओं एवं अन्य ज्ञानेन्द्रियों के प्रशिक्षण को महत्त्वपूर्ण समझा, जो बालक के बौद्धिक प्रशिक्षण तथा बाद में उसकी बौद्धिक शिक्षा को सबल आधार प्रदान करती है।

उनके जीवनी लेखक, आई.एम. स्टैन्डिग ने मॉन्टेसरी विधि के निम्नलिखित पाँच प्रमुख सिद्धान्त बताये हैं:-

(1) बालक वास्तविक रुचिकर कार्य में ध्यान केन्द्रित कर सकते हैं।

(2) वे व्यवस्था चाहते हैं और पहले से सीखे कार्यों की पुनरावृत्ति से आनन्द प्राप्त करते हैं।

(3) वे खेल की अपेक्षा काम पसन्द करते हैं तथा खिलौनों की अपेक्षा शिक्षात्मक सामग्री उन्हें अधिक पसन्द होती है।

(4) उन्हें अभिप्रेरणा हेतु उपहार/दण्ड की आवश्यकता नहीं।

(5) बालक अपने सम्मान के प्रति बहुत संवेदनशील होते हैं उन्हें छोटी-छोटी बातों से ठेस पहुँच सकती है।

मॉन्टेसरी विधि व दृष्टिहीन बालक:

इस विधि के अनेक तत्त्वों एवं प्रक्रियाओं को जरूरी संशोधन के बाद दृष्टिबाधित बालकों की प्रारम्भिक शिक्षा में सफलतापूर्वक प्रयोग किया जा सकता है। उनके दैनिक कौशल विकसित करने तथा वातावरण का ज्ञान प्राप्त करने के सम्बन्ध में इस विधि की अनेक प्रक्रियाएं लाभदायक सिद्ध हो सकती हैं। मॉन्टेसरी ने सामान्य बालकों के लिए जिस विधि को विकसित किया उसे उपयुक्त संशोधनों के साथ दृष्टिबाधित बालकों के लिए भी प्रयोग में लाया जा सकता है।

इस अभूतपूर्व शिक्षाशास्त्री तथा व्यावहारिक शिक्षिका की जीवन लीला सन् 1952 में पूर्ण हो गयी।

(8) हेलन केलर
(1880-1968)

जन्म एवं शिक्षा:

विश्व इतिहास की अभूतपूर्व विभूति तथा विकलांगों के लिए प्रेरणा की सशक्त व सतत स्रोत कु. हेलन केलर का जन्म संयुक्त राज्य अमेरिका के एक दक्षिणी प्रान्त एलाबामा के टस्कम्बिया नामक कस्बे में 27 जून, 1880 को हुआ था। जन्म के समय वह पूर्णतया स्वस्थ थीं। डेढ़ वर्ष की आयु में बीमार होने पर वह दृष्टिहीन, बधिर और फलतः गूंगी हो गयीं (बड़े होने पर प्रशिक्षण तथा अभ्यास के फलस्वरूप वह थोड़ा-थोड़ा बोलना सीख गयी थीं)।

विकलांगता के बावजूद वह एक सक्रिय तथा समायोजन शक्ति सम्पन्न बालिका थी। अपनी माँ के साथ-साथ इधर-उधर घर में घूमती, चीजों को स्पर्श

करती, माँ की गोदी में बैठकर बोलते समय उनके गले व होंठों का छूती रहती थी। इन क्रियाओं ने हेलन की अवशिष्ट इन्द्रियों को अनौपचारिक रूप से प्रशिक्षित करने का काम किया। कुछ संकेत भी विकसित किये। किसी व्यक्ति को पास बुलाने के लिए अपनी ओर खींचती तथा जाने का इशारा करने के लिए उसे दूर धकेलती, भूख लगने पर रोटी काटने और मक्खन लगाने की क्रिया करती तो आइसक्रीम माँगने के लिए फ्रीजर खोलने का अभिनय करती और थोड़ा-सा काँपती थी। ऐसे ही अनुभवों को याद करते हुए हेलन ने अपनी आत्मकथा में लिखा था, "मेरी लम्बी रात में जो कुछ सुखद व वांछनीय था वह माँ की स्नेह बुद्धि का परिणाम था।"

माता-पिता का सामान्य व्यवहार:

विकलांगता के बावजूद हेलन के प्रति परिवार का व्यवहार स्नेहपूर्ण था। उन्हें अपने बड़े घर में तथा बगीचे में घूमने की आजादी थी। उनके रसोईये की बेटी मार्था वाशिंगटन हेलन की सहेली थी। दोनों साथ-साथ मुर्गियों को दाना खिलातीं तथा बड़ी घास में पक्षियों के अण्डे ढूँढतीं। हेलन की एक और साथी बैले नामक कुतिया थी, जिसे मार्था की तरह बात न समझ पाने के कारण कई बार मालकिन से मार भी खानी पड़ती थी।

लम्बे प्रयास के बाद पर्किन्स स्कूल ने हेलन की शिक्षा के लिए कु. ऐन सलीवन को भेजा जो 3 मार्च, 1887 के दिन हेलन के घर पहुँची। बाद के वर्षों में कु. हेलन केलर इस दिन को अपनी 'आत्मा के जन्मदिन' के रूप में मनाती थीं तथा इसी को उन्होंने अपनी आत्मकथा में जीवन का 'सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण दिन' बताया है।

ऐन स्वयं भी दृष्टिहीन थीं। उन्होंने पर्किन्स स्कूल में शिक्षा प्राप्त की थी। हेलन के पास जाने से पूर्व उन्होंने अपनी सफलता सुनिश्चित करने की दृष्टि से पर्याप्त तैयारी की थी। वह मात्र नौकरी के उद्देश्य से वहाँ गयी थीं परन्तु पहले शिक्षिका और फिर मित्र सलाहकार व सहचरी के रूप में मृत्युपर्यन्त हेलन के साथ रहीं।

हेलन की शिक्षा प्रक्रिया में ऐन सलीवन के समक्ष अनेक कठिनाइयाँ थीं, जिनमें हेलन की स्वच्छंदता और अनुशासनहीनता प्रमुख थीं। ऐन के अनुसार शिक्षा के लिए अनुशासन अनिवार्य शर्त है। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए परिवार की आनाकानी के बाद वह हेलन को लेकर केलर परिवार के पुराने मकान में चली गयीं।

इस प्रवास से हेलन को पर्याप्त लाभ हुआ। 20 मार्च, 1887 के पत्र में ऐंन ने लिखा, "आज की सुबह मेरा दिल प्रसन्नता से गा रहा है।" प्रसन्नता स्वाभाविक थी क्योंकि उनकी "नन्हीं छात्रा के मन को समझ की रोशनी ने आभामय कर दिया था।" ऊन से जंजीर बनाना तथा क्रोशिये से गुड़िया का ऐपरेन बनाना भी हेलन ने इसी प्रवास में सीखा था।

संचार का नया माध्यम:

ऐन ने हेलन की दृष्टिहीनता तथा बधिरता की दोहरी विकलागता को भेदकर उनके मन तक पहुँचने के लिए स्पर्श को चुना। वह अपनी छात्रा की हथेली पर अंगुली से शब्द लिखतीं और सही उत्तर देने पर केक का टुकड़ा देतीं। इस तरह मार्च के अन्त तक हेलन ने 18 संज्ञाएं तथा 3 क्रियाएं सीख लीं।

अप्रैल के पहले सप्ताह की घटना ऐतिहासिक थी। शिक्षिका ने बालिका का एक हाथ पानी के नीचे रखा और दूसरी हथेली पर 'वाटर' शब्द लिखा। इसके एक घण्टे के अन्दर ही हेलन ने कई नये शब्द सीखे। 24 अप्रैल तक शब्दों की संख्या 100, 22 मई तक 300 और 19 जून तक शब्दों की संख्या 400 तक पहुँच गयी। ऐन ने सिखाने के लिए वास्तविक वस्तुओं और स्थितियों का सहारा लिया, उदाहरणार्थ-5 की संख्या 5 पिल्लों को दिखाकर सिखलाई थी।

संप्रेषण के अन्य माध्यम:

एक फ्रेम व पेन्सिल की सहायता से रोमन लिपि में लिखना अभिव्यक्ति का दूसरा साधन बना। इसके बाद हेलन केलर ने ब्रेल और फिर 1892 से टाइपराइटर का प्रयोग करना भी शुरू कर दिया। मेनुअल वर्णमाला (Manual Alphabet) तथा सीमित मात्रा में मौखिक वार्तालाप की शक्ति ने उनकी अभिव्यक्ति को और सबल बनाया।

उच्च शिक्षा:

किशोरावस्था में ही कु. हेलन केलर ख्याति के शिखर को छूने लगी थी। विटियर तथा होमस जैसे कवि और मार्कट्वेन सरीखे लेखक उनके प्रशंसकों में शामिल थे। इसी कारण परिवार की आर्थिक दशा अच्छी न होने पर भी उन्हें सन् 1900 में रेडक्लिफ कॉलेज में प्रवेश के लिए पर्याप्त सहायता मिल गयी। बाद में स्नातक की उपाधि प्राप्त कर उन्होंने ऐतिहासिक कीर्तिमान स्थापित किया तथा भविष्य में अनेक दृष्टिहीन व दृष्टिहीन-बधिर व्यक्तियों के लिए उच्च शिक्षा के दरवाजे खोल दिये।

व्यवसाय एवं योगदान:

कु. हेलन केलर ने कॉलेज के अन्तिम वर्षों में शिक्षण या मसाज को अपना व्यवसाय बनाने की बात सोची थी, परन्तु धीरे-धीरे लेखन, विशेषकर अपने विषय में लेखन, उन्हें ख्याति व धन दोनों दिलवाने लगा। उनकी कुछ कविताएं भी प्रकाशित हुईं। 1907 में 'लेडीज़ होम' पत्रिका में उन्होंने बालकों में दृष्टिहीनता के सम्बन्ध में कई लेख लिखे। महिला मताधिकार जैसे विषयों पर भी उनकी लेखनी चली, परन्तु अन्ततः दृष्टिहीन, दृष्टिहीन-बधिर और उनसे सम्बद्ध कार्य के विषय में लेखन, भाषण तथा सहयोग ही उनका व्यवसाय बन गये।

दृष्टिहीन कल्याण के सम्बन्ध में उनके विचार राष्ट्रीय सीमाओं के बन्धन से मुक्त थे। प्रथम विश्व युद्ध में उन्होंने जर्मनी में बिकने वाली अपनी पुस्तकों की आय युद्ध में दृष्टिहीन हुए जर्मन सैनिकों को दे दी। फ्रांस में इसका विरोध हुआ तो उनका कहना था कि यदि फ्रांस में उन्हें अपनी पुस्तको से कुछ आय मिलती होती तो यही कदम उन्होंने फ्रांसीसी सैनिकों के लिए भी उठाया होता। 1920 से कु. हेलन केलर का सम्बन्ध अमेरिकन फाउन्डेशन फॉर द ब्लाइन्ड (ए.एफ.बी.) से बना जो अनेक कड़वे-मीठे अनुभवों के बावजूद आजीवन बना रहा। उन्होंने इसके माध्यम से भारत समेत विश्व के अनेक देशों की यात्राएं कीं तथा वहाँ दृष्टिहीन और दृष्टिहीन-बधिर लोगों के लिए सेवाएं स्थापित करवाने में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष भूमिका निभाई। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान कु. हेलन केलर ने ए.एफ.बी. की एक सहायक संस्था ए.एफ.ओ.बी. स्थापित की, जिसका नाम बाद में हेलन केलर इन्टरनेशनल रखा गया।

मानव इतिहास को समृद्ध कर तथा मानव-मन को कई अछूते संदेश देकर 1 जून, 1968 के दिन 88 वर्ष की आयु में कु. हेलन केलर ने भौतिक संसार को त्याग दिया। उन्होंने विश्व के समक्ष 'बाधा पर विजय' का एक अनूठा उदाहरण प्रस्तुत किया, जो सभी विकलांगों-विशेषकर दृष्टिहीनों के लिए प्रेरणा का अमिट स्रोत बना रहेगा।

(9) बैरिस्टर आर.एम. अल्पाईवाला
(1887-1965)

जन्म व शिक्षा:

पद्मश्री से सम्मानित रुस्तमजी मर्वान्जी अल्पाईवाला का जन्म 7 मई, 1887 को एक पारसी परिवार में हुआ। अपने जन्म स्थान मुम्बई के न्यू हाई स्कूल से

1903 में मैट्रिक करने के बाद 1907 में एल्फिस्टन कॉलेज से बी.ए. किया। अपने पारिवारिक व्यवसाय में रुचि होने के कारण 1911 में एल.एल.बी. पास करने के बाद उच्च कानूनी शिक्षा के लिए इंग्लैण्ड भी गये।

व्यवसाय:

व्यावसायिक दृष्टि से अल्पाईवाला के तीन स्पष्ट क्षेत्र उभरते हैं, 1913 में इंग्लैण्ड से लौटकर उन्होंने मुम्बई उच्च न्यायालय में वकालत शुरू की परन्तु लगातार घटती दृष्टि के कारण उन्हें चार साल में ही यह व्यवसाय छोड़ना पड़ा। 1919 से 1940 तक वह अलग-अलग स्कूलों में शिक्षक रहे। इसी दौरान वह न्यू इरा स्कूल के सचिव भी रहे। 1940 के पश्चात् उन्होंने अपना पूरा समय दृष्टिहीन कल्याण को दिया।

दृष्टिबाधा से समायोजन:

रुस्तमजी को रेटिनाइटिस पिगमेन्टोसा के कारण 13 साल की उम्र से ही चश्मे का प्रयोग करना पड़ा। पहले इंग्लैण्ड और फिर जर्मनी में उपचार के बावजूद उनकी आँखों की रोशनी कम होती गयी परन्तु विकलांगता को उन्होंने एक चुनौती समझा, उससे कभी हार नहीं मानी। यही कारण है कि वह पहले स्वयं के समायोजन और फिर दृष्टिहीन वर्ग के उत्थान की राह पर चलते रहे।

योगदान:

सन् 1919 में उनकी भेंट विक्टोरिया मेमोरियल स्कूल के प्रधानाचार्य डा छत्रपति से हुई। इसके पश्चात् वह दृष्टिहीन कल्याण क्षेत्र में अधिकाधिक सक्रिय होते गये।

समान ब्रेल संहिता:

वह भारतीय भाषाओं के लिए समान ब्रेल कोड के पक्षधर थे। सर्वप्रथम मुम्बई में सम्पन्न एक सम्मेलन में जनवरी, 1923 में उन्होंने इस विषय पर अपना पेपर प्रस्तुत किया। उसके बाद 1926 के एक अन्य सम्मेलन में भी उन्होंने अपने विचार रखे। सन् 1948 में मुम्बई में ब्लाइंड मेन्स एसोसिएशन के प्रादेशिक सम्मेलन में भी ब्रेल सम्बन्धी चर्चा हुई। उसके बाद अल्पाईवाला को केन्द्र सरकार की ब्रेल से सम्बद्ध विशेषज्ञ समिति का सदस्य मनोनीत किया गया।

रुस्तमजी अंग्रेजी व भारतीय भाषाओं की ब्रेल संहिताओं के बीच समानता के पक्षधर थे। अन्ततः भारती ब्रेल इसी सिद्धान्त पर विकसित की गयी।

राष्ट्रीय संगठन की स्थापना:

1947 में सूरत के दृष्टिहीनों ने दृष्टिहीन जन संगठन ब्लाइण्ड मेन्स एसोसियेशन (बी.एम.ए.) की स्थापना की। 1948 ई. में अल्पाईवाला को इसका अध्यक्ष चुना गया। इसी वर्ष मुम्बई में संगठन के प्रादेशिक सम्मेलन में एक राष्ट्रीय संगठन स्थापित करने के सम्बन्ध में भी प्रस्ताव पारित किया गया। 19 जनवरी, 1952 के दिन मुम्बई में नेशनल एसोसिएशन फॉर दि ब्लाइण्ड (एन.ए.बी.) की स्थापना की गयी तथा बैरिस्टर अल्पाईवाला इसके संस्थापक अध्यक्ष बने। वह सन् 1961 तक इस पद पर रहकर एन.ए.बी. के विकास का संचालन करते रहे। वह वर्ल्ड कॉउंसिल फार द वेलफेयर आफ द ब्लाइण्ड (डब्ल्यू.सी.डब्ल्यू.बी.) के भी मानद सदस्य थे।

दृष्टिहीनार्थ सेवाओं के लिए उन्हें 1960 में भारत सरकार ने पद्मश्री से सम्मानित किया गया। इस बहुमुखी प्रतिभा ने 25 फरवरी, 1965 के दिन इस नश्वर विश्व को त्याग दिया।

(10) सरक्लूथा नान्त मैकेन्जी
(Sir Clutha Nantes Mackenzie)

(1895-1966)

जन्म व आरम्भिक जीवन:

सर क्लूथा नान्त मैकेन्जी का जन्म 11 फरवरी, 1895 के दिन न्यूजीलैण्ड के क्लूथा क्षेत्र में हुआ था। उनका परिवार राजनीतिक रूप से सक्रिय व प्रभावशाली था। युवावस्था में प्रवेश करते ही क्लूथा ने टुरूपर के रूप में न्यूजीलैण्ड सेना में नौकरी शुरू कर दी। केवल एक वर्ष बाद युद्ध-क्षेत्र में एक गोले के फटने से वह दृष्टिहीन हो गये।

दृष्टिहीनता से समायोजन:

उपचार के लिए उन्हें ब्रिटेन के एक सैनिक अस्पताल में भेजा गया जहाँ स्वयं दृष्टिहीन तथा सेन्ट डंसटन्स के संस्थापक सर आर्थर पियर्सन ने उनसे भेंट की। अन्य अनेक सैनिकों की भांति क्लूथा के पुनर्वास में भी सर पियर्सन की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही।

अस्पताल में ही पुनर्वास की शुरुआत कर दी गयी। उन्हें अंग्रेजी टाइपिंग में विशेष रुचि थी। सर पियर्सन ने क्लूथा से एक लेख लिखने के लिए कहा जिसे

उन्होंने 'ईवनिंग स्टैंडर्ड' नामक अखबार में प्रकाशित करवाया। इससे मैकेन्जी को न केवल पाँच गिनी का पारिश्रमिक मिला बल्कि उनका मनोबल भी बहुत बढ़ा।

स्वास्थ्य लाभ के बाद उन्हें लंदन के सेन्ट डंस्टन्स केन्द्र में ब्रेल तथा मसाज का प्रशिक्षण दिया गया।

व्यवसायः

प्रशिक्षण के बाद क्लूथा मैकेन्जी के सामने उपयुक्त व्यवसाय ढूँढने की समस्या थी। शुरू में अपने पारिवारिक व्यवसाय राजनीति को अपनाने की कोशिश की। 1921-22 में उन्होंने न्यूजीलैंड की संसद में ऑकलैण्ड (पूरब) का प्रतिनिधित्व किया। शायद इस क्षेत्र में उन्हें अपना भविष्य असुरक्षित जान पड़ा।

दृष्टिहीन कल्याण क्षेत्र में योगदानः

मैकेन्जी ने ऑकलैण्ड स्थित दृष्टिहीनार्थ जुबली संस्थान को अपनी कर्मभूमि के रूप में चुना जो उनके लिए उड़ान-पट्टी भी साबित हुआ। यहाँ पर क्लूथा ने 1923 से 1938 तक निर्देशक के रूप में काम किया। विशिष्ट सेवाओं के लिए उन्हें 1935 में 'सर' की उपाधि से सम्मानित किया गया।

भारत तथा अन्य देशों में योगदानः

सर क्लूथा मैकेन्जी 1942 में भारत आये। उसी वर्ष भारत सरकार ने उनसे अंशकालीन आधार पर दृष्टिहीन पुनर्वास काम करने का अनुरोध किया। अगले वर्ष उन्हें विशेष अधिकारी (दृष्टिहीनता) के पद पर नियुक्त किया गया और उन्हें युद्ध में दृष्टिहीन हुए सशस्त्र सेनाओं के कर्मचारियों के पुनर्वास हेतु देहरादून में स्थापित सेन्ट डंस्टन्स भारतीय युद्ध दृष्टिहीनार्थ छात्रावास (St. Dunstans Hostel for Indian War Blinded) के संचालन का उत्तरदायित्व सौंपा गया। सरकारी स्तर पर दृष्टिहीन पुनर्वास के क्षेत्र में यह एक ऐतिहासिक कदम था। सैनिकों का प्रशिक्षण समाप्त होने पर 1 जनवरी, 1950 से इस केन्द्र को भारत सरकार के शिक्षा मन्त्रालय ने ले लिया तथा इसका नाम प्रौढ़ान्ध प्रशिक्षण केन्द्र (Training Centre for Adult Blind--TCAB) रखा और इसे असैनिक दृष्टिहीनों के प्रशिक्षण के लिए भी खोल दिया।

भारतीय दृष्टिहीनों की तत्कालीन स्थिति तथा उनके सम्पूर्ण पुनर्वास से सम्बद्ध 1944 के भारत सरकार के प्रतिवेदन को तैयार करने में भी लेफ्टिनेंट कर्नल मैकेन्जी की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। (भारत सरकार ने उन्हें लफ्टिनेंट कर्नल का मानद पद दिया था)।

1949 में यूनेस्को का ब्रेल सलाहकार बनने पर क्लूथा मैकेन्जी ने 1950 के अन्तर्राष्ट्रीय ब्रेल सम्मेलन द्वारा विश्व स्तर पर ब्रेल संहिताओं में समरूपता लाने का प्रयास किया।

भारत के अतिरिक्त सर मैकेन्जी ने 20 देशों में दृष्टिहीनार्थ सेवाओं की स्थापना अथवा उनके विकास में योगदान दिया। भारत से लौटकर उन्होंने चीन, सिंगापुर तथा पाकिस्तान में दृष्टिहीनों के कल्याण सम्बन्धी कार्य किये।

वह आजीवन सक्रिय रहे। अपनी आत्मकथा लिखते हुए 30 मार्च, 1966 को उनका देहान्त हो गया।

(11) वुल्फगैंग स्टाइन
(1930-2000)

जन्म व शिक्षा:

वुल्फगैंग आर्थर स्टाइन (Wolfgang Arthur Stein) का जन्म 28 अगस्त, 1930 को जर्मनी के विटन नामक स्थान पर हुआ। उनके परिवार की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी, इसीलिए माध्यमिक शिक्षा के पश्चात् सामाजिक कार्य (Social Work) में उपाधि प्राप्त करने के लिए उन्हें अंशकालीन आधार पर स्टील मिल तथा कोयला खानों में काम करना पड़ा।

व्यवसाय:

दृष्टिहीनों की शिक्षा व पुनर्वास के क्षेत्र में आने से पहले डब्ल्यू.ए. स्टाइन ने 1951-58 तक स्विट्जरलैण्ड में शिक्षा अधिकारी के रूप में काम किया। इसके बाद ब्रन्सविक तथा हेनोवर विश्वविद्यालयों में शरणार्थी विद्यार्थियों के परामर्शदाता के रूप में तीन वर्ष काम किया। सन् 1963 में स्टाइन ने दृष्टिहीन कल्याण क्षेत्र में काम शुरू किया और आजीवन करते रहे।

योगदान:

1963-1970 तक उन्होंने हांगकांग के ऐबीनीजर दृष्टिहीनार्थ विद्यालय के अधीक्षक के रूप में काम किया। उसके बाद वह 1970 में जर्मनी के संगठन क्रिस्टोफल ब्लीन्डन मिशन (सी.बी.एम.) के निदेशक बने। इस पद पर रहते हुए उन्हें विश्व के अनेक देशों की यात्रा करने तथा वहाँ के दृष्टिहीनों के लिए काम करने के अभूतपूर्व अवसर मिले।

1977 में डब्ल्यू.ए. स्टाइन को पेरिस सम्मेलन में इन्टरनेशनल कॉउंसिल आफ एजुकेटर्स् फार वीजुअली हैण्डीकैप्ड (आई.सी.ई.वी.एच.) का अध्यक्ष चुना गया।

1980 के दशक में स्टाइन ने साईट सेवर्स तथा आर.सी.एस.बी. के अन्तर्राष्ट्रीय पुनर्वास एवं शिक्षा सलाहकार के रूप में कार्यभार सम्भाला। इस पद पर रहते हुए उन्होंने अनेक बार विश्वव्यापी दौरे किये तथा दृष्टिहीनों की एकीकृत शिक्षा प्रणाली को पुष्ट करने में योगदान दिया।

अन्तर्राष्ट्रीय सलाहकार के रूप में वह साईट सेवर्स द्वारा प्रायोजित भ्रमणशील अध्यापकों के लिए कार्यशालाओं का भारत में दो वर्ष तक संचालन करते रहे डा. भूषण पुनानी तथा श्रीमती नन्दिनी रावल ने स्टाइन के सम्बन्ध में लिखी अपने पुस्तिका में डब्ल्यू.ए. स्टाइन के एकीकृत शिक्षा सम्बन्धी विचारों तथा योगदान का विस्तारपूर्वक उल्लेख किया है।

28 दिसम्बर, 2000 को डब्ल्यू.ए. स्टाइन का स्वर्गवास हो गया।

अध्याय-31

वैयक्तिक विभिन्नताएं

-डॉ. सुशील कुमार

निम्न जीवधारियों से लेकर मानव जाति तक समस्त जीव-जगत् में वैयक्तिक विविधता का पाया जाना एक सार्वभौमिक तथ्य है। यह भी एक सर्वमान्य सत्य है कि किसी एक परिस्थिति में किन्हीं दो व्यक्तियों का व्यवहार एक समान नहीं होता। ऊपरी तौर से किसी भी समूह के सदस्य एक जैसे लग सकते हैं, लेकिन ध्यान से देखने पर सदस्यों में पायी जाने वाली वैयक्तिक विभिन्नताएं स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होने लगती हैं। किसी भी समूह के मनोवैज्ञानिक परीक्षण से भी वैयक्तिक विभिन्नताओं के विषय में जानकारी मिलती है। वैयक्तिक विभिन्नताएं मनोवैज्ञानिकों तथा शिक्षाविदों के लिए अध्ययन का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र रही हैं। इस प्रकार का अध्ययन मानव व्यवहार को भली-भांति समझने के लिए आवश्यक है। शिक्षण अधिगम प्रक्रिया प्रभावी बनाने में भी इस प्रकार की जानकारी अत्यन्त महत्वपूर्ण हो सकती है। प्रस्तुत अध्याय में वैयक्तिक विभिन्नताओं का अर्थ एवं महत्व, क्षेत्र तथा कारण, वैयक्तिक विभिन्नताओं के शैक्षिक प्रभाव प्रतिभावान तथा मन्दगति से सीखने वाले बालकों की विशेष आवश्यकताओं तथा दृष्टिहीनता के प्रभावों की चर्चा की गई है।

अर्थ एवं महत्व :

मानव समाज ने बहुत पहले ही वैयक्तिक अन्तरों की पहचान कर ली थी। हमारे समाज तथा अधिकांश सामाजिक संस्थाओं का संगठन इसी अवधारणा पर आधारित है कि व्यक्ति एक-दूसरे से भिन्न होते हैं। हम जानते हैं कि दैनिक जीवन की विभिन्न क्रियाओं द्वारा हम लगातार अपने साथियों में पाये जाने वाले वैयक्तिक अन्तरों से सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास करते हैं। व्यक्तियों में अन्तर मानसिक व भावात्मक पक्ष से लेकर शारीरिक लक्षणों तक हो सकते हैं। ऐसा समाज, जिसका उद्देश्य सर्वशिक्षा हो, वह वैयक्तिक आवश्यकताओं, क्षमताओं तथा सीमाओं में विभिन्नता की अनदेखी नहीं कर सकता। यही कारण है कि मनोवैज्ञानिक तथा समाजशास्त्री वैयक्तिक विभिन्नताओं की प्रकृति तथा उद्‌भव को समझने में प्रयासरत हैं। व्यक्तियों में पायी जाने वाली ऐसी विभिन्नताएं, जो किसी भी व्यक्ति को अनन्य व्यक्ति बनाती हैं, 'वैयक्तिक विभिन्नताएं' कहलाती हैं। शिक्षा का मुख्य उद्देश्य व्यक्तियों में वांछनीय व्यवहारीय परिवर्तन लाना है। शिक्षा के इस उद्देश्य

की प्राप्ति हेतु वैयक्तिक आवश्यकताओं तथा क्षमताओं को ध्यान में रखना आवश्यक है। बालोन्मुखी शिक्षा तथा वैयक्तिक अनुदेशन पर बल दिए जाने के कारण इस प्रकार की विभिन्नताएं अत्यन्त महत्वपूर्ण हो गयी हैं।

वैयक्तिक विभिन्नताओं के क्षेत्र :-

शरीर क्रिया तथा संरचना के आधार पर सभी व्यक्तियों नें मूलभूत समानताएं पायी जाती हैं, तथापि अनेक विभिन्नताओं के आधार पर एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति से अलग पहचाना जा सकता है।

1. **शारीरिक विभिन्नताएं**- हम देखते हैं कि व्यक्तियों का शारीरिक गठन अलग-अलग होता है। लोगों का वजन, त्वचा, बाल तथा आँखों कर रंग इत्यादि भिन्न-भिन्न होता है। ये विभिन्नताएं अक्सर जाति तथा राष्ट्रीयता पर आधारित, होती हैं। व्यक्तिगत शारीरिक गठन उम्र के साथ बदलता रहता है तथा एक व्यक्ति का शारीरिक गठन दूसरे व्यक्ति से अलग होता है। शरीर की संरचना, शारीरिक क्रियाएं तथा जैव रासायनिक क्रियाएं लिंग पर आधारित होती हैं।

2. **मानसिक विभिन्नताएं**- व्यक्ति की मानसिक योग्यता उसके व्यवहार को परिवर्तनशील वातावरण के साथ सामंजस्य स्थापित करने में तथा किसी भी कार्य को सम्पादित करने में सहायक होती है। किन्हीं दो व्यक्तियों की मानसिक क्षमताएं एक-समान नहीं होतीं, उनकी किसी भी कार्य को सीखने की योग्यता भिन्न-भिन्न होती है। उनकी मात्र समस्या समाधान योग्यता ही भिन्न-भिन्न नहीं होती वरन् सामाजिक पर्यावरण से सामंजस्य स्थापित करने की क्षमता भी अलग-अलग होती है। छात्रों की मानसिक योग्यता काफी हद तक उनकी शैक्षिक उपलब्धि को प्रभावित करती है। लोगों की विशिष्ट तथा सृजनात्मक योग्यताओं में भी पर्याप्त भिन्नता पायी जाती है।

3. **व्यक्तित्व में विभिन्नताएं**- लोगों के व्यक्तित्व में इतनी अधिक विभिन्नताएं पायी जाती हैं कि दो लोगों, यहाँ तक कि एक समान जुड़वां व्यक्रियों के व्यक्तित्व भी एक जैसे नहीं हो सकते। सामान्यत: हम जानते हैं कि व्यक्तित्व कई विशेषकों (Traits) से मिलकर बनता है। ये विशेषक गत्यात्मक बलों के बाह्य लक्षण हैं, जो कि अनन्त प्रकार से क्रिया तथा अन्त:क्रिया करते हैं। यही कारण है कि दो लोगों के व्यक्तित्व के विशेषकों का समाकलन सदैव भिन्न होता है।

4. **भावात्मक विभिन्नताएं**- भावनाओं के कारण ही हमें खुशी तथा तनाव का अहसास होता है। कितने ही कार्य हम मात्र भावनाओं के वशीभूत होकर

करते हैं। व्यक्ति में भावना एक प्रकार का गत्यात्मक आन्तरिक सामंजस्य है। लोगों में भावात्मक तनाव तथा सन्तुलन का स्तर अलग-अलग होता है। भावात्मक साझेदारी की प्रवृत्ति भी लोगों में एक जैसी नहीं होती। उद्दीपन की प्रकृति तथा परिस्थितियों की भिन्नता के अलग-अलग होने के कारण भावात्मक व्यवहार में भिन्नता पायी जाती है। भावनाएं अत्यधिक वैयक्तिक होती हैं, इसी कारण यह वैयक्तिक विभिन्नताओं का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है।

5. सामाजिक सामंजस्य में विभिन्नताएं- सामाजीकरण मानव जीवन में विकास की एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है, जिसके द्वारा सामाजिक तथा सांस्कृतिक मूल्य एक पीढ़ी तक हस्तान्तरित होते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि मनुष्य पर उसके सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश का गहरा प्रभाव पड़ता है। समाज के बिना मनुष्य के अस्तित्व के बारे में सोचना कठिन है, क्योंकि वह इसी सामाजिक वातावरण में पलता-बढ़ता है, लेकिन प्रत्येक व्यक्ति के सामाजिक सामंजस्य की गुणवत्ता एवं गुणात्मकता दूसरे व्यक्ति से भिन्न होती है। लोगों का अपने समूह के सदस्यों के प्रति तथा सामाजिक मूल्यों के प्रति दृष्टिकोण भी भिन्न होता है।

वैयक्तिक विभिन्नताओं के कारण:-

वैयक्तिक भिन्नता के लिए अनेक कारकों को उत्तरदायी माना जाता है। कुछ प्रमुख कारक निम्न प्रकार हैं:-

1. आनुवंशिकता- साधारणत: आनुवंशिकता का अर्थ है समानता तथा अनुकूलता, अर्थात् शारीरिक अंगों, आकार, रूप तथा शक्ल आदि की समानता जीवविज्ञानानुसार आनुवंशिकता उन सभी सम्भावनाओं का प्रतीक है, जो बच्चे में गर्भाधान के समय उपस्थित होते हैं। गाल्टन, पियरसन, टरमैन आदि मनोवैज्ञानिकों ने अपने अध्ययनों के द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि अनेक शारीरिक, मानसिक तथा व्यक्तित्व सम्बन्धी विभिन्नताओं के लिए आनुवंशिकता काफी हद तक उत्तरदायी होती है। किसी व्यक्ति को वंशानुक्रम में अपने माता-पिता से क्या-क्या गुण मिलेंगे, यह केवल संयोग पर निर्भर करता है। यह स्पष्ट है कि व्यक्तियों की आनुवंशिकता पूंजी अलग-अलग होती है, फलस्वरूप उनकी जन्मजात विशेषताओं और रुचियों में अन्तर पाया जाना स्वाभाविक है। इन जन्मजात विशेषताओं और योग्यताओं के आधार पर ही एक व्यक्ति दूसरे से भिन्न होता है। आनुवंशिकता के कारण न केवल रंग, रूप, आकृति और शरीर के आन्तरिक व बाह्य अवयवों से सम्बन्धित विभिन्नताएं ही देखने को मिलती हैं, वरन् लिंग, बुद्धि और अन्य विशिष्ट योग्यताओं के क्षेत्र में वैयक्तिक भिन्नता उत्पन्न करने का श्रेय भी इसी को है।

2. वातावरण– वैयक्तिक विभिन्नताओं को प्रभावित करने में वातावरण का महत्वपूर्ण योगदान है। जन्म से मृत्यु तक प्राप्त समस्त सम्प्रेरणाएं व्यक्ति के वातावरण में सम्मिलित होती हैं। गर्भावस्था में मिलने वाले पोषण, जन्म के समय की जाने वाली देखरेख, बाल्यावस्था में माता-पिता तथा अन्य परिजनों से मिलने वाला स्नेह तथा पोषण, परिवार तथा विद्यालय में प्राप्त शिक्षा सम्बन्धी सुविधाएं, माता-पिता की शिक्षा और बच्चों के प्रति उनका दृष्टिकोण, परिवार की सामाजिक व आर्थिक स्थिति, साथियों का संग और अन्य सामाजिक वातावरण से सम्बन्धित ऐसी विभिन्न परिस्थितियों में रहने वाले बच्चों में वैयक्तिक विभिन्नताएं उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक ही है। एक समान यमजों (Twins) में पायी जाने वाली विभिन्नताएं वातावरण में भिन्नता के कारण ही उत्पन्न होती हैं। इस प्रकार से आनुवंशिकता और वातावरण दोनों ही वैयक्तिक विभिन्नता के लिए उत्तरदायी कहे जा सकते हैं। इनमें से कौन-सा कारक अधिक प्रभावी है, यह कहना कठिन है। अतः व्यक्तियों में उनकी भिन्नता के कारणों की खोज करने के लिए हमें आनुवंशिकता और वातावरण सम्बन्धी दोनों प्रकार के प्रभावों पर ध्यान देना होगा।

3. आयु तथा वृद्धि– परिपक्वता का सम्बन्ध प्रायः आयु से होता है। भिन्न-भिन्न आयु के बच्चों में शारीरिक, मानसिक तथा अन्य दृष्टियों में अन्तर होता है। बुद्धि व्यक्तिगत भिन्नता का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कारक है। बुद्धि में भिन्नता के कारण व्यक्ति की शैक्षिक तथा व्यावसायिक उपलब्धियों में पर्याप्त अन्तर आ जाता है। जिन बच्चों का बौद्धिक स्तर तथा मानसिक अवस्था औसत से कम होती है, उन्हें अधिगम सम्बन्धी अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, जबकि औसत बुद्धि वाले बच्चे विभिन्न कार्यों को सरलता से सीख लेते हैं।

4. लिंग भेद– लिंग भेद के कारण लड़के तथा लड़कियों में शारीरिक गठन, मानसिक तथा भावात्मक दृष्टि से अन्तर पाया जाता है। लड़के-लड़कियों के शारीरिक गठन, स्वभाव तथा व्यक्तित्व सम्बन्धी गुणों में भिन्नता पायी जाती है। लड़कियाँ अपेक्षाकृत अधिक दयालु, स्नेहशील, सहानुभूतिपूर्ण, लज्जाशील तथा कोमल होती हैं, जबकि लड़के अधिक कठोर तथा साहसी होते हैं।

5 स्वभाव तथा भावात्मक स्थिरता– कुछ व्यक्ति स्वभाव से क्रोधी होते हैं जबकि दूसरे शान्त। इसी प्रकार कुछ लोग शीघ्रता से कार्य करने वाले होते हैं तथा अन्य धीरे-धीरे काम करते हैं। शारीरिक, मानसिक तथा वातावरण सम्बन्धी कारकों में भिन्नता के कारण व्यक्तियों की भावात्मक स्थिरता अलग-अलग होती है जो कि वैयक्तिक विभिन्नता का कारण बनती है।

6. जाति-प्रजाति तथा राष्ट्रीयता- जाति तथा प्रजाति भी वैयक्तिक विभिन्नताओं के कारणों में से एक है। विभिन्न जातियों के लोगों में विभिन्नता स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है। सामान्यत: यह देखा गया है कि क्षत्रिय अधिक साहसी तथा वैश्य व्यापार में कुशल होते हैं। इसी प्रकार विभिन्न राष्ट्रों के लोगों के चरित्र, व्यक्तित्व तथा अन्य योग्यताओं में भी विभिन्नता होती है। यह विभिन्नता भौगोलिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक वातावरण से पैदा होती है।

7. आर्थिक स्थिति तथा शिक्षण- माता-पिता की आर्थिक स्थिति तथा शिक्षा स्तर बच्चों में शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, भावात्मक तथा सांस्कृतिक विकास को प्रभावित करता है। यही कारण है कि दो भिन्न आर्थिक वर्गों के बच्चों में असमानता का पाया जाना स्वाभाविक है।

8. अन्य कारण- वैयक्तिक विभिन्नताओं के लिए अन्य कई कारण भी उत्तरदायी हैं, जैसे विभिन्न रुचियाँ, अभिवृत्तियाँ, उपलब्धियाँ, भावनाएं, शैक्षणिक एवं पारिवारिक पृष्ठभूमि इत्यादि।

शैक्षिक प्रभाव:-

आधुनिक शिक्षा का महत्वपूर्ण उद्देश्य व्यक्ति का सर्वांगीण विकास करना है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली में मनोवैज्ञानिक एवं शिक्षाविद् वैयक्तिक भिन्नता को अत्यन्त महत्व देते हैं। वास्तव में छात्रों की वैयक्तिक भिन्नता के तथ्यों की अवहेलना नहीं की जा सकती। जब छात्र अनेक गुणों में एक-दूसरे से अलग होते हैं, तब उनके के लिए एक समान शिक्षा व्यवस्था करना उचित नहीं है। कक्षा में भिन्न-भिन्न योग्यताओं, रुचियों तथा अभिरुचियों से युक्त छात्र होते हैं तथा शिक्षक सामान्यत: औसत छात्रों को ध्यान में रखकर अपनी शिक्षण विधियों तथा छात्रों को दिये जाने वाले अधिगम अनुभवों से सम्बन्धित निर्णय लेते हैं, फलस्वरूप प्रतिभाशाली छात्र तथा मंद गति से सीखने वाले छात्र इस प्रकार के शिक्षण से पूरा लाभ नहीं उठा पाते। वैयक्तिक भिन्नताओं के कारण सभी छात्रों को एक समान शिक्षा देने से वांछनीय शिक्षण अधिगम उद्देश्यों की प्राप्ति नहीं हो पाती। अत: यह आवश्यक है कि छात्रों को शिक्षा देते समय उनकी वैयक्तिक भिन्नताओं को ध्यान में रखा जाए। शिक्षण कार्य को वैयक्तिक भिन्नताओं के अनुसार आयोजित करने हेतु कुछ सुझाव इस प्रकार हैं:-

1. कक्षा का सीमित आकार- कक्षा में छात्रों की संख्या अधिक होने पर शिक्षक उनसे व्यक्तिगत सम्पर्क नहीं कर पाता, जिससे शिक्षक छात्रों की वैयक्तिक

भिन्नताओं को नहीं समझ पाता। कक्षा में छात्रों की संख्या सीमित होनी चाहिए, जिससे शिक्षक उन्हें भली-भांति समझ सके तथा उनकी आवश्यकता, सामर्थ्य तथा रुचि को ध्यान में रखते हुए अपने शिक्षण कार्य को आयोजित कर सके।

2. छात्रों का वर्गीकरण– कक्षा में छात्रों को उनकी वैयक्तिक भिन्नता के आधार पर सजातीय समूहों (Homogeneous Groups) में विभाजित किया जा सकता है। इस प्रकार का विभाजन करते समय शिक्षक को छात्र की मानसिक आयु, शारीरिक तथा संवेगात्मक परिपक्वता, रुचियों तथा भावात्मक एवं सामाजिक गुणों को दृष्टि में रखना चाहिए।

3. पाठ्यक्रम में विविधता– एक समान पाठ्यक्रम सभी छात्रों की आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर सकता, इसलिए पाठ्यक्रम में पर्याप्त विविधता का प्रावधान होना चाहिए। पाठ्यक्रम में बहुत-से विषय सम्मिलित किये जाने चाहिएं, जिससे छात्र अपनी मानसिक योग्यता, रुचियों तथा आवश्यकताओं के अनुरूप विषयों का चयन कर सके।

4. शिक्षण विधियाँ– सभी छात्रों के लिए सामान्यतः एक ही शिक्षण विधि प्रभावी सिद्ध नहीं होती, इसलिए शिक्षक को पढ़ाते समय ऐसी शिक्षण विधियों को उपयोग में लाना चाहिए, जिससे कि सभी छात्र पाठ को भली-भांति समझ सकें। मनोवैज्ञानिकों तथा शिक्षाविदों ने वैयक्तिक विभिन्नताओं को ध्यान में रखते हुए अनेक शिक्षण विधियों का प्रतिपादन किया है, जैसे अनुसंधान विधि, परियोजना विधि, समस्या-समाधान विधि इत्यादि।

5. शैक्षिक तथा व्यावसायिक निर्देशन– छात्रों को अपनी सामर्थ्य, योग्यता तथा रुचियों को ध्यान में रखते हुए ही उचित विषयों एवं व्यवसाय का चयन करना चाहिए। शैक्षिक तथा व्यावसायिक मार्गदर्शन द्वारा शिक्षक इस दिशा में छात्रों की सहायता कर सकते हैं, जिससे भविष्य में छात्रों को सफलता मिलने की सम्भावना बढ़ सकती है।

6. गृह कार्य– छात्रों को गृह कार्य देते समय शिक्षकों को उनकी वैयक्तिक भिन्नता को ध्यान में रखना चाहिए, जिससे छात्र अपनी क्षमताओं का समुचित सदुपयोग कर सकें।

7. वैयक्तिक प्रशिक्षण– छात्रों की क्षमताओं के अधिकतम उपयोग तथा सीखने के समान अवसर प्रदान करने हेतु अनेक शिक्षाविदों ने कई योजनाएं

प्रस्तुत की हैं, जैसे कि डाल्टन योजना, मोरिसन योजना, विन्नेटका योजना, टेका योजना इत्यादि।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि शिक्षण को प्रभावी बनाने के लिए हमें उसके नियोजन तथा कार्यान्वयन में वैयक्तिक विभिन्नताओं को उचित स्थान देना होगा, तभी प्रत्येक छात्र को उसके सर्वांगीण विकास के समान अवसर मिल सकते हैं।

प्रतिभावान/कम उपलब्धि वाले/मंद गति से सीखने वालों की विशेष आवश्यकताएं:-

प्रतिभावान अथवा मेधावी बच्चे राष्ट्र की अमूल्य पूंजी होते हैं, क्योंकि वे राष्ट्र के आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं, इसलिए स्कूलों में इन छात्रों की प्रतिभा के पूर्ण विकास के सुअवसर मिलने चाहिएं।

प्रतिभावान बालक से अभिप्राय:-

जिन बालकों की बुद्धि सामान्य बालकों से अधिक होती है, उन्हें 'प्रतिभावान बालक' कहा जाता है। प्रतिभावान बालकों में विकास की अधिक सम्भावनाएं होती हैं। सामान्यत: प्रतिभावान बालकों को उच्च मानसिक योग्यता के आधार पर परिभाषित किया जाता है। प्रतिभा को सामान्य बौद्धिक योग्यता अथवा विभिन्न क्षेत्रों, जैसे कला, संगीत, नेतृत्व आदि में विशिष्ट योग्यता के आधार पर परिभाषित किया जा सकता है। बौद्धिक दृष्टि से प्रतिभावान बालकों से अभिप्राय उच्च बुद्धिलब्धि (I.Q.) वाले बालकों से है। विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने प्रतिभावान बालकों की बुद्धिलब्धि के लिए भिन्न-भिन्न सीमाएं बताई हैं, जैसे टरमैन ने 140 से अधिक, जबकि डनलप ने 132 से अधिक बुद्धिलब्धि वाले बालकों को प्रतिभावान माना है। सामान्य तौर पर 130 से अधिक बुद्धिलब्धि वाले बालकों को प्रतिभावान बालक माना जा सकता है। अन्य मनोवैज्ञानिकों के मतानुसार प्रतिभा एक बहुआयामी प्रत्यय है, जैसे कि रेन्जुली (Renzulli) के अनुसार, "ऐसे बालक जिनमें तीन गुण-औसत से अधिक मानसिक योग्यता, उच्च सृजनशीलता तथा कार्य के प्रति पर्याप्त कटिबद्धता-पाए जाएं, वे प्रतिभावान बालकों की श्रेणी में रखे जा सकते हैं।" मारलेंड (Marland) ने प्रतिभावान बालकों की कहीं अधिक व्यापक परिभाषा दी है। उनके अनुसार "ऐसे बालक जो निम्नलिखित में से किसी एक अथवा एक से अधिक क्षेत्रों में उच्च उपलब्धि, क्षमता अथवा योग्यता प्रदर्शित करें, वे प्रतिभावान बालक कहलाते हैं: (1) सामान्य मानसिक योग्यता (2) विशिष्ट शैक्षिक योग्यता (3) सृजनशील अथवा उत्पादक सोच (4) नेतृत्व क्षमता (5) दृश्य एवं प्रदर्शन कलाएं।"

प्रतिभावान बालकों की शिक्षा– सामान्य आधारभूत आवश्यकताओं के अतिरिक्त प्रतिभावान बालकों की कुछ विशेष आवश्यकताएं होती हैं, जैसे:-

(1) ज्ञान प्राप्त करने और समझने की आवश्यकता।

(2) सृजनात्मकता और निर्माण तथा अनुसंधान सम्बन्धी आवश्यकता।

(3) अपनी विशेष योग्यता अथवा योग्यताओं का उचित विकास करने की आवश्यकता।

(4) आत्माभिव्यक्ति और आत्मप्रदर्शन की आवश्यकता।

प्रतिभावान बालकों की विशेष शिक्षा का आयोजन कई प्रकार से किया जा सकता है। इन्हें सामान्य कक्षा में, विशेष संसाधन कक्षों में या विद्यालय से बाहर पढ़ाया जा सकता है। इनकी विशेष शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य हो सकते हैं:-

(1) औसत बालकों की अपेक्षा प्रतिभावान बालकों द्वारा अधिगम क्रियाओं को अधिक तीव्र गति से सम्पादित कराना।

(2) प्रतिभावान बालकों के ज्ञान एवं अनुभवों को विस्तार प्रदान करना।

(3) शैक्षिक तथा कला के क्षेत्र में विश्लेषण एवं अभिव्यक्ति कौशलों का विकास।

(4) प्रतिभावान बालकों को ऐसे विषयों में गहन अध्ययन का अवसर प्रदान कराना, जिनमें उनकी विशेष रुचि अथवा योग्यता हो।

उपरोक्त उद्देश्यों की पूर्ति हेतु प्रतिभावान बालकों की शिक्षा के अनेक विकल्प हो सकते हैं, जिनमें से संपुष्ट कार्यक्रम (Enrichment Programme) तथा तीव्र गति से आगे बढ़ाने की (Acceleration) व्यवस्था काफी महत्वपूर्ण हैं। इसके अतिरिक्त विशेष कक्षा, श्रेष्ठ अध्यापक, व्यक्तिगत ध्यान तथा उचित प्रोत्साहन द्वारा भी प्रतिभावान बालकों की विशेष शैक्षिक आवश्यकताओं को पूरा किया जा सकता है।

1. संपुष्ट कार्यक्रम– संपुष्ट कार्यक्रम से हमारा अभिप्राय प्रतिभावान बालकों को अधिक पुष्ट, गहन, व्यापक तथा विस्तृत अनुभव प्रदान कराने से है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रतिभावान बालकों को ऐसे विषयों में अधिक गहन अध्ययन करने का अवसर प्रदान किया जाता है, जिनमें उनकी रुचि अथवा योग्यता हो। इन बालकों के पाठ्यक्रम में उनकी रुचि तथा योग्यता के अनुसार अतिरिक्त

विषयों अथवा प्रकरणों को भी सम्मिलित किया जा सकता है, जिन्हें अन्य बालक नहीं पढ़ते। दूसरे शब्दों में, पाठ्यक्रम सम्बन्धी कार्य काफी समृद्ध होने चाहिएं। प्रतिभावान बालकों को पुस्तकालय, कम्प्यूटरीकृत अनुदेशन, स्वतन्त्र अध्ययन, भ्रमण तथा अन्य विशेपज्ञों की सुविधाएं देकर उनके अनुभवों को समृद्ध करने में सहायता दी जा सकती है।

2. **तीव्र गति (Acceleration)-** इसका अभिप्राय प्रतिभावान बालकों को तीव्र गति से शैक्षिक प्रक्रिया से गुजारने से है। प्रतिभावान बालकों को छोटी आयु में ही विद्यालय में प्रवेश दिलाया जा सकता है। वर्ष में एक से अधिक बार कक्षा उन्नति के द्वारा ऐसे बालकों की शैक्षिक गति को तीव्रता प्रदान की जा सकती है। दो कक्षाओं के पाठ्यक्रम को संपीड़ित कर इन बालकों को एक वर्ष में पढ़ाया जा सकता है, जिससे ये अपनी शिक्षा को कम समय में समाप्त कर सकते हैं। कुलिक तथा कुलिक (Kulik & Kulik, 1984) ने अपने अनुसंधान में पाया कि तीव्र गति से शिक्षा प्राप्त मेधावी छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि कक्षा में पढ़ रहे अन्य छात्रों से बेहतर थी तथा इनकी शैक्षिक उपलब्धि ऐसे मेधावी छात्रों से भी अधिक थी, जिन्हें तीव्र गति से शिक्षा प्राप्त करने की सुविधा उपलब्ध नहीं थी।

3. **विशेष कक्षा-** प्रतिभावान बालकों को अधिक गहन, व्यापक तथा विस्तृत पाठ्यक्रम पढ़ाने हेतु विशेष कक्षाओं का प्रबन्ध किया जा सकता है। इन कक्षाओं में विशेष प्रशिक्षित अध्यापक इनकी शैक्षिक आवश्यकताओं को पूरा करते हैं। इन कक्षाओं में आवश्यकतानुसार ऐसे विद्यार्थी स्कूल का पूरा या कुछ समय व्यतीत करते हैं।

4. **व्यक्तिगत ध्यान तथा उचित प्रोत्साहन-** अध्यापकों को प्रतिभावान बालकों की शिक्षा में व्यक्तिगत रूप से रुचि लेनी चाहिए ताकि वे समय-समय पर ऐसे बालकों की शैक्षिक आवश्यकताओं का आकलन कर उचित शिक्षण प्रदान कर सकें। इन बालकों को सही परामर्श तथा निर्देश देकर उनकी योग्यताओं का अधिकतम विकास करने का प्रयास किया जाना चाहिए। ऐसे बालकों की प्रतिभा पहचानने में भी अध्यापकों को उनकी सहायता करनी चाहिए तथा अपनी योग्यताओं और क्षमताओं के पूर्ण विकास हेतु प्रोत्साहित करना चाहिए।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि उचित प्रावधानों द्वारा विद्यालय प्रतिभावान बालकों के सर्वांगीण विकास में महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं, जिससे समाज भविष्य में उनकी योग्यताओं और क्षमताओं से अधिकतम लाभान्वित हो सके।

कम उपलब्धि वाले बालक:-

प्राय: यह देखा गया है कि बहुत-से छात्र अपनी योग्यता के अनुरूप उपलब्धि प्राप्त नहीं कर पाते। इस स्थिति के बहुत-से कारण हो सकते हैं। सामाजिक और सांस्कृतिक बाधाओं के कारण कई महिलाएं अपने व्यवसाय में पर्याप्त प्रगति नहीं कर पातीं। सामाजिक पूर्वाग्रहों के कारण अधिकांश पिछड़ी जातियों, अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के बालकों की शैक्षिक उपलब्धि कम होती है। विकलांग बालकों को भी अक्सर अनदेखा किया जाता है तथा उन्हें अधिकतम उपलब्धि के समान अवसर नहीं मिल पाते, तथापि कम उपलब्धि की व्याख्या लिंग, जाति या विकलांगता के आधार पर नहीं की जा सकती, क्योंकि यह समस्या मेधावी छात्रों में भी पायी जाती है, जिसके बहुत-से कारण हो सकते हैं, जैसे भावात्मक कठिनाइयाँ तथा घर के वातावरण का खराब होना। विद्यालय में प्रतिभावान बालकों हेतु समुचित कार्यक्रम की अनुपस्थिति भी इस समस्या का अन्य सामान्य कारण है। ऐसी स्थिति में ये बालक स्कूली कार्य के चुनौतीपूर्ण न होने के कारण कक्षा में बोरियत महसूस करते हैं तथा धीरे-धीरे इनकी पढ़ाई में रुचि कम हो जाती है। इस प्रकार कम उपलब्धि वाले प्रतिभावान छात्रों में अक्सर नकारात्मक आत्म प्रतिबिम्ब तथा विद्यालय के प्रति नकारात्मक अभिवृत्ति विकसित हो जाती है (डेसीस्ले, 1982: विटमोर, 1980)। नकारात्मक सोच के कारण कक्षा में ऐसे बालकों की अनदेखी कर दी जाती है। विटमोर 1986 ने सुझाया कि कक्षा में चुनौतीपूर्ण अधिगम अवसरों की कमी के कारण प्रतिभावान बालकों में अभिप्रेरणा का स्तर कम हो जाता है। छात्र तभी अभिप्रेरित होते हैं, जब (1) कक्षा का सामाजिक वातावरण प्रोत्साहित करने वाला हो, (2) पाठ्यक्रम की विषय वस्तु चुनौतीपूर्ण तथा छात्रों की रुचि के अनुरूप हो तथा (3) अनुदेशन प्रक्रिया छात्रों की नैसर्गिक अधिगम शैली के अनुरूप हो।

अध्यापकों को प्रतिभावान बालकों में कम उपलब्धि की समस्या के कारण तथा समस्या को दूर करने के उपाय ढूँढने चाहिएं। इस प्रक्रिया में वे छात्र तथा उनके माता-पिता की सहायता भी ले सकते हैं। किसी एक उपाय के असफल हो जाने पर अन्य विकल्पों को आजमाया जा सकता है। प्रतिभावान बालकों में कम उपलब्धि की समस्या उत्पन्न ही न हो, इसके लिए हेलाइन तथा कॉफमैन 1986 ने निम्नलिखित कुछ सुझाव दिये जो इस प्रकार हैं:-

1. समय-समय पर अध्यापक द्वारा सभी छात्रों की योग्यताओं तथा अन्य लक्षणों का पुनरावलोकन किया जाना चाहिए ताकि किसी भी प्रतिभावान छात्र की अनदेखी न हो सके।

2. अध्यापक द्वारा प्रतिभावान छात्र की शैक्षिक आवश्यकताओं का विश्लेषण किया जाना चाहिए।

3. अध्यापक द्वारा विद्यालय तथा समुदाय के विभिन्न संसाधनों को चिह्नित कर उन्हें प्रतिभावान बालक के लाभार्थ प्रयोग में लाना चाहिए।

4. जहाँ तक सम्भव हो विद्यालय में प्रतिभावान बालकों के लिए विशेष शैक्षिक कार्यक्रम की व्यवस्था की जानी चाहिए।

प्रतिभावान बालकों में कम उपलब्धि अध्यापकों, उनके माता-पिता तथा स्वयं इन बालकों के लिए निराशाजनक स्थिति है, लेकिन अध्यापकों द्वारा उचित कदम उठाकर इस समस्या को दूर किया जा सकता है तथा समय रहते इस समस्या से बचा भी जा सकता है।

मंद गति से सीखने वाले बालक :-

मंद गति से सीखने वाले बालकों की शैक्षिक उपलब्धि उसी कक्षा में पढ़ने वाले अन्य बालकों से कम होती है। ऐसे बालकों के लिए सामान्यतः विद्यालय में विशेष शैक्षिक प्रावधान भी नहीं होते, लेकिन ये बालक कुछ विशेष अनुदेशात्मक उपायों द्वारा लाभान्वित हो सकते हैं।

मंद गति से सीखने वाले बालकों से अभिप्राय - मनोवैज्ञानिकों ने मंद गति से सीखने वाले बालकों को अलग-अलग ढंग से वर्णित किया है। इनग्राम (Ingram, 1960) के अनुसार, "शिक्षा प्राप्त करने योग्य मंदबुद्धि बालक ही मंद गति से सीखने वाले बालक कहलाते हैं।" आजकल मंद गति से सीखने वालें बालक उन्हें कहा जाता है, जिनकी शिक्षा के एक अथवा एक से अधिक क्षेत्र में सीखने की दर औसत से कम लेकिन मंद बुद्धि बालक से अधिक होती है। नोफ (Knoff, 1987) के अनुसार इन बालकों की बुद्धिलब्धता 75 से 90 के बीच होती है।

सीमित मानसिक योग्यता के अतिरिक्त अनेक सामाजिक तथा सांस्कृतिक कारक मंद गति से सीखने की समस्या के लिए उत्तरदायी हो सकते हैं, जैसे गरीबी, घर का खराब वातावरण, माता-पिता के बीच तनावपूर्ण सम्बन्ध, बुरी संगत इत्यादि। सामाजिक तथा भावात्मक कारणों से उत्पन्न हुई इस समस्या को उचित मार्गदर्शन तथा उपचारात्मक शिक्षण द्वारा दूर किया जा सकता है, जबकि सीमित मानसिक योग्यता युक्त ऐसे बालकों के लिए अनुदेशन विधियों तथा पाठ्यक्रम में थोड़ा-बहुत अनुकूलन करके वांछनीय परिणाम प्राप्त किये जा सकते हैं। यदि ऐसे बालकों

की विद्यालय में अधिक संख्या हो तो उनके लिए अलग कक्षा का प्रावधान भी किया जा सकता है, हालांकि अनेक शिक्षाविद् ऐसा करना उचित नहीं मानते।

मंद गति से सीखने वाले बालकों की शिक्षा– अध्यापक निम्नलिखित कुछ सामान्य सिद्धान्तों को ध्यान में रख सकते हैं:-

1. अध्यापक को इन बालकों की विशेष शैक्षिक आवश्यकताओं का आकलन करके अपने शिक्षण को नियोजित करना चाहिए, जिससे वांछित शिक्षण/अधिगम उद्देश्यों की पूर्ति हो सके।

2. इन बालकों को पढ़ाते समय सामान्य अधिगम को ध्यान में रखना चाहिए:

• उपलब्धि तथा आत्मविश्वास की भावना जागृत कर ऐसे बालकों को सीखने के लिए अभिप्रेरित किया जा सकता है। अध्यापक और बालकों के बीच सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध भी इस दिशा में सहायक होते हैं।

• किसी भी कार्य को सीखने से पहले अध्यापक को सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि बालक सीखने के लिए शारीरिक, मानसिक तथा भावात्मक रूप से तत्पर हैं।

• ऐसे बालकों को अमूर्त प्रत्ययों के स्थान पर स्थूल अनुभवों द्वारा अधिक प्रंभावी ढंग से सिखाया जा सकता है।

• बच्चे में सीखने की जिज्ञासा को प्रोत्साहित करना चाहिए तथा करके सीखने के पर्याप्त अवसर उपलब्ध कराए जाने चाहिएं।

• सीखने की क्रिया को अधिक सुगम बनाने हेतु अधिगम कार्यों को कठिनता स्तर के आधार पर क्रमबद्ध किया जाना चाहिए।

• अभ्यास तथा पुनरावृत्ति भी सीखने में सहायक होती है।

• शिक्षण अधिगम क्रिया में बालक की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित की जानी चाहिए।

3. इन बालकों की पहचान, मनोशैक्षिक आकलन, निदानात्मक शिक्षा, अनुसंधान इत्यादि के लिए कई व्यावसायियों जैसे, मनोवैज्ञानिकों, चिकित्सकों, सामाजिक कार्यकर्ताओं तथा अध्यापकों की आवश्यकता पड़ती है। बालकों की क्षमताओं के अनुरूप परिणाम प्राप्त करने में इन व्यावसायियों के प्रयासों के बीच पूर्ण समन्वय अत्यन्त आवश्यक है। दूसरे शब्दों में, इन सभी को एक टीम के रूप में कार्य करना चाहिए।

4. माता-पिता की अनुचित अभिवृत्ति, अज्ञान, शिक्षा के प्रति उदासीनता इत्यादि मंद गति से सीखने वालों की समस्याओं को बढ़ा देती हैं। इसके अतिरिक्त निर्धनता, घर का खराब वातावरण तथा अनेक घरेलू समस्याएं भी बालक की शिक्षा में बाधा उत्पन्न करती हैं। अध्यापक तथा सामाजिक कार्यकर्ता ऐसे बालकों के माता-पिता को उचित मार्गदर्शन एवं परामर्श देकर इन बालकों की शिक्षा में सहयोग दे सकते हैं।

इस प्रकार हमने देखा कि सामाजिक, भावात्मक समस्याओं का निदान कर मंद गति से सीखने वाले बालकों की सीखने की दर को बढ़ाया जा सकता है, जबकि सीमित योग्यता युक्त ऐसे बालकों को पढ़ाते समय सामान्य शिक्षण अधिगम सिद्धान्तों को ध्यान में रखना चाहिए।

दृष्टिबाधितों में वैयक्तिक विभिन्नताएँ तथा उनका शैक्षिक प्रभाव -

अभी तक हम यह जान चुके हैं कि आनुवंशिकता तथा पर्यावरण में भिन्नता के कारण वैयक्तिक विभिन्नता दृष्टिगोचर होती है। आयु, बुद्धि, लिंगभेद, स्वभाव तथा भावात्मक स्थिरता, जाति-प्रजाति और राष्ट्रीयता, तथा अभिवृत्तियाँ, शैक्षणिक एवं पारिवारिक पृष्ठ भूमि जैसे कारण न केवल दृष्टिवान व्यक्तियों में वरन् दृष्टिबाधितों में भी वैयक्तिक विभिन्नता के लिए उत्तरदायी हैं। दृष्टिबाधितों के संदर्भ में वैयक्तिक विभिन्नता के कुछ अन्य महत्वपूर्ण कारक हैं जैसे कि दृष्टिबाधिता के कारण दृष्टिक्षमता, दृष्टिहीनता के समय आयु, घर का वातावरण, अधिगम, अवसरों तथा नियोजित अनुभवों की उपलब्धता इत्यादि। इन सभी कारकों का अध्ययन तथा जानकारी विशेष शिक्षाविदों तथा अध्यापकों के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि ये सभी कारक दृष्टिबाधितों की शिक्षा की प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं।

दृष्टिबाधिता के कारण- दृष्टितन्त्र में विभिन्न विकारों के कारण दृष्टिबाधिता हो सकती है। दृष्टिबाधिता के विभिन्न कारण दृष्टिबाधित बालकों को अलग-अलग ढंग से प्रभावित करते हैं तथा उनके शैक्षिक प्रभाव भी भिन्न-भिन्न हो सकते हैं, इसलिए प्रत्येक बालक की दृष्टिबाधिता के कारण की जानकारी शिक्षक के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। उदाहरणार्थ रंजकहीनता (Albinism) के कारण दृष्टिबाधित हुए बालक अक्सर प्रकाशभीति (Photophobia) से पीड़ित होते हैं, इसलिए कक्षा में इन बालकों की सीट ऐसी जगह होनी चाहिए जहाँ धूप न आती हो। रेटिनाइटिस पिगमेनटोजा, (Retinitis pigmentosa) से प्रभावित दृष्टिबाधित बालकों की दृष्टिक्षमता धीरे-धीरे कम होती रहती है, इसलिए शिक्षक द्वारा इन्हें

इस प्रकार प्रशिक्षित करना चाहिए जिससे वे भविष्य की चुनौतियों का आत्मविश्वास के साथ सामना कर सकें।

दृष्टिक्षमता– अधिकांश दृष्टिबाधित बालकों में कुछ न कुछ अवशिष्ट दृष्टि होती है। दृष्टिबाधितों की दृष्टिक्षमता इनकी चलिष्णुता, अधिगम अनुभवों तथा वातावरण से सामंजस्य को प्रभावित करती है। यही कारण है कि भिन्न-भिन्न दृष्टिक्षमता वाले बालकों के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक तथा भावनात्मक विकास में भी अन्तर पाया जाता है।

सामान्यत: अध्यापकों को बालकों की दृष्टिक्षमता की जानकारी नेत्र विशेषज्ञ की रिपोर्ट से मिल जाती है। इस रिपोर्ट में बालक की दूर दृष्टि, निकट दृष्टि तथा दृष्टि क्षेत्र आदि के बारे में जानकारी दर्ज होती है। इसके अतिरिक्त शिक्षक अल्प दृष्टि बालक की कार्यात्मक दृष्टि का मूल्यांकन स्वयं कर सकते हैं। ये सभी जानकारियाँ शिक्षक को मनोशैक्षिक मूल्यांकन, अनुदेशन उद्देश्यों, शिक्षण विधियों पाठ्यक्रम अनुकूलन, जमा पाठ्यक्रम, उचित पठन सामग्री का चुनाव, शिक्षण सहायक सामग्री आदि सम्बन्धित निर्णय लेने में उपयोगी होती हैं। शिक्षक द्वारा अल्पदृष्टि बालक को अपनी अवशिष्ट दृष्टि के उपयोग के लिए भी प्रोत्साहित करना चाहिए।

दृष्टिहीनता के समय आयु– विभिन्न शोधों के आधार पर यह तथ्य स्वीकार कर लिया गया है कि पाँच से सात वर्ष की आयु से पूर्व दृष्टिबाधित हुए बालक रंग तथा अन्य दृष्टिमूलक अनुभवों को याद नहीं रख पाते इसलिए ऐसे बालक अनुभव प्राप्त करने के लिए गैर दृष्टि इन्द्रियों पर निर्भर करते हैं। शिक्षण अनुकूलन प्रक्रिया के दौरान शिक्षक द्वारा इस तथ्य को ध्यान में रखना चाहिए। बाद में दृष्टिबाधित हुए बालकों को रंग तथा अन्य दृष्टिमूलक अनुभव याद रहते हैं जिनका उपयोग उनकी शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में किया जा सकता है।

अचानक तथा धीरे-धीरे दृष्टिबाधित हुए बालकों में मनोवैज्ञानिक भिन्नता पायी जाती है। अचानक दृष्टि खोने के बाद बालक सदमे तथा प्रत्याहार (withdrawal) से पीड़ित रहता है। यह समस्या समय के साथ कम हो जाती है। धीरे-धीरे दृष्टि खो रहा बालक अपने भविष्य को लेकर भयभीत तथा आशंकित रहता है। अध्यापक को चाहिए कि वह हाल ही में दृष्टिबाधित हुए बालक के प्रति अधिक संवेदनशील हो तथा धीरे-धीरे दृष्टि खो रहे बालक में उसके भविष्य के बारे में एक सकारात्मक सोच उत्पन्न करे।

घर का वातावरण – जैसा कि आप जानते हैं घर का वातावरण वैयक्तिक विभिन्नता का एक कारक है लेकिन दृष्टिबाधितों के संदर्भ में यह कारक विशेष

महत्व अर्जित कर लेता है क्योंकि अभिभावकों का अपने दृष्टिबाधित बालकों के प्रति दृष्टिकोण अलग-अलग होता है। अभिभावकों का सकारात्मक दृष्टिकोण बालक के समग्र विकास में सहायक होता है, जबकि माता-पिता का नकारात्मक दृष्टिकोण अपराध बोध तथा अन्य भावनात्मक समस्याएं बालक के सामान्य विकास में बाधा उत्पन्न करती हैं। शिक्षक को चाहिए कि वह माता-पिता से घर के वातावरण की पूर्ण जानकारी प्राप्त करे जिससे बालक को भलीभांति समझा जा सके तथा आवश्यकतानुसार माता-पिता को उचित परामर्श प्रदान कर सके।

अधिगम अवसरों तथा नियोजित अनुभवों की उपलब्धता – हमें विदित है कि दृष्टिबाधिता चलिष्णुता तथा अनुभव प्राप्ति के अवसरों पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। अनुभव प्राप्ति के अवसर इस बात पर निर्भर करते हैं कि अभिभावक,परिवार के अन्य सदस्यों, सहपाठियों तथा अध्यापकों का दृष्टिबाधित बालक के प्रति दृष्टिकोण कितना संरक्षणात्मक अथवा यथार्थवादी है। पठन सामग्री की उचित माध्यम में उपलब्धता भी बालकों के अधिगम अवसरों को प्रभावित करती है।

दृष्टि के अभाव में ये बालक सामान्य अनुभव नैसर्गिक रूप से प्राप्त नहीं कर पाते, इसलिए इनके अभिभावकों तथा अध्यापकों को ये अनुभव प्रदान करने के लिए विशेष प्रयास करने पड़ते हैं। उदाहरण के लिए दृष्टिवान बालक दैनिक जीवन कौशल सम्बन्धी अनुभव तथा आस-पास के वातावरण की सामान्य जानकारी देखकर ही प्राप्त कर लेता है जबकि दृष्टिबाधित बालक को ये सभी अनुभव नियोजित कर क्रमबद्ध रूप से देने पड़ते हैं। सभी अभिभावक तथा अध्यापक इस प्रकार नियोजित अनुभव प्रदान करने में न तो सक्षम होते हैं और न ही उनमें इस कार्य के लिए आवश्यक जागरूकता पायी जाती है। यही कारण है कि बहुत से दृष्टिबाधित बालक सामान्य अनुभव से वंचित रह जाते हैं। अधिगम अवसरों तथा नियोजित अनुभवों की उपलब्धता दृष्टिबाधित बालकों के ज्ञानात्मक, भावात्मक तथा कौशलात्मक पक्षों को प्रभावित करती है।

इस प्रकार हमने देखा कि दृष्टिबाधिता के संदर्भ में अनेक कारक दृष्टिबाधित बालकों के मनोवैज्ञानिक तथा शैक्षिक पक्षों को विभिन्न प्रकार से प्रभावित करते हैं। दृष्टिबाधित बालकों के अध्यापकों को शैक्षिक प्रक्रिया का नियोजन तथा कार्यान्वयन इन कारकों के परिप्रेक्ष्य में करना चाहिए।

अध्याय-32

भारती ब्रेल का विकास

- आर. सी. निझावन

पाश्चात्य जगत् की तुलना में 'भारत में दृष्टिहीनों की शिक्षा लगभग सौ वर्ष बाद प्रारम्भ हुई। जहाँ वैलेन्टीन औई (Valentin Hauy) द्वारा पेरिस में दृष्टिहीनों हेतु विश्व का पहला स्कूल 1784 में स्थापित हुआ वहीं भारत में ऐसे स्कूल की स्थापना 1887 में अमृतसर में हुई। बीसवीं शताब्दी के आते-आते भारत में दृष्टिहीनों के लिए पाठशालाओं की संख्या भी धीरे-धीरे बढ़ती गयी, जिसमें धुर-दक्षिण स्थित पालमकोट्टा (1890), रांची स्कूल (1898) व विक्टोरिया मेमोरियल स्कूल, बम्बई (1902) के स्कूल प्रसिद्ध हैं।

भारत में जैसे-जैसे नये-नये स्कूल खुलते गये वैसे-वैसे हर एक स्कूल ने अपनी समझ के अनुसार और स्कूल प्रबन्धकों की रुचि के आधार पर विभिन्न ब्रेल संहिताओं का प्रयोग करना शुरू किया। जैसे कि यूरोप में विभिन्न लाइन टाइप्स के बीच में संघर्ष चला और बाद में ब्रेल लिपि और लाइन टाइप्स में मुकाबलेबाजी हुई-- ऐसा भारत में कुछ भी नहीं हुआ। यह तो स्वाभाविक था क्योंकि भारत में दृष्टिहीनों की शिक्षा के आते-आते ब्रेल लिपि को दूसरी सब विधियों के मुकाबले सर्वश्रेष्ठ मान लिया गया था। इसी विधि को दृष्टिहीनों की शिक्षा के लिए एकमात्र सशक्त पद्धति की संज्ञा दी जा चुकी थी और इसका प्रयोग सम्पूर्ण विश्व में होने लगा था।

जैसा कि हमने ऊपर कहा भारत में दृष्टिहीनों हेतु प्रत्येक नए स्कूल ने अपनी परिस्थिति के आधार पर स्वयं द्वारा निर्मित ब्रेल चिह्नों को विभिन्न ध्वनियों के लिए इस्तेमाल करना शुरू किया और ब्रेल चिहों को अलग-अलग आधारों पर निरूपित करके अलग-अलग ब्रेल संहिताओं को जन्म दिया। परिणाम यह हुआ कि भारत में स्वतन्त्रता से पहले कोई 10 अलग-अलग ब्रेल संहिताएं प्रयोग में आ रही थीं। एक समय ऐसा था कि बम्बई नगर में दृष्टिहीनों के दो अलग-अलग स्कूलों में दो अलग-अलग संहिताओं का प्रयोग हो रहा था। परिणाम सामने था- एक ब्रेल संहिता (कोड) से परिचित विद्यार्थी दूसरी ब्रेल संहिता के अनुसार लिपिबद्ध की गयी पुस्तक को पढ़ने में सक्षम न था। यदि पढ़ भी लेता था तो उसे दो अलग संहिताओं पर पकड़ बनाने में कठिनाई अवश्य रहती थी।

1953 में भारत सरकार के एक प्रकाशन में 10 ब्रेल संहिताओं की चर्चा की गयी है, जो कि निम्नलिखित हैं:

(1) एसक्विथ ब्रेल

(2) ओरियंटल ब्रेल

(3) शाह ब्रेल

(4) शैरिफ ब्रेल

(5) सिन्धी ब्रेल

(6) मैसूर व कन्नड़ ब्रेल

(7) चटर्जी ब्रेल

(8) नीलकंठ राय ब्रेल

(9) स्टैण्डर्ड इण्डियन ब्रेल

(10) यूनिफॉर्म इण्डियन ब्रेल

यहाँ पर हम उपरोक्त कुछ ब्रेल संहिताओं की थोड़ी-बहुत चर्चा कर लेना आवश्यक समझते हैं।

(1) एसक्विथ ब्रेल-- एसक्विथ ब्रेल मुख्यत: पालमकोट्टा और पूनमअली के स्कूलों में प्रयोग में लाई गयी। इसकी निर्मात्री कुमारी एसक्विथ थीं।

(2) ओरियंटल ब्रेल-- ओरियंटल ब्रेल की रचना रैवरेन्ड जे. नोल्स व एल. गार्थवेट (Rev. J. Knowles & Mr. L. Garthwaite) द्वारा की गयी। इस कोड का प्रयोग केवल बम्बई स्थित दादर स्कूल में ही किया गया, परन्तु दोनों रचनाकारों का मत था कि ओरियंटल ब्रेल न केवल मराठी, गुजराती और हिन्दी के लिए उपयुक्त थी बल्कि इसका प्रयोग भारत की समस्त भाषाओं के लिए किया जा सकता था।

(3) शाह ब्रेल-- शाह ब्रेल का विकास कलकत्ता स्कूल के श्री लाल बिहारी शाह ने मुख्यत: बंगाली और बिहारी भाषाओं के लिए किया।

(4) नीलकंठ राय ब्रेल-- नीलकंठ राय ब्रेल के रचनाकार डॉ. नीलकंठ राय दायाभाई छत्रपति थे, जो बम्बई स्थित विक्टोरिया मेमोरियल स्कूल फॉर दी ब्लाइंड के संस्थापक प्रधानाचार्य थे। नीलकंठ कोड बहुत-कुछ लुई ब्रेल द्वारा 7 लाइनों में 63 चिह्नों को विभाजित की गयी बंदिश पर आधारित था। इसके द्वारा

यही कोशिश की गयी कि जिन ब्रेल चिह्नों के लिए लुई ब्रेल ने जो ध्वनियाँ निर्धारित की थीं, उन्हीं ध्वनियों को भारतीय भाषाओं के लिए वैसे ही चिह्न निर्धारित किए जाएं। नीलकंठ राय का कथन था कि उनके द्वारा रचित कोड भारत की सभी भाषाओं के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है तथा उन्होंने इसको 'इण्डियन ब्रेल' का नाम दिया। नीलकंठ राय का यह विचार अपने आपमें एक मौलिक तथा व्यावहारिक विचार था, जिसके आधार पर आगे चलकर 'भारती ब्रेल' का निर्माण हुआ।

(5) स्टैण्डर्ड इण्डियन ब्रेल-- स्टैण्डर्ड इण्डियन ब्रेल के रचनाकार लै.क. क्लूथा मैकेंजी (Lt. Col. Clutha Mackenzie और उनके कुछ साथी थे, जिसे 1946 में तैयार किया गया और जिसे बाद में यूनिफॉर्म इण्डियन ब्रेल की तुलना में एक बेहतर संहिता के रूप में प्रस्तुत करने की कोशिश की गयी।

उपरोक्त ब्रेल संहिताएं अलग-अलग तथा परस्पर विरोधी सिद्धान्तों तथा नियमों पर आधारित थीं और इनके बहुत-से समर्थक भी थे और बहुत-से लोग इनका विरोध भी करते थे, परन्तु यहाँ स्मरण रखना आवश्यक होगा कि इन ब्रेल संहिताओं में से कुछ ने भारत की सभी भाषाओं के लिए उपयुक्त होने का दावा किया। इसलिए कहना न होगा कि भारत की सभी भाषाओं के लिए एक समान कोड की खोज बहुत पहले से ही प्रारम्भ हो गयी।

उपरोक्त संहिताएं क्षेत्रीय रूप में भारत के कई भागों में इस्तेमाल होती रहीं। इससे पहले कि हम आगे बढ़ें, हम चाहेंगे कि जिन परस्पर विरोधी नियमों पर ये संहिताएं आधारित थीं उनका विश्लेषण कर लिया जाए:

(1) परम्परागत संहिताएं (Traditional Code)-- ये कोड ऐसे थे जिन पर आधारित अंग्रेजी ब्रेल में तथा भारतीय भाषाओं में विभिन्न चिह्नों के लिए निर्धारित ध्वनियों में समानता थी। उदाहरणस्वरूप बिन्दु 1 के लिए अंग्रेजी में अक्षर 'A' का होना और हिन्दी में 'अ' का होना अथवा बिन्दु 1-2 का अंग्रेजी में अक्षर 'B' के लिए होना और हिन्दी में अक्षर 'ब' के लिए होना आदि-आदि। इसका एक उदाहरण नीलकंठ राय द्वारा बनाई गयी इण्डियन ब्रेल थी। इससे कुछ मिलती-जुलती शैरिफ कोड और एसक्विथ कोड भी थी।

(2) अनुक्रम आधारित (Concurrent Sequences)-- इस नियम को समझने के लिए हमें एक बार फिर लुई ब्रेल द्वारा 63 चिह्नों को 7 लाइनों में एकरूपता के आधार पर बाँटने की बंदिश का सहारा लेना होगा। इसके अनुसार किसी भाषा विशेष की वर्णमाला को क्रमानुसार लुई ब्रेल द्वारा निर्धारित चिह्नों के

हिसाब से बाँटना होगा। उदाहरणार्थ लुई ब्रेल द्वारा पहली पंक्ति में 10 चिह्न हैं जो कि ब्रेल सैल के ऊपर वाले 4 बिन्दुओं (1-2-4-5) से बनते हैं और ये क्रमशः A से J तक के अक्षरों के लिए निर्धारित हैं। अनुक्रम पर आधारित लिपि A को अ, B को आ, C को इ, D को ई, E को उ और F को ऊ मानकर चलेगी आदि-आदि। यूनिफॉर्म इण्डियन ब्रेल, जो बाद में चलकर बड़े विवाद का कारण भी बनी, इसी नियम पर आधारित थी। इस नियम को उचित मानने वाले लोगों की कमी न थी। उनका मत था कि इस सिद्धान्त से भारत में ब्रेल पढ़ने वालों के लिए बड़ी आसानी हो जाएगी क्योंकि यदि वे एक बार लुई ब्रेल द्वारा निर्धारित क्रमांक को समझ लें तो उन्हें अपनी भाषा के चिह्नों को याद रखने में बड़ी सुविधा होगी। लेकिन इस नियम का पालन करने से विभिन्न भारतीय भाषाओं में एकरूपता लाना तो स्पष्ट रूप से असम्भव सा हो गया, क्योंकि क्षेत्रीय आधार पर विभिन्न भारतीय भाषाओं की वर्णमाला में समानता नहीं है। देवनागरी लिपि और द्रविड़ीय भाषाओं की वर्णमालाएं एक समान थोड़े ही हैं।

(3) चिह्न–प्रतिचिह्न (Related Symbols)-- चिह्न-प्रतिचिह्न आधारित संहिताएं ऐसी थीं, जिनमें मिलती-जुलती ध्वनियों को ऐसे ब्रेल चिह्न दिए गये थे, जिनमें एक समान नियम का पालन किया गया। एक उदाहरण हम दे सकते हैं, जैसे--यदि (ब) अक्षर से (भ) का मेल है तो (ब) के लिए बिन्दु 1-2 और (भ) के लिए बिन्दु 5-6 (द) अक्षर के लिए 1-4-5 तो (ध) अक्षर के लिए 2-3-4-6, ग में 1-2-4-5 तो घ में 1-2-6 और च में बिन्दु 1-4 तो छ के लिए बिन्दु 1-4-6 अर्थात् ब से भ, द से ध, ग से घ और च से छ बनाने के लिए इनमें बिन्दु 6 जोड़ दिया जाता था। एक अन्य उदाहरण, जैसे कि ओरियंटल ब्रेल में चिह्नों को पलट दिया जाता था और उन्हें मिलती-जुलती ध्वनियों के लिए इस्तेमाल किया जाता था, जैसे कि हिन्दी का ह बिन्दु 1-2-5 और ज 2-4-5 एक दूसरे के पलट हैं। इसी तरीके से हिन्दी का द 1-4-5 और अंग्रेजी का f 1-2-4 भी एक-दूसरे की पलट हैं। इन दोनों जोड़ों को मिलती-जुलती ध्वनियों से अंकित किया गया।

जैसा कि ऊपर बताया गया है भारत में विभिन्न नियमों पर आधारित भिन्न-भिन्न संहिताओं को इस्तेमाल में लाया गया। इस प्रकार ब्रेल पढ़ने वालों और विशेषकर दृष्टिहीन विद्यार्थियों के मन में बड़ा असमंजस पैदा हो गया। यहाँ यह भी याद रखना चाहिए कि भारत में अंग्रेजी ब्रेल का भी काफी चलन रहा है, इसलिए यदि अंग्रेजी भाषा में एक ब्रेल चिह्न किसी ध्वनि विशेष के लिए था और फिर वही चिह्न किसी भारतीय भाषा में किसी और ध्वनि के लिए उपयुक्त समझा गया तो उनका आपस में टकराव अवश्यंभावी था। इसको यूँ समझने की कोशिश करें कि

अगर बिन्दु 1-2 अंग्रेजी में 'B' अक्षर के लिए हैं और भारतीय भाषाओं में वह 'आ' को चिह्नित करता है तो पढ़ने वाले को एक ही चिह्न के लिए दो ध्वनियों को मन में बैठाना कितना कठिन मालूम पड़ेगा। यहाँ यह भी याद रखना होगा कि इस टकराव का कारण ब्रेल लिपि का सीमित होना ही तो है। आप 63 चिह्नों की सीमा को लांघ नहीं सकते और फिर 63 चिह्न ही क्यों, 10-12 चिह्न तो ऐसे हैं जिन्हें यदि स्वतन्त्र रूप से लिखा जाए तो बहुत बड़ा भ्रम पैदा हो जाए। उदाहरणार्थ बिन्दु 4-5, बिन्दु 4-6, बिन्दु 4-5-6 आदि को स्वतन्त्र रूप में लिखे रहने पर इन्हें क्रमशः बिन्दु 1-2, बिन्दु 1-3 और बिन्दु 1-2-3 से कैसे भेद करेंगे और फिर इन्हीं 63 चिह्नों से विभिन्न विराम चिह्न और दूसरे व्याकरण से सम्बन्धित चिह्नों को भी तो अंकित किया जाएगा।

ऊपर दिए गये तथ्यों के कारण पैदा हुई असमंजस की स्थिति से निपटना आवश्यक हो गया था। इस असमंजस की स्थिति से बहुत–से विशेषज्ञ भली–भाँति परिचित थे और इसे दूर करने में लगभग 50 वर्ष लग गये।

उपरोक्त संदर्भों के सिलसिले में जो पहला नाम हमें सुनाई पड़ता है वह कराची दृष्टिहीन स्कूल के प्रमुख श्री पी.एम. अडवानी (Sh. P.M. Advani) का है, जिन्होंने जनवरी, 1922 में Central Advisory Board of Education के समक्ष भारतीय भाषाओं के लिए एक समान संहिता की अपनी संकल्पना प्रस्तुत की। बोर्ड ने श्री पी.एम. अडवानी की बात तो सुनी लेकिन उस समय इस बोर्ड के पास इतने संसाधन उपलब्ध न थे कि इस सुझाव पर कोई सकारात्मक कार्यवाही की जाती। कोई एक साल बाद बम्बई में दृष्टिहीनों के लिए कार्यकर्ताओं की एक बैठक आयोजित हुई, जिसमें यह प्रस्ताव पास किया गया कि उस समय जितनी भी ब्रेल संहिताएं भारत में मौजूद थीं उन सभी का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया जाए और एक साल बाद इस अध्ययन की रिपोर्ट बाकायदा उनके सामने पेश की जाए, परन्तु ऐसा न हो सका, क्योंकि योजनानुसार यह कांफ्रेंस अगले वर्ष आयोजित ही न हो सकी।

यूनिफॉर्म इण्डियन ब्रेल (Uniform Indian Braille):

1936 और 1938 में एक बार पुनः भारतीय भाषाओं के लिए एक समान ब्रेल कोड का कार्यक्रम तैयार करने के लिए सुझाव प्रस्तुत किया गया परन्तु Central Advisory Board of Education ने इस संदर्भ में कोई भी फैसला नहीं लिया। 1941 में Central Advisory Board of Education के सामने यही सवाल एक

बार फिर प्रस्तुत हुआ। इस बार उन्होंने इस समस्या को सुलझाने के लिए एक समिति के गठन की सिफारिश की। लिहाजा श्री पी.एम. अडवानी की अध्यक्षता में एक 14 सदस्यीय समिति का गठन हुआ, जिसकी बैठक नई दिल्ली में नवम्बर, 1941 में हुई। सोच-विचार के बाद इस समिति ने कुछ दिशा-निर्देशों का प्रतिपादन किया, जिसके अनुसार भारतीय भाषाओं के लिए एक समान ब्रेल संहिता को बनाया जाना तय हुआ। फिर इस 14 सदस्यीय समिति ने एक छोटी समिति बनाने का प्रस्ताव पेश किया, जिसे इस समिति द्वारा सुझाए गये दिशा-निर्देशों के आधार पर एक ब्रेल कोड बनाने का काम सौंपा गया। कठिनाई यह हुई कि (यहाँ इसे समझने की बहुत आवश्यकता है) इस 14 सदस्यीय समिति ने जो दिशा-निर्देश दिए उनका मूल सिद्धान्त यह था कि ब्रेल कोड तैयार करते समय भारतीय भाषाओं की वर्णमालाओं का प्राकृतिक अनुक्रम किसी प्रकार भी भंग न हो।

उपरोक्त विशेषज्ञ समिति ने 1943 में यूनीफॉर्म ब्रेल कोड (Uniform Braille Code) का प्रारूप तैयार कर इसे विभिन्न प्रादेशिक सरकारों और देश भर के दृष्टिहीन विद्यालयों को उन सबकी टिप्पणी के लिए भेज दिया। विभिन्न क्षेत्रों से जो टिप्पणियाँ इस विशेषज्ञ समिति के पास पहुँची उन्हें आप सामान्य रूप से यूनीफॉर्म ब्रेल कोड के समर्थन में दिया गया वोट मान सकते हैं। पुन: स्मरण रखने की बात यह है कि यूनीफॉर्म इण्डियन ब्रेल अनुक्रम के नियम के आधार पर बनाई गयी थी। Central Advisory Board of Education ने यूनीफॉर्म ब्रेल कोड को 1945 में मान्यता देकर इस पर अपनी मोहर लगा दी। परन्तु धीरे-धीरे यूनीफॉर्म ब्रेल कोड का विरोध होने लगा। पहले-पहल तो इसका विरोध स्टैण्डर्ड ब्रेल के निर्माता और समर्थक लै.क. सर क्लूथा मैकेन्जी की ओर से हुआ। अप्रैल, 1946 में स्टैण्डर्ड ब्रेल और यूनीफॉर्म इण्डियन ब्रेल के पक्षधरों ने मिलकर इस मामले पर जमकर वाद-विवाद किया और दोनों ब्रेल संहिताओं के गुण-दोषों पर अपनी समझ के अनुसार विचार रखे, परन्तु इन सब बातों का यूनीफॉर्म ब्रेल कमेटी के सदस्यों पर कोई प्रभाव न पड़ा बल्कि यूँ कहना पड़ेगा कि उनके कान पर जूँ तक न रेंगी। 1947 में एक बार पुन: यही बात Central Advisory Board of Education के समक्ष रखी गयी, पर ढाक के वही तीन पात--कुछ भी प्रगति न हुई, परन्तु वाद-विवाद समाप्त होता दिखाई नहीं दिया और यूनीफॉर्म इण्डियन ब्रेल का विरोध कई पक्षों द्वारा जारी रहा। विरोध करने वालों में विशेषकर वह वर्ग शामिल ६। जो कि लुई ब्रेल द्वारा 7 लाइनों में विभाजित बंदिश का आदी हो चुका था। उन्हीं दिनों बम्बई में कुछ विशेषज्ञों ने बैठक कर यूनिफॉर्म इण्डियन ब्रेल के विरुद्ध अपना रोष प्रकट किया। यहाँ यह भी याद रखना होगा कि जिस समिति ने यूनिफार्म इण्डियन ब्रेल को तैयार किया था, उसके सब-के-सब सदस्य दृष्टिवान थे और

इसलिए उन्हें दृष्टिहीन ब्रेल पाठकों की कठिनाई का कोई एहसास न था। इस विरोध के कारण की चर्चा हम ऊपर भी कर चुके हैं। एक ही ब्रेल चिह्न के लिए दो अलग-अलग ध्वनियों को याद रखना कठिन तो होगा ही।

भारत में कोई संतोषजनक हल न निकलने की अवस्था में भारतीय भाषाओं के लिए एक समान संहिता का प्रश्न एक बड़ा पेचीदा मसला बन गया। अन्ततः भारत सरकार ने यह समझ लिया कि इस प्रश्न का हल भारत के भीतर तो निकलने वाला है नहीं और उसने इसे यूनेस्को के समक्ष फैसले के लिए ले जाना सही समझा। परिणामस्वरूप 1949 में भारत सरकार के शिक्षा मन्त्रालय के तत्कालीन सचिव श्री हुमायूँ कबीर ने यूनेस्को को एक पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने आग्रह किया कि भारत और भारत जैसे अन्य देशों के लिए कोई एक समान ब्रेल संहिता बनाने के लिए अब समय आ गया था, इसलिए यूनेस्को को चाहिए कि वह इस प्रश्न का कोई उचित हल ढूँढने में मदद करे। यूनेस्को की प्रतिक्रिया बड़ी सकारात्मक रही। उन्होंने फौरन सर क्लूथा मैकेन्जी की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया, जिसे इस प्रश्न का हल ढूँढने का अधिकार दिया गया। इसके परिणामस्वरूप मार्च, 1950 में पेरिस में एक कांफ्रेंस आयोजित की गई, जिसमें दुनिया भर के कई विशेषज्ञों ने भाग लिया, यह कांफ्रेंस अपने आप में ब्रेल के विकास के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण रही। इसमें कुछ ऐसे नियमों का प्रतिपादन किया गया, जिनको मिलाकर हम 'विश्व ब्रेल' (World Braille) के नाम से जानते हैं। विश्व ब्रेल के मुख्य नियम निम्न प्रकार थे :

(1) जहाँ तक सम्भव हो लुई ब्रेल द्वारा 63 ब्रेल चिह्नों को जो स्वर दिए गये हैं, उन्हीं को बुनियाद मानकर विभिन्न भाषाओं की ब्रेल संहिताओं में एकरूपता लाई जाए।

(2) जहाँ तक सम्भव हो हर देश विशेष की ब्रेल संहिता उसकी दृष्टिगत लिपि की हूबहू नकल हो।

(3) जिन भाषाओं की दृष्टिगत लिपि एक समान है, ऐसे देशों की ब्रेल लिपियाँ भी परस्पर एक समान हों।

(4) भाषाई आधार पर एक-दूसरे से सम्बद्ध बोलियों के लिए सम्भवतः एक जैसी ब्रेल संहिताएं तैयार की जाएं।

(5) जहाँ तक सम्भव हो विभिन्न भाषा समूहों के मध्य एकरूपता स्थापित करने का प्रयास किया जाए।

कुछ रूढ़िवादी लोगों ने विश्व ब्रेल द्वारा प्रतिपादित नियमों का विरोध भी किया। उनका कहना था कि इन नियमों पर चलने से दृष्टिगत लिपियों और ब्रेल लिपियों के मध्य अनुक्रम के नियम का उल्लंघन होगा, जिससे कि दृष्टिहीन बच्चों को ब्रेल चिह्नों को कंठस्थ करने में कठिनाई होगी। ये वही लोग थे जो कि विभिन्न भाषाओं की वर्णमालाओं को अनुक्रम के आधार पर ब्रेल चिह्नों को लुई ब्रेल द्वारा 7 लाइनों की बंदिश के अनुरूप बाँटना चाहते थे, जैसे हिन्दी में बिन्दु 1 से अ, बिन्दु 1-2 से आ और बिन्दु 1-4 से इ आदि-आदि। परन्तु इसका उत्तर यह दिया गया कि यह आवश्यक नहीं कि बच्चों को वर्णमाला के अनुक्रम से ही ब्रेल सिखाना सही होगा, बल्कि सही तो यह होगा कि बच्चों को पहले ऐसे अक्षरों की पहचान करवाई जाए जिन्हें स्पर्श द्वारा तुलनात्मक रूप से अधिक आसानी से पहचाना जा सके। यहाँ यह भी याद रखना होगा कि आधुनिक शोधों से यह सिद्ध हुआ है कि बच्चों को अक्षर पद्धति की तुलना में शब्द पद्धति से ब्रेल सिखाना अधिक वैज्ञानिक होता है, इसलिए रूढ़िवादियों का उपरोक्त कथन वैसे ही धरा का धरा रह जाता है।

पेरिस कांफ्रेंस में यह भी फैसला हुआ कि तीन विभिन्न भाषा-भाषी क्षेत्रों के लिए अलग-अलग बैठकें बुलाई जाएं। इनमें से एक अरबी लिपि इस्तेमाल करने वाले देशों के लिए हो और दूसरी उन भाषाओं के लिए हो, जिनकी लिपियाँ ध्वनियों को नहीं बल्कि विचारों व संकेतों को परिलक्षित करती हों, जैसे-चीनी व जापानी भाषाएं और तीसरी लातीनी अमेरिकी/स्पेनिश देशों के लिए।

भारत सरकार ने अन्तर्राष्ट्रीय ब्रेल सम्मेलन द्वारा प्रतिपादित नियमों को स्वीकृति प्रदान कर दी और एक विशेषज्ञ समिति ने इन नियमों का पालन कर भारतीय भाषाओं के लिए चिह्नों की पहचान करने का कार्य पूरा किया। इन विशेषज्ञों में भाषाविद् सुनीती कुमार चटर्जी और श्री लाल अडवानी का नाम विशेष रूप से लिया जाता है। भारतीय भाषाओं के लिए जो क्षेत्रीय बैठक बुलाई गयी उसे 1951 में बेरूत में आयोजित किया गया। इस बैठक में श्री लाल अडवानी ने भाग लिया। इस बैठक का एक लाभ यह हुआ कि भारतीय भाषाओं को किसी हद तक श्रीलंका और मलेशिया की भाषाओं के साथ एकरूप बनाने का अवसर मिल गया। भारतीय और सिंहली ब्रेल के मध्य तो सम्पूर्ण एकरूपता प्राप्त हो गयी और मले (Malay) भाषा के साथ बहुत सामंजस्य स्थापित हो गया। इन सब प्रयासों के परिणामस्वरूप हमारे देश के लिए एक ऐसी ब्रेल संहिता का आविर्भाव हुआ जिसे 'भारती ब्रेल' की संज्ञा दी गयी और जो कि समस्त भारतीय भाषाओं के लिए एक समान लिपि है।

इससे पहले कि हम आगे बढ़ें, हमें यहाँ उन लोगों की अनथक कोशिशों की प्रशंसा करनी होगी जिन्होंने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से भारतीय भाषाओं में एकरूपता लाने के लिए इतिहास रचा। इनमें सुनीती कुमार चटर्जी का नाम सर्वप्रथम लेना होगा, उनके अतिरिक्त हम श्री पी.एम. अडवानी को भी नहीं भुला सकते, जिन्होंने बहुत पहले भारतीय भाषाओं के लिए एक समान लिपि का सपना देखा। नीलकंठ राय छत्रपति के प्रयासों को भी ऐतिहासिक रूप से याद रखना होगा। श्री आर. एम. अल्पाइवाला और श्री लाल अंडवानी के नाम भी इतिहास का हिस्सा बनेंगे।

जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं भारती ब्रेल, सिंहली और मले भाषाओं में सामंजस्य स्थापित हो गया, परन्तु पाकिस्तान में इस्तेमाल होने वाली उर्दू ब्रेल के साथ हमारा कोई तालमेल न बैठ सका। यदि हम इस तथ्य का थोड़ा-बहुत विश्लेषण कर सकें तो अच्छा होगा। पहले तो हम भारती ब्रेल को लें। यहाँ पर हम दूसरी भाषाओं की चर्चा नहीं करते, केवल हिन्दी को ही ले लेते हैं।

यह तो सही है कि देवनागरी लिपि को ब्रेल लिपि में पूरी तरह रूपान्तरित करना एकदम असम्भव है, परन्तु फिर भी देवनागरी लिपि के लिए निर्मित ब्रेल में कई प्रश्नों का उत्तर ढूँढना साधारणतया आसान नहीं है। हलन्त (्) के लिए व्यंजन से पूर्व बिन्दु 4 का प्रयोग किया गया है। ब्रेल में स्वर और उनकी मात्राओं के लिए एक जैसे चिह्न हैं। इ की मात्रा (ि) को देवनागरी लिपि में व्यंजन से पूर्व लगाया जाता है, परन्तु ब्रेल में इसे व्यंजन के बाद ही लगाना उचित समझा गया है। इसी प्रकार देवनागरी लिपि में 'क्रम' जैसे शब्द में 'क' पूरा लिखा जाता है, परन्तु ब्रेल में 'क' से पूर्व बिन्दु 4 लगाकर उसे आधा अक्षर माना जाता है, जो सही भी है। इसी तरह से शायद ब्रेल लिपि देवनागरी लिपि की तुलना में अधिक वैज्ञानिक बन गयी है, जिसमें कुछ नियम तो है।

एक हिसाब से ब्रेल लिपि में भी कुछ त्रुटियाँ रह गयी हैं। उसका कारण स्वरों और उनकी मात्राओं का एक समान होना है। उदाहरणस्वरूप 'लखनऊ' शब्द को ही लीजिए। ब्रेल में इसे रूपान्तरित करते समय न के बाद 'अ' लिखना पड़ता है। इसी तरह से 'कई' शब्द में भी क के बाद 'अ' का इस्तेमाल करना पड़ता है आदि-आदि। परन्तु इसका मुख्य कारण ब्रेल लिपि में केवल 63 चिह्नों का बन सकना ही है, नहीं तो स्वरों और उनकी मात्राओं के लिए अलग-अलग ब्रेल चिह्न बनाए जा सकते थे।

भारती ब्रेल को 1-2 वर्षों के इस्तेमाल करने के बाद कुछ जिज्ञासाएं तो मन में उठीं, परन्तु उनका उत्तर अभी तक हमें नहीं मिला। उदाहरणस्वरूप 'ड़'

और 'ढ़' के लिए ब्रेल में अलग चिह्न हैं जबकि देवनागरी लिपि में इन चिह्नों को क्रमश: 'ड' और 'ढ' के नीचे बिन्दु लगाकर दर्शाया जाता है। जब ब्रेल लिपि को दृष्टिगत लिपि के एकरूप ही बनाने का नियम मान लिया गया था तो फिर ड़ और ढ़ के लिए अलग चिह्न क्यों बनाए गये। यदि ऐसा न किया जाता तो हमें वर्तमान ड़ का चिह्न अक्षर 'त्र' के लिए इस्तेमाल करना सम्भव हो जाता। भारती ब्रेल में 'त्र' के लिए जो चिह्न निश्चित किया गया है वह तीन रिक्तयाँ (Space) घेरता है और फिर इस कारण 'त्र्' लिखना तो सम्भव ही नहीं, उदाहरणस्वरूप ब्रेल में आप 'स्वातन्त्र्य' शब्द कैसे लिखेंगे।

यहाँ पर एक बात और विचारणीय है। यदि पाकिस्तान में उर्दू ब्रेल के साथ भारती ब्रेल का सामंजस्य स्थापित न हो सका तो इस प्रश्न को बीच में ही लटका क्यों रहने दिया गया। जहाँ तक हमें मालूम है भारती ब्रेल में उर्दू भाषा के लिए कोई नियमबद्ध लिपि नहीं है, परन्तु इसका कोई लाभ नहीं हुआ। पाकिस्तान में उर्दू की ब्रेल बहुत वर्षों से इस्तेमाल में आ रही है और वही लिपि भारत के कुछ स्कूलों में भी इस्तेमाल हो रही है। ऐसा करना उचित भी है। उर्दू भाषा में 37 अक्षर होते हैं और जहाँ तक सम्भव हुआ पाकिस्तानी उर्दू ब्रेल ने लुई ब्रेल की 7 लाइन की बंदिश के साथ सामंजस्य स्थापित करने की कोशिश की है। उपरोक्त उर्दू ब्रेल दृष्टिगत उर्दू ब्रेल की वर्तनी (Spelling) का समावेश करने में बिल्कुल सक्षम है। इस ब्रेल में संकोच भी इस्तेमाल किए जाते हैं।

ब्रेल विकास के कुछ आयाम:

भारती ब्रेल के निर्माण के बाद हिन्दी भाषा के लिए संकोच संहिता का प्रश्न भी बड़ा संवेदनशील प्रश्न रहा है, जिसका हल आज तक नहीं निकला। विडम्बना की बात तो यह है कि इस लेखक के द्वारा बनाई गयी हिन्दी आशुलिपि तो भारत में इस्तेमाल हो रही है, परन्तु कोई सर्वमान्य संकोच संहिता अभी तक सामने नहीं आई है। हिन्दुस्तानी और कर्नाटक संगीत के लिए भी एकसमान ब्रेल लिपि तैयार की गयी, परन्तु इस लिपि का प्रयोग कितना व्यापक है-- यह कहना हमारे लिए कठिन है। इस लिपि को बनाने में भी इस लेखक का अमल-दखल रहा है।

गणित और विज्ञान के लिए तो ब्रेल लिपि का सवाल हल कर ही लिया गया है। नैमिथ कोड (Nemeth Code) को सन् 1988 में मान्यता देकर भारत में इस्तेमाल के लिए उपयोग में लाया जाने लगा है, परन्तु कई विशेषज्ञ नैमिथ कोड के मुकाबले ब्रिटिश मैथेमैटिक्स कोड (British Mathematics Code) को

बेहतर मानते हैं। विरोध और प्रतिरोध तो चलते रहेंगे लेकिन शायद अन्ततः विजय नैमिथ कोड की ही होगी। इसका एक मुख्य कारण यह है कि नैमिथ कोड दृष्टिगत कोड से बहुत-कुछ मिलता-जुलता है, इसलिए इसे दृष्टिवान अध्यापकों का पूर्ण समर्थन प्राप्त है। यह बात तब सामने आयी जब 1988 में राष्ट्रीय दृष्टिबाधितार्थ संस्थान में आयोजित एक राष्ट्रीय गोष्ठी में नैमिथ कोड को भारत के लिए उपयुक्त मान लिया गया।

हिन्दी ब्रेल में संकोच और संक्षेप :

हिन्दी ब्रेल के लिए संकोच संहिता तैयार करने का इतिहास बड़ा रोचक परन्तु विवादों से घिरा हुआ है। बहुत-से विशेषज्ञ मूल रूप से ही संकोचों और संक्षेपों के विरुद्ध हैं और वे इस सिलसिले में कुछ यूरोपीय देशों जैसे नॉर्वे, स्वीडन और किन्हीं स्केन्डिनेवियन (Scandinavian) देशों का उदाहरण देते हैं जहाँ पर अब संकोच इस्तेमाल नहीं होते। हमें बताया गया है कि नॉर्वे में तो आम दृष्टिहीन लोग संकोचों को प्रयोग में नहीं लाते लेकिन छात्रों का एक वर्ग इनका इस्तेमाल करता है और दूसरे स्केन्डिनेवियन देशों में भी व्यक्तिगत रूप से संकोचों का इस्तेमाल होता रहता है। अंग्रेजी भाषा-भाषी देशों, जैसे--ब्रिटेन, अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, कनाडा में तो स्टैण्डर्ड अंग्रेजी ब्रेल ग्रेड-2 का व्यापक रूप से इस्तेमाल होता ही है। यदि कुछ यूरोपीय लोगों ने ब्रेल संकोचों का इस्तेमाल करना बन्द कर दिया है तो उसका मुख्य कारण यह है कि वहाँ दृष्टिहीनता वृद्धावस्था की स्थिति है। वहाँ बच्चों में दृष्टिहीनता की रोकथाम बहुत हद तक सफल रही है। बताया जाता है कि स्विट्जरलैण्ड में तो कई वर्षों से एक भी बच्चा न तो दृष्टिहीन पैदा हुआ है और न ही बचपन में दृष्टिहीन हुआ है। ऐसा होना अस्वाभाविक भी नहीं है क्योंकि आजकल गर्भावस्था में ही यह पता कर लेना आसान हो गया है कि गर्भ में जो बच्चा है उसमें कोई आनुवंशिक दोष तो नहीं है और जाहिर है कि ऐसे दोष के मिल जाने पर गर्भपात करवाने में आजकल कोई बुराई नहीं समझी जाती। अत यदि 60-70 वर्ष की आयु में कोई व्यक्ति आँख से पढ़-लिख नहीं सकता तो उसके लिए इंटरनेट व दूसरे उपकरण हैं, जिनसे सुनकर वह सारी जानकारी प्राप्त कर सकता है, परन्तु भारत में स्थिति बिल्कुल अलग है। यहाँ तो हर वर्ष हजारों बच्चे कुपोषण के कारण ही दृष्टि से वंचित हो जाते हैं। हालांकि चेचक (Small Pox) जैसी बीमारियों से भारत ने छुटकारा पा लिया है, परन्तु जैसा कि सर्वविदित है गरीब और निर्धन लोगों में पूरी तरह समय पर चिकित्सकीय सहायता न पहुँचने से और दादी माँ के झूठे-सच्चे नुस्खों के प्रयोग से, विशेषकर पिछड़े वर्गों में बचपन में आँखों की बीमारियाँ काफी फैल जाती हैं। यह भी याद रखना होगा कि हालांकि

दृष्टिहीनों के स्कूल व अन्य शिक्षण-प्रशिक्षण केन्द्र नगरों में स्थित हैं, परन्तु उनमें पढ़ने-सीखने वाले बच्चों की अधिक संख्या गाँवों से आए बच्चों की है। हमारा यह मत है कि दृष्टिहीन बच्चों के लिए ब्रेल सीखना बहुत आवश्यक है और यह उन्हें उच्चतर माध्यमिक स्कूल के स्तर तक सिखाई जानी चाहिए, जिससे कि उनका भाषा सम्बन्धी ज्ञान सशक्त हो सके और वे गणित व विज्ञान जैसे विषयों को अपनी उंगलियों से छूकर ब्रेल के माध्यम से ही सीख सकें। यह भी सुना गया है कि 3-4 वर्ष पूर्व अमेरिका की 31 रियासतों ने कानून पास करके दृष्टिहीन व न्यून-दृष्टि बच्चों के लिए ब्रेल सीखना अनिवार्य कर दिया है।

उपरोक्त तथ्यों से यह पता चलता है कि विश्व में ब्रेल का प्रयोग व्यापक रूप से हो रहा है और ब्रेल संकोचों का इस्तेमाल भी काफी हद तक होता है। परन्तु हम यह कह देना चाहते हैं कि चाहे हम ब्रेल लिपि में संकोचों के इस्तेमाल के पक्षधर हों, फिर भी हमारा यह मत निश्चित रूप से रहा है कि कोई भी मानक संकोच संहिता यदि इस्तेमाल में हो तो वह बहुत सरल और सीमित हो। इस सम्बन्ध में मूल मंत्र तो यही रहना चाहिए कि हर एक संकोच संहिता का आधार स्थान की बचत न होकर पढ़ने की गति में तेजी प्राप्त करना होना चाहिए। अब आप अंग्रेजी ब्रेल की ही संकोच संहिता लीजिए, जिसमें लगभग 190 संकोच और संक्षेप सम्मिलित हैं। एक अध्ययन के अनुसार इन 190 संकोचों में 84 ऐसे हैं, जिनके इस्तेमाल से ही पूरी Space Saving का 90 प्रतिशत हिस्सा प्राप्त हो जाता है और बाकी का 10 प्रतिशत शेष 105-106 संकोचों से होता है। कुछ वर्ष पहले रॉयल नेशनल इंस्टीट्यूट फॉर दी ब्लाइंड, लंदन ने अंग्रेजी ब्रेल के लिए ऐसी नई संकोच संहिता तैयार की जिसमें वर्तमान कोड की तुलना में संकोचों की संख्या लगभग आधी थी और जिनमें वर्तमान की तुलना में Space Saving भी अधिक होती थी। आप ही बताइए यदि 'is', 'at', 'on' जैसे शब्दों के लिए एक कोष्ठ वाले चिह्न इस्तेमाल होने लगें तो Space Saving में कितनी बढ़ोतरी हो सकती है। ऐसी अवस्था के पक्ष और विपक्ष में कई बातें कही जा सकती हैं, जिनमें पड़ना यहां उचित न होगा।

अब हम हिन्दी भाषा के संकोचों के प्रयोग की कहानी भी कह लें। बहुत सोच-विचार के बाद 1973 में भारत सरकार के गृह मंत्रालय में तत्कालीन हिन्दी सलाहकार श्री वी.पी. नायक की अध्यक्षता में हिन्दी ब्रेल के लिए संकोच संहिता तैयार करने व अन्य भारतीय भाषाओं के लिए इसी संदर्भ में दिशा-निर्देश जारी करने हेतु एक समिति का गठन किया गया। इस समिति की पूरी बैठक केवल एक ही बार हुई और उसके बाद इस सारे कार्य को पूरा करने का जिम्मा इस लेखक और एन.ए.बी. की श्रीमती स्वर्ण अहूजा पर छोड़ दिया गया।

इस संदर्भ में यह भी याद रखना होगा कि उस समय मॉडल स्कूल फॉर ब्लाइंड चिल्ड्रन, देहरादून में अध्यापक के रूप में कार्यरत श्री एच.एल. शाह ने हिन्दी और गुजराती भाषा के लिए संकोच संहिताओं के निर्माण का कार्य समाप्त भी कर लिया था और उनकी बनाई हुई संकोच संहिता काफी अच्छी भी थी, परन्तु उसमें एक बड़ा दोष यह था कि एक ही संकोच चिह्न को लिंग और वचन के संदर्भ के अनुसार पढ़ने का नियम निर्धारित किया गया था। उदाहरणस्वरूप यदि 'अच्छा' के लिए कोई चिह्न निर्धारित था तो वह स्त्रीलिंग के संदर्भ में 'अच्छी' के लिए भी इस्तेमाल हो सकता था। इस नियम को और भी जटिल बना दिया गया था, जिसके अनुसार ऐसी हालत में यदि ब्रेल पढ़ने-लिखने वाले के मन में कोई शंका हो तो वह इस नियम को इस्तेमाल न करे और जहाँ अच्छा लिखने की जरूरत हो वहाँ अच्छा लिखे और जहाँ अच्छी लिखने की जरूरत हो वहाँ अच्छी ही लिखे। लिंग और वचन का अंदाजा कोई मानव ब्रेल अनुलेखक तो कर भी ले, परन्तु कम्प्यूटर तो यह कार्य नहीं कर सकेगा, उदाहरणस्वरूप कम्प्यूटर को कैसे पता चलेगा कि 'कमलेश' या 'राजेश' किसी पुरुष का नाम है या किसी महिला का और वह 'अच्छा' है या 'अच्छी' है।

इसी तरह इस लेखक ने भी हिन्दी के लिए एक संकोच संहिता तैयार की हुई थी, और भी एक-दो संहिताएं थीं, परन्तु उनमें कोई विशेषता नहीं थी। 1973 में भारत सरकार द्वारा गठित समिति ने यह फैसला लिया कि पहले तो उस समय उपलब्ध हिन्दी संकोचों की समस्त संहिताओं का अध्ययन किया जाए और इस अध्ययन के बाद यदि आवश्यक हो तो एक नई संकोच संहिता तैयार की जाए, जिसके लिए कुछ नियमों का निर्धारण भी कर लिया गया। हम इस लम्बी बहस को अधिक तूल नहीं देना चाहते। अन्ततः भारत सरकार ने यह फैसला किया कि हिन्दी भाषा के लिए नई संकोच संहिता बनाई जाए। यह संकोच संहिता अन्ततोगत्वा दिसम्बर, 1985 में राष्ट्रीय दृष्टिबाधितार्थ संस्थान, देहरादून द्वारा आयोजित एक राष्ट्रीय गोष्ठी में स्वीकृत कर ली गयी। परन्तु यह किस्सा यहीं समाप्त नहीं हुआ। राष्ट्रीय दृष्टिबाधितार्थ संस्थान द्वारा मान्यता प्राप्त हिन्दी संकोच संहिता का जमकर विरोध हुआ और इसे राष्ट्रीय दृष्टिबाधितार्थ संस्थान अथवा उसके द्वारा चलाए गये अध्यापक प्रशिक्षण केन्द्रों ने ही स्वीकारा, परन्तु अन्दर ही अन्दर इसका विरोध भी चलता रहा और जैसा हम बता चुके हैं इस संहिता का प्रयोग काफी सीमित है।

एक-दो वर्ष पूर्व राष्ट्रीय दृष्टिबाधितार्थ संस्थान ने एक ब्रेल एडवाइजरी कमिटी (Braille Advisory Committee) का गठन किया, जिसको वर्तमान

संकोच-संहिता पर शोध करने की जिम्मेदारी भी सौंपी गयी, जिससे कि इस संहिता की उपयोगिता अथवा अनुपयोगिता सिद्ध हो सके, परन्तु अभी तक यह मामला विचाराधीन है। हम नहीं जानते कि राष्ट्रीय दृष्टिबाधितार्थ संस्थान द्वारा गठित ब्रेल एडवाइज़री कमिटी अन्ततः किस परिणाम पर पहुँचेगी। हम तो इतना ही कहना चाहते हैं कि कोई भी संकोच संहिता सरल और सीमित होनी चाहिए।

संदर्भ साहित्य

'स्पर्श लिपियों का इतिहास :

1. Gabriel Farrel--Story of Blindness.
2. J.M. Ritchic--Concerning the Blind.
3. Jean Roblin--Louis Braille.
4. Govt. of India--Report on Blindness, 1944.
5. Govt. of India--Fifty years for work for the Blind in India
6. K.N.K. Jussawalla--Louis Braille & all that.
7. Prof. V.P. Verma-- लुई ब्रेल व्यक्तित्व और कृतित्व।

पुनर्वास :

1. Zahl--Homes to Helen Keller.
2. Suresh C. Ahuja-- Rehabilitation of Visually Handicapped Indians-- The problem and the numbers-Journal of Visual Impairment--June, 1990 --American Foundation for the Blind. New York.
3. Suresh C. Ahuja-- Various Papers on the subject of 'Rehabilitation of the Blind' presented at National and International Conferences during 1970-1990.
4. Bhushan Punani & Nandini Rawal-- Community Based Rehabilitation & Visual Impairment Handbook.
5. Prof. Ramnik Halleri-- 'सामुदायिक पुनर्वास'
6. Braille Monitor-- (Various Issues)- National Federation of the Blind, USA.
7. Proceedings of International Assemblies and Conferences of International Organizations e.g. ICEVI. WBU etc.

विकलांगता :

1. WCWB World Assembly Proceedings--1954.
2. Towards a Fuller Life--Government of India Publication
3. Blindness-- Ability not Disability by Maxine Wood.
4. S. Fronken & K.R. Mehta-Ophthalmic Morbidity in the dry belt of Punjab & Haryana.
5. The Persons with Disabilities Act, 1995--Government of India

सामाजिक अध्ययन:

1 डा. गुरु सरनदास त्यागी, सामाजिक अध्ययन का शिक्षण, नव संस्करण, 1991, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।

2. सुदेश मुखोपाध्याय, एन.के. जंगीरा, एम.एन.जी. मनी, एम. चौधरी Source Book for Teachers of Visually Impaired– 1988 NCERT, New Delhi.

3. Dr. M.N.G. Mani--Techniques of Teaching Blind Children-1992, Sterling Publishers, New Delhi.

4. William Schiff and Emerson F Oulhs-Tactual Perception: a source book--1982, Cambridge University Press, U.K. etc.

भाषा शिक्षण:

1 डॉ. सावित्री सिंह, हिन्दी भाषा शिक्षण, सातवाँ संस्करण, 1993, लायल बुक डिपो, मेरठ।

2 दृष्टिदोष- विकलांगता सम्बन्धी जागरूकता एवं प्रशिक्षण कार्यक्रम, जनवरी, 2004.

(अ) भाषायी, संचार और सामाजिक कौशल विकसित कराना।

(ब) सृजनात्मक कलाओं में क्षमताएं विकसित कराना।

इंदिरा गांधी, राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

3. सुदेश मुखोपाध्याय, एन.के. जंगीरा, एम.एन.जी. मनी, एम. चौधरी, Source Book for Teachers of Visually Impaired, 1988, N.C.E.R.T., New Delhi.

प्रत्यय निर्माण एवं विकास:

1. Chapman, E.K (1978)--Visually Handicapped Children and Young People, Routledge and kegan Paul, London.

2. Scholl, G.T. (Ed) 1986-- Foundations of Education for Blind and Visually Handicapped Children and Youth, Theory and Practice, AFB, New York.

3 Lydon, W.T. and Mc Graw M.L (1973)- Concept Development for Visually Handicapped Children, AFB, New York.

4 अमर ज्योति बाल-निर्देशन केन्द्र (1995) दृष्टिबाधित बच्चों का शिक्षा की मुख्यधारा में सम्मिलन, अमर ज्योति रिसर्च सेंटर, नई दिल्ली।

5. इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय (2004) विकलांगता सम्बन्धी जागरूकता एवं प्रशिक्षण कार्यक्रम Book 4- मानसिक विकास को बढ़ावा देना।

निम्न दृष्टि बालकों की शिक्षा :

1. Jose, R. (Ed) (1989)-- Understanding Low Vision, New York: American Foundation for the Blind.
2. Keefee, J.E. (1994)-- Assessment of Low Vision in Developing Countries Book 2, Melbourne- The University of Melbourne.
3. World Health Organization (1993)- Management of Low Vision in Children, Geneva.
4. Van Dijk, K.--Persons with Low Vision, Punani, B. and Rawal, N. (2000) Visual Impairment Hand Book, Blind Peoples' Association, Ahmedabad.
5. इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, (2004), विकलांगता सम्बन्धी जागरूकता एवं प्रशिक्षण कार्यक्रम Book 2 कम दृष्टि वालों के लिए दृष्टि प्रशिक्षण, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

अभिवृत्ति :

1. Adams, G.S. (1982). Attitude Measurement. Encyclopedia of Education Research. Volume- 1, New York: Free Press.
2. Anderson, L.W. (1985). Attitude and their Measurement. In T. Husen and T.N. Postlethwaite (eds.). The International Encyclopedia of Education. Vol- 1, Oxford; Pergamon Press.
3. Donaldson, J. (1988). Changing Attitudes towards Handicapped Persons; a preview of analysis of research, Exceptional Children. 46
4. Edwards, A.E. (1969). Techniques of Attitude Scale Construction, Bombay; Vaklis Feffer and Simons.
5. Soni, R.B.L. (1994). Impact of the Handicapped Child on Siblings, Indian Educational Review, 29, 1.
6. Soni, R.B.L. (2002), Pupils' Attitudes toward Integration and Friendship in New Delhi. Indian Educational Review, 38, 1.
7. Soni, R.B.L. (2003), Attitudes of Pupils' toward Integration and friendship in Manchester and New Delhi. Journal of Indian Education, XIX, 1.

8. Soni, R.B.L. (2003), Pupil's Attitudes towards Mainstreaming, The Primary Teacher, XXVIII, 3.

9. Soni, R.B.L. (2004), Perception about Education of Disabled Children. Journal of Indian Education.

10. Soni, R.B.L. (2004), Disabled Students' Perceptions about their Education. The Primary Teacher.

11. Soni, R.B.L. (2001), Attitudes towards Integrated Education, New Delhi; Rajat Publications.

12. Soni, R.B.L. (2003), Autotelic Learning, New Delhi; Mittal Publications.

विज्ञान शिक्षण:

1. Franks-et-al (1976). Educational materials developement in primary science: The pull-apart cell. *Education of the Visually Handicapped,* 8: 16-30, Spring.

2. Harley, R.K. (1963), *Verbalism among blind children.* New York : American Foundation for the Blind.

3. Linn, Marcia, C. and Their, Herbert. (1975). Adapting science materials for the blind (ASMB) : Expectation for student outcomes. *Science Education Vol. 59,* Issue No. 2, April-June, pp. 237-246.

4. Stephens, W.B. & Grube, C. (1977). *Student activity guide: A piagetion perspective.* BEH, USOE, Project No 443CH50410.

5. Stephens, W.B. and Simpkins, K. (1974). The reasoning, moral judgment and moral conduct of the congenitally blind. Final Report, Project No. OEG-0-72-5464. Philadelphia : Temple University.

वैयक्तिक विभिन्नताएँ:

1. Hallahan, D.P & Kauffman, J.M. (1986). *Exceptional children: Introduction to special education.* Massachusetts : Prentice Hall, Inc.

2. Ingram, C.P. (1960). *Education of the slow learning child.* New York : Ronald Press.

3. Knoff, H.M. (1987). Slow learners. In C.R. Reynolds & L. Mann (editors). *Encyclopedia of special education.* Wiley Interscience Publications, John Wiley & Sons.

4. Lewis, R.B. & Doorlag D.H. (1987). *Teaching special students in the mainstream.* Ohio : Merrill Publishing Company. pp. 317.

5. Marland, S. (1972) *Education of the gifted and talented.* Report to the Congress of the United States by the U.S. Commissioner of education : Washington, DC : U.S. Govt. Priniting Office.

6. Renzulli, J. (1978). What makes giftedness ? Reexamining a definition. *Pyhi Delta Kappan,*. 60, 180-184, 261.

7. Whitmore, J.R. & Maker, C.J. (1985). *Intellectual giftedness in disabled persons,* Rockville, MD : Aspen Systems.

गणित शिक्षण :

1. French, R.S. (1932). *A social and educational study of the blind.* New York : American Foundation for the Blind, Inc. pp 72, 187-188.

2. Hampshire, B. (1981). *Working with Braille.* Paris : UNESCO pp. 90-98.

3. Hussey, S.R., & Legge, L. (1956), The halifax method of arithmetical calculations. *International Journal for the Education of the Blind, 6, 36-40.*

अन्य:

1. कॉसलर, फ्रान्सिस ए : दि अनसीन माइनोरिटी (1976) ए.एफ.बी., न्यूयार्क।

2. वरनर, डेविड: डिसेबल्ड विलेज चिल्ड्रन (1994), (इण्डियन एडीसन) वालेन्ट्री हैल्थ एसोसिएशन ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली।

3. शिकागो विश्वविद्यालय, इत्यादि: एन्साइक्लोपीडिया बिट्रानिका (1980) एन्साइक्लोपीडिया बिट्रानिका, शिकागो।

4. रिनाल्ड्स, सेसिल आर. तथा लेस्टर मेन (सम्पादक), एन्साइक्लोपीडिया ऑफ स्पेशल एजुकेशन (1987) जॉन विली एण्ड संस, न्यूयॉर्क।

5. हेलाहेन, डनियल, पी. तथा कॉफमैन, जेम्स एम, एक्सेप्शनल चिल्ड्रन (1977) प्रेनटीस हॉल इंटरनेशनल, लंदन।

6. हसन, टारस्टी (मुख्य सम्पादक) इंटरनेशनल एन्साइक्लोपीडिया ऑफ एजुकेशन (1985) पेरागान प्रेस, ऑक्सफोर्ड, संयुक्त राज्य अमेरिका।

7. हेवार्ड, विलियम एल. तथा आरलन्सकी, माइकल डी., एक्सेप्शनल चिल्ड्रन (1980) चार्ल्स ई., मेरिल पब्लिशिंग कम्पनी, कोलम्बस।

8. दि हचीनसन एन्साइक्लोपीडिया (2000) दि मिलेनियम एडांसन।

9. सेलिसबरी, जाफरी, ओपन एजुकेशन हैण्ड बुक फॉर टीचर्स ऑफ दि ब्लाइंड (1974) दि सेंटर फॉर एजुकेशनल डवलपमैंट ओवरसीज, लंदन।

10. पुनानी, भूषण एण्ड रावल नन्दिनी, डब्ल्यू. स्टेन एण्ड इन्टिग्रेटेड एजुकेशन (1993) ब्लाइंड मैन्स एसोसिएशन, वस्त्रापुर, अहमदाबाद।

11. एन.सी.ई.आर.टी. सोर्स बुक फॉर टीचर्स ऑफ विजुअली इम्पेयर्ड (1987), एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली।

12. एन.आई.वी.एच. हैण्डबुक फॉर दि टीचर्स ऑफ दि विजुअली हैण्डीकैप्ड (1992), एन.आई.वी.एच. देहरादून।

13. एम.एच.आर.डी. स्कीम ऑफ इन्टिग्रेटेड एजुकेशन फॉर दि डिसेबल्ड चिल्ड्रन, (1992), एम.एच.आर.डी., नई दिल्ली।

14. प्रसाद लक्ष्मण, रिहैब्लिटेशन ऑफ दि फिजिकली हैण्डीकैप्ड, (1994) के.पी.आर. नैय्यर, दिल्ली।

15. पुनानी, भूषण एण्ड रावल नन्दिनी, विजुअल इम्पेयरमेंट हैण्डबुक (2000) बी.पी.ए., अहमदाबाद।

16. गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया, रिपोर्ट ऑन ब्लाइंडनेस इन इण्डिया, (1944), गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया प्रेस, नई दिल्ली।

17. एन.आई.वी.एच., मैनुअल ऑन भारती ब्रेल (1980), एन.आई.वी.एच., देहरादून।

18. गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया, 50 ईयर्स ऑफ वर्क फॉर दि ब्लाइंड, (1992) गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया प्रेस, नई दिल्ली।

19. आहूजा, स्वर्ण, दृष्टिहीनों का शिक्षण तथा पुनर्वसन (1994), एन.ए.बी., मुम्बई।

20. जंगीरा, एन.के. तथा मुखोपाध्याय, सुदेश, प्लानिंग एण्ड मैनेजमेंट ऑफ आई.ई.डी. प्रोग्राम, (1987), एन.सी.ई.आर.टी., दिल्ली।

21. मित्तल, ए.के. (सम्पादक) मैनुअल ऑफ ऑफिस मैनेजमेंट ट्रेनिंग, (1982), एन.आई.वी.एच., देहरादून।

22. एन.आई.वी.एच., एन ओवरव्यू आफ ब्रेल डवलपमेंट इन इण्डिया, (1991), एन.आई.वी.एच., देहरादून।

23. एच.के.आई. कम्युनिटी बेस्ड रिहैब्लिटेशन ऑफ दि रूरल ब्लाइंड, (1986), एच.के.आई. न्यूयॉर्क।

24. देसाई, एच.जे.एम., प्लानिंग एम्प्लायमेंट सर्विसेज फॉर दि ब्लाइंड इन दि डवलपिंग कन्ट्रीज़, (1981), डब्ल्यू.सी.डब्ल्यू.बी., पेरिस।

25. चौधरी मधुकर तथा राय अजय कुमार, एकीकृत शिक्षा और सामुदायिक सहभाग, (1997), राष्ट्रीय दृष्टिहीन कल्याण संघ, मुम्बई।

26. स्कॉल, जरॉलडाइन टी., (सम्पादक) फाउन्डेशन ऑफ एजुकेशन फॉर ब्लाइंड एण्ड विजुअली हैण्डीकैप्ड चिल्ड्रन एण्ड यूथ, (1986), ए.एफ.बी, न्यूयार्क।

27. फैरेल, गेबरियल, दि स्टोरी ऑफ ब्लाइंडनेस, (1956), हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज।

28. चैपमैन, एलिजाबेथ के. तथा स्टोन, जुलियट एम., दि विजुअली हैण्डीकैप्ड चाइल्ड इन योवर क्लासरूम, (1988) केसल एजुकेशनल लिमिटेड, लंदन।

29. मनी, एम.एन.जी., टैक्नीक्स ऑफ टीचिंग ब्लाइंड चिल्ड्रन,(1992), स्टरलिंग पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली।

30. चौहान, आर.एस., ट्राइम्फ ऑफ दि स्प्रिट, (1994), कोनार्क पब्लिशिंग प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली।

31. पाण्डेय, आर.एस. तथा अडवाणी लाल, परस्पेक्टिव इन डिसेबिलिटी एण्ड रिहैब्लिटेशन, (1995) विकास पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

32. चौहान, आर.एस., प्रेरणा स्रोत, (1995) एन.आई.वी.एच., देहरादून।

33. सेविंगनी, हेक्टर तथा ब्रेरवरमैन, सिडल, दि एडजस्टमेंट ऑफ दि ब्लाइंड, (1950), येल यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यू हेवन, संयुक्त राज्य अमेरिका।

34. कट्सफोर्थ, टॉमस डी., दि ब्लाइंड इन स्कूल एण्ड सोसाइटी, (1932), ए.एफ.बी., न्यूयॉर्क।